

DUE DATE SLIP**GOVT COLLEGE, LIBRARY**

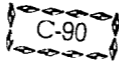
KOTA (Raj)

Students can retain library books only for two weeks at the most

BORROWER S No	DUE DTATE	SIGNATURE

संस्कृत के सन्देश काव्य

मेघदूत और उसकी परम्परा का एक अध्ययन



संस्कृत

डा० रामकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच० डी०,
संस्कृत प्राध्यापक, गवनेमेन्ट कालेज, अजमेर

~~मूल्य २०=००~~
परिवर्धित मूल्य २५=००

लेखक तथा प्रकाशक
डा० मकुमार आचार्य, एम० ए०, पीएच०डी०,

व्याकरणाचार्य,
प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
गवर्नमेन्ट कालेज, अजमेर

वर्तमान पता,

१०७, मुक्तानन्द नगर,
गोपालपुरा रोड, जय

S 8211.1
R165
807

आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १९५७ में
पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत शोधग्रन्थ

सर्वाधिकार लेखक द्वारा स्वरचित

All Rights Reserved by the Author

~~मुद्रण २०-००-००~~
प्रतिबद्धित मूल्य २२-००

स० १९६३ ई०

— मुद्रक —
श्री रामलाल गोयल
मैनेजर, आदर्श प्रेस,
अजमेर

सन्देशकाव्यान्यतिभाजपूर्णा--
न्यतीज माधुर्यभृतानि सन्ति ।
तेषा यदालोचनमेतदस्ति
समर्प्यते सस्कृतभागजनेभ्यः ॥

यदत्र वैगुण्यमधिष्ठितं स्यात्
तन्नैव विद्वद्भिरवेक्षणीयम् ।
ये चात्र सौन्दर्य कणाः विकीर्णाः
ते प्रीत्ययेयुः विदुषा मनांसि ॥

ये प्राक्तनाः सस्कृत काव्यकाराः
वियोग वार्ता रम कोविदाः वै ।
सन्देशकाव्यानि प्रणीतवन्तः
तेभ्यो मयेय क्रियते नमस्कृतिः ॥

प्रस्तुत ग्रन्थ आगरा विश्वविद्यालय द्वारा स० १९५७ में पीएच० डी० की उपाधि के लिये स्वीकृत हो चुका है। इस ग्रन्थ में संस्कृत के सन्देशकाव्यों के उद्गम और विकास का वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

प्रथम अध्याय में विस्तृत भूमिका दी गई है। इस भूमिका में सन्देश काव्यों के उद्गम, साधारण स्वरूप, शिल्पविधान, विभिन्न प्रवृत्तिया तथा अन्य सबद्ध विषयों का विवेचन किया गया है। यह भूमिका प्रारंभिक संस्कृत साहित्य के गम्भीर अध्ययन तथा विभिन्न सन्देश काव्यों के आलोचनात्मक परीक्षण द्वारा प्रस्तुत की गई है।

अन्य अध्यायों में ३४ प्रतिनिधि सन्देश काव्यों का विशिष्ट विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस विवेचन में सन्देश काव्य के रचयिता तत्कालीन विशेषता का काल तथा जीवनवृत्त, काव्य की कथा और साहित्यिक समालोचना प्रस्तुत की गई है।

कवियों का कालनिर्णय संस्कृत साहित्य के विभिन्न इतिहासों तथा काव्यों की भूमिकाओं पर आधारित है। यहाँ स्वतन्त्र अनुसंधान भी किया गया है।

सन्देश काव्यों की साहित्यिक आलोचना संस्कृत साहित्य शास्त्र में निश्चित किये गये आलोचनासिद्धान्तों पर आधारित है। प्रत्येक सन्देशकाव्य की स्वतन्त्र आलोचना के अतिरिक्त मेघसन्देश के साथ उसकी तुलनात्मक आलोचना भी की गई है। इस तुलनात्मक आलोचना में प्रत्येक सन्देशकाव्य की मेघसन्देश से समान तथा भिन्न बातों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। प्रायः प्रत्येक सन्देशकाव्य में मेघसन्देश के प्रभाव को खोज निकालने का भरपूर प्रयास किया गया है और इस तरह तत्कालीन विशिष्ट पद्य, पंक्ति तथा वाक्यांश का मूल स्रोत खोज निकाला गया है।

संस्कृत साहित्य में यह सन्देशकाव्य दृढ़ ही महत्त्वपूर्ण हैं। संस्कृत साहित्य के विभिन्न स्वरूपों का प्रथम निदर्शन खोज निकालना दृढ़ ही दुष्कर है। महाकाव्यों और नाटकों तक का प्रथम निदर्शन निश्चित करना सरल नहीं है। लेकिन सन्देश काव्यों के सन्दर्भ में ऐसी बात नहीं है। कालिदास का मेघसन्देश प्रथम सन्देशकाव्य है। कविकुलगुरु की किसी अन्य रचना ने संस्कृत साहित्य को इतना प्रभावित नहीं किया जितना कि उनके मेघसन्देश ने और इस दृष्टि से मेघसन्देश नितान्त ही विलक्षण है। इस काव्य के अनुकरण पर समग्र देश में परवर्ती

कवियों द्वारा लगभग १०० सन्देश काव्य लिखे जा चुके हैं। इस प्रकार मेघ सन्देश ने संस्कृत साहित्य में एक नई परम्परा को ही जन्म दिया है। संस्कृत साहित्य के इस सुन्दर विस्तृत उपेक्षित अंग का व्यवस्थित अध्ययन नितान्त आवश्यक था। इसी लक्ष्य की धारा में रर कर, संस्कृत के सन्देश काव्यों का ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस कार्य के लिये ३४ प्रमुख सन्देश काव्यों को चुना गया है। इनमें से बहुत से तो अप्राप्य ही हैं। सारे देश भर में निरन्तर खोज के बाद उपलब्ध हो सके हैं।

इन ३४ सन्देशकाव्यों में, दो तो मूल सन्देशकाव्य हैं, दो मेघसन्देश के उत्तराख्यान हैं, आठ सन्देशकाव्य जैनियों की साहित्यिक परम्परा से लिये गये हैं और अश्लिष्ट २२ सन्देशकाव्य साहित्यिक, धार्मिक तथा अन्य हिन्दु परम्पराओं से सयद्ध हैं। जैन सन्देशकाव्यों पर विचार करते हुये, इन काव्यों में मेघसन्देश की जो समस्यापूर्ति पाई जाती है, उसका भी यथोचित विवेचन किया गया है।

लेखक आशा करता है कि इस ग्रन्थ से संस्कृत के सन्देश काव्यों के व्यवस्थित तथा समीचीन अध्ययन में संस्कृत-जगत् को पर्याप्त प्रेरणा मिलेगी, संस्कृत साहित्य में सन्देश काव्यों को उचित आदर का स्थान प्राप्त होगा और साथ ही सन्देशकाव्यों की तरह उनका यह ऐतिहासिक तथा समालोचनापरक विवेचन भी संस्कृतानुसंगियों के लिये शाश्वत आनन्द का स्रोत रहेगा।

आभारणीय गुरुधर्म डा० सत्यनारायणजी पारडेय, एम० ए०, पीएच० डी०, अध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, वी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर के प्रति लक्ष्य अतीत कृतज्ञ है। श्रेय पारडेयजी की प्रेरणा तथा सतपरामर्श से ही यह शोधग्रन्थ पूर्ण हो सका है।

स्वच्छ तथा शुद्ध मुद्रण के लिये 'प्रादर्श प्रेस, अजमेर के प्रबन्धकर्ता श्री रामलाल गोयल तथा अन्य कर्मचारिजन मेरे धन्यवाद के पात्र हैं। यद्यपि पुस्तक के मुद्रण में थोड़ी सावधानी रक्षनी गई है, फिर भी, समय है कि स्थान २ पर कुछ अशुद्धियों दृष्टिगोचर हों। आशा है कि विद्व पाठकों के रसास्वादन में इन अशुद्धियों से कोई व्याघात न होगा और वे अपनी उदारतायश इन्हें उपेक्षित ही कर देंगे।

गवर्नमेंट कालेज,
अजमेर

१० मार्च, १९६३

रामकुमार आचार्य

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

सन्देश-काव्यों का साधारण परिशीलन

पृष्ठ १-४६

- सन्देश काव्यों का साहित्यिक स्वरूप-चण्डिकाव्य तथा गीतिकाव्य—
सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य—
पशुपत्नी तथा अन्य जहू श्रीरु चेतन पदार्थों का दूत कार्य में उपयोग—
प्राचीन साहित्य में सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्त्व-ऋग्वेद-रामायण—
महाभारत-भागवत गौड़-जातिक—
सन्देश काव्य का शिल्प विधान—
सन्देश-काव्यों पर प्राचीन साहित्य शास्त्रियों की सम्मति—
सन्देश काव्यों का श्रु गारिक स्वरूप—
जैन सम्प्रदाय में सन्देश काव्यों का धार्मिक रूप—
उत्तरकालीन भक्तिपरक तथा दार्शनिक सन्देश काव्य—
सन्देश काव्यों से देश का भौगोलिक तथा सामाजिक परिज्ञान—
सन्देश-काव्यों की भाषा, शैली और छन्द—
मेघ सन्देश का विश्वी साहित्य पर प्रभाव—
मेघ सन्देश का भारतीय साहित्य पर प्रभाव—
सन्देश काव्यों में मानवता के लिये शुभ सन्देश ।

द्वितीय अध्याय

प्रथम भाग—मूल सन्देश काव्य

पृष्ठ ५१-१५५

- १ घट कर्पूर-कवि का सन्देशकाव्य ५२-५६
२ कालिदास का मेघसन्देश ६०-१३१

द्वितीय भाग—मेघ संदेश के उत्तराख्यान

पृष्ठ १३४-१५५

- १ परमेश्वर भ्रा का यक्ष मिलन-काव्य— १३८-१४०
२ मन्दिकल रामशास्त्री का मेघप्रतिसन्देश । १४१-१४५

तृतीय अध्याय—जैन-सन्देश-काव्य

पृष्ठ १५७-२३६

- १ जिन सेन का पार्श्वभ्युदय— १५८-१८४
२ विक्रमकवि का नेमिदूत— १८८-१९३

	पृष्ठ
३ मेरुतुंग का जैन-मेघदूत	१६४-२०१
४ चरित्र सुन्दरगणि का शीलदूत	२०१-२०८
५ वादिचन्द्र का पवन-दूत	२०८-२१३
६ अज्ञात कवि का चेतोदूत	२१४-२१८
७ विनय-विजय गणि का इन्दुदूत	२१८-२२५
८ मेघविजय का मेघदूतसमस्पालेख	२२५-२३६

चतुर्थ अध्याय—जैनेतर-सन्देश-काव्य

पृष्ठ २३७-४७६

१ धोयि-कवि का परन-दूत	२३८-२५०
२ पूर्ण सारस्वत का हस सन्देश	२५१-२६५
३ वेदान्त-देशिक का हस-सन्देश	२६५-२७६
४ अनिर्वात कवि का हस सन्देश	२७६-२८६
५ लक्ष्मीदास का शुक-सन्देश	२८६-३०३
६ वासुदेव कवि का भृगु सन्देश	३०३-३१७
७ उद्दण्ड-कवि का कोकिलसन्देश	३१७-३३२
८ उदय कवि का भयूर सन्देश	३३३-३४३
९ वामन-भट्ट-व्याण का हसदूत	३४३-३५२
१० विष्णु दास का मनोदूत	३५३-३६१
११ विष्णुव्रात का कोक-सन्देश	३६२-३७३
१२ रूप-गोहरामी का उद्धव-सन्देश	३७३-३८५
१३ रूप गोहरामी का हस-दूत	३८५-३९६
१४ साधव-करीन्द्र का उद्धवदूत	३९७-४०६
१५ रुद्रन्यायपचानन का भ्रमर-दूत	४१०-४२०
१६ रुद्रन्यायपचानन का पिकदूत	४२२-४२८
१७ शताग्रधान कवि का भृगुदूत	४२८-४३४
१८ वृष्ण-सार्यभौम का पदावदूत	४३५-४४४
१९ तैलग व्रजनाथ का मनोदूत	४४४-४५०
२० धी वृष्ण न्याय पचानन का पातदूत	४५०-४६१
२१ मोलानाथ का पाथ-दूत	४६१-४६६
२२ नित्यानन्द शास्त्री का हनुमदूत	४७०-४७६
परिशिष्ट १	४८०-४८२
परिशिष्ट २	४८३-४९०
परिशिष्ट ३	४९०-४९१

संस्कृत

संस्कृत के सन्देश काव्य



प्रथम अध्याय

सन्देश काव्यों का साधारण परिशीलन



सन्देश काव्यों का साहित्यिक स्वरूप—

इस विषय पर विवेचन करने से पूर्व यह अप्रासंगिक न होगा कि काव्य के स्वरूप तथा विभिन्न भेदों पर प्रथम विचार किया जाय। साधारणतया कवि की कृति को काव्य कहते हैं (कवे कर्म काव्यम्)। कवि शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कोई कवृ वणें इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं (कवते वर्णयति कवि)। दूसरे कवृ धातु को पाणिनीय धातुपाठ में न देखकर और कवृ वणें इस धातु से कवरी आदि रूप ही सिद्ध होते देखकर-‘कुड् शब्दे’ इस धातु से कवि शब्द को सिद्ध करते हैं।^१ निरुक्तकार ‘याम्फ ने, कवि शब्द का अर्थ ‘मेधावी’ बताकर ‘कवि क्रान्त दर्शनो भवति कवते वा’ ऐसा इसको व्युत्पन्न किया है। करते यह रूप वैदिक निघण्टु की गत्यर्थक धातुओं में पठित है।^२ ‘ये गत्यर्था स्ते धानार्था’ इस न्याय से कवि शब्द का क्रान्तदर्शी या मेधावी अर्थ माना गया है। वैदिक निघण्टु में मेधावी शब्द के पर्यायों में कवि शब्द की भी गणना है।^३ अमरकोप में कवि और काव्य शब्द शुक्राचार्य के पर्याय हैं और कवि शब्द परिद्धत अर्थ में भी दिया है।^४

रामायण के रचयिता वाल्मीकि आदि-कवि कहाते हैं। इसका कारण यही है कि लौकिक संस्कृत का प्रथम काव्य अनुष्टुप् छन्द में इन्हीं का लिखा हुआ है। बहुत समय है कि तमी से कवि शब्द छन्द में रचना करने वाले विद्वानों के लिए रुढ़ हो गया हो।^५

१ अमरकोप की क्षीर स्वामी की टीका।

२ अमरकोप की रामाधरी टीका।

३ वैदिक निघण्टु २।१४

४ वैदिक निघण्टु ३।१.५। इस पर टीका करते हुए स्कन्द स्वामी ने भी ‘क्रामते कवतेर्वा गतिकर्मण इति रूपम्’ ऐसा लिखा है। कवि शब्द की व्युत्पत्ति बताते हुए उजट ने भी ‘क्रामते कवतेश्च इन् सर्वधातुभ्य’ (३० ४, ११४) इतीन्द्रप्रत्यय। क्रामतेर्मकारस्य त्वत् रफलोपद्व बाहुलकात्। क्रान्तमस्यास्तीति मत्वर्थीयस्य लुक्। कवि क्रान्तदर्शन। अतीतानागत विप्रकृष्ट विषय युगपत् ज्ञानं यस्य स क्रान्तदर्शन’ ऐसा लिखा है।

५ शुभो दैन्यशुभ काव्य उशना भार्गव कवि—ज्योमादिवर्ग—२६। धीरो मनीषी च प्राण सत्यायान् परिद्धत कवि—ग्रह्यवर्ग—५।

६ कवि शब्द की अन्य व्युत्पत्तिया इस प्रकार हैं। कवयति इति कवि, तस्य कर्म काव्यम् विद्याधर। क्वीति शब्दापते विमृशति रसभावानिति कवि, तस्य कर्म काव्यम् मद्गोपाल।

साहित्य शास्त्र में काव्य पुरुष' की कल्पना 'कर शब्द और अर्थ को उसका शरीर तथा रस, रीति, वक्रोक्ति या ध्वनि को उसकी आत्मा माना है। काव्य के गुण काव्य की आत्मा के गुण और अलंकार शब्द और अर्थ रूपी शरीर के सौन्दर्य को बढ़ाने वाले आभूषण बताए गए हैं। जिस प्रकार किसी पुरुष की कल्पना उसके शरीर के बिना नहीं हो सकती उसी प्रकार किसी काव्य की कल्पना भी उसके शब्द और अर्थ रूपी शरीर के बिना नहीं हो सकती। इसीलिए सभी साहित्य शास्त्रियों ने काव्य के लक्षण में शब्दार्थ का सन्निवेश किया है। भामह आदि प्राचीन आचार्यों ने शब्द और अर्थ को ही काव्य कहा है। शब्दार्थों सहित काव्यम् (काव्यालंकार १।१६।) ही भामह का काव्य लक्षण है। दण्डी ने काव्य का लक्षण बताते हुए कहा है—शरीर तत्रदिप्तार्थ व्यञ्छिन्नापदायलि काव्यादर्श १।१० अग्नि पुराण में भी काव्य का लक्षण 'इष्टार्थ व्यञ्छिन्ना पदायलि काव्यम्, स्फुटदलंकार गुणरदोष-वर्जितम्' १।३३६।६ अ बतलाया गया है। रुद्रट ने तो 'तनु शब्दार्थो काव्यम्' (काव्यालंकार) ऐसा स्पष्ट ही कहा है। वक्रोक्तिजीवितकार ने 'शब्दार्थो सहितो वक्रकवि व्यापार शालिनि । वन्द्ये व्यञ्छितो काव्यं तद्विदारहादकारिणि' ऐसा लक्षण दिया है। 'तदोपो शब्दार्थो' सगुणानलकृती पुन क्वापि' यह काव्यप्रकाशकार मम्मट का मत है। हेमचन्द्र ने भी 'अदोपो-सगुणो सालकारो च शब्दार्थो काव्यम्' (काव्यानुशासन पृ०-१६) ऐसा ही लक्षण दिया है। धम्मट ने अपने काव्यालंकारसूत्र में शब्दार्थों निर्दोपो सगुणो, प्राय सालकारो च काव्यम् यह लक्षण किया है। विद्यानाथ ने अपने प्रतापद्वयशोभूपण में गुणालंकार सहितो दोष वर्जितो शब्दार्थो काव्य काव्यविदोविदु ऐसा कहा है। विश्वनाथ कविराज ने साहित्यदर्पण में 'वाक्यं रसात्मक काव्यम्' ऐसा लक्षण किया है। जगन्नाथ परिहतराज ने भी शब्द को प्रधानता देते हुए 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द काव्यम्' ऐसा वाक्य का लक्षण किया है। इन विभिन्न लक्षणों-का सापेक्ष यही है कि बाह्य तथा मानव प्रकृति के दृश्यों द्वारा भावुक आत्माओं में उत्पन्न उच्च विचारों तथा उदात्त भावनाओं का सरस और सुन्दर शब्दों में व्यक्तीकरण ही कविता अथवा काव्य है।

काव्य के दृश्य और श्रव्य ये दो प्रधान भेद हैं। दृश्य काव्य में नटकों की गणना की जाती है। श्रव्य काव्य के पद्य, गद्य और मिश्र यह तीन भेद माने गए हैं। पद्य काव्य प्रायः रामायण और महाभारत के अनुकरण पर ही लिखे गए हैं। इन पद्य काव्यों को भी साहित्य शास्त्रियों ने महाकाव्य, खड काव्य और मुक्तक इत्यादि भेदों में विभाजित किया है। दण्डी के काव्यादर्श में महाकाव्य के निम्न लक्षण दिए हुए हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्य लक्षणम् ॥
 आशीर्त्नमस्त्रिया यस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम् ॥
 इतिहास कथोद्भूतमितरद्वा सदाश्रयम् ।
 चतुर्थैर्गं फलोपेतं चतुरोदात्त नायकम् ॥
 नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्कादय-वर्णनै ।
 उद्यान-सलिल-क्रीडा-मधुपान-रतोत्सवै ॥
 विप्रलम्भैर्विवाहैश्च कुमारोदयवर्णनै ।
 मन्त्रदूत प्रयाणाञ्चि नायकाम्युदयैरपि ॥
 अलंकृतमसक्षिप्त रसभ्रवनिरन्तरम् ।
 सर्गेरति विस्तीर्णं ध्वजवृत्तं सुसंधिभिः ॥
 सर्वत्र भिन्न वृत्तान्तै रपेतं लोक रञ्जकम् ।
 काव्यं कल्पान्तर स्यापि जायते सदलकृति ॥

काव्या-१-१४-१८-

विश्वनाथ के साहित्य दर्पण में भी महाकाव्य के कुछ ऐसे ही लक्षण पाये जाते हैं—

सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकं सुरः ।
 सद्दश क्षत्रियो वापि धीरोदात्तगुणान्वितः ॥
 एकयंशभवा भूषा कुलजा बहवोऽपि वा ।
 ऋगार्षीरशान्तानामैकोऽह्गी रस इष्यते ॥
 अगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसधयः ।
 इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ॥
 चत्वारस्तस्य घर्गा स्युस्तेष्वेकं चफल भवेत् ।
 आदौ नमस्क्रियाशीर्गं यस्तुनिर्देश एव वा ॥
 क्वचिन्निन्दा खलादीना सता च गुण कीर्तनम् ।
 एकवृत्तमयै पद्यैर्यसानेऽन्यवृत्तकैः ॥
 नातिस्पल्पा नातिदीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह ।
 नानावृत्तमयं क्वापि सर्गं कश्चन दृश्यते ॥
 सर्गान्ते भाविसर्गस्य कथायाः सूचन भवेत् ।
 संख्या-सूत्रेन्दु रजनी प्रदोषध्यान्तयासरा ।
 प्रातर्मप्याह भृगुषा शैलर्तुं यव सागगा ।
 संमोग विप्रलम्भौ च मुनिस्वर्गपुराञ्चरा ॥
 रणप्रयाणोपयम-मन्त्रपुत्रोद्वाद्यः ।
 वर्णनीया यथायोगं साङ्गोपाङ्गा अमी इह ॥
 क्वेषु वृत्तस्य वा नाम्ना नायकस्येतरस्य वा ।
 नाम्नस्य सर्गापादेयकथया सर्गनाम तु ॥

साहित्य दर्पण ६ ३१७-३२७ ॥

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षणों में से कुछ ही लक्षण जिस काव्य में पाये जाए, उसे सण्डकाव्य कहते हैं। साहित्यदर्पण में कहा भी है—

सण्डकाव्यं भवेत्काव्यस्यैकदेशानुसारिच ॥ ६. ३२८ ॥

यथा-मेघदूतादि ।

साहित्य दर्पण में सण्ड काव्य के उदाहरण स्वरूप मेघदूत का नामोल्लेख कर यह बात भी निश्चित कर दी गई है कि शास्त्रीय दृष्टि से सन्देश काव्यों को सण्ड काव्य ही कहा जाना चाहिये ।

वेदान्तदेशिक द्वारा प्रणीत हससन्देश के टीकाकार ने हससन्देश में नगर, समुद्र, पर्यत, ऋतु और उद्यान इत्यादि के कुछ २ वर्णन होने के कारण हससन्देश को महाकाव्य बतलाया है। मेघ-सन्देश पर अपनी टीका में मल्लिनाथ ने भी 'अत्र काव्ये तत्र तत्र नगनगरार्णवादि वर्णन सङ्घातात् महाकाव्यत्वम्' ऐसा लिखा है, लेकिन यह ठीक नहीं है, क्योंकि 'सर्ग बन्धो महाकाव्यमुच्यते' के अनुसार सर्गबद्ध होना महा काव्य की प्रमुख विशेषता है और इसी का इन काव्यों में अभाव है। अतः मेघसन्देश या अन्य सन्देशकाव्यों को सण्ड-काव्य ही मानना चाहिये ।

कल्याणमल्ल यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से मेघदूत को महाकाव्य नहीं मानता है, फिर भी महाकवि कालिदास की रचना होने के कारण इस काव्य को महाकाव्य ही कहना है। उसका कथन है—

इह यद्यपि गिरि-नगर-सागर-सरित्-सरोवर-कमलाकर-वसन्तोत्सव-मलयानिल-जलक्रीडा-पुष्पावचयोदयास्तगमन वर्णनाना सर्गबन्धादीना च महा काव्य लक्षणानामभावात् स्तथापिमहाकवि श्री कालिदास विरचितत्वात् इह महाकाव्यमुच्यते ।

कविता की दृष्टि से यदि मेघसन्देश अथवा अन्य सन्देशकाव्यों को महाकाव्य कहा जाये तो किसी अंश तक भले ही अनुचित न हो, लेकिन शास्त्रीयदृष्टि से तो सन्देश काव्यों को सण्ड काव्य ही कहना होगा ।

टीकाकार बरलभदेव मेघदूत को केलिकाव्य मानते हैं तथा स्थिरदेव ने भी अपनी टीका में मेघदूत को क्रीडाकाव्य बताया है। लेकिन मेघदूत अथवा अन्य दूत काव्यों या सन्देशकाव्यों के लिए साहित्यशास्त्र में इस तरह का कोई पृथक् नाम निर्दिष्ट नहीं किया गया है। स्थिरदेव ने अपनी टीका में विभिन्न उदाहरणों द्वारा मेघदूत को महाकाव्य सिद्ध करने की भी चेष्टा की है। उसका कथन है ननु गिरि नगरादि वर्णन व्यतिरेकेण, कथमस्य महाकाव्यत्वम् । अत्रोच्यते । विदिशा विशाला-लकादि नगरी-वर्णनम् । स्व-सिन्धु निर्विन्ध्या सिन्धु प्रभृति समुद्र गामिनी-निगदनीपचार-सत्प्रतिपादनम् । गिरीश शैलादि शैल श्लाघा । हरते लीला

कमल मित्यनेन घनसमयपुर सराणामृतना निरूपणम् । यत्र स्त्रीणामेतेन चन्द्रोदय
समर्थनम् । अप्यन्यास्मिजलधर तथा ताकस्याचिद्भवनवलमाप्रित्याभ्या मानूदय
निवेदनम् । विश्रान्त सन् 'तथा' तत्रागार मित्येताभ्याम् उद्यान-स्तुतिनिगदनम् । भर्तुं
कण्ठच्छुषि रित्यनेन जल केलिकथनम् । यस्या यक्षा इति मधुपानाभिधानम् । सभो
गन्ते नीता रात्रिरिति सुरतस्य वर्णनम् । जालोद्गरीणैः तथा दिङ् नागानामित्याभ्या
मन्त्रचिन्ता । दूतो मेघ एव । मार्गं तावदिति प्रयाण कथनम् । ये तथा इत्यनेन युद्ध
प्रबोधनम् । शपान्त इति नायकाभ्युदय वर्णनम् । विप्रलम्भ कथयैव समर्थित ।
ता चावश्यमित्यनेन पत्युद्देश । यस्य सयोगम् इति विवाह कथनम् । तत्र स्कन्दमिति
कुमारकथनम् । एवमेतैर्नग-नगरी सागरतुं चन्द्राकांक्षोद्यान उल्लोकलि मधुपान
सुरतमन्त्र दूत प्रयाणाजि नायकाभ्युदय विवाह विप्रलम्भ कुमार यरणैर्विस्पष्टैरष्टादश
भिरमीमि महाकव्यलक्षणैरप लक्षित त्वादस्य महाकाव्यत्वम् । लेकिन स्थिरदेय
काविचार प्राप्त नहीं है, क्योंकि सर्गबन्धो महाकाव्यम्-सर्गनतिविस्तीर्णं ध्वजवृत्तं
सुसधिमि' के अनुसार महाकाव्य में कई सर्ग तथा विभिन्न छन्दों का होना अनिवार्य
है । अतः मेघसन्देश एक खण्डकाव्य ही है और इसी तरह सारे सन्देश काव्य भी
खण्ड काव्य ही माने जायेंगे ।

खण्ड काव्य तथा गीतिकाव्य

अंग्रेजी में खण्ड काव्य को Lyric Poetry कहते हैं । सृष्टि के खण्ड काव्य
और अंग्रेजी की लिरिक कविता में यद्यपि स्वरूपत बहुत भेद है, तथापि कुछ
सादृश्य अग्र्य है । इसीलिए पाश्चात्य विद्वानों ने खण्डकाव्य को लिरिक कविता
कहा है । इस प्रकार सन्देश काव्यों को दूसरे शब्दों में हम Lyric Poetry अथवा
गीति काव्य भी कह सकते हैं । गीति काव्य प्रायः कोमल और मधुर भावों को
लेकर सरस तथा सरल भाषा में लिखे जाते हैं और गाए जाने योग्य होते हैं । सन्देश
काव्यों में भी प्रायः विरह का ही वर्णन होता है तथा प्रसाद-गुण युक्त वैदर्भी
रीति में ही इनकी रचना की गई है । छन्द भी ऐसे ही प्रयुक्त किए गए हैं जो
कोमल भावनाओं में संगीत का सम्मिश्रण करते हैं । अतः सन्देश काव्यों को हम
गीति काव्य भी कह सकते हैं । साथ में विरह वर्णन की प्रचुरता होने से यदि इन्हें
विरह-काव्य कहा जाए तो भी अनुचित न होगा ।

सन्देश काव्य अथवा दूत काव्य

विप्रलम्भ ४ गार तथा विरह की पृष्ठ भूमि को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे
गए हैं । विरह में दूत के द्वारा नायक या नायिका का अपनी प्रेयसी या अपने प्रिय
के पास प्रणयसन्देश भेजना ही इन काव्यों का मुख्य विषय है । सन्देश का लक्षण
भी प्राचीन प्रयोगों में यही दिया हुआ है—सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्वयार्ता प्रेषणं भवेत् ।
दूत का अर्थ भी अमरकोष में निरान्त स्पष्ट रूप से दिया हुआ है—स्यात्सन्देश दूरो

दूतः। दूत द्वारा सन्देश प्रेषण ही इन काव्यों की मुख्य वस्तु है। इसी आधार पर यह काव्य सन्देश-काव्य अथवा दूत काव्य कहलाते हैं। दोनों का अर्थ एक ही है। मेघदूत अथवा मेघसन्देश दोनों समानार्थक ही हैं। इनकी व्युत्पत्ति तथा बाह्य रूप में ही केवल अन्तर है। मेघदूतम् (काव्यम्) को मेघश्चासौ दूतश्च मेघदूत, स एवाभेदोपचारात्तत्सर्वम् काव्यम् इस प्रकार अथवा मेघदूत यस्मिन् काव्ये तत् मेघदूतम् इस प्रकार व्युत्पन्न किया जा सकता है। दूतान्त सभी काव्यों की व्युत्पत्ति इसी प्रकार होगी।^१ दक्षिण भारत तथा लका में इस प्रकार के काव्यों को सन्देश काव्य ही कहते हैं और इन काव्यों के अन्त में सन्देश शब्द ही पाया जाता है।^२ मरिलनाथ ने भी अपनी टीका में मेघसन्देश शब्द का ही प्रयोग किया है। रास्त्र में इस प्रकार के काव्यों का सौन्दर्य दूत की उपयुक्तता तथा सन्देश की भाव प्रकृता पर ही निर्भर है। अतः दोनों ही नाम उपयुक्त हैं। फिर भी सन्देश की प्रधानता तथा सन्देशान्त नाम के अधिक मधुर लगने के कारण इन काव्यों को यहाँ सन्देश काव्य नाम से ही व्यवहृत किया गया है।

पशु-पक्षी तथा अन्य जड़ और चैनन पदार्थों का दूत कार्य में उपयोग

वास्तव में दूत^३ शब्द राजनीति से सम्बन्ध रखता है। मनुस्मृति में दूत के लक्षण भी बताए गए हैं —

दूत चैव-प्रसुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।
हृगिताकार चेष्टा शुचिं दक्ष बुलोद्गतम् ॥७॥६३॥
अनुगच्छत्युचिर्दक्षस्मृतिमान्देशकालित् ।
धनुष्मान्वीतभीर्याग्नी दूतो राज प्रशस्यते ॥७॥६४॥

आगे चलकर मनु फिर दूत की महत्ता का भी वर्णन करते हैं —

१ बंगाल तथा उत्तर भारत के अन्य प्रान्तों में लिखे गए सभी काव्यों के अन्त में दूत शब्द पाया जाता है। यथा पवनदूतम्, मनोदूतम्, पिकदूतम्, हंसदूतम् और पान्थदूतम् इत्यादि।

२ यथा हंस सन्देश, पिकसन्देश, मयूर सन्देश, कोकसन्देश इत्यादि दक्षिण में पाए जाते हैं। सिंहल भाषा में भी मयूर सन्देश और कोकिल सन्देश पाए जाते हैं।

३ हंस सन्देश की व्युत्पत्ति इस प्रकार होगी —

हंसस्य सन्देश अथवा हंसाय उक्त सन्देश, हंस सन्देश, स एवाभेदोपचारात्तत्सर्वो ग्रन्थः। अन्य नामों की व्युत्पत्ति भी इसी प्रकार समझनी चाहिए।

३ दु गतौ + त = दूत। दुतानिभ्या दीर्घञ्च (उणदिष्टञ्च) के द्वारा दु के उ को दीर्घ हो गया है।

अमात्ये द्रष्टुं श्रायत्तो द्रष्टे वैनयिकी क्रिया ।
 वृत्तो वपेशराष्ट्रे च दूते सधिविपर्ययो ॥७॥६५॥ ,
 दूत एव हि सधत्ते भिनत्येव च सहतान् ।
 दूतमन्तवृत्ते कार्ये भिद्यन्ते येन पा न चा ॥७॥६६॥

साहित्य क्षेत्र में यह शब्द राजनीति से ही आया है और दूत के कार्य की शृंगार रस में बड़ी ही उपयोगिता मानी गई है । विशेषतः दूत शब्द जब स्त्रीलिंग दूर्ता बन जाता है, तो साहित्य में शृंगार रस के लिए कितने ही भावों में अनिवार्य हो जाता है । दूत पुरुष पक्ष से अथवा नायक पक्ष से सम्बन्ध रखता है, दूर्ता नायिका पक्ष से । दूत नायक की ओर से नायिका के पास पहुँच कर नायिका की केवल मनस्थिति का ही पता नहीं लगाता, नायिका के मन में प्रेमभाव को और भी उद्दीप्त करने का प्रयत्न करता है, नायिका को नायक से मिलने का सन्देश देता है और उसे सचेत स्थान का पता भी बताता है । नायिका के मन को भग कराने में भी वह सहायक होता है । साहित्य के रस शास्त्र में दूत का एक महत्वपूर्ण स्थान है । रति भाव के परिपाक के लिए तथा शृंगार रस की मनोवैज्ञानिक स्थिति में सहायक होने के लिए दूत अपरिहार्य सा विदित होता है । शृंगार रस में अचलम्भ और आश्रय उभयाश्रित और उभयान्वित रहते हैं । नायक और नायिका में से दोनों एक दूसरे के लिए अचलम्भ और आश्रय दोनों ही होते हैं । अतः रतिभाव की समग्र अवस्थिति के लिए नायक तथा नायिका दोनों में ही रति भाव जागृत होना चाहिए । इसलिए साहित्य में दूत की आवश्यकता मानी गई है । साहित्य दर्पण में दूत तथा दूर्तियों के तीन भेद भी बताए गए हैं —

निसृष्टार्था मितार्थश्च तथा सन्देशहारक ।
 कार्यप्रेष्ये स्त्रिधा दूतो दूत्यश्चापि तथाविधा ॥३॥८७॥
 उभयोर्भावमुभौय स्वयं पदति चोत्तरम् ।
 मुदिलष्टं कुरुते कार्यं निसृष्टार्थस्तु स स्मृत ॥३॥८८॥
 मितार्थमायी कार्यस्य सिद्धकाली मितार्थक ।
 यावद्भाषितमन्देशहार सन्देश-दायक ॥३॥८९॥

इस प्रकार साहित्य में नायिका और नायक की ओर से दूत अथवा दूर्ता का भेद बना सर्व विदित ही है । प्रायः विरह की पूर्णराग और मान अवस्थाओं में दूत अथवा दूर्ता का भेद बना दूसरे काव्यों में पाया जाता है, लेकिन सन्देश काव्यों में प्रवामञ्जल्य विरह में ही दूत प्रेषण का व्यापार देखने में आता है । पूर्ण राग में नायक या नायिका की दस काम दशाण बताई गई हैं —

अभिनाशत्रिचन्तामृत्रिसुख कथनोद्वेग सप्रलापाश्च ।
 उन्मादोऽथ व्याधिर्बहता मृतिरिति दशात्र काम दशा ॥सा०८०॥३॥१८०

इसी प्रकार प्रवास में भी प्रेमियों की ग्यारह दशाएँ वर्णित की गई हैं —

अगोप्यसौष्ठव ताप पाण्डुता कृशताऽरुचि ।

अधृति स्याद् नालम्बस्तम्भयोन्माद मूर्च्छना ॥

मृतिश्चेति क्रमादेकादश स्मरदशा इह ॥स०द०॥३॥२०६॥

इन दशाओं में से उन्माद-दशा का स्वरूप साहित्यशास्त्रियों ने इस प्रकार बनाया है :—^१

चित्तसमोह उन्माद कामशोकभयादिभि ।

अस्थान हास-रदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३॥१६०॥

उन्मादश्चापरिच्छेद श्चेतनाचेतनेष्वपि ॥३॥१८२॥

विरही जब विरह में उन्मत्त हो जाता है, तब उसे चेतन और अचेतन तथा पशु-पक्षी और मनुष्य का विवेक नहीं रहता। वह हर किसी के सामने हसता, रोता, गाता तथा प्रलाप करता रहता है। ऐसी अवस्था में विरही नायक या नायिका का जिस किसी को भी दूत बनाकर अपने प्रिय के पास भेजना कुछ भी अस्वाभाविक नहीं है। जब चेतन और अचेतन का ही विवेक न रहे, तब पशु पक्षियों तक से अपनी विरह वेदना का निवेदन करना कुछ भी अनुचित नहीं प्रतीत होता है। इसी लिए अधिकांश सन्देश कार्यों में पशु-पक्षी दूत बनाए गए हैं।^२ उन्माद की पूर्ण अवस्था तो तब और भी अधिक प्रकट होती है, जब हम पवन, चन्द्र, पदाक, तुलसी वृक्ष इत्यादि को भी दूत कार्य में लगा हुआ देखते हैं।^३ अन्त में यहाँ तक देखने में आता है कि मन, भक्ति तथा शील जैसे सूक्ष्म और भावात्मक पदार्थों को

१ विद्यानाथ—उन्मादस्तुल्यवृत्तित्व चेतनचेतनेष्वपि ।

मूपाल—उन्मादश्चिच्छविभ्रान्ति वियोगादिष्टनाशत ॥

वियोगजे तु चेष्टास्युधांवन परिदेधनम् ॥

असवद्धप्रलपनं शयन सहसोत्थिति ।

अचेतनैस्सहालापो निर्निमित्त भ्रिताद्य ॥

२ यथा—वेदान्तदेशिक के पुत्र वरदाचार्य का हरिण-सन्देश, उद्दण्ड कवि का कोकिल-सन्देश, लक्ष्मीदास का शुक-सन्देश, विष्णुत्रात का कोकिल-सन्देश, उदय-कवि का मयूर सन्देश, रुद्र न्यायपञ्चानन का भ्रमरदूत तथा विभिन्न कवियों के हंस सन्देश और हंस दूत ।

३ यथा—घोषि कवि और यादि चन्द्र सुरि के पवनदूत, कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन का वातदूत, विनय विजयगणि का इन्दुदूत तथा अन्य चन्द्रदूत काव्य । कृष्ण सारंगभोग का पदाकदूत । सस्कृत साहित्य परिपत् कलकत्ते के पुस्तकालय में विद्यमान वैद्यनाथ द्वारा लिखित तुलसीदूत । गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पादपदूत ।

भी दूत कार्य में नियुक्त किया गया है।^१ किसी किसी काव्य में पौराणिक पात्रों को भी यथा हनुमान और उद्धव को दूत कार्य सौंपा गया है।^२ भोलानाथ के पान्थदूत में मयुरा की ओर जाने वाले एक पथिक को ही गोपियों का दूत कल्पित किया गया है। इस प्रकार इन सन्देश काव्यों में विभिन्न पशु पक्षी तथा अन्य जड़ और खेतन पदार्थों को दूतकार्य में नियुक्त किया गया है। वास्तव में स्वयं कालिदास ने मेघ को दूत कल्पित कर परवर्ती कवियों के लिए एक नया मार्ग निर्दिष्ट कर दिया और यदि परवर्ती कवियों ने कुछ अन्य दूतों की भी कल्पना की, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। वस्तुतः सन्देश काव्यों के रचयिता ये कवि भी उक्त प्रकार के दूत कल्पित करते समय उनकी असमर्थता से अवश्य ही परिचित थे तभी तो उन्होंने अपने काव्यों में किसी न किसी प्रकार अपने दूत के चुनाव का समर्थन किया है। स्वयं कालिदास ने भी लिखा है —

कामार्ता हि प्रकृतिरूपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥

इसी प्रकार अन्य काव्यों में भी ऐसे स्थल देखने में आते हैं। यथा—

१ युक्तयुक्तेष्वपि हि विदुषामर्थिना नो विवेकं ॥

(अज्ञात कवि का हस सन्देश) ॥१॥५॥

२ न तस्या दोषोऽय यदिह विहग प्रार्थितवती

न कस्मिन् विधम्न दिशति हरिमक्ति प्रणयिता ॥

(रूप गोस्वामी का हस दूत ॥२॥)

३ कन्दर्पेण व्यथित हृदयोन्मत्ततुरया यथाचे

प्रसाहीन घचनरहित निश्चल श्रोत्रहीनम्

दोतय कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मणं पद्मलाक्ष्मी ॥ (कृष्णस्य)

(पदाकदूत ॥३॥)

४ दूत मोहात्परममद्वद् प्राहिलोद्धुनेत्र

प्रायो मोहो भवति भरिना बोधश्चूनयत्वहेतु ॥

(घादिचन्द्र का पवनदूत ॥१॥५॥)

१ यथा—विष्णुदास का मनोदूत और तैलग प्रजनाथ का मनोदूत तथा किसी और कवि का चेतोदूत। राजेन्द्र लाल मिश्र के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची ३ पृ० २७ पर उल्लिखित काली प्रसाद का भक्तिदूत। हरिश्चन्द्र सुन्दर गणिक का शीलदूत।

२ यथा—रूप गोस्वामी का उद्धव सन्देश और माधवशर्मन् का उद्धवदूत, नित्या नन्द आशुकवि का हनुमद्दूत।

५ प्रिलेपेण क्षुभितमनसा मेघ शैल द्रुमादौ
 यात्रादेव्य भगति किमुत फगपि समेदनाह ॥
 (वेदान्तदेशिक का इस सन्देश ॥११॥५॥)

अतः पक्षियों तथा अन्यपदार्थों के दूत बनाने में अनौचित्य की कुछ भी शक्यता नहीं करनी चाहिये।

प्राचीन साहित्य में सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तत्त्व

कालिदास के मेघसन्देश की कथास्तु तो सर्व विदित ही है। इस काव्य में एक विरही यक्ष मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास प्रेम सन्देश भेजता है। कालिदास की इस विलक्षण और उदात्त कल्पना का क्या आधार था यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी ऐसी कल्पना के कुछ चिह्न कालिदास से पूर्व प्राचीन साहित्य में हमें अवश्य उपलब्ध होते हैं। भारतीय साहित्य में ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। सर्वप्रथम इस वेद में पशुओं के दूत कार्य करने का उल्लेख मिलता है। वृद्धस्पति की गायों को बल नामक असुर के योज्जा पणिलोग जत्र अपहरण करके ले जाते हैं और उन्हें किसी गुफा में छिपा देते हैं, तब इन्द्र गायों की खोज करने के लिए सरमा नामक अपनी कुतिया को पणिलोगों के पास भेजते हैं। सरमा एक नदी को पार कर बलपुर पहुँचती है और वहा गुप्तस्थान में छिपाई हुई गायों को खोज निकालती है। इस असुर पर पणिलोग सरमा को अपने पक्ष में करना चाहते हैं। पाठकों के परिचय के लिये ऋग्वेद का सरमापणिलो-सनाद यहा उद्धृत किया जा रहा है - पणिलोग कहते हैं -

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानङ् दूरे ह्यध्वा जगुरि पराचै ।
 कास्मे द्विति' का परितक्म्याऽसीत् कथ रसाया अतरः पयासि ॥१॥

सरमा उत्तर देती है -

इन्द्रस्य दूतीरिपिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन्व ।
 अतिष्करो मियसा तन्न आवत्तथा रसाया अतरम् पयासि ॥२॥

पणिलोग कहते हैं -

कोदडिडन्द्रः सरमे कादशीका यस्येद दूतीरसर' पराकात् ।
 आचगच्छान्मिभ्रमेना दधामाथा गवा गोपतिर्ना भवाति ॥३॥

सरमा कहती है -

नाहं तं वेद' दध्यै दभन्स' यस्येद दूतीरसर पराकात् ।
 न त गृहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणय शयध्वे ॥४॥

पण्डि लोग कहते हैं —

इमा गात्र सरमे या ऐच्छ परिदिवो अन्तान्सुभगे पतन्ती ।
कस्त एता अबसुजा द्युध्युताऽस्मकमायुधा सन्ति तिग्मा ॥४॥

सरमा उत्तर देती है —

असेन्या व पण्यो वचास्पनिपज्यास्तन्य सतु पापो ।
अधृष्टो व एतवा अस्तु पन्था वृहस्पति वै उभयानमृलात् ॥६॥

पण्डि लोग कहते हैं—

अय निधि सरमे अद्रिवुध्नो गोभिरश्वेभि र्वसुभिर्न्युष्ट ।
रत्तन्ति त पण्यो ये सुगोपा रेकुपदमलकमाजगन्ध ॥७॥

सरमा प्रत्युत्तर देती है—

एह गमन्पय सोमशिता अयास्यो अगिरसो नवग्वा ।
त एतमूष विभजन्त गोनामधैत द्वच पण्यो वमधित् ॥८॥

पण्डि लोग कहते हैं—

एवा च त्व सरम आजगन्ध प्रयाधिता सहसा दैव्येन ।
रससार त्वा कृण्वे मा पुनर्गा अपते गवा सुभगे भजाम ॥९॥

सरमा उन्हें उत्तर देती है—

नाह वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो त्रिदुरगिरसश्च घोरा ।
गोकामा मे अच्छदयन्मदायमपात इत पण्यो वरीय ॥१०॥

दूरमित पण्यो वरीय उद्गारो यन्तुमिनतीश्रुतेन ।
वृहस्पतिर्या अविन्द्रश्चिगृदा सोमो प्रायाण ऋपयश्च विप्रा ॥११॥
ऋग्वेद मण्डल १०, अनुषाक ८, सूक्त १०॥

इस सवाद से यह तो निश्चित ही है कि भारतीय साहित्य में पशुओं को दूत बनाने की परम्परा बहुत प्राचीन है ।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद (मं० ४, सू० ६१, मन्त्र सं० १७, १८, १९) में एक और कथा उपलब्ध होती है। इसमें श्यावाश्व ऋषि राजा रघवीति के पास उनकी पुत्रांके प्रति अपने प्रणयसंदेश तथा विवाह प्रार्थना को रात्रि के द्वाग भेजते हैं ।

श्रुग्वेद के बाद बाल्मीकि रामायण में किल्किन्धा काण्ड के ४४ वें सर्ग में सीताजी की खोज करने के लिए सुग्रीव द्वारा हनुमानजी के भेजे जाने का वृत्तान्त तो सब लोग जानते ही हैं —

विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमन्वर्धमुक्तवान् ॥१॥
तद्यथा लक्ष्यते सीता तस्यमेशानुचिन्तय ॥६॥

रामचन्द्रजी भी हनुमानजी को कार्यकुशल और पराक्रमी समझकर स्वनामांकित अगुठी सीताजी के अभिज्ञान के लिए हनुमानजी को देते हैं —

ददौ तस्य तत प्रीत स्वनामाकोपशोभितम् ।
अंगुलीयमभिज्ञान राजपुत्र्या परन्तप ॥१२॥
अनेन त्या हरिश्रेष्ठ चिह्नेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुमान्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥१३॥

अन्त में रामचन्द्रजी हनुमानजी से कहते भी हैं,—

अतिषल्लभ्यलमाधितस्तवाह हरिः पर विक्रमविक्रमैरनन्तैः ।
पवनसुत यथाधिगम्यते सा जनकसुता हनुमस्तथा कुरुष्व ॥१७॥

इसके बाद सुन्दर काण्ड के ३४ वें सर्ग में हनुमान् जी स्वयं सीताजी से कहते हैं —

अह रामस्य सन्देशो देवि दूतस्तवागत ।
वैदेहि कुशली राम सत्वा कौशलमवधीत ॥२॥

सीताजी के द्वारा सन्देश प्रकट करने पर रामचन्द्रजी के गुण और पराक्रम का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी से कहते हैं —

तेनाहं प्रेषितो दूतस्तत्सकाशमिहागत ।
स्वद्वियोगेन दुःखार्तः सत्वा कौशलमवधीत ॥३॥

रामचन्द्रजी के स्वरूप, सीताजी के वियोग में उनकी दुरवस्था और अपनी यात्रा का वर्णन कर हनुमानजी फिर सीताजी को विश्वास दिलाते हैं—

अभिभाषस्य मा देवि दूतो दाशरथेरहम् ॥३५॥७२॥

अन्त में सीताजी भी हनुमान्जी को रामचन्द्रजी का दूत मान लेती हैं —

एवं विश्वासिता सीता हेतुभि शोककर्शिता
उपपन्नैरभिज्ञानैर्दूत तमधिगच्छती ॥३५॥८४॥

तदनन्तर हनुमान्जी सीताजी को फिर विश्वास दिलाते हैं और रामचन्द्रजी की श्रगुठी उन्हें दिखाते हैं—

धानरोऽह महाभागो दूतो रामस्य धीमत' ।
रामनामाकित् चेटं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥३६॥२॥

प्रत्ययार्थं तवानीत तेन दत्त महात्मना ।
समाश्वसिहि मद्र ते हीण दुःखफला ह्यसि ॥३६॥३॥

हनुमान्जी के साथ सीताजी जय वापिस चलने के लिये प्रस्तुत नहीं होती हैं, तब वे उनसे कुछ अभिज्ञान मांगते हैं—

यदि नोत्सहसे यातु मया सार्धमनिन्दिते ।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥३७॥१०॥

इस पर सीताजी हनुमान्जी से काकजपन्त की घटना का ॥३७॥३॥ उल्लेख करती हैं और अपनी दिव्य चूडामणि भी उन्हें देती हैं—

ततो घसन्नगत मुक्त्वा दिव्य चूडामणिं शुभम् ।
प्रदेयो राघवापेति सीता हनुमते ददौ ॥३७॥६६॥

इसके अतिरिक्त एक और छोट्टी सी घटना का भी सीताजी उल्लेख करती हैं—

मन शिलायास्तिलको गण्डपाश्वे निवेशित ।
त्वया प्रणष्टे तिलके तं किल स्मर्तुं मर्हसि ॥४०॥१५॥

अभिज्ञान देने के बाद सीताजी अपनी ओर से रामचन्द्रजी को कुछ सन्देश भी भेजती हैं (सु० ४०) । सुग्रीव ने अपने प्रमुख धानरों को रावण और सीताजी की भोज में भेजते समय विभिन्न दिशाओं के मार्ग का भी ध्यान किया है (कि ४० ४३) ।

इस प्रकार गल्मीकि रामायण में दूत द्वारा सन्देशप्रेषण, मार्गदर्शन तथा अभिज्ञान स्वरूप किसी वस्तु का देना अथवा किसी घटना का उल्लेख करना यह बातें पाई जाती हैं ।

१ इसके अतिरिक्त पंचपटी में सीताजी के अपहरण हो जाने पर उनके वियोग में उमत्त रामचन्द्रजी का विभिन्न, वृत्तों, पर्यंतों, पद्यों तथा गोदायरी नदी में सीताजी के सम्यग्ध में प्रश्न करना भी दूतकाव्यों के लिये पद्य प्रदर्शक हो सकता है । इस प्रसंग के लिये देखिए—या०—रा०—अरण्य काण्ड—६१—६४ सर्ग ।

रामायण के बाद महाभारत में भी दूतप्रेषण का वृत्तान्त कई प्रसंगों में देखने में आता है। युधिष्ठिर का दूत रूप से धीकृष्ण जी को हस्तिनापुर में कौरवों की सभा में भेजना तो सर्व विदित ही है। इस घटना को हम भले ही विशुद्ध राजनैतिक मान लें, लेकिन वन पर्व के नलोपारयान (५३वा अध्याय) में आये हुए हस-दमयन्ती सवाद को तो निश्चित रूप से ही सन्देश काज्यों का पथ प्रवर्तक मानना पड़ेगा।^१ यह सवाद महाभारत में इस प्रकार है। एक दूसरे के रूप, गुण और योग्यता के निरन्तर सुनते रहने से नल और दमयन्ती परस्पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रेम करने लगते हैं। एक समय नल अपने मन में दमयन्ती का ध्यान करते करते ही अपने उद्यान में पहुँच जाता है। वहाँ एक साथ हसों की एक टोली आती है। नल उसमें से एक हस को पकड़ लेता है। इस पर वह हस नल से कहता है—

ततोऽन्तरिक्षगो याच व्याजहार नल तदा ।
हन्तव्योऽस्मि न ते राजन् करिष्यामि तव प्रियम् ॥२०॥

दमयन्ती सकाशे त्वा कथयिष्यामि नैपथ ।
यथा त्वदन्य पुरुष न सा मस्यति कर्हिचित् ॥२१॥

एवमुक्तस्ततो हसमुत्ससर्ज महीपति ।
ते तु हसा समुत्पत्य विदर्भानगमस्तत ॥२२॥

विदर्भ नगरं गत्वा दमयन्त्यास्तदान्तिके ।
निपेतुस्ते गदतमन्त सा ददर्श च तान्खगान् ॥२३॥

सा तानद्भुत रूपान्वै दृष्ट्वा सखिगणावृता ।
दृष्टा प्रहीतु खगास्त्ररमाणोपचक्रमे ॥२४॥

अथ हसा प्रिसृष्टु सर्वत प्रमदावने ।
एकैकशस्तदा कन्यास्तान्हसान्समुपाट्वन् ॥२५॥

दमयन्ती तु यं हस समुपाधादन्तिके ।
स मानुषीं गिर कृत्वा दमयन्तीमथावरीत् ॥२६॥

दमयन्ति नलो नाम निपथेषु महीपति ।
अशिनो सदृशो रूपे न समास्तस्य मानुषा ॥२७॥

१ श्री वेदान्त देशिक ने अपने हस सन्देश में इस वृत्तान्त का उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित है कि उन्हें इस वृत्तान्त से अपने सन्देशकाज्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।

कन्दर्प इव रूपेण मूर्तिमानभवत्स्वयम् ।
तस्य वै यदि भार्या त्वं भवेया वरवर्णिनि ॥२०॥

सफल ते भवेज्जन्म रूप चेदं सुमध्यमे ।
यद्य हि देवगन्धर्व मनुष्योरग राक्षसान् ॥२१॥

दृष्टवन्तो न चास्माभिर्हृष्टपूर्वस्तथाग्निध ।
त्व चापि रत्नं नारीणां नरेषु च नलो घर ॥२०॥

विशिष्टाया विशिष्टेन सगमो गुणान् भवेत् ।
पवमुक्ता तु हसेन दमयन्ती विशापते ॥२१॥

अग्रतीक्ष्ण त हस त्वमप्येवं नल यद ।
नथेत्युक्त्वाएडज कन्या विदर्भस्य विशापते ।

पुनरागम्य निपधान्नेले सद्य न्यवेदयत् ॥२२॥

इस हस-दमयन्ती-सगम के अनिरीक राजा नल का भी देवताओं के दूत के रूप में दमयन्ती के पास जाना सर्वविदित ही है ।

महाभारत के अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में भी कई स्थलों पर ऐसे पाये जाते हैं जो कि निश्चित रूप से कई सन्देश कार्यों के आधार हैं । भागवत के दशम स्कन्ध के ३०वें अध्याय में इस प्रकार की कथा है । एक बार रास क्रीडा के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपिया कुड्ड अभिमान करने लगती हैं । उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी अन्तर्धान हो जाते हैं । अकस्मात् अपने मध्य में कृष्ण को न पाकर गोपिया यही दुःखित होती हैं और उनके विरह में उन्मत्त की तरह अश्वत्थ, प्लक्ष, न्यग्रोध, तुलसी, मरिलका, यूथिका और आम्र इत्यादि वृक्षों से उनका पना पूछती फिरती हैं । इस प्रसंग को लेकर ही यह अध्याय प्रारम्भ होता है-

अन्तर्हिते भगवति सदसैव ब्रजागना,
अनप्यस्तमचक्षाणां करित्य इय यूथपम् ॥१॥

गत्यानु रागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमै ।
आक्षिप्तचित्ताप्रमदा रमापतेस्ताम्ना विचेष्टा जगृहस्तदात्मिका ॥२॥

गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रिया प्रियस्य प्रतिरुद्धमूर्तय ।
असावहं नित्यपलास्तदात्मिका न्यवेदिषु पृष्णविहारविभ्रमा ॥३॥

गणपत्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युद्धन्मत्तकयद् यनाद् यनम् ।
पप्रच्छुराकाशयदन्तरवदिमूर्तषु सन्तं पुरुषं यनस्पतीन् ॥४॥

दृष्टो व कञ्चिद्दर्शयत् प्लक्ष न्यग्रोध नो मन ।
नन्द सूनुरगतो हृत्वा प्रेम शरसारलोकने ॥५॥

कञ्चित् कुरवकाशोक नाग पुन्नाग चम्पका
रामानुजो मानिनीनामितो दर्पहरस्मित ॥६॥

कञ्चित्तुलसि कल्याणि गोविन्दचरणप्रिये ।
सह त्वाल्लि कुलै विभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युत ॥७॥

मालत्पदर्शि व कञ्चिन्मटिलके जानियूथिके ।
प्रीतिं यो जनयन् यात करस्पर्शेन माधव ॥८॥

नूतप्रियालपनसासन-कोविदार-जम्बू-रु-रिटर-थकुलात्र कदम्ब-नीपा ।
ये ऽन्ये परार्थभरका यमुनोपकूला शसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मना न ॥९॥

किं त एत क्षिति तपो वत केशवाग्नि स्पर्शोत्सवोत्पुलकितागरद्वै विभासि ।
अप्यग्नि सम्भर उरुक्रमविक्रमाद् वा आहो बराह यपुष परिरम्मणेन वा ॥१०॥

अप्येणपत्न्युपगत प्रियदेह-गात्रैस्
तन्वन् दृशा सखि सुनिर्घृ तिमच्युतो व ।
कान्तागसगकुचकु कुमराजताया
कुन्दञ्ज कुलपतेरिह याति गन्ध ॥११॥

बाहु प्रियस उपधाय गृहीतपद्मो
रामानुजस्तुलसि कालिकुलैर्मदान्धे ।
अन्वीयमान इह वस्तरव प्रणाम
कि धामिनन्दति चरन् प्रणयारलोकै ॥१२॥

पृच्छतेमा लता बाहूनप्याश्लिष्टा यनस्ते
नून तत्करजस्पृष्टा विभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥

इत्युन्मत्तवचो गोप्य कृष्णान्वेषण कातरा ।
लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचकुस्तदामिका ॥१४॥

कस्थाश्चित् पूतनायन्त्या कृष्णायन्त्यपिधत् स्तनम् ।
तोकायित्वा रुदत्यन्या पदाहृद्यकटायतीम् ॥१५॥

द्वैत्यायित्वा जह्वारान्यामेका कृष्णाभिभावनाम् ।

रिंगयामास काप्यंगी कर्पन्ती घोषनि स्तनै ॥१६॥

कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्व काश्चन ।
वत्सायतां हन्ति चान्या तत्रैका तु वसायतीम् ॥ १७ ॥

आहूय दुरगा यद्वत् कृष्णस्नमनुकुर्वतीम् ।
वेणु करणन्तीं क्रीडन्तीमन्या शसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥

कस्योचित् स्वभुज न्यस्य चलन्त्याहापराननु ।
कृष्णोऽह पश्य गतिं ललितामिति तन्मना ॥ १९ ॥

मा भैष्ट घातनर्पाभ्या तत्राण विहित मया ।
द्वत्युक्त्यैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

आरह्यैका पदाऽक्रम्य शिरस्याहापरा नृप ।
दुष्टाहे गच्छ जातोऽह खलाना ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥

तत्रैकोराच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोऽग्रम् ।
चक्षुष्याश्वपिदध्वम् वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥

यद्दान्यया स्रजा काचित्तन्वी तत्र उल्लसले ।
भीता सुदृक् पिधायास्य भेजे भीति विडम्बनम् ॥ २३ ॥

एवं कृष्ण पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरुन् ।
न्यवक्षत् घनोद्देशं पदानि परमात्मन ॥ २४ ॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनुर्महात्मन ।
लक्ष्यन्ते हि ध्वजाभोजनज्जाकुशयगादिभिः ॥ २५ ॥

तैस्तै पदैस्तपद्वरीमन्त्रिच्छन्त्योऽग्रतोऽवला ।
वध्या पदै सुपृक्तानि त्रिलोक्यार्ता समनुग्र ॥ २६ ॥

कस्या पदानि वीतानि याताया नन्दसुनुना ।
असन्त्यस्तप्रकोष्ठाया करेणो करिणा यथा ॥ २७ ॥

इस कथा प्रसंग के २४, २५ और २६ वें श्लोक के आधार पर ही श्रीकृष्ण सार्वभौम ने अपने पदाकृत काव्य की रचना की है। इसके अतिरिक्त गोपियों का अपनी विरहावस्था में वृन्दावन की लताओं और वृक्षों से कृष्ण के सम्बन्ध में पृथुना भी अनेक कृत काव्यों का मार्गप्रवर्तक है।

श्रीमदुभागवत के दशम स्कन्ध के ४६ वें अध्याय में भी सन्देश काव्य की कुछ रूपरेखा पाई जाती है। कृष्ण जब गोकुल से मथुरा आ जाते हैं और बहुत दिनों तक उन्हें गोकुल जाने का अवसर ही नहीं मिलता है तब वे नन्द और यशोदा के दुरा

को दूर करने तथा गोपियों को सान्त्वना देने के लिये अपने प्रिय मित्र द्रुप को गोकुल भेजते हैं । यह कथा भागवत में इस प्रकार है—

वृष्णीना प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयित सखा ।
शिष्यो बृहस्पते साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तम ॥१॥

तमाह भगवान् श्रेष्ठ भक्तमेकान्तिन फरचित् ।
गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरि ॥२॥

गच्छोद्धर ब्रज सीम्य पित्रोर्नीं प्रीतिमानह ।
गोपीना मद्वियोगार्धि मत्सन्देशैर्मोचय ॥३॥

ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थं त्यक्तदैहिका ।
मामेव दयित प्रेष्टमात्मान मनसा गता ॥४॥

ये त्यक्त लोक धर्माश्च मदर्थं तान् विभर्ष्यहम् ॥५॥

मयि ता प्रेयसा प्रेष्टे दूरस्थे गोकुलसिन्धव ।
स्मरन्त्योऽग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठयविह्वला ॥६॥

धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्राय प्राणान् कथंचन ।
प्रत्यागमनसन्देशैर्वल्लब्धो मे मदात्मिका ॥७॥

इत्युक्त उद्धवो राजन् सन्देश भर्तुं राहत ।
आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥८॥

इस प्रकार उद्धव के गोकुल पहुँचने पर नन्द और यशोदा उनका बड़ा स्वागत करते हैं । उद्धव भी उन्हें कृष्ण भगवान् का सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाते हैं तथा शीघ्र ही ब्रज में कृष्णजी के पहुँचने का आश्वासन भी देते हैं—

आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन ब्रजमच्युत ।
प्रिय निधास्यने पित्रोर्भगवान् सात्वता पति ॥३४॥

इत्या कस रगमध्ये प्रतीप सर्वसात्वता
यदाह व समागत्य कृष्ण सत्य करोति तत् ॥३५॥

मा विद्यत महाभागो द्रुह्यथ कृष्णमन्तिके ।
अन्तर्हृदि न भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥३६॥

इस प्रकार नन्द और यशोदा के शोक को दूर कर उद्धवजी जय मथुरा जाने को उद्यत होते हैं तथा कुछ गोपिया उनके रथ को रोक कर खड़ी हो जाती हैं । इसके आगे का कथा प्रसंग दशम स्कन्ध के ४७ वें अध्याय में इस प्रकार है—

त र्थाद्य कृष्णानुचर द्रजस्त्रिय प्रलम्बधाहु नवकन्जलोचनम् ।
पीताम्बर पुष्करमालिन तसन्मुखारविन्द मणिमृष्ट कुण्डलम् ॥१॥
शुचिस्मिता कोऽयमपीड्यदर्शन कुतश्च कस्याच्युत वेष भूपण ।
इति स्म सर्वा परिग्रुरत्सुकास्तमुत्तमश्लोक दाम्युजाश्रयम् ॥२॥

जानीमस्तया यदुपते पार्षद समुभागतम् ।
भञ्जं प्रेषित पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥३॥

अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीय न वदमहे ।
स्नेहानुबन्धो बन्धूना मुनेरपि सुदुस्त्यज ॥४॥

अन्नेऽर्थकृता मैत्री यावदर्थ विडम्बनम् ।
पुम्भि स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव पदपदै ॥६॥

नि स्त्रं त्यजन्ति गणिका अकरप नृपतिं प्रजा ।
अधीनरिचा आचार्यमृत्विजो दत्त दक्षिणम् ॥७॥

खगा धीतफल वृक्ष भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ।
दग्ध मृगास्तथारण्य जारो भुक्त्वा रता स्त्रियम् ॥ ८ ॥
इति गोप्यो हि गोविन्दे गतयान्काय मानसा ।
कृष्णदूते व्रज याते उद्धवे त्यक्त्वा लौकिका ॥ ९ ॥
गायन्त्य प्रियकर्माणि रदत्यश्च गतद्विय ।
तस्य सस्मृत्य सस्मृत्य यानि केशोरवालयो ॥ १० ॥

इसी अवसर पर कहीं से एक भ्रमर आ जाता है और कोई गोपी उसे कृष्ण का दूत समझ बैठती है । तदनन्तर यह उस भ्रमर से कहती है —

काचिन्मधुकर दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसगमम् ।
प्रियप्रस्थापित दूत कर्तपयिवेदमवधीत् ॥ ११ ॥

मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाद्भि सपन्त्या
कुन्ध-विलुलित-माला-कुड्कुमशमधुभिर् ।
यद्वत् मधुपतिस्तन्मानिनीना प्रसाद
यदुसदसि विडम्ब्यो यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

सदृधरसुधा स्वा मोहिनीं पाययित्वा
सुमनस इय सद्यस्तत्यजेऽम्मान् भगवत् ।
परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पदुमा ।
ह्यपि यत हतचेता उत्तमश्लोकजटपै ॥ १३ ॥

किमिह यद्दु पङ्घ्रे गायसि त्वं यद्दना
मधिपतिमगृह्णाणामग्रतो न पुराणम् ।
त्रिजयसख सखीना गीयता तत्प्रसग
क्षपितकुचरजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टा ॥ १४ ॥

दिवि भुवि च रसाया का स्त्रियस्तददुरापा
कपटरचिर हास भ्रत्रिजृम्भस्य या स्यु ।
चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का
अपि च कृष्णरक्षे ह्युत्तमश्लोकशब्द ॥ १५ ॥

विस्वज शिरसि पाद वेदभ्यह चाटुकारै
रनुनयत्रिदुपस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ।
स्वहृत इह विस्वष्टापत्यपत्यन्यलोका
न्यस्वजदहृतचेता किन्नु सत्रेपमस्मिन् ॥ १६ ॥

मृगयुरिन् कर्पीन्द्र रिज्यधे लुधधर्मा
स्त्रियमकृत विरुपा स्त्रीजित कामयानाम् ।
बलिमपि बलिमस्त्रावेष्टयद् ध्वाङ्क्षवद् य-
स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कार्य ॥ १७ ॥

यदनुचरित—लीला—कर्ण—पीयूष—त्रिमुट्-
सकृददन—विघ्नत—द्वन्द्व—धर्मा विनष्टा ।
सपदि गृहकुटुम्ब्य दीनमुत्सृज्य दीना
यदव इह विद्वद्गा मिलुचर्या चरन्ति ॥ १८ ॥

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्धधाना
कुलिकरुतमिनासा वृष्णरध्वो हरिण्य ।
ददृशिम सकृदेतत्तन्नखस्पर्शनीन्—
स्मररज उपमन्त्रिन् भरणतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥

प्रियसख पुनरागा प्रेयसा प्रेषित कि
वरय किमनुरन्धे माननीयोऽसि मेऽष्टम् ।
नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यज इन्द्रपाण्य
सततमुगसि सौम्य श्रीर्षधू साकमान्ते ॥ २० ॥

अरि यत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽन्ते
म्भरति स पितृगोहान् सौम्य वन्धूश्च गोपान् ।
क्वचिदपि स कथा न किंकराणा गृणीते
भुजमगुरुस्सुगन्धि मूर्ध्न्यधास्यत कदा नु ॥ २१ ॥

गोपियों के इस कथन के बाद—

अयोद्धवो निशर्म्यैवं कृष्णदर्शनं लालसा
सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत् ॥२२॥

इत्यादि श्लोकों में उद्धवजी ने गोपियों की कृष्णभक्ति की घड़ी प्रशंसा की है और अन्त में उन्होंने गोपियों को कृष्णजी का सन्देश भी सुनाया है—

श्रूयता प्रियसन्देशो भवतीना सुखावह ।
यमादायागतो भद्रा अह भर्तृ रहस्कर ॥२२॥

इसके बाद कृष्णजी के शब्दों में ही वे गोपियों को कृष्णजी का सन्देश सुनाते हैं -

भवतीना त्रियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ।
यथा भूतानि भूतेषु ख धाग्ननिर्जल मही ।
तथाह च मन प्राणभूतेन्द्रिय गुणाश्रय ॥२६॥

अत्मन्येवामनाऽत्मानं सृजे हन्म्यनु पालये ।
आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना ॥३०॥

आत्मा ज्ञानमयं शुद्धो व्यक्तिग्निको गुणान्वय ।
सुषुप्ति स्रज्ज जाग्रद्धि मांयावृत्तिभिरीयते ॥३१॥

येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्रज्जमदुत्थित ।
तन्निरन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्र प्रत्यपद्यत ॥३२॥

एतदन्त समास्रायो योगं सात्य मनीषिणाम् ।
त्यागस्तपो दमं सत्यं समुद्रान्ता इयापगा ॥३३॥

यत्त्रह भवतीना वै दूर वर्ते प्रियो दशाम् ।
मनस मन्निर्कर्षायं मद्रनुष्यानकाम्यया ॥३४॥

यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आत्रिश्य वर्तते ।
स्त्रीणा च न तथा चेत सन्निकृष्टेऽक्षिगीचरे ॥३५॥

मप्यानेदय मन कृन्मन् विमुकाशेपवृत्ति यत् ।
अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरं न्नामुपैष्यथ ॥३६॥

कृष्णजी के इस सन्देश को सुनकर गोपिया उद्धवजी को कृष्णजी की विभिन्न कथायें और लीलायें सुनाती हैं। उद्धवजी भी कृष्ण की कथाओं और लीलाओं में ही प्रसन्न रहते हुए गोकुल में कई मास विता कर तथा कृष्णजी के प्रति गोपियों का

सन्देश लेकर मथुरा वापिस लौट आते हैं। श्रीमद्भागवत के इस प्रसंग के आधार पर ही श्री रूपगोस्वामी के उद्भव सन्देश तथा माधवकवीन्द्र के उद्भवदूत की रचना हुई है। उक्त प्रसंग में भ्रमर को भी दूत करिपत किया गया है। अतः यह प्रसंग स्त्रियाय वाचस्पति के भ्रमरदूत तथा अन्य भृगु दूतों का भी आधार है।

उपर्युक्त प्रसंग के अतिरिक्त भागवत में कुछ अन्य स्थलों में भी सन्देश काव्यों के प्रारम्भिक तरंग दृष्टिगोचर होते हैं। दशम स्कन्ध के ६० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के चरित्र का वर्णन किया गया है। कृष्णजी द्वारकापुरी में बड़े आमोद प्रमोद के साथ अपना जीवन पिताते हैं। शुकदेवजी उनके चरित्र का वर्णन करते हुए कहते हैं -

सुख स्वपुर्वा निरसन् द्वारकाया श्रिय पति ।
सर्वसम्पत्समृद्धाया जुष्टाया वृष्णि पु गवै ॥ १ ॥

स्त्रीभिश्चोत्तमवेपाभिर्नवयौवतकान्तिभि ।
रन्दुकादिभिर्हर्म्येषु, क्रीटन्तीभिस्तडिदुधुभि ॥ २ ॥

नित्य सकुलमार्गायाम् मदच्युद्धिर्मतगजै ।
स्वलहृतैर्भटैरश्वै रथैश्च फनकोज्ज्वलै ॥ ३ ॥

उद्यानोपजनाद्वयाया पुष्पितद्रम राजिषु ।
निर्दिशदुभृ गविद्वगै नाशिताया समन्तत ॥ ४ ॥

रमे षोडशसाहस्रपत्नीनामेकवरलभ - ।
तापद्विचित्ररपोऽसौ तदुगृहेषु महर्द्धिषु । ५ ॥

प्रोत्फुल्लोत्पल कहलार कुमुदाम्मोजरेणुभि ।
वासितामलतोयेषु कृजद्—द्विज—कुलेषु च ॥ ६ ॥

विजहार विगाह्याम्भो हृदिनीषु महोदय ।
कुचकु कुमलिसाग परिरन्धश्च योयिताम् ॥ ७ ॥

उपगीयमानो गन्धर्वं मूर्द्धङ्गपणानमान ।
वादयद्भिर्मुदा वीणा सूतमागधरन्दिभि ॥ ८ ॥

सिन्धुप्रानोऽच्युतस्ताभिर्हंसन्तीभि स्म रेचकै ।
प्रतिसिञ्चन् रिचिक्रीडे यक्षीभिर्वज्रगाडिव ॥ ९ ॥

ता क्लिन्न—यस्त्र—विधुतोरकुञ्ज प्रदेशा
सिञ्चन्त्य उद्घृत—वृहत्कवर—प्रसूना ।
कान्त स्म रेचक—जिह्वीरवयोपगुह्य
जातस्मरोत्सवलस—द्वदना विरेजु ॥ १० ॥

कृष्णस्तु तस्तनविपज्जितकु कुमखक्
 क्रीडाभिपङ्गुत—कुन्तल—वृन्द—दन्ध ।
 सिञ्चन् मुहु युवतिभि प्रतिपिच्यमानो
 रमे करणुभिरिवभति परीत ॥ ११ ॥

नटाना नर्तकीना च गीतवाद्योपजीदिनाम् ।
 क्रीडालकार वासासि कृष्णोऽदात्तस्य च रित्रय ॥ १२ ॥

कृष्णस्यैव विहरतो गत्यालारेक्षितस्मितै ।
 नर्मद्वेलिपरिष्वङ्गै स्त्रीणा विल हता धिय ॥ १३ ॥

ऊचुर्मुकुन्दैकधियो गिर उन्मत्तवज्जडम् ।
 चिन्तयन्त्योऽरविन्दाक्ष तानि मे गदत श्रणु ॥ १४ ॥

महिष्य ऊचुः

कुररि दिलणसि त्व धीननिद्रा न शेषे
 स्वपिति जगति रात्र्यामीश्वरो गुप्तबोध ।
 वयमिव सखि कश्चिद् गाढ निर्भिन्न चेता
 नलिन नयन हासोदार लीलेक्षितेन ॥ १५ ॥

नेत्रे निमीलयसि नक्तमदृष्टवन्धुस्
 त्वं रोरर्वासि करण यत चक्रनाकि ।
 दास्यं गता धयमिमाच्युतपादजुष्टा
 किं वा स्रज स्पृहयसे कवरेण वोढुम् ॥ १६ ॥

भो भो सदा निष्टनसे उदम्बन्-
 नलब्धनिद्रोऽधिगतप्रजागर ।
 किं या मुकुन्दापहृतात्मलान्छन
 प्राप्ता दशा त्वं च गता दुःख्ययाम् ॥ १७ ॥

त्वं यदमणा पलयताऽसि शृङ्गीत इन्द्रो
 क्षीणस्तमो न निजदीधितिभि क्षिणोपि ।
 कच्चिन्मुकुन्द गदितानि यथा धय त्वं
 यिस्मृत्य भो स्थगितगीतपलदयसे न ॥ १८ ॥

किन्त्याचरितप्रस्माभिर्मलयानिल तंऽप्रियम् ।
 गोविन्दापाग निर्मिन्ने हृदीत्यसि नः स्मरम् ॥ १९ ॥

मेघ धीमस्त्वमसि दयितो यादवेन्द्रस्य नूनम्
 श्रीयत्साङ्कम् वयमिन् भवान् ध्यापति प्रेमवद् ॥
 अत्युत्कण्ठ शरलहृदयोऽस्मद्विधो वाष्पधारा
 स्मृत्वा स्मृत्वा निस्सृजसि मुहुर्दु खदस्तत्प्रसंग ॥२०॥

प्रियराजपदानि भावसे मृतसन्जीविकयानया गिरा ।
 करवाणि किमद्यते प्रिय वद मे वदिगतकण्ठ कोकिल ॥२१॥
 न चलसि न वदस्युदार बुद्धे क्षितिधर चिन्तपसे महान्तमर्थम् ।
 अपि वत वसुदेव नन्दनाङ्घ्रि वयमिन् कामयसे स्तनैर्विधर्तुम् ॥२२॥

शुष्यद्भद्रा कर्शिता वत सिन्धुपत्न्य
 सम्प्रत्यपास्तकमलध्रिय इष्टभर्तु ।
 यद्दद वय मधुपते' प्रणयावलोक-
 मप्राप्य मुष्टहृदया' पुरकशिता स्म ॥२३॥

हस स्वागतमास्यता पित्र पयो ब्रूह्यङ्ग शीरे कथाम् ।
 दूत त्वा नु विदाम कच्चिदजित स्वस्यास्त उक्त पुरा ॥
 किं वा नश्चलसीहृद् स्मरति त कस्माद्भ्रजामो घर्ष ।
 क्षीद्रालापय कामर्द्ध ध्रियमृते सेवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

इतीदृशेन भावेन कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ।
 क्रियमाणेन माधव्यो लेभिरे परमा गतिम् ॥ २५ ॥

उपर्युक्त प्रसंग में महिषियों का उन्मत्त की तरह कुररी, चक्रवाकी, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, पर्वत, नदियों और हस को सम्बोधन करना तथा कृष्णजी के सम्बन्ध में उनसे वार्तालाप करना परवर्ती कवियों को विभिन्न सन्देशकाव्य लिखने में अग्रगण्य ही प्रेरक रहा होगा। श्री रूपगोस्वामी के हसदूत में भागवत का प्रभाव स्पष्ट ही दिखलाई देता है। इस काव्य की न केवल कथा ही प्रत्युत नाम भी भागवत के आधार पर है। परवर्ती कवियों ने चन्द्रमा, पवन, मेघ, कोकिल और हस जैसे ही सन्देश वाहक अपने काव्यों में नियुक्त किये हैं।

उपर्युक्त प्रसंगों के अतिरिक्त श्रीमद् भागवत में एक और स्थल पर भी दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का कार्य पाया जाता है। रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से निश्चित हो जाता है किन्तु रुक्मिणी इस विवाह सम्बन्ध को नहीं चाहती है। यह श्रीकृष्णजी ने विवाह करना चाहती है। इसी प्रसंग में विदर्भ से द्वारका को दूत के रूप में एक ब्राह्मण भेजा जाता है। यह कथा इस प्रकार है —

राजाऽसीद् भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ।
 तस्य पद्मिभवन् पुत्रा कन्यैका च धरानना ॥१०॥१२॥२१॥

रुक्म्यप्रजो रुक्मरथो रुक्मगाहुरनन्तर ।
रुक्मरेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येवा स्वसा सती ॥२०॥

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपरीर्यगुणधिय ।
गृहागतैर्गीयमानास्त मेने सदृश पतिम् ॥ २३ ॥

ता बुद्धि लक्षणौ दार्य रूपशील गुणाश्रयाम् ।
कृष्णश्च सदृशो भार्या समुद्रोद्भु मनो दधे ॥ २४ ॥

यन्ध्रनामिच्छता दातु कृष्णाय भगिनीं नृप ।
ततो निवार्य कृष्णद्विट् रुक्मी चैधममन्यत् ॥२५॥

तद्वेत्यासितापागी वैदर्भी दुर्मना मृशम् ।
रिचिन्त्याप्त द्विज कचित् कृष्णाय प्राहिणोद्भु द्रुतम् ॥२६॥

द्वारका स समभ्येत्य प्रतीहारै प्रवेशित ।
अपश्यदाद्य पुरुपमासीन काचनासने ॥२७॥

दूत के पहुचने पर कृष्णजी उसका स्वागत-सत्कार करते हैं, कुशलमगल पूछते हैं तथा उसके आने का कारण भी जानना चाहते हैं। इसी समय ब्राह्मण श्रीकृष्ण को रुक्मिणी का सन्देश सुनाता है-

रुक्मिणी का कथन

भ्रुत्वा गुणान् भुवनसुन्दर शृण्वताते
निर्विश्य रुण्विवरै हंरतोऽगतापम् ।

रूपं दशा दशिमतामपिलार्थलाभम्
त्वय्यच्युते विशति चित्तमपत्रप मे ॥३७॥

का त्वा मुकुन्द महती कुलशील रूप
विद्यारयो द्ररिण धामभिरात्म तुत्पम् ।

धीरा पतिं कुलवती न धृणीत कन्या-
काले नृसिंहनरलोऽमनोऽभिरामम् ॥३८॥

तन्मे भवान् खनु धृत पतिरग जाया
मात्मापिनश्च भरतोऽभ्रजिभो त्रिधेदि ।

मा धीरभागमभिमर्शतु चैच आराद्
गोप्तायुवन्मृगपतेर्गलिमभ्युजात्त ॥३९॥

पृतेष्ट दत्त नियम व्रत देयता
गुर्वर्चनादिभिरल भगवान् परेश ।

अपराधितो यदि गदाप्रज एत्य पाणि
रुद्धान्तु मे न दमघोपसुतादयोऽन्ये ॥४०॥

श्रीभाषिणि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्
शुत समेत्य पृतनापतिभि परीत ।

निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रवल प्रसह्य
मा राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥४१॥

अन्त पुरान्तरचरीमनिहत्य वन्धू स्
त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ।

पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियाना
यस्या वहिर्नयधूर्गिरिजामुपेयात् ॥४२॥

यस्याग्नि यरुजरज स्नपन महान्तो
वान्ध्वन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ।

यहर्षम्युजाज्ञ न लभेय भवत्प्रसाद
जह्यामसून् व्रतकृशाञ्छतजन्मभि स्यात् ॥४३॥

रून्मिणी के इस सन्देश को सुनकर श्रीकृष्णजी निश्चित समय पर विदर्भ देश में आ जाते हैं और पूर्व योजना के अनुसार रून्मिणी को पार्वती के मन्दिर से रथ में बैठा कर ले जाते हैं। इस कथानक में दूत द्वारा पूर्वानुराग में सन्देश प्रेषण स्पष्ट ही है। इस कथा के आधार पर ही श्री लक्ष्मण-सूरि ने विप्र सन्देश नामक काव्य लिखा है।^१

प्रार्थन सस्कृत साहित्य के अतिरिक्त भारतीय लोकगीतों में भी पत्नियों द्वारा पत्र भेजने की परम्परा के उदाहरण पाये जाते हैं। जय विरहिणी दूर देश में गये पति की याद कर उसे सन्देश भेजने का विचार करती है, तब उसे कागा और अन्य पक्षी ही सहायक दिखलाई पड़ते हैं। वह कहती है -

केकरे हाथ चिठिया लिखि,
भेजू, केकरे हाथ सन्देश ?

^१ पूर्ण चन्द्रोदय प्रेस, तजीर द्वारा प्रकाशित (१९०६)।

कागा के हाथ चिठिया लिखि
भेजू, पढ़ी हाथ सन्देश ।

बौद्धों के जातक साहित्य में चिठियों द्वारा सन्देश ले जाने के कई मनोरंजक प्रसंग देने में आते हैं। कलण्डुक जातक (स० १२७) में एक तोते की ही कथा है। वाराणसी का एक सेठ अपने कलण्डुक नाम के दास की रोज करने के लिए अपने पालतू तोते को भेजता है। वह तोता भी दास का पता लगाकर अपने सेठ को वापिस सूचना देता है।

कामविलाप जातक (स० २६७) में श्ली का दण्ड पाया हुआ एक व्यक्ति आकाश में उठते हुए एक कौवे को देखकर प्यारी भार्या के पास उसके द्वारा सन्देश भेजता है। यह कौवे से कहता है—

उच्चे सकुण हेमान पत्तयान विहंगम,
यज्जासि खोत्थं वामूरू चिर सोसा करिस्सति ॥

इद खो सा न जानाति अस्सि सत्तिच ओहिड्डतम् ।
सा चएडी काहति कोध त मे तपति नो इध ॥

एस उप्पल सन्नाहो निम्पल मुस्सीसके फत ।
कासिरुच मुदु वरथ तप्पतु धन कामिका ॥

कु तनि जातक (स० ३४३) में एक ऐसे पक्षी की कथा है, जो कोशल के राजा के यहा रहता था और राजा को दूत के समान सन्देश पहुँचाया करता था (सा फिर राजा दूतेय्य द्वारिका)। उस चिठिया के दो छोटे बच्चे थे। एक बार कोशल राज ने एक पत्र देकर चिठिया को किसी दूसरे राजा के पास भेजा। उसके बाहर चले जाने पर कुछ उपद्रवी लड़कों ने उसके बच्चों को मार डाला। लौटने पर चिठिया ने कोशल राज से उसका बदला लिया और सदा के लिये वहा से चली गई।

महाउम्मग नामक एक दूसरे जातक (स० ४४६) में उत्तर पंचाल की अत्यन्त सुन्दरी राजकुमारी 'पंचाल चंडी' का हाल मिलता है। पंचाल तथा विदेह के राजाओं में उस समय गहरी शत्रुता चल रही थी। पंचाल के राजा ने अपने शत्रु को नीचा दिखाने के लिये एक नई बाल चली। अपनी सुन्दरी पुत्री की प्रशंसा में उसने कवियों से आकर्षक रचनायें निर्मित कराईं। इसने यदि सगीत्यों द्वारा कुछ पक्षियों के गले में घटिया बाध दी गई। फिर इन पक्षियों को विदेह राजा के राज्य में भेजा गया। वहा थे पंचाल राजकुमारी के रूप-सौंदर्य का गायन अत्यन्त मधुर शब्दों में करते तथा यह भी गाते कि राज कन्या विदेहराज पर अनुरक्त है और उसे छोड़ किसी अन्य को बरख नहीं करना चाहती। पक्षियों के यह गीत राजमानी मिथिला

में वहा के राजा ने भी सुने। वह पंचाल की राजकुमारी पर मुग्ध हो गया। इस प्रकार पक्षियों के द्वारा पंचाल नरेश ने मिथिला के राजा को फसाने में सफलता प्राप्त की।

प्राचीन काल में भारतीय पक्षियों की मांग विदेशों में बहुत थी। यूनान और रोम वाले भारतीय तोतों को बहुत पसन्द करते थे। इनके अलावा तीतर, गम्ह, खकोर, याज आदि पक्षी भी भारत से बड़ी सख्या में मंगाये जात थे। यूनानी लेखकों ने इनकी चर्चा अपने लेखों में बहुत की है।

ईस्वी पहली या दूसरी शती में बनाई गई चोंदी की एक गोल तश्तरी पशिया माइनर के उत्तर पश्चिमी कोने में स्थित लेक्समस नामक स्थान से मिली है। यह इस समय वहा के स्ताम्बूल म्यूजियम में प्रदर्शित है। उस तश्तरी के बीच में भारत लक्ष्मी की सुन्दर मूर्ति बनी है तथा उसके अगल बगल में अनेक भारतीय पशुओं तथा तोता, एवं चकोर पक्षियों का बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रण किया गया है^१।

उपर्युक्त प्रसंगों से यह विदित होता है कि प्राचीन भारत में पक्षी भी बड़े प्रशिक्षित होते थे तथा विदेशों में भी उनका बड़ा मूल्य मिलता था। समुद्र यात्रा करने वाले मोंक्षियों के पास कुछ पैसे प्रशिक्षित पक्षी भी होते थे, जो छोड़ देने पर समुद्रतट का पता लगाकर फिर जहाज पर वापस आ जाते थे। इस प्रकार ये दिशा काक पथप्रदर्शक का काम बड़ी कुशलता से किया करते थे।

पशु-पक्षियों के दूतकार्य तथा पथप्रदर्शन से भी, समबद्ध, परन्तु कवियों को उन्हें सन्देशवाहक बनाकर विभिन्न सन्देशकाव्य लिखने की प्रेरणा मिली हो ।

सन्देश काव्य का शिल्प विधान

जैसा कि सन्देशकाव्य शब्द से स्वय स्पष्ट है, इस प्रकार के काव्यों में प्राय किसी विरही नायक या नायिका के अपनी प्रियसी या प्रिय के पास दूत द्वारा सन्देश

^१ दे 'नवनीत' हिन्दी मासिक मार्च १९५६ में श्रीवृष्णप्रसाद वाजपेयी क्यूरेटर, मथुरा म्यूजियम का 'पशु पक्षियों के दूत कार्य' लेख।

^२ मलिक मुहम्मद जायसी के पद्मावत महाकाव्य में भी तोते के मुँह से पद्मावती का रूप वर्णन पाया जाता है। विरहिणी नागमती भी सय जीव जंतुओं और पशु पक्षियों में सहानुभूति की भावना करती हुई कहती है-

पिउ सौ कहैहु सदेसदा, हे भौरा, हे काग।

सो धनि विरहै जरि मुई, तेहि क धु था दम्ह लाग।

संस्कृतकाव्यसाहित्य के प्रमुख ग्रन्थ पंचतन्त्र और दितोपदेश में तो पशु पक्षियों को ही नायक मान कर कथाये लिखी गई हैं।

भेजे जाने की कल्पना नहीं जाती है। संस्कृत साहित्य में विभिन्न प्रकार की रचनाओं के लिये आदर्श स्वरूप किसी ग्रन्थ का दृढ़ निकालना थका ही कठिन है, लेकिन सन्देश काव्यों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। कालिदास का मेघ सन्देश संस्कृत साहित्य का प्रथम सन्देश काव्य है जिसके अनुकरण पर परवर्ती कवियों के द्वारा अनेक सन्देश काव्य लिखे गये हैं। कालिदास ने मेघ सन्देश में काव्यका जैसा विभजन तथा कथावस्तु का जैसा तारतम्य रक्खा है, वह इतना मनोवैज्ञानिक तथा व्यवस्थित है कि वाद में सभी काव्यों में उसका पूर्णतया अनुकरण किया गया है।

सन्देश काव्यों में प्रायः दो भाग होते हैं - पूर्व भाग और उत्तर भाग। पूर्व भाग में सर्वप्रथम नायक अथवा नायिका की विरही रूप में उपस्थित किया जाता है। तदनन्तर दूत का दर्शन, उसका स्वागत, उसकी प्रशंसा तथा उसकी शक्ति का वर्णन किया जाता है। फिर उससे सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना के साथ २ गन्तव्य स्थान तक का मार्ग वर्णित किया जाता है। इस प्रकार मार्ग वर्णन करते २ पूर्व भाग समाप्त हो जाता है। तदनन्तर उत्तर भाग में गन्तव्य नगरी का वर्णन, प्रिय या प्रेयसी के निवासस्थान का वर्णन और फिर नायिका अथवा नायक की विभिन्न चेष्टाओं और विरहाग्न्धाओं की सभायना नहीं जाती है। इसके बाद उचित स्थल तथा अवसर देव कर सन्देश सुनाने की प्रार्थना की जाती है। सन्देश के बाद सन्देशगाहक की सत्यता प्रमाणित करने के लिए प्रेमियों के अन्तरंग जीवन की कोई गुप्त घटना भी अभिज्ञान स्वरूप वर्णित की जाती है। अन्त में सन्देश गाहक के प्रति शुभकामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

कालिदास ने अपने काव्य में ऐसा ही विषय प्रेम रक्खा है। वाद में और कवियों ने इसी क्रम का पालन किया है। किसी २ काव्य में कोई बात कम भले ही हो, लेकिन उपर्युक्त विषय के अतिरिक्त और कोई नवीन वस्तु देखने में नहीं आती है।^१ कालिदास ने अपने सन्देश-काव्य के द्वारा सन्देश काव्यों का एक नवीन ही शिल्प विधान निर्धारित कर दिया जो कि आगे चलकर परवर्ती कवियों के लिए एक आदर्श सा हो गया और उन्हें सन्देश काव्यों में लिखने में मार्ग प्रदर्शन करता रहा।

सन्देश काव्यों पर प्राचीन साहित्य शास्त्रियों की सम्मति

मेघसन्देश का संस्कृत साहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा है। सर्व प्रथम भ्रमभृति के मालतीमाधव नाटक में इसका कुछ प्रभाव उपलब्ध होता है। इस नाटक में विरही माधव मेघ को दूत बनाकर अपनी प्रेयसी मालती के पास भेजता है -

^१ सन्देश काव्यों में मगलाचरण प्रायः नहीं होता है लेकिन किसी किसी कवि ने अपने काव्य में मगलाचरण भी किया है। यथा उदयकवि का मयूर-सन्देश और रूपगोस्वामी का हसदूत।

माधव - तत्कमन विपिने प्रियापार्ताहर करोमि ।
(विलोक्य) साधु साधु ।

फलभर परिणाम श्याम जम्बू निकु ज
स्खलन तनु तरगामुत्तरेण श्रवन्तीम् ।
उपचितधनमाल प्रौढतापिङ्गुनील
श्रयति शिखरमद्रेर्नूतनस्तोयवाह ॥२४॥

(सरभसमुत्थापोन्मुख वृताजलि ।)

कश्चित् सौम्य प्रियसहचरी विद्युदालिंगति त्वा ?
आदिर्भूत प्रणय सुमुखाञ्चातका या भजन्ते ?
पौरस्व्यो या सुखयति मरन् साधु सजाहनाभि ?
पिप्पग् पिभ्रत् सुरपतिधनुर्लन्म लक्ष्मीं तनोति ॥२५॥

(आकर्ष्य) श्रये । अय प्रतिगवभरितकन्दरानन्दितोन्कगठनीलकण्ठकलके
कानुगन्धिना मन्द्रहुहृतेन मामनुमन्यते, यापदभ्यर्थये । भगवन् ? जीमूत ?

दैवात् पश्ये जगति विचगन्निच्छया मत्प्रिया चेत्
आशास्यादौ तदनु कथयेमांधरीयामरस्थाम् ।
आशा तन्तु न च कथयताऽत्यन्तमुच्छेदनीय
प्राणप्राण कथमपि करोत्यायतादया स एक * ॥२६॥

(मा० मा० नवम श्रक)

* इस स्थल में मेघ सन्देश का भावानुकरण ही नहीं किया गया है, प्रत्युत
श्लोक स० २५ २६ में मन्दाक्रान्ता हृद का भी प्रयोग किया गया है । श्लोक स० २५
के 'कश्चित् सौम्य' की मेघसन्देश की

कश्चित् सौम्य व्यरसितमिद वन्धुहृय त्वयामे

इस पक्ति के प्रारम्भिक पदों से तुलना की जा सकती है तथा श्लोक स०
२६ की अन्तिम दो पक्तियां मेघसन्देश की

आशाग्रन्ध कुसुम सदश प्रायशो ह्य गनानाम् ।
सद्य पाति प्रणयि हृदय विप्रयोगे रणद्धि ॥१॥१०॥

पक्तियों से समानता रक्षती हैं ।

इसके बाद वीरेश्वर का पाङ्मण्डनगुण-दूत काव्य, जम्बूकवि का चन्द्रदूत तथा धीरिय कवि का परनदूत यह काव्य मेघसन्देश के सर्वप्राचीन अनुकरण के रूप में उपलब्ध होत हैं। समभव है कि इन काव्यों से पूर्व भी कुछ सन्देश काव्य लिखे गये हों और वे बड़े लोकप्रिय रहे हों। इस प्रकार के काव्य या तो सर्वथा लुप्त हो गये हैं या वे किसी ग्रन्थ भण्डार में किसी अन्वेषक की प्रतीक्षा कर रहे हैं। ईसवी सातवीं शताब्दी के अन्त या आठवीं के प्रारम्भ में हुए प्रसिद्ध अलकारशास्त्री आचार्य भामह के काव्यालकार से अप्रत्यक्ष रूप से कुछ प्राचीन अन्य सन्देशकाव्यों की सत्ता का भी प्रमाण प्राप्त होता है। आचार्य भामह ने सन्देश काव्यों को कुछ अनुचित ही माना है। अपने काव्यालकार में अयुक्तिमत् दोष का विचार करते हुए उन्होंने लिखा है—

अयुक्तिमद्यथा दूता जलभृन्मास्तेन्द्रय ।
 तथा भ्रमर-हारीत चक्र धाक शुकादयः ॥४२॥
 अथाचोऽयुक्तावाचश्च दूरदेशविचारिणः ।
 कथं दौत्य प्रपञ्चेरन्निति युक्त्या न युज्यते ॥४३॥
 यदि चोत्कण्ठया यत्तदुन्मत्त इव भाषते ।
 तथा भवतु भूम्नेद सुमेधोभिः प्रयुज्यते ॥४४॥

प्रथमपरि युक्तयुक्तविचार प्रकरण

भामह के इस अर्थतरण से यह तो निश्चित ही है कि उनके समय में भी कालिदास के मेघसन्देश के अनुकरण पर कई सन्देश काव्य लिखे जा चुके थे। इसके अतिरिक्त यह अर्थतरण सन्देश-काव्यों के सम्बन्ध में प्राचीन साहित्यशास्त्रियों के दृष्टिकोण को भी सामने रखता है। यों तो किसी अन्य आचार्य ने सन्देशकाव्यों पर स्पष्ट रूप से कहीं भी अपना कोई मत प्रकट नहीं किया है। केवल धारेश्वर भी मोजदेव ने अपने सरस्वती कण्ठाभरण में प्रबन्ध विषयक युक्ति के प्रसंग में मेघसन्देश का उद्धरण दिया है -

प्रबन्ध व्यापि वस्तु पपत्ते हंतुस्तु प्रबन्धविषया युक्तिर्भषति ।

सा यथा—

धूम ज्योति सलिलमरुता सन्निपात फव मेघ ।

इत्यादि । ॥द्वितीय परिच्छेद, ५१ ॥

तर्क की दृष्टि ने सन्देश काव्यों की सारी योजना ही साहित्यशास्त्रियों के लिए भले ही असंगत प्रतीत हो, लेकिन इन काव्यों के साहित्यिक सौन्दर्य को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। वस्तुतः इन काव्यों का सौन्दर्य मेघ, परन, चन्द्र, शुक, फोबिज और मयूर जैसे प्राकृतिक सौन्दर्यपूर्ण सन्देशवाहकों पर ही निर्भर है।

सन्देश काव्यों के रचयिता भावुक कवि अपने सन्देशवाहकों की अपूर्णताओं से पूर्ण परिचित थे। इसीलिए तो प्रायः प्रत्येक काव्य में उन्होंने किसी न किसी प्रकार सन्देशवाहक की क्षमता और योग्यता का समर्थन किया है। विरह की तीव्रता में मनुष्य का चेतन और अचेतन का धान नष्ट हो जाता है और उस अवस्था में अचेतन मेघ, चन्द्र और पवन इत्यादि तथा शुक, कोकिल और मयूर इत्यादि पक्षियों को दूतकार्य में नियुक्त करना साहित्यिक दृष्टि से कुछ भी अनुचित नहीं है। प्रत्युत इसमें कवि की कल्पना का उत्कर्ष ही है। साहित्यदर्पण में श्री विश्वनाथ ने उन्माद का लक्षण बताते हुए लिखा है—

अथोन्माद

चित्तसमोह उन्माद' काम शोकभयादिभि ।
अस्थान हास रुदित गीत प्रलपनादिकृत् ॥३१॥१६०॥

इसके बाद उदाहरण-स्वरूप उन्होंने स्वरचित एक श्लोक भी प्रस्तुत किया है—

भ्रातृद्विरेफ भ्रमता भ्रमता समन्ता-
त्प्राणाधिका प्रियतमा मम धीक्षिता किम् ।

(भकारमनुभूय सानन्दम्)

ग्रये किमोमिति सखे कथयाशु तन्मे
किं किं व्यवस्यति कुतोऽस्ति च कीदृशीयम् ॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि धाद में साहित्य शास्त्रियों द्वारा विरहजन्य उन्माद-
दावस्था में भ्रमर इत्यादि को सम्बोधन करना कुछ भी अनुचित नहीं माना गया है और सन्देश काव्यों को साहित्यिक दृष्टि से दोषपूर्ण भी नहीं कहा गया है।

सन्देश काव्यों का शृंगारिक स्वरूप

सन्देश काव्यों के विभिन्न पक्षों पर उपर्युक्त विवेचन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विरह की ही पृष्ठभूमि को लेकर लिखे गए हैं। उन प्राचीन ग्रन्थों में भी जिनमें कि सन्देश काव्यों के आदि तत्त्व पाए जाते हैं, प्रेम अथवा विरह के प्रसंग में ही दूत द्वारा सन्देश प्रेषण का वृत्तान्त उपलब्ध होता है। घटकर्पर काव्य तथा मेघ सन्देश जिनमें कि सन्देश काव्य का प्रारम्भिक और पूर्ण विकसित रूप क्रमशः उपलब्ध होता है, विरह के ही प्रसंग को लेकर लिखे गए हैं। मेघसन्देश के प्रथम तथा अन्तिम दोनों श्लोकों में विरह और विप्रयोग शब्द दृष्टिगोचर होते हैं तथा सारा काव्य विरह के ही वातावरण को प्रस्तुत करता है। मार्गवर्णन के प्रसंग में यया नदिधा, यया पथिक वनिताप और यया पर्वत-चोटिया सभी विरहिणी सौ

वर्णित की गई हैं। नायिका की विरहावस्था के साथ २ सन्देश कथन में नायक की विरहावस्था भी वर्णित की गई है। इस प्रकार सारा काव्य, नया वाह्य प्रकृति और नया मानसप्रकृति दोनों के विरह वर्णन से ही श्रोतप्रोत है। कहीं २ शृंगार के संयोगपक्ष का भी वर्णन पाया जाता है। आगे चलकर पवनदूत, हससन्देश, मयूर सन्देश, फोकिल सन्देश, शुक सन्देश इत्यादि अन्य काव्य भी शृंगार रस के वातावरण में ही लिखे गए हैं। साहित्यशास्त्र में विरह में जितनी भी कामदशाएँ बताई गई हैं, उन सब का सन्देश काव्यों में बड़ा क्रमिक और मनोवैज्ञानिक वर्णन प्राप्त होता है। विरह का जैसा सर्वांगीण वर्णन इन सन्देश काव्यों में प्राप्त होता है, वैसा अन्यत्र कहीं भी देखने में नहीं आता है। अतः सन्देश काव्य अपने मूल रूप में शृंगाररसप्रधान ही है।

जैन सम्प्रदाय में सन्देश काव्यों का धार्मिक रूप

आगे चलकर यह देखने में आता है कि जैन मनीषियों के द्वारा एक नवीन उद्देश्य को लेकर ही कुछ सन्देश काव्य लिखे गए हैं। शृंगार रस के वातावरण में चलने वाली काव्य परम्परा को उन्होंने अपनी प्रतिभा से धार्मिक रूप देकर एक नई दिशा की ओर मोड़ दिया है। त्याग प्रधान जीवन में पूर्ण निश्वास करने वाले जैन मुनियों ने अपनी सस्कृति के उच्च तत्त्वों तथा पार्श्वनाथ और नेमिनाथ जैसे महापुरुषों के जीवन-चरित्र अपने सन्देश काव्यों में अंकित किये हैं। इस प्रकार अचलगच्छीय आचार्य मेरतुग ने नेमिनाथ के जीवनचरित्र को लेकर अपना जैन मेघदूत लिखा। कई जैन कवियों ने मेघदूत के अन्तिम पदों को लेकर समस्या पूर्ति-स्वरूप कई सन्देश काव्य लिखे हैं। आठवीं शताब्दी से ही ऐसे प्रयत्न आरम्भ हुये हैं। जिनसेन ने मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर तथा पार्श्वनाथजी के जीवनचरित्र को लेकर पार्श्वनाथकाव्य लिखा है। उत्तरकालीन कवियों ने भी ठीक वैसा ही किया है। उन्होंने अपने गुरुओं को विशिष्टपत्र लिखते समय सन्देश काव्यों में अपनी धार्मिक प्रगति का वर्णन किया है। इस प्रकार साहित्यिक सौन्दर्य के साथ २ दार्शनिक सिद्धान्त भी उनके काव्यों में पाये जाते हैं। त्रिपय के अनुसार मन और शील जैसे दूत भी निरुक्त किये गये हैं। सन्देश काव्यों में जैन कवियों का यह प्रयोग सर्वथा नवीन है। जैन कवियों द्वारा रचित प्रमुख सन्देश काव्य निम्न लिखित हैं - विक्रमकवि का नेमिदूत, मेरतुग का जैनमेघदूत, चरित्र सुन्दरगणि का शीलदूत, किसी अज्ञात कवि का चेतोदूत, वितयविजयगणि का इन्दुदूत, मेघ त्रिजय का मेघदूतसमस्यातोष तथा विमलकीर्तिगणि का चन्द्रदूत इत्यादि। इन सन्देश काव्यों में न केवल सदाचार और सयम का ही आदर्श स्थापित किया गया है, अपितु परमार्थ तत्त्व का भी निरूपण किया गया है। काव्य की भाषा में होने से यह परमार्थ निरूपण और भी सरस और सुगम हो गया है।

उत्तरकालीन भक्तिपरक तथा दार्शनिक सन्देशकाव्य

क्रमशः सन्देश काव्य भारतवर्ष में इतने लोकप्रिय हो गये कि उत्तरकालीन कवियों ने रामायण, महाभारत और श्रीमद्भागवत के उदात्तचरित नायकों के जीवनवृत्त को लेकर कई सन्देशकाव्य लिखे। आचार्य वेदान्तदेशिक द्वारा रचित इस सन्देश के कथानायक स्वयं मर्यादा पुरपोत्तम रामचन्द्रजी हैं। हनुमानजी के सीताजी की खोजकर लका से लौटने के बाद रामचन्द्रजी द्वारा एक इस के हाथ सीताजी के पास अपने प्रणय सन्देश के भेजे जाने का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार रत्ननाथ पचानन के भ्रमरदूत काव्य में लका से सीताजी का समाचार लेकर हनुमानजी के वापिस लौटने पर विरह-विधुर श्री रामचन्द्रजी द्वारा भ्रमर के हाथ सीताजी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। श्रीकृष्णनाथनाथ-पचानन भट्टाचार्य के वातदूत में भी सीताजी के द्वारा रामचन्द्रजी के पास वायु को दूत बनाकर अपनी दुःख वार्ता पहुँचाई गई है। इन काव्यों में विरह वर्णन बड़ा सजीव और करुणापूर्ण है। प्रायः यह काव्य रामचन्द्रजी की भक्ति से प्रेरित होकर ही लिखे गये हैं, जैसा कि इन काव्यों के अन्तिम पद्यों से स्पष्ट होता है।^१

श्री तैलग व्रजनाथ ने महाभारत की द्रौपदीचीरहरण कथा के आधार पर मनोदूत नामक अपना सन्देशकाव्य लिखा है। इस काव्य में दुःशासन द्वारा चीरहरण किये जाने के असर पर असहाय द्रौपदी अपने मन को ही दूत बनाकर कृष्ण के पास अपना विनय सन्देश भेजती है। कवि ने द्रौपदी की असहायवस्था एक भक्त की असहायवस्था के समान ही चित्रित की है तथा श्रीकृष्ण की भक्त-धत्सलता और भक्त-परायणता पर विशेष प्रकाश डाला है। इस काव्य में जनता के लिए कृष्णभक्ति का दिव्य-सन्देश दिया गया है। दूसरे शब्दों में यह काव्य कृष्णपरक एक भक्तिकाव्य ही है। कवि ने काव्य के अन्त में कृष्णभक्ति की बड़ी महिमा बताई है—

१ श्रेयसा प्राप्तिहेतुम् ।

I सीतारामव्यतिकरसखं इस सन्देश रत्नम्

पश्यन्त्वन्त श्रयणमनघ चक्षुरुज्जीव्य सन्त ॥
(धे० दे० हं० स० २५०)

II शश्वत्कुर्याद् व्यसनजनिताशेषपापोपशान्तिम् ।
तन्मे कुर्यान्निज गुण कथाराधितो रामचन्द्र ॥ भ्रमरदूत १२५ ॥

III अघ्यथान्ति तव परिहरेच्छानुकम्पी प्रणामा-
क्ष्वयाशस्तं मम च जनपेद्बद्धमायाद्विमोक्षम् ॥ वातदूत १०० ॥

न तावच्चाचक्ष्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहारी ।
न यावच्छ्री कृष्ण स्मरणरससिन्धो निपतति ॥१६४॥

स कोऽपि श्रीगोपीजन हृदयहारी प्रतिदिनम्
सदा ध्येयो नान्यं प्लवङ्ग भवान्भोधि तरणे ।
यदीयं नामेदं जगद्गभिदा-दीक्षितमहो
स्मरन्भक्त प्रेमामृतरसनिमग्नो विजयते ॥१६६॥

कुछ कवियों ने श्री मद्भागवत के आधार पर भी कई सन्देश काव्य लिखे हैं । इनमें श्री रूपगोस्वामिन् का हसदूत और उद्धव सन्देश, माधवकवीन्द्र का उद्धवदूत तथा श्रीकृष्ण-सार्वभौम का पदाकदूत प्रमुख हैं । इन सब कवियों ने कृष्णभक्ति में ही प्रेरित होकर कृष्ण की जीवनलीलाओं का प्रकारान्तर से अपने काव्यों में वर्णन किया है । श्री रूपगोस्वामिन् ने हसदूत के आदि और अन्त में कृष्ण की बड़ी भाव पूर्ण स्तुति की है ^१ तथा उद्धवसन्देश के अन्त में भी श्री कृष्णजी से ससार सागर से पार कर देने की प्रार्थना की है । ^२ माधव-कवीन्द्र ने भी अपने उद्धवदूत को कृष्ण के लिये उपहार-स्वरूप अर्पित किया है । ^३ श्रीकृष्ण सार्वभौम ने भी श्रीकृष्ण के चरणरुमलों को हृदय में धारण करते हुए अपना पदाकदूत लिखा है ।^४

उपर्युक्त काव्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य काव्य भी श्रीकृष्ण की कथा को लेकर लिखे गए हैं । इनमें रुद्रन्याय पद्मानन का पिकदूत तथा भोलानाथ का पान्थदूत विशेषतया उल्लेखनीय हैं । पिकदूत में राधा ने पिक के द्वारा मथुरा में कृष्ण के पास अपना विरहसन्देश भेजा है । पान्थदूत में भी गोकुल से मथुरा जाते हुये एक पथिक को दूत बनाकर कृष्ण के पास किसी गोपी ने अपना सन्देश भेजा है । शतावधान-

- १ । दुकूल विभ्राणो दलित हरि-ताल द्युति-हर
जगपुष्पश्रेणी रुचि रचिर पादाम्बुजतल ।
तमालश्यामगो दरहसित-लीलाचितमुल
परानन्दाभोग स्फुरतु हृदि मे कोऽपि पुरप ॥ हसदूत १ ॥
- II प्रबन्धोऽयं बन्धोरपिलजगता तस्य सरसा
प्रभोरन्त सान्द्रा प्रपदलहरां परलययतु ॥ हसदूत १४२ ॥
- २ स श्रीकृष्णस्तरुणस्तरुणस्तारयेदो भगन्धिम् ॥ उद्धव स १३१ ॥
- ३ राधाबन्धोरुपहृतमिति प्रेममाध्वीकमेतन्
निर्विघ्नेन श्रवणपुटके पुण्ययन्त पियन्तु ॥ उद्धवदूत ८७० ॥
- ४ शार्वे सायक-वेद पोडशमिते श्रीकृष्णशर्मापिपन्
आनन्द-प्रद-मन्द-नन्दन पद द्वन्द्वारविन्द हृदि ।
धफे कृष्ण पदाक-दूत-रचनं विद्वन्मनोरंजनम् ॥४६॥

कवि के भृगदूत में भी एक गोपी भृग के द्वारा कृष्ण के पास अपना विनयसन्देश भेजती है। इस काव्य में गोपी के कृष्ण प्रेम की उत्कटता व्यक्त की गई है। मानवीय प्रेम के स्थान पर इस काव्य में दिव्य प्रेम का चित्रण किया गया है। वैष्णवों के भक्ति-साहित्य में इस काव्य का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है।

महाप्रभु श्री चैतन्य के मानुलवर्य श्री विष्णुदास द्वारा रचित मनोदूत भी एक महत्त्वपूर्ण सन्देश काव्य है। इसमें कवि ने मन के द्वारा श्रीकृष्णजी के पास अपनी कष्ट प्रार्थना पहुँचाई है। सासारिक प्रलोभनों, कष्टों और दुर्गों में फसे हुये मनुष्यों की असहाय्य-स्था का इस काव्य में बड़ा कारुणिक चित्र अंकित किया गया है तथा श्रीकृष्णजी की शरण में जाने के लिये मनुष्यों को प्रेरित किया गया है। इस काव्य में शृंगार रस का नितान्त अभाव है और शान्त रस की ही पवित्र धारा आदि से अन्त तक प्रवाहित हो रही है। भक्तिपरक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है।

यह पर श्री गोपेन्द्र नाथ गोस्वामी द्वारा प्रणीत पादपदूत काव्य का उल्लेख करना अनुचित न होगा। इस काव्य में महाप्रभु श्री चैतन्य की धर्मपत्नी श्री विष्णु प्रिया ने अपने घर में स्थित निम्न वृक्ष को दूत बनाकर श्री महाप्रभु के पास नीलशैल पर भेजा है। यह काव्य भी कृष्णभक्ति से ओतप्रोत है। इसी प्रकार दक्षिण भारत के पूर्णसरस्वती द्वारा रचित हंस सन्देश में एक भक्त स्त्री द्वारा हंस के हाथ श्रीकृष्ण के पास वृन्दावन में अपना सन्देश भेजा गया है। इस काव्य में प्रेम के दिव्यस्वरूप को ही चित्रित किया गया है तथा कृष्ण से भक्ति की ही प्रार्थना की गई है।

भक्तिपरक सन्देश काव्यों के अतिरिक्त कुछ सन्देश काव्य दार्शनिक भी पाए जाते हैं। इस प्रसंग में किसी अज्ञात कवि द्वारा विरचित हंस सन्देश विशेषतया उल्लेखनीय है। इस काव्य में माया के बन्धन में फँसकर तथा कर्मों के मोह में पडकर शिवजी की भक्ति से विरहित किसी पुरुष द्वारा अपने मन रूपी हंस को दूत बनाकर शिवलोक में शिवभक्ति के पास भेजा गया है। वेदान्त, योग और शैवदर्शन के सिद्धान्त ही इस काव्य में प्रतिपादित किए गए हैं तथा इस काव्य का विषय नितान्त दार्शनिक ही है।^१

१ डा० जे० वी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित वीरेश्वर के बाढमगडन गुणदूत काव्य का विषय सर्वथा भिन्न ही है। इस काव्य में कवि ने अपने मृतगुण को दूत बनाकर कालीभक्ति के राजा भीमसेन के पास गजाश्रय पाने के विचार से भेजा है। विषय की दृष्टि से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। काकदूत नामक एक अन्य दूत काव्य में कर्णगार में पडा हुआ ब्राह्मण काक के द्वारा अपनी प्रेयसी कादम्बरी के पास सन्देश भेजता है। नैतिकता की शिक्षा देने के उद्देश्य से समाज पर लिखा हुआ यह एक व्यंग्य काव्य है (दे० एम० कृष्णमाचारीयर का सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३६५)।

सन्देश काव्यों से देश का भौगोलिक तथा सामाजिक परिज्ञान

सन्देश काव्य के शिल्प विधान से यह तो स्पष्ट ही है कि इन काव्यों में मार्ग वर्णन भी रहता है। वात्मीकि रामायण में हनुमानजी तथा अन्य चारों को सीताजी की खोज में किष्किन्धा नगरी से बाहर भेजते समय मार्ग वर्णन किया ही गया है। कालिदास ने अपने सन्देश काव्य में रामगिरि से अलका तक का मार्ग वर्णित कर उत्तरीय भारत का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया है।

प्राचीन उज्जयिनी, विदिशा, दशपुर तथा दशार्ण देश का प्राचीन घेम्भ मेघसन्देश के अतिरिक्त अथ और कहा देखने को मिल सकता है। धामन भद्र वाण के हसदूत में मलय पर्वत माला (प्रावनकोर पर्वतमाला) से अलका तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। इस प्रसंग में ताम्रपर्णी नदी, मदुरा नगर, कावेरी नदी श्रीरगम्, चोलदेश, अरणाचल, काची, कालहस्तिमंदिर, कनकमुखरी नदी, कृष्ण-वेणी नदी, तु गभद्रा, गोदावरी, पचघटी, विन्ध्याचल, सरयू तथा गण्डकी नदी और फ्रॉचपर्वत का बड़ा रमणीय वर्णन किया गया है।

धोयी कवि के पवनदूत में मलय पर्वत माला से राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयनगर (बंगाल) तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मलयपर्वत से पारङ्ग्यदेश, ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर, सेतुबन्ध रामेश्वर, काचीपुर, कावेरी, माल्यवान् पर्वत, पचाप्सर नामक झील, आन्ध्र देश, गोदावरी नदी, कलिंग नगरी, विन्ध्यप्रदेश, नर्मदा नदी, ययाति नगरी, सुह्रदेश, त्रिवेणी तदनन्तर विजयपुर-इस प्रकार मार्ग का क्रम बताया गया है। इस काव्य से दक्षिण भारत से बंगाल तक के आने जाने के तत्कालीन नियमित मार्ग का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

वेदान्तदेशिक के इस सन्देश में मात्यवान् पर्वत से लका तक के मार्ग का अच्छा परिचय मिलता है। माल्यवान् पर्वत से अजनाद्रि (वेंकटाद्रि), कनकमुखरी नदी, तुण्डीर देश, सत्यव्रत क्षेत्र, काचीपुर, वेगा नदी, हस्तिशैल, चोल देश, श्वेतशैल, कावेरी, श्रीरगधाम, पारङ्ग्य देश, धृषभाद्रि, ताम्रपर्णी नदी, मलयाचल, समुद्रतट, समुद्र के मध्य में स्थित सुवेल पर्वत और वहा से फिर लका इस प्रकार मार्ग का निर्देश किया गया है।

लक्ष्मीदास के शुकसन्देश में रामेश्वरम् से गुणकापुर (वृषकणामतिलकम्) तक के भूभाग का बड़ा अच्छा वर्णन मिलता है। सेतुबन्ध रामेश्वर से समुद्रतट होते हुए ताम्रपर्णी नदी, पारङ्ग्य राजाश्री की राजधानी मणलूर नगरी (मानालोर), सहायपर्वत, केरल-देश, स्थानदूर (त्रिवेन्द्रम्), कूपक राजाश्री की नगरी कुलपुरी, कोलम्बदेश (किलान), पहलमग्राम (तिष्ठत्तल), विन्ध्या नगरी (वेम्पनाट), पिम्पली राजाश्री का स्कन्धाधार, सिन्धु द्वीप (कतल तुक्क), कुस्ता नदी

(मुत्वात्तुपुत्र), सुब्रह्मण्यमन्दिर, पशुपतिक्षेत्र, चूर्णानदी (अल्वेय या पेरियार), केरलराजाओं की राजधानी माहोदयपुरी (तिरुचिन्कुलम्) तदनन्तर गुणकापुरी (तन्क्णामतिलकम्) -इस प्रकार रामेश्वरम् से गुणकापुरी तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है ।

लक्ष्मीदास के शुकसन्देश में केरलदेश के दक्षिण भूभाग का वर्णन पाया जाता है । उद्दण्ड शास्त्री के कोकिल सन्देश में केरल देश के उत्तरीय भाग काची नगरी से जयन्तमगल (आधुनिक चेन्नमगल) तक के प्रदेश का बड़ा ही कवित्वमय वर्णन किया गया है । काची नगरी कम्पा नदी क्षीरसिन्धु नदी (पालार)-चोलदेश त्रिवक्षेत्र-कावेरी-होसलदेश-लक्ष्मीनारायणपुर-सहायपरत-केरलदेश-थाडुमयी-नदी पुरली (कोट्टयम्) के राजाओं की राजधानी-शम्भरदेश कोलदेश-कुन्कुटकोड (फालीकट)-प्रकाशदेश (वेट्टुत्तुनाट)-श्वेतारण्य (तृप्रंगोट्ट)-निलानदी-नेन्नारायणीय घ्राह्यणों का देश रणखल देश (पोर्कल)-वृषपुरी (तृशर)-सगमग्राम (इरिंगा लक्कुट)-कुरुम्बवन अजनखलपुरी (तिरु वचिक्कुल)-चूर्णानदी-जयन्त मगल इस प्रकार काची से जयन्तमगल तक का मार्ग निर्दिष्ट किया गया है ।

वासुदेवकवि के भृगसन्देश, विष्णुजात के कोकसन्देश और पूर्ण सरस्वती के हस सन्देश में भी दक्षिण भारत के विभिन्न भूभागों का पर्याप्त वर्णन मिलता है । उदयकवि के मयूर सन्देश में स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से अन्नकर (त्रिचूर के पास कोई ग्राम) तक का भूभाग वर्णित किया गया है । स्यानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से समुद्र तट होते हुए वरकल क्षेत्र (वरकल)-वृषक राजाओं की राजधानी कोलम्ब नगरी (किलान)-यूगुदी प्रदेश (आधुनिक कायकुलम्) में स्थित करिथूर नगर उल्लम क्षेत्र (तिरुवल्ल)-भणिकण्ठ मन्दिर-वचुला नदी कीर्तिमदग्राम सिन्धु द्वीप (कटत्तुकुत्तु)-फुरला नदी-रविपुर-ग्राम (त्रिपुरणीतीर्थ) शिवमन्दिर-वालयक्षोणी देश की राजधानी-अभिनवकुरुम्बमन्दिर-चूर्णानदी माहोदयपुरी अजनाक्षेत्र (तिरुवचिन्कुलम्)-गुणकापुरी-सगमग्राम कुलीपिनीवापी-वृषपुर (त्रिचूर) का शिवमन्दिर श्वेतारवेय (रेंकिट-न्नुग्राम)-ग्रहक्षेत्र (ब्रह्मन्कुलम्) सितगरत्तीर (श्वेतच्छुद्रतटअन्नकर)-इस प्रकार एक विस्तृत भू भाग का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है । दक्षिण भारत के प्राचीन नगरों, नदियों तथा विशिष्ट मन्दिरों का यथास्थान इस काव्य में पर्याप्त वर्णन मिलता है । भूगोल के विद्वानों के लिए दक्षिण भारत में लिखे गए यह सन्देश काव्य बड़ा महत्त्व रखते हैं । मध्य काल की भौगोलिक स्थिति के अध्ययन करने में इनसे बड़ी सहायता मिल सकती है । इसके अतिरिक्त तत्काल प्रदेश के प्राकृतिक उत्पादनों का भी हमें इन सन्देश काव्यों से ज्ञान प्राप्त होता है । भौगोलिक परिज्ञान के साथ साथ दक्षिण भारत के धर्म तथा धर्म के जनजीवन की भी इन सन्देश काव्यों में तत्काल स्थान पर झलक पाई जाती है ।

श्री मेघविजय द्वारा प्रणीत मेघदूत-समस्यालेख में औरंगाबाद से द्वीपपुरी

(दीव बन्दर, गुजरात) तक के मार्ग का घटा ही सूदम परन्तु विशद विवरण प्राप्त होता है। नन्वरगपुरी (औरगावाद) देवगिरि पर्वत तथा नगरी पलौर पर्वत-तु गिला पर्वत तापी नदी भृगुपुर नर्मदानदी महीनदी सिद्धशैलशशुजय नामक जैन तीर्थ-ह्रीपपुरी (दीवबन्दर)-इस प्रकार औरगावाद से दीवबन्दर तक के मार्ग का क्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में पढ़ने वाले अनेक जैन मंदिरों और तीर्थ स्थानों का बड़ी श्रद्धा के साथ काव्य में वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार विनय विजयगण के इन्दुदूत में योधापुर (जोधपुर) से सूरत तक का मार्ग वर्णन किया गया है। योधापुर (जोधपुर)-सुवर्णगिरि श्री महावीर और श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिर-जालन्धर नगर (जालोर)-रोहिणी नगरी (सिरोही)-अर्बुद पर्वत (माउन्ट आबू) अचल पर्वत श्रीकुमारपाल राजा का जैन मंदिर-सरस्वती नदी के तट पर स्थित सिद्धपुर-साभ्रमती नदी (साबरमती नदी)-राजद्रग (अहमदाबाद)-वाटपट्टी नगरी (वडोदा) नर्मदानदी भृगुपुर (भडौंच)-तापी नदी-सूर्यपुर (सूरत)-इस प्रकार जोधापुर से सूरत तक का मार्गक्रम निर्दिष्ट किया गया है। मार्ग में आने वाले विभिन्न जैन तीर्थों तथा मन्दिरों का भी यथास्थान वर्णन किया गया है। इन दो काव्यों के मार्ग वर्णन से यह प्रतीत होता है कि देश के इस भूभाग में जैन धर्म का बड़ा प्रचार था। राजद्रग (अहमदाबाद), भृगुपुर (भडौंच) और सूर्यपुर (सूरत) के वर्णन से इन नगरों की तत्कालीन सम्पन्नता का भी परिचय प्राप्त होता है। जैन मुनि पैदल ही यात्रा करते हैं। उनका भौगोलिक ज्ञान किताबी न होकर अनुभव जन्म होता है। इसलिए जैन सन्देश काव्यों का भौगोलिक दृष्टि से भी कम महत्त्व नहीं है।

वगाली कवियों द्वारा रचित कृष्ण सवर्धी सन्देश काव्यों में यद्यपि भौगोलिक वर्णन अधिक नहीं है, फिर भी इन काव्यों में ब्रजभूमि (गोकुल से मथुरा) का बड़ा रम्य चित्र अंकित किया है। सोरों (उ०प्र०) के निकट रहने वाले शतावधान कवि क भृगदूत में भी ब्रज भूमि का सरस तथा श्रद्धापूर्ण वर्णन पाया जाता है।

इस प्रकार संस्कृत के सन्देश काव्य भारतवर्ष के भौगोलिक अध्ययन में बड़े सहायक हैं। इन काव्यों से देश के विभिन्न भूभागों में आने जाने के प्राचीन मार्गों तथा प्राकृतिक स्थिति का पूर्ण ज्ञान प्राप्त होता है। भारतवर्ष के प्राचीन भूगोल तथा सामाजिक स्थिति का अध्ययन करने वालों के लिए यह काव्य नितान्त उपादेय हैं।

सन्देश काव्यों की भाषा, शैली और छन्द

विप्रलम्भ शृंगार तथा मक्ति भावना को लेकर ही सन्देश काव्य लिखे गए हैं। इन काव्यों में जैसी कोमल और मधुर भावनाएँ पाई जाती हैं, वैसी संस्कृत

यद्यपि इस प्रकार के प्रणयसन्देश का जन साधारण से साक्षात् कोई सम्बन्ध नहीं, फिर भी सहृदय पाठक कवि के विचारों को हृदयगम कर अपने जीवन में उनका सदुपयोग कर ही सकते हैं। स्वयं कालिदास ने ही पक्ष के द्वारा मनुष्यमात्र के लिए जीवन के चिरन्तन सत्य की ओर सकेत किया है। प्रायः दुःख के समय मनुष्य धररा उठता है और हताश हो जाता है। ऐसे ही अवसर पर मेघसन्देश का यह पक्तिया—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा
नाचगच्छन्त्युपरि च वशा चक्रन्तेमिक्रमेण ॥

दुःख सागर में निमग्न प्रत्येक मनुष्य के लिए बड़ा साहस देने वाली हैं।

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि विरह में हर एक बड़ी निराशा । अनुभव करने लगता है और उसे प्रेम का दीप बुझता हुआ सा प्रतीत होने लगता है। ऐसे ही अवसर पर प्रेमदीप में स्नेहधारा बढानेवाली यह पक्तिया—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्यसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभयन्ति ॥

कितनी उपायेय हैं। मेघसन्देश के अतिरिक्त विरहपरक अन्य सन्देश-काव्यों में भी जीवन सम्बन्धी कुछ विशिष्ट अनुभूतियां देखने में आती हैं। कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में तत्तत् स्थानों पर बड़े गम्भीर विचार पाठकों के सम्मुख रखे हैं। विरह प्रधान काव्यों से हम यह भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं कि भोगपरायण जीवन की अपेक्षा निवृत्तिपरायण जीवन कहीं अधिक श्रेष्ठ है। विरह के बाद मिलन का माधुर्य कुछ और ही होता है। किसी कवि ने उचित ही कहा है—

सुख हि दुःखान्यनुभूय शोभते धनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।

इसके अतिरिक्त जैन कवियों ने अपने सन्देश काव्यों में निश्चित रूप से पाठकों के लिये कुछ विशिष्ट सन्देश दिया है। शृगार-परक सन्देश काव्यों का शान्तरस में पर्यवसान कर तथा श्री नेमिनाथ और श्री स्यूलभद्र जैसे महापुरुषों को अपने काव्य का नायक बनाकर इन कवियों ने पाठकों के समक्ष शान्त रस का आदर्श उपस्थित किया है। यह शान्त रस ही है जो मनुष्य को मानवधर्म की स्मृति कराता है तृष्णाओं का क्षय करता है और मानसहृदय में 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की भावना उत्पन्न करता है। ससार में विश्व प्रेम की भावना ऐसे ही साहित्य से फैलती है। जैन मनीषियों के सन्देश काव्यों में इस प्रकार त्याग प्रधान जीवन का सन्देश छिपा हुआ है।



राम तथा कृष्ण के कथानकों को लेकर लिखे गए अन्य सन्देशकाव्य भी कुछ कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। स्वयं आचार्य वेदान्तदेशिक ने अपने काव्य को 'सदेशरत्न तथा 'श्रेयसा प्राप्तिहेतुम्' बतलाया है'। कारण स्पष्ट ही है क्योंकि उन्होंने अपने काव्य में श्री रामचन्द्रजी और श्री सीताजी के मिलन की कथा का दर्शन किया है। रामचन्द्रजी तथा सीताजी के भक्त पाठकों के लिए उनकी कथा का कर्तन ही बढ़िया कारण है।

अन्यायपचानन का अमरदूत भी रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने इस काव्य को श्री रामचन्द्रजी के गुण कीर्तन के उद्देश्य से ही लिखा है। यह काव्य भी पाठकों को राम भक्ति की प्रेरणा देता है। इसी प्रकार श्रीकृष्णन्याय पचानन का वा. दूत भी राम कथा के कीर्तन द्वारा मोक्ष प्राप्ति का सन्देश बताता है।

भागवत की कथा के आधार पर जो सन्देश काव्य लिखे गए हैं, उनमें भी पाठकों के लिए एक विशिष्ट सन्देश छिपा हुआ है। गोपियों का विरह साधारण विरह नहीं है। दूसरे शब्दों में वह भक्त और भगवान् के विरह का प्रतीक है। कवियों ने कृष्ण कथा को सन्देश काव्यों के रूप में उपस्थित कर न केवल सन्देश-काव्य का विषय क्षेत्र ही विस्तृत किया है, प्रत्युत उन काव्यों के द्वारा जनता को कृष्ण भक्ति का अमर सन्देश भी दिया है। शतायुधान कवि के अमरदूत में गोपिका के यह शब्द—

दूर तावन्स नव महिमा यत्र वेदान्तवाची
मन्दायन्ते प्रथिनपसा योगभाजा धियश्च ।
पतायन्मे कुतुम्भतसीमूनभासि त्वद्ग
कुर्या नित्य विषयविरता वाङ्मन कायवृत्ती ॥११०॥

मन हृदय की प्रतिध्वनि ही है।

इसी प्रकार त्रिष्णुदास के मनोदूत में भी कृष्ण भक्ति का पवित्र सन्देश पाया जाता है। भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति कवि के यह ध्येय—

ईहामहे नहि महेन्द्रपद् मुकुन्द
स्वीकुर्महे चण्णदेन्यमुपागतम् वा ।
आशा पुनस्तत्र पदा-अहृताधिवामाम्
आशास्महे चिरमिय न कृशा यथा न्यान् ॥८॥

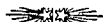
१ चिन्ता शाण्डिलियतमसकृच्छ्रेयसा प्राप्तिहेतुम् ।
सीतागमयति करसख हससन्देशरत्नम्
पश्यन्पल्लवधरणमनघचलुरजीय मन्त ॥ ७ ॥ १० ॥

देव त्वदीयचरणा जमधुव्रतेषु
 त्यत्कीर्तिनामगुणगानदृढव्रतेषु ।
 त्यन्न्यस्तजीवितधनेहितमानसेषु
 प्रेमार्थवृत्तिषु कदानुचरीकरोमि ॥८६॥

किसी भी भावुक हृदय को भक्ति से परिप्लावित कर सकते हैं। इस प्रकार सस्कृत के सदेश काव्यों में जन-साधारण के लिए भगवद्भक्ति तथा निवृत्तिपरायण जीवन का सदेश छिपा हुआ है। राम और कृष्ण के चरित्र के आधार पर सन्देशकाव्यों को लिखकर कवियों ने भारतीय सस्कृति को पाठकों के समक्ष रखने का बड़ा ही स्तुत्य प्रयास किया है। इस प्रकार सदेशकाव्य न केवल साहित्यिक प्रस्युत सास्कृतिक दृष्टि से भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। भक्ति के क्षेत्र में भी इन काव्यों ने जनता के लिए मार्ग प्रदर्शन किया है। मानसता के लिए जो पवित्र और कल्याण-कर सदेश इन काव्यों से उपलब्ध होता है, उसकी उपादेयता को कोई भी सहृदय और निष्ण पाठक अस्वीकृत नहीं कर सकता।



❁ द्वितीय अध्याय ❁



प्रथम भाग—मूल-सन्देश-काव्य

[१] घटकर्पण कवि का सन्देश काव्य ।

[२] कालिदास का मेघ सन्देश ।

घटकर्पर कवि का सन्देश काव्य [वि० स० प्र० शतक]

इस कवि के वास्तविक नाम का कुछ भी पता नहीं है और न इसके जीवन के विषय में ही कुछ ज्ञात है। इसके विरचित सन्देश-काव्य का भी कोई विशेष नाम नहीं मिलता है। अपने काव्य के अन्त में इसने प्रतिज्ञा की है—

भावानुरक्त अनिता सुरतै शपेयमालभ्यचाम्पु तृपित करकोशपेयम्,
जीयेय येन कविना यमकै परेण तस्मै वहेयमुदक घटकपर्परेण । ०२।

अर्थात् जो कोई कवि यमक में मुझे परास्त कर देगा, उसके लिये मैं फुटे घड़े से पानी भरूँगा। समझ है कि इस पद्य में आये हुए घटकर्पर शब्द से ही कवि का घटकर्पर नाम पढ़ गया हो और उससे काव्य को भी घटकर्पर काव्य कहा जाने लगा हो। विक्रमादित्य के नवरत्नों में भी घटकर्पर का नाम आता है—

धन्वन्तरिज्ञपणकामरसिंहशकुवेंतालभट्टघटकर्पर कालिदासा ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपते सभायां रत्नानि वै वररचिर्नव विक्रमस्य ॥

भारतीय जन श्रुति के अनुसार ईसा के पूर्व विक्रम नामक राजा की स्थिति काल्पनिक नहीं है। हाल की गाथा-सप्तशती में भी दानशील राजा विक्रम का उल्लेख मिलता है—

सवाहणसुहरसतोसिपण वेन्तेण तुह करे लक्खम्,
चलणेन विषक्माइत्त चरिअ अनुसिपिखअ तिरसा ५६४
सवाहनसुखरसतोपितेन ददता तव करे लात्ताम्,
चरणेन विक्कमादित्यचरितमनुशित्तित तस्या ॥

हाल का समय स्मिथ की राय में सन् ६८ ई० के आस पास है। जब सन् ६८ ई० के ग्रन्थ में विक्रम का नाम पाया जाता है, तब सौ वर्ष पहिले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की शका नहीं होनी चाहिये। इसके 'शकारि' होने में भी कोई आपत्ति नहीं दीयती, क्योंकि ईसा से १५० वर्ष पूर्व आने वाले शकों का हाल इतिहास में भी पाया ही जाता है। समझत यही उनका सहारक हो, अतः ईसा से पूर्व विक्रम की सत्ता ऐतिहासिक प्रमाणित होती है। यह विक्रम पौराणिक गाथाओं का कल्पित नायक नहीं है, प्रत्युत इतिहास का सच्चा प्रभावशाली विजेता है। अतः विक्रम की सभा के रत्न घटकर्पर कवि को विक्रम तथा कालिदास के समकालीन मानना ही उचित है। इस प्रकार घटकर्पर को ईसा पूर्व प्रथम शतक अथवा विक्रम प्रथम शतक में ही मानना चाहिए।

१ इस विषय पर विशेष श्रालोचना के लिये श्री दलदेवप्रसाद उपाध्याय द्वारा रचित 'संस्कृत-कवि चर्चा' का कालिदास सम्बन्धी लेख देखिए।

मद्रास के टी एस नारायण शान्त्री ने रत्नावली नाटिका की अपनी भूमिका में एक नवीन विचार प्रतिपादित किया है। उनका कथन है कि घटकर्पर उपनामक धारक कवि का ही वाद में भास नाम हो गया था और यह भास ई० पू० छठी शताब्दी के प्रारम्भ में शासन करने वाले उज्जैन के श्री हर्ष विष्णुदित्य का समकालीन था। इस तरह घटकर्पर कवि और भास नाटककार इन दोनों को वे एक ही व्यक्ति मानते हैं। उनके इस विचार के मूलाधार राजशेखर के कविविमर्श तथा हेमचन्द्र के काव्यानुशासन में पाये गये कुछ उद्धरण हैं। इन उद्धरणों के आधार पर ही वे कहते हैं कि धारक जन्म से धोरी था, उसने कई नाटक लिखे थे तथा उन्हीं में से कोई नाटक राजा हर्ष के हाथ बेच दिया होगा। मम्मट के काव्य प्रकाश में इसी वृत्तान्त का उल्लेख किया गया है। राजशेखर ने अपने कवि विमर्श में लिखा है

भासो रामिलसोमिलौ वरञ्चिश् श्रीसाहसाक' कवि
 मँठो भारविनालिदासतरलास्कन्धस्सुप्रधुश्चय ।
 दडी बाणदिवारु गणपति कान्तश्च रत्नाकर
 सिद्धा यम्य सरस्वती भगवती के तस्य सर्वे वयम् ॥
 कारण तु कवित्वस्य न सम्पन्नकुलीनता ।
 धारकोऽपिहि यद्भास कवीनामग्रिमोऽभयत् ॥
 आद्री भासेन रचिता नाटिका प्रियदर्शिका ।
 निरीर्यस्य रसज्ञस्य कस्य न प्रियदर्शना ॥
 तस्य रत्नावली नून रत्नमालेन राजते ।
 दशरूपककामिन्या वक्षस्यत्यन्तशोभना ॥
 नागानन्द समालोच्य यस्य श्रीहर्षविक्रम ।
 अमन्दानन्दभरितस्सभ्यमकरोत्कविम् ॥
 उदात्तराधवनूनमुदात्त रस गुम्भितम् ।
 यद्वीक्ष्य भयभूत्याद्या प्राणिन्युर्नाटकानि वै ।
 शोक पर्यवसानास्य तथाका किरणरली ।
 माकन्दस्येव कस्यात्र प्रददाति न निर्वृतिम् ॥
 भासनाटकचक्रेऽपि छेकै क्षिप्ते परीक्षितुम् ।
 स्वप्नरासउदत्तस्य दाहकोऽभून्न पात्रक ॥

दंडिन के 'कवि हृदय' पर टीकास्वरूप अपने 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने भी लिखा है—

सम्प्रति परा काष्ठामारूढेनापि भासेन स्वकीयदशा न विस्मृता, यतोऽनेन पूर्व-
 'चरित घटकर्परैणोदकवहनमेव प्रतिज्ञातम्, प्रतिज्ञा चेन्नामसहमाना परे कवय'
 परिहसितुमनसो विक्रमार्कसभ्यमेव भास तज्जातिस्मारकघटकर्परनाम्ना व्यवजह ।
 क्रमेण च स एव व्यपदेशो भास महाकवेस्सुप्रसिद्धस्सम्पन्न ।

किन्हीं २ ग्रन्थों में घट्टरुपर कवि का यह श्लोक—

एको हि दोषो गुण सन्निपाते निमज्जतीन्द्रो त्रिररोपिप्राक
नून न दृष्ट करिनाऽपितन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी ॥
नीतिसार-१७

भास का ही लिया हुआ माना गया है ।

श्री टी एस नारायण शास्त्री, वकील, हार्डमोर्ट, मद्रास संस्कृत के पुरन्धर विद्वान् थे । उन्होंने अपनी "Age of Shankar" नामक पुस्तक में अपने पक्ष के समर्थन में निम्न युक्तिया प्रस्तुत की है—

१—श्री हर्ष के नाटकों से मिलती जुलती रचनाओं के तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है—(क) रत्नामली तथा मालविकाग्निमित्र की कथा वस्तु में पर्याप्त समानता है और यदि मालविकाग्निमित्र को पहिले लिया हुआ माना जाय तो यह वान कठिन से ही समझ में आती है कि अन्य दो नाटक क्य लिये गये । (ख) श्री हर्ष ने अपने नाटकों की कथा वस्तु कालिदास से नहीं ली है, रतिक इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तियों व सम्बन्ध में प्रचलित कुछ परम्पराओं और स्थानों का जो कि बाद में गुणादय का गृहकथा में समाविष्ट कर दिये गये, उपयोग किया है । उसके नाटकों का एक निश्चित पौराण्य भी है तथा कुछ लोकप्रिय ऐतिहासिक व्यक्तियों को लेकर ही यह लिखे गये हैं । (ग) कालिदास ने केवल अपने मालविकाग्निमित्र नाटक में ही अपने पूर्ववर्ती कवियों का उल्लेख किया है । पूर्ववर्ती कवियों तथा मेघदूत में उदयन की कथाओं का उल्लेख तभी कुछ सार्थक हो सकता है जबकि इसका यह आशय लिया जाए कि कवि ने उन्हीं ग्रथकारों का उल्लेख किया है जिनका कि यह किसी प्रकार अनुकरण कर रहा है ।

२—बड़े बड़े लेखकों ने भी भास को महाकवि, महान् नाटककार तथा रत्नामली, त्रिघदर्शिका और नागानन्द तथा अन्य नाटकों का रचयिता माना है ।

३—श्री हर्ष से उज्जैन का श्री हर्ष त्रिकमादित्य ही समझा जाना चाहिए न कि कन्नौज का हर्षवर्धन । श्री हर्ष से कन्नौज का हर्षवर्धन समझने के कारण ही विद्वानों द्वारा यह मूल हुई है कि वे इन नाटकों को हर्षवर्धन की समा के बाण या किसी अन्य कवि के द्वारा लिखा हुआ मानते हैं ।

४—उज्जैन का यह श्री हर्ष ई० पू० छठी शताब्दी में ही रहा होगा, जैसा कि प्राचान ग्रंथों में उसके सम्बन्ध में आए हुए अनेक उल्लेखों से प्रमाणित होता है ।

लेकिन टी एस नारायण शास्त्री के इस मत से हम सहमत नहीं हैं। रोद् का विषय तो यह है कि राजशंखर का कविनिर्माश्रय कहीं मिलता ही नहीं है और कायानुशासन में जैसा कि आज्ञाल मुद्रित है, उक्त अवतरण पाया ही नहीं जाता है। ससृष्ट साहित्य में कहीं भी भास के हर्ष का राजकवि होने का उल्लेख नहा मिलता है। जब तक कोई और प्रमाण उपलब्ध न हो तब तक कोई निर्णय नहा किया जा सकता। मम्मट के काव्य प्रकाश में कहीं कहीं 'श्री हर्षदिवाणादीनामिध धनम्' यह भी पाठ भेद पाया जाता है। अतः धानक और हर्ष का सम्यन्ध भी पूर्णतया निश्चित नहीं है। यदि घटकर्पर उपनामक धानक कवि कालिदास का समकालीन अथवा किंचित् पूर्व कालीन होता और उसे ही भास कहा जाता, तो कालिदास के समय तक उसका 'प्रथितयशसा भाससोमिलकविपुत्रादीनाम्' के मध्य में गिना जाना अधिक सगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए 'प्रथितयशस्' होने में पर्याप्त समय चाहिये। इसके अतिरिक्त कालिदास ने अपने लिए 'वर्तमानस्य' विशेषण का प्रयोग किया है। इससे निश्चित होता है कि भास कालिदास से बहुत प्राचीन है तथा कालिदास के समकालीन घटकर्पर कवि से उसका कुछ भी सम्यन्ध नहीं है।

इस काव्य के अतिरिक्त नीतिसार नामक एक अन्य लघु काव्य भी घटकर्पर कवि का लिखा हुआ माना जाता है। यह एक शिक्षात्मक काव्य है। इसमें केवल २१ ही श्लोक हैं तथा शंकर और सिंह का सन्वाद दिया गया है। कालिदास ने कुमार समथ के प्रथम सर्ग में हिमालय का वर्णन करते हुए लिखा है—

अनन्तरत्नप्रभस्य यस्य हिम न सौभाग्यविलोपि जातम् ।

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दो किरणेष्विनाक ॥ १ ३

कालिदास के इस विचार का खडन करते हुए ही घटकर्पर कवि ने अपने नीतिसार में यह लिखा है—

एको हि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोरिति यो वभापे ।

नून न दृष्ट कविनाऽपि तेन क्षरिद्रथदोषो गुणराशिनाशी ॥ १७

इस श्लोक के आधार पर कालिदास और घटकर्पर के परस्परप्रतिस्पर्धी होने का तो निश्चय होता है लेकिन उनके पौर्वापर्य के सम्यन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता।

काव्य का विषय

यह काव्य वर्षा ऋतु के वर्णन से प्रारम्भ होता है। इसमें कोई विशेष कथानक नहीं है। कवि ने वर्षा ऋतु के वर्णन के बाद एक प्रोपितभर्तृ का स्त्री का वर्णन किया है। मेघ सन्देश में पति अपनी पत्नी के पास सन्देश भेजता है, लेकिन इस का

में पत्नी मेघ के द्वारा अपने प्रिय के पास सन्देश भेजती है। पत्नी के सन्देश में कवि ने उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का चित्रण किया है। हसों की पक्ति को मानसरोवर की ओर उड़ता हुआ तथा पिपासु चातक को जल की पुकार करता हुआ देखकर विरहिणी का भी हृदय अत्यन्त व्याकुल हो उठता है। और वह भी अपने प्रिय के लिये तड़प उठती है—

हसपक्तिरपि नाथ सम्प्रति प्रस्थिता प्रियति मानस प्रति ।
चातकोऽपि तृपितोऽम्बु याचते दुःखिता मनसि सा प्रिया चते ॥

विरहावस्था में मेघों का गरजना तथा मयूरों का कलरव सुनकर प्रोषितभर्तृ का वा हृदय अस्सन्न हुआ जाता है, फिर भी प्रिय के गुणों का स्मरण कर वह किसी तरह अपने जीवन की रक्षा करती रहती है। कवि ने विरहिणी की चिन्ता और स्मृति का निम्नपद्यों में कैसा सश्लिष्ट वर्णन किया है—

मेघशब्दमुद्रिता कलापिन प्रोषिताहृदयशोकलापिन ।
तोयदागमकृशा च साऽद्यते दुर्धरेण मदननेन साद्यते ॥

किं कृपाऽपि तत्रनास्ति कान्तया पादुगडपतितालकान्तया ।
शोकसागरजले निपातिता त्रद्वगुणस्मरणमेव पाति ताम् ॥१२॥

विरहिणी नायिका की प्रियदर्शन की अभिलाषा वर्षा ऋतु के द्वारा मार्ग के अन्तर्द हो जाने पर और भी उत्कट हो जाती है। वह कहती है—

मागेषु मेघसलिलेन विनाशितेषु कामो धनु स्पृशति तेन विना शितेषु ।
गम्भीरमेघरसित व्यथिता वदाऽह जह्या सचि प्रियप्रियोगजशोकदाहम् ॥१४॥

प्रकृति की सौम्य रचनाएँ भी विरहावस्था में विरहिणी को दुःख ही पहुँचाती हैं। कदम्ब और कुटज के कुसुमों को देखकर नायिका का हृदय और भी व्यथित हो जाता है और वह इन वृक्षों से प्रार्थना करते हुए कहती है —

नरकदम्ब शिरोऽवनताऽस्मिते
वसति ते मदन कुसुमस्मिते ।

कुटज किं कुसुमैरुपहस्यते
प्रणिपतामि च दुष्पसहस्य ते ॥१७॥

तरुवर विनताऽस्मि ते सदाऽहम्
हृदयं मे प्रकरोषि किं सदाहम् ।

तव कुसुमनिरीक्षणोऽपदेऽह
विद्युजेयं सहसैव नीप देहम् ॥१८॥

इस प्रकार इस काव्य में विरह का बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया गया है। भावों के उपयुक्त भाषा तथा छन्दों का प्रयोग कर कवि ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया है। २२ छन्दों के इस लघु काव्य में वियोगिनी, इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के समिश्रणों से बना हुआ उपजाति, वसन्त-तिलका, मालभारिणी, रथोद्धता, पुरिपिताम्रा, इन्द्रवज्रा और द्रुतविलम्बित छन्दों के प्रयोग से भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार व्यक्त होता है। छन्दों के साथ २ यमक अलंकार की भी कवि ने अपने काव्य में अपूर्व छटा दिखलाई है। प्रत्येक पद्य में यमक अलंकार का प्रयोग किया गया है तथा सर्वत्र यह अलंकार ऐसी सरलता के साथ प्रयुक्त किया गया है कि इसके कारण कविता में कहीं भी दुरुहता अथवा कृत्रिमता नहीं आने पाई है। यद्यपि उपर्युक्त कतिपय उद्धरणों में भी यमकालंकार का प्रयोग हुआ है, फिर भी विशेष रूप से यमकालंकार का सौन्दर्य पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए कुछ अन्य उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। वर्षा ऋतु का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

निचिंत खमुपेत्य नीरदं प्रियहीना हृदयायनी रदं ।
सलिलैर्निहित रज क्षिती रविचन्द्रानपि नोपलक्षितौ ॥१॥

हसा नदन्मेघभयादुद्रवन्ति निशामुपान्यथ न चन्द्रवन्ति ।
नवाम्बुमत्ता शिपिनो नदन्ति मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥२॥

मेघावृत निशि न भाति नभो वितार
निद्राऽभ्युपैति च हरि सुखसेवितारम् ।
सेन्द्रायुधश्च जलदोऽथ रसन्निभानाम्
सरम्भमानदति भूधर-सन्निभानाम् ॥३॥

कवि का वर्षा वर्णन पाठकों के समक्ष वर्षा ऋतु का एक चित्र सा उपास्थित कर देता है। यमक अलंकार के साथ २ प्रकृतिवर्णन में भावसौष्ठव भी भरपूर हुआ है। यमक अलंकार के प्रयोग में अपने को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना कवि की केवल गर्वोक्ति ही नहीं है, बल्कि एक कठोर सत्य है। इस लघुकाव्य पर अनेक टीकाएँ लिखी गई हैं। इसी से इसकी लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है।

संस्कृत के सन्देश काव्यों में इस काव्य का प्रथम स्थान है। यह काव्य मेघ सन्देश से पहिले का ही लिखा हुआ है। इन दोनों काव्यों की कथा वस्तु एक सी ही है। केवल इतना ही अन्तर है कि घटकर्पूर के काव्यमें पत्नी पति के पास मेघ को दूत बना कर भेजती है जब कि मेघसन्देश में पति अपनी पत्नी के पास मेघ को दूत बनाकर भेजता है। दोनों काव्यों में वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में ही दूत भेजा गया है। घटकर्पूर काव्य में वियोग का समय बहुत थोड़ा है—बैशाख, ज्येष्ठ और आषाढ़ केवल तीन

महीने का ही प्रियोग पाया जाता है। इसके विपरीत मेघसन्देश में पूरे वर्ष भर का वियोग बताया गया है।

दोनों काव्यों में एक प्रमुख भेद यह भी है कि मेघसन्देश में मार्ग-वर्णन के प्रसंग में विभिन्न पर्वतों, नदियों और नगरों इत्यादि का बड़ा सुन्दर वर्णन पाया जाता है, लेकिन घटकर्पर काव्य में इस तरह के मार्ग वर्णन का नितान्त अभाव है।

पंडित प्राणनाथ भरस्वनी का विचार है कि सभ्यत इस काव्य से ही मेघ को दूत बनाकर प्रिय के सन्देश को प्रेयसी के पास पहुंचाने का विचार कालिदास के ध्यान में आया हो। घटकर्पर है भी कालिदास का समकालीन। इसलिये ऐसा होना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। इसके विपरीत घटकर्पर के काव्य को मेघसन्देश के वाद का नहीं कह सकते। यदि घटकर्पर मेघसन्देश को देखकर कोई काव्य लिखता, तो उसकी लेखनी ने भी हमें अग्रश्य ही एक सर्वांगसम्पन्न सन्देश काव्य प्राप्त हुआ होता। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि घटकर्पर कवि का यह लघुकाव्य सर्वप्रथम सन्देशकाव्य है और सभ्य है कि कालिदास ने भी इस काव्य से कुछ प्रेरणा प्राप्त की हो।

यद्यपि नाम अथवा स्वरूप से यह काव्य सन्देशकाव्य जैसा नहीं प्रतीत होता है, लेकिन वस्तुतः यह सन्देशकाव्य ही है। केवल मेघसन्देश जैसे शिल्प विधान की ही इस में न्यूनता है। अतः सन्देश काव्यों के अनुशीलन में इसे भी सम्मिलित किया गया है। सन्देशकाव्य एक प्रकार का गीतिकाव्य है और २२ श्लोकों के इस लघुकाव्य में विभिन्न मधुर छन्दों का प्रयोग कर कवि ने इस काव्य को एक सफल गीतिकाव्य बना दिया है। इसके अतिरिक्त महाकाव्यों तथा मेघसन्देश काव्य के मध्य में भागपक्ष तथा कलापक्ष दोनों की ही दृष्टियों से यह काव्य एक अन्तर्गम्य शब्दा का कार्य करता है। इस प्रकार सद्गुण सन्देश काव्यों के विकास के इतिहास में इस घटकर्पर काव्य के महत्त्व को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।

यद्यपि कालिदास के मेघसन्देश से घटकर्पर काव्य का प्रभाव कुछ कम ही हो गया है, फिर भी इस काव्य ने उत्तरकालीन सम्भूत कवियों को बड़ा प्रभावित किया है। इस काव्य के माधुर्य पर मुग्ध होकर दक्षिण भारत में कृष्ण के पुत्र किसी मदन-कवि ने वि. स. १६८० (स. १६०३ ई०) में कृष्णलीला काव्य नामक ८४ श्लोकों का एक लघु काव्य लिखा। इस काव्य में घटकर्पर काव्य के श्लोकों के प्रत्येक चरण को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। इस काव्य के चार श्लोकों में घटकर्पर-काव्य का एक श्लोक पूरा हो जाता है। यथा-

१ दे० इरिडया आफिस लाइप्रेरी, वेदालाग आफ सस्कृत मैनेजिकेट्स (इंगलिस द्राग) जिल्द ७, सं० १४६१। आशिक रूप से कलकत्ता से डा० जे० धी० चौधरी द्वारा प्रकाशित।

हृत्मा नन्वे प्रभयाद् द्रवन्ति नेदुस्तदा तत्र च मन्द्रवन्ति ।
वायानि नन्दोऽपि ददौ वुप्रेभ्यः प्रीतो धन मार्गणमागधेभ्यः ॥ ५ ॥

दधीनि गोप्यो ऋहसारवन्ति निशामुखान्वय न चन्द्रवन्ति ।
क्षिपन्तु काश्चिच्च तदाचचक्षु सिक्ता पुनश्चापिदधु स्पचक्षु ॥ ६ ॥

अजेऽवतीर्णं विजभाजधीर धरा च पूत पवनोऽतिधीरम् ।
नवाभ्युमत्ता शिखिनो नदन्ति प्रभा नभोऽपिस्म घना नदन्ति ॥ ७ ॥

इतीन्द्ररामन्द्रमागतोपा न पूतनामाह विभौ सतोपा ।
न कोऽपि कोणे तु किमायदन्ति (० नदन्ति ?) मेघागमे कुन्दसमानदन्ति ॥८॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यह सन्देशकाव्य एक लोकप्रिय-काव्य रहा है साहित्यप्रेमियों ने इस पर अनेक टीकायें लिखी हैं तथा अपनी रचनाओं में इसका अनुकरण भी किया है ।^१



१ यह काव्य विदेशों में भी प्रकाशित हो चुका है । जी० एम० दर्श के जर्मन अनुवाद सहित बर्लिन से १८२८ ई० में, शेजी के फ्रेंच अनुवाद सहित जर्नल एशियाटिक पेरिस, १८२३, भाग २, पृ० ३६ में प्रकाशित, जर्मन अनुवाद सहित होफर द्वारा Indische Geschichte vol II पृ० १०६ इत्यादि में प्रकाशित तथा वोहलन द्वारा Das Alte Indien, Königsberg, १८३०, ३८० इत्यादि पृष्ठों में प्रकाशित । ईंगलिंग का इण्डिया आफिस कैटालाग, भाग ७, पृ० १४२७ भी देखिए ।

कालिदास का मेघसन्देश (वि० सं० प्रथम शतक)

कविकुलगुरु कालिदास के नाम से कौन भारतीय परिचित न होगा । न केवल भारतवर्ष में, बल्कि ससार में सर्वत्र ही कालिदास का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है । इनकी रचनाओं का अनुवाद भी प्रायः ससार की प्रत्येक सभ्य भाषा में हो चुका है । इतना होने पर भी इस विश्वकवि के काल, जन्मस्थान तथा जीवन वृत्त इत्यादि के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है । ईसा के पूर्व की ८ वीं शताब्दी से लेकर ईसा के बाद की ११ वीं शताब्दी तक के विभिन्न समयों में विभिन्न विद्वानों द्वारा इस कवि का समय निर्धारित किया गया है । इसी तरह इस कवि के जन्मस्थान के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मतभेद है ।

महाकवि ने अपने सम्बन्ध में कहीं भी कुछ नहीं लिखा है । लेकिन उनके सम्बन्ध में भारत और लका में कई किम्बदंतियाँ पाई जाती हैं । भारतवर्ष में यह किम्बदन्ती प्रसिद्ध है कि कालिदास लटकपन में बड़े मूर्ख थे । पढ़ना लिखना तनिक भी न जानते थे । विद्यावती नामक एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में हारकर कुछ पदियों ने कालिदास के साथ बड़ी युक्ति से उसका विवाह करा दिया । परन्तु विद्यावती को जब परिद्वतों की धूर्तता का पता लगा, तब वह बहुत दुःखित हुई और उसने उस मूर्ख को घर से निकाल दिया । कालिदास ने भगवती की बड़ी आराधना की और उन्हीं की कृपा से यह एक प्रतिभाशाली कवि बन गए थे । सब घर लौटे, तब किराह बन्द पाया । उसके खुलवाने के अभिप्राय से कवि ने

(१) श्री हरप्रसाद शास्त्री का (Kalidasa, His home, Indian Antiquary XLVII, 264) कथन है कि मालवा में दशपुर कालिदास की जन्मभूमि थी । श्री ए सी चटर्जी के अनुसार (Kalidasa His Poetry and Mind, P 148) बज्जैन इसकी जन्मभूमि है । डॉ० भाउ दाजी (Literary Ramains, Calcutta) काश्मीर को कालिदास की जन्मभूमि मानते हैं । श्री मनुमदार के अनुसार (Home of Kalidasa, Indian Antiquary XLVII 264) विदम्ब कालिदास की जन्मभूमि है । दण्डिन् की अश्वन्तिसुन्दरीकथा का निम्नलिखित श्लोक भी उनके विचार का समर्थन करता है—

लिप्ता मधुद्रपेणसन्वस्य निर्विन्शा गिर ।
 सेनेर्द यत्नं वैदम कालिदासेन शोधितम् ॥

कुछ लोग काली की उपासना वाली दन्तकथा तथा इसके नाम के आधार पर इसे पगली मानते हैं और नदिया में इसकी जन्मभूमि बताते हैं । कुछ मंधिक विद्वान् इसे मिथिलाजिनियासी भी मानते हैं ।

सस्कृत में 'अनावृतफपाट द्वार देहि' कहा। त्रिभुषी पत्नी ने तुरन्त उत्तर दिया—'अस्ति कश्चित् धामिशेष'। कवि ने अपनी पत्नी के उत्तरभूत वाक्य के शब्दों से आरम्भ कर तीन काव्य बना डाले। 'अस्ति' शब्द से कुमारसभ्य, 'कश्चित्' से मेघदूत और 'वाग्' से रघुवश बनाया।

लकायसियों में भी कालिदास के त्रिषय में एक किम्वदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है। कहते हैं कि कालिदास ने सिंगल द्वीप के राजा कुमारदास के जानकीहरण महाकाव्य की रघु प्रशंसा की थी। इसे सुन कुमारदास ने कालिदास को सिंगल में बुलाया। कालिदास वहाँ गए और राजा के बड़े प्रेमपात्र बन गए। कालिदास, सुनते हैं, एक वैश्या के यहाँ आया जाया करते थे, जिसने कि अपने दरवाजे पर एक यह श्लोकार्थ लिख रखा था—

कमले कमलोत्पत्ति श्रूयते न तु दृश्यते।

कवि ने इसकी पूर्ति इस प्रकार कर दी —

वाले, तव मुपाम्भोजे कथमिन्दीरद्वयम् ॥

कहा जाना है कि इसी सुन्दरी के कारण कालिदास मार डाले गए। कुमारदास इस घटना से अत्यन्त विचलित हुए और उन्होंने कवि की चिता पर आत्म-हत्या कर ली। अभी तक सिंगल द्वीप के दक्षिणी भाग में कालिदास की समाधि विद्यमान है। यह दन्त कथा भारत में प्रसिद्ध नहीं है परन्तु सिंगल के अनेक प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है।^१

जैसा कि प्रायः देखा जाता है कि जब लोग सत्य को भूल जाते हैं, तब अनेक दन्तकथायें प्रचलित हो जाती हैं। यह दन्तकथायें कभी कभी सच्ची भी होती हैं और कभी कभी नितांत निराधार भी। कालिदास के सम्बन्ध में भी इस प्रकार अनेक दन्तकथायें पाई जाती हैं।^२ बल्लाल के भोज प्रबन्ध में भी कवि के सम्बन्ध में अनेक कथायें घण्टित की गई हैं।

कवि का समय

पहले कहा ही गया है कि कालिदास के समय के सम्बन्ध में इतिहास के विद्वानों में बड़ा मत भेद है। इन विभिन्न मतों को ही अब हम पाठकों के समक्ष रखने का प्रयास करेंगे तथा उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कवि के जीवनकाल का निर्णय करने की चेष्टा करेंगे।

१ दे० मन्दर्गीकर का कुमारदास, पृ० ४।

२ दे० त्रिपर्सन, Traditions about Kalidasa Journal of the Asiatic Society of Bengal, X LVII, April

ई० ११ वीं शताब्दी का विचार

किसी समय विद्वानों में यह भी विचार प्रचलित था कि ईसा की ११ वीं शताब्दी में ही कबी कालिदास रहा होगा। इस विचार धारा के समर्थकों का कहना था कि कवि की रचनाओं में मुसलमान का पर्यायवाची यज्ञ शब्द कई स्थान पर आता है और मुसलमान भारतवर्ष में ईसा की ७ वीं शताब्दी में सर्वप्रथम आये। अतः कवि को ११ वीं शताब्दी में मानना अनुचित नहीं है।^१

उपर्युक्त तर्क के आधार पर ११ वीं शताब्दी को ही प्रधानता दी जाये, इसका कोई प्रबल कारण हमें नहीं दिखलाई पड़ता है। दूसरे यज्ञ शब्द का अर्थ भी कुछ निश्चित नहीं है। यह शब्द Ionian (और इसीलिए परम्परा यूनानी) से सम्बन्ध रखता है। यह तो ऐतिहासिक सत्य है ही कि सातवीं शताब्दी से उक्त पहले सिकन्दर के समय में यूनानी लोग भारतवर्ष में आये थे। ११ वीं शताब्दी की विचारधारा के पक्ष में एक दूसरा तर्क यह भी है कि कालिदास धारानगरी के राजा भोज का सभा कवि था और यह राजा धारानगरी में ११ वीं शताब्दी में ही शासन करता हुआ माना जाता है। अतः कालिदास को ११ वीं शताब्दी का मानना अनुचित नहीं है। लेकिन राजा भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में भामह के काव्यालंकार से कई उद्धरण दिये हैं तथा भामह ने अपने ग्रन्थ में कालिदास की रचनाओं से भी पद्य उद्धृत किये हैं। भामह का समय ईसवी पाचवीं शताब्दी के आसपास माना जाता है। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि कालिदास भामह से पूर्व अर्थात् ई० पञ्चम शतक से पूर्व ही रहा होगा।^२

इसके अतिरिक्त श्री वे० वी० पाठक और श्री जी० वी० वैद्य ने त्रिज्योत्शीय नाटक के ई० नवम शतक में किये गए एक कनाडी अनुवाद का भी उल्लेख किया है। इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि यह नाटक नवम शतक से पूर्व भी रहा होगा।

१ इस विचारधारा के अध्ययन के लिये श्री कृष्णराम महादेव जोगलेकर का रघुवंशमहाकाव्य (भूमिका पृ० २३) देखिये।

२ यदि राजा भोज को सभा में भी किसी कालिदास की स्थिति मानी जाय, तो भी अनुचित नहीं है। लेकिन यह कालिदास रघुवंश, कुमारसम्भ, शकुन्तला, मालविकाग्निमित्र, त्रिज्योत्शीयम् और मेघदूत के रचयिता से भिन्न ही रहेगा। ये कालिदास हुए भी कई हैं। भोज ग्रन्थ के आधार पर वेन्टले ने (Asiatic Researches, VIII 243) भी कालिदास को ११ वीं शताब्दी का माना है। लेकिन भोज ग्रन्थ ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इसके अतिरिक्त भोज के समय में भी किसी अन्य कालिदास की सत्ता से हमें आपत्ति भी नहीं है।

इस प्रकार कालिदास के ई० ११ वीं शताब्दी में होने का विचार नितान्त निराधार है।

ईसवी छठी शताब्दी का विचार

श्री आर सी दत्त ई० ५०० और ५५६ के बीच में कालिदास का समय निर्धारित करते हैं^१। डा० भाउदाजी मातृगुप्त को ही कालिदास मानते हैं और ई० षष्ठ शतक के मध्य में काश्मीर के राजा हर्ष विक्रमादित्य के शासनकाल में ही कालिदास का समय निर्धारित करते हैं^२। उनकी विचारधारा के आधार सक्षेप में ये हैं—^३

(१) मातृगुप्त के काश्मीर के राजा होने की बात राजा विक्रम द्वारा कालिदास को अपना आधा राज्य दे देने की जनश्रुति से बिलकुल मेल खाती है।

(२) मातृगुप्त और कालिदास इन नामों के भिन्न होने के आधार पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जा सकती, क्योंकि नाम भी प्रायः उपाधियाँ होती हैं और मातृगुप्त को कालीगुप्त या कालिदास माना जा सकता है।

(३) राजतरंगिणी के लेखक ने अन्य रुदियों का, यहाँ तक कि भगभूति का भी, उल्लेख किया है, लेकिन कालिदास का नाम भी नहीं लिया है।

(४) कालिदास काश्मीर अथवा उसके निकट के ही किसी प्रदेश का निवासी था, क्योंकि वहाँ ही के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन उसने मुख्यतया प्रस्तुत किये हैं।

(५) अपनी पत्नी और घर से वियुक्त हो जाने के कारण उत्पन्न अपनी भावनाओं का ही कालिदास ने मेघदूत में सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। पत्नी और गृह से वियुक्त होना मातृगुप्त के सम्यन्ध में भी सत्य माना जाता है।

(६) मातृगुप्त के सम्यन्ध में लिखा गया राजतरंगिणी का २५० वा पद्य ठीक वही भाव रखता है जो कि मेघदूत के ११३ वें पद्य में प्रायः उन्हीं शब्दों में पाया जाता है।

१ दे० आर सी दत्त का Civilization in Ancient India भाग १, पृष्ठ ३५।

२ Literary Remains, 18 जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई, जिन्द ७, पृष्ठ १६, २०७ (भाउदाजी कालिदास को सेतु कान्य का लेखक मानते हैं)।

३ दे० आष्टे का Date of Kalidasa (Central Press Bombay) पृ० = 1

(७) विक्रम की मृत्यु के बाद जय प्रवरसेन काश्मीर की गद्दी पर बैठा, तब मातृगुप्त काशी चला गया। इसी समय प्रवरसेन की प्रार्थना से प्राकृत भाषा में उसने सेतु काव्य लिखा। जनश्रुति इस काव्य को कालिदास का ही लिखा हुआ मानती है। प्रतापेन्द्र, दण्डिन् और रामशर्मा भी इस काव्य को कालिदास का ही लिखा हुआ मानते हैं। जनश्रुति से यह भी ज्ञात होता है कि प्रवरसेन ने त्रितस्ता नदी पर नारों का एक पुल बनवाया था। सेतुकाव्य के सम्बन्ध में ह्युएन्त्सांग के समकालीन बाण कवि ने भी हर्ष-चरित में इस प्रकार लिखा है—

कीर्ति प्रवरसेनस्य प्रयाता कुमुदोज्ज्वला ।
सागरस्य पर पार कपिसेनेव सेतुना ॥

(८) इस प्रकार मातृगुप्त और कालिदास का तादात्म्य निश्चित हो जाने पर कालिदास को प्रवरसेन और विक्रम के साथ ई० ६ठी शताब्दी में ही मानना चाहिये। भाउदाजी का यह भी कहना है कि ह्युएन्त्सांग प्रवरसेन का अतिथि था।

लेकिन भाउदाजी का मत सर्वथा सगत नहीं है। मैक्समूलर ने इस मत को असगत ही बताया है। उसका कहना है कि चीनी यात्री प्रवरसेन का नहीं, घटिक दालादित्य का अतिथि था। इसके अतिरिक्त राघवभट्ट ने शकुन्तला पर अपनी टीका में मातृगुप्त और कालिदास दोनों को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं तथा मातृगुप्त द्वारा रचित एक ग्रन्थ का भी भरत के नाट्यशास्त्र पर टीका के रूप में उल्लेख किया है। ज्येमेन्द्र ने अपनी औचित्य विचार-वर्चा में भी कालिदास और मातृगुप्त को भिन्न व्यक्ति ही मानकर उनके उद्धरण दिये हैं। पीटरसन ने भी अपने Introduction to सुभाषितारलि, पृ ८६ में मातृगुप्त को मातृगुप्ताचार्य (अलकारशास्त्र का लेखक) माना है। भाउदाजी की विचारधारा का थी एस पी पंडित (रघुवश की भूमिका ६८-७७), श्री नन्दर्गाकर (रघुवश की भूमिका ६८-७६) तथा मैक्समूलर ने भी (इण्डिया, १३३, ३१४) प्रबल युक्तियों के साथ स्पष्ट कर दिया है।

भाउदाजी के अतिरिक्त मैक्समूलर, फर्ग्युसन, कर्न तथा भाण्डारकार इत्यादि विद्वान् भी अन्य तर्कों के आधार पर कालिदास को ई० ६ठी शताब्दी में ही रखने का प्रयत्न करते हैं। सर्वप्रथम फर्ग्युसन मदाशय ने यह सिद्धान्त चलाया कि विक्रम संवत् का प्रथम वर्ष विक्रमादित्य उज्जैन का हर्ष विक्रमादित्य ही था और इसी ने ई० ५०४ में कारूर में श्लेच्छों को परास्त कर अपनी विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया तथा इस संवत् को प्राचीनता का रूप देने के लिये ६०० वर्ष पीछे कर दिया। इस प्रकार कालिदास का समय ई० ५४४ ही ठहरता है।

मैक्समूलर ने फर्गुसन के इस सिद्धान्त को ही लेकर अपनी Renaissance Theory खलाई है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य तर्क भी उसने प्रस्तुत किये हैं। मैग्दूत, के एक पद्य पर टीका करते हुए मरिलनाथ ने दिङ्नाग और निचुल को कालिदास का समकालीन बताया है। मैक्समूलर इस प्रसंग का उल्लेख करते हुए तथा दिङ्नाग को -वसुवन्धु का शिष्य मानकर कालिदास को ई० छठी शताब्दी का ही मानते हैं। लेकिन यह पद्य कालिदास का ही लिखा हुआ है इस बात का भी कोई प्रमाण नहीं है। यह पद्य लेपक भी हो सकता है। इसके अतिरिक्त डा० मैकडानल का कहना है-दिङ्नाग को वसुवन्धु का शिष्य बताने वाली बौद्ध जनश्रुति भी कुछ प्रामाणिक नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि १६ वीं शताब्दी तक तो इस जनश्रुति का कहीं पता ही नहीं लगता है। वसुवन्धु का ई० छठी शताब्दी में होना भी चीनी प्रमाणों के विरुद्ध है, क्योंकि चीन के प्रमाणों से यह प्रतीत होता है कि वसुवन्धु के ग्रन्थों का चीनी भाषा में ई० ४०४ में अनुवाद हुआ था। अतः मैक्समूलर का यह तर्क उचित नहीं है।

इसके अतिरिक्त फर्गुसन की विचारधारा भी सत्य नहीं है। मि० फ्लीट की शिलालेख सम्बन्धी खोजों ने फर्गुसन के सिद्धान्त को नितान्त निराधार साबित कर दिया है। उनकी खोजों से यह निष्कर्ष निकलता है। ई० पूर्व ५७ का दिवस

१. India, What can it teach us ? 281, 284

२. उपर्युक्त प्रसंग में श्राया हुआ पद्य इस प्रकार है-

अद्रे श्रुग हरति पवन किस्विदित्युन्मुखीभि
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धागनाभिः।

॥

द्वीपादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोददमुखं खं
दिङ्नागानां पद्य परिहरन् स्पुलहस्तावलेपान् । मेघ ॥१॥१०॥

इस पद्य की टीका में मरिलनाथ लिखता है-अत्रेदमप्यर्थान्तरं ध्वनयति रसिको निचुलो नाम महाश्वि कालिदासस्य सहाध्यायी परापादिताना कालिदास प्रथमदृष्टणानां परिहर्ता यस्मिन् स्थाने तस्मात् स्थानात् उददमुखो निर्दोषत्वा दुन्नतमुखं पद्य दिङ्नागानाम् दिङ्नागाचार्यस्य कालिदासप्रतिपक्षस्य हस्तावलेपान् हस्तविन्धीस पूर्वकारिण दृष्टणानि परिहरन्-इत्यादि ।

इस प्रसंग में श्राप्टे महाशय (Date of Kalidasa) का कहना है कि मरिल नाथ की टीका 'किस्वी जनश्रुति के आधार पर ही है और यह जनश्रुति कालिदास को ई० पू० ५६ में राजा विक्रमादित्य की सभा का राजकवि बताने वाली जनश्रुति से बढ़कर नहीं हो सकती ।

संवत् ई० १४४ में स्थापित होने के राज्या मालव संवत् के नाम से ईसा के पूर्व एक शताब्दी अधिक से प्रचलित था। ई० ८०० के लगभग यह संवत् विक्रम संवत् व नाम से चलने लगा। शक (सीरियन) लोग भी छठी शताब्दी में पश्चिमी भारत से नहीं निकाले गये थे। गुप्त राजाओं ने पाचवीं शताब्दी में ही उन्हें पश्चिमी भारत से निकाल दिया था। छठी शताब्दी में जिन प्रदेशियों को भारत से निकाला गया था वे शक नहीं, हुए थे और उन्हें किसी विक्रमादित्य ने नहीं बरिच विष्णुवर्धन ने परास्त किया था।

इसके अनिम्न ११० हार्नेली इमी यशोधर्मन् को काश्मीर का हर्ष विक्रमादित्य समझते हैं। उनका कहना है कि काश्मीर को जीतकर तथा हर्षों को भारतवर्ष से निकालकर इसने मालव संवत् का नाम विक्रम संवत् रख दिया। यह मत भी भ्रान्तिपूर्ण है, क्योंकि हर्षों के पराजय करने पर भी यशोधर्मन् को शकाराति नहीं कहा जा सकता और न उसने शिलालेखों से किसी नवीन संवत् के स्थापन का घटना का पता लगता है। अतः डा० हार्नेली का मत भी मान्य नहीं है।

पाचवीं अथवा चौथी शताब्दी का मत

श्री के० वी० पाठक कालिदास को ई० पाचवीं शताब्दी का मानते हैं। उनका मत है कि कालिदास स्कन्ध गुप्त विक्रमादित्य का समकालीन था। पाठक ने धरलभदेय के निम्नलिखित श्लोक के पाठ को प्रामाणिक मानकर अपना मत निश्चित किया है —

विनीताघ्नमास्तस्य सिन्धुतीरविचेष्टनं
दुधुदुराजिन स्कन्धात्लङ्गकु कुमनेसगन् ॥ रघुवंश ४॥६७॥

तत्र हृणारोधाना भर्तृषु व्यक्तविक्रमम् ।
कपोलपाटलादशि चभून् रघुचेष्टितम् ॥४॥६८॥

यहां सिन्धु शब्द व स्थान पर धरलभदेय ने 'वन्' पाठ माना है। वन् शब्द पाठक की सम्मति में oxus (आक्सस) का संस्कृतीकरण है। अतः इस पाठ को प्रामाणिक मानने से यह कहना पड़ता है कि रघु ने हर्षों को आक्सस नदी (जो पामीर से निकल कर अरब सागर में गिरती है) के किनारे उनके भारत आगमन के पहिले

१ दे० Indian Antiquary, 1912, 256 और जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी (१९०३) ४४६ (१९०४) ६३६ तथा (१९०६) १००।

२ दे० के० वी० पाठक द्वारा संपादित मेघदूत की भूमिका तथा इण्डियन एन्टिक्वेरी XXI, 265

ही हराया था। यह घटना ई० ४५५ से पूर्व की हो सकती है, क्योंकि तभी स्कन्दगुप्त के प्रवल प्रताप के सामने हार मान भग्न मनोरथ होकर हूणों को लौटना पडा था। स्कन्दगुप्त द्वारा हूणों के पराजित करने का उल्लेख गुप्तसमत् १३६ (या ई० ४५५ ४६६) के जूनागढ़ के शिलालेख में भी मिलता है। इस प्रकार रघुवश को कालिदास की प्रथम रचना मानकर पाठक ने उन्हें स्कन्दगुप्त का समकालीन माना है। इसके अतिरिक्त कालिदास को लका के राजा कुमारदास (ई० ५१५ ५२०) का समकालीन मानकर पाठक उन्हें षष्ठ शतक के पूर्वार्ध अथवा ई० ५३० के लगभग मानते हैं।^१ मेघदूत में आए हुए दिट्नाग के उल्लेख को भी आधार मानकर पाठक ने कालिदास को ई० पाचवां शताब्दी में ही रखने का आग्रह किया है।

श्री विजयचन्द्र मुजुमदार ने कुछ अन्य प्रमाण देकर कालिदास को सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेंद्रादित्य (ई० ४९४ ४५५) तथा सम्राट स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) दोनों के समय में माना है।^२ उनका कहना है कि रघुवश के प्रथम सर्ग के पाचवें श्लोक में^३ महाराजाधिराज की उपाधि धारण करने वाले समुद्रगुप्त की ओर कुछ संकेत पाया जाता है। रघुवश के प्रथम सर्ग का बारहवां श्लोक सम्राट समुद्रगुप्त के पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (ई० ३७० ४१४) की ओर संकेत करता है। रघुवश के तृतीय सर्ग के २२ वें और ५५ वें श्लोक सम्राट कुमारगुप्त प्रथम महेंद्रादित्य (ई० ४१४-४५५) से सम्बन्ध रखते हैं^४। इसी प्रकार रघुवश के चतुर्थ सर्ग का ६३ वां श्लोक कुमारगुप्त प्रथम की महेंद्रादित्य उपाधि का संकेत करता है।^५ रघुवश के सप्तम सर्ग के प्रथम श्लोक में 'स्कन्द' शब्द स्कन्दगुप्त (ई० ४५५ ४६७) की ओर संकेत करता है।^६ रघुवश के १६ वें और १९ वें सर्गों में हरे।

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी। वम्बई XIX, ३५।

२ जर्नल एशियाटिक सोसायटी वम्बई, १९०९, पृ० ७३१

३ आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथयर्त्तनाम् ॥१॥५॥

४ तदन्ये शुद्धिमति प्रसूत शुद्धिमत्तर।

दिलीप इति राजेन्दुरिन्दु क्षीरनिधायिव ॥१॥१२॥

५ पितु प्रयत्नात्स समग्रसपद शुभै शरीरावयवैर्दिने दिने।

पुपोप वृद्धि हरिदश्वर्दीधिंरनुप्रवेशादिन बालचन्द्रमा ॥३॥ ॥२२॥

हरे, कुमारोऽपि कुमारविक्रम सुरद्विपास्फालनकर्कशागुली।

भुजे शचीपत्रविशेषकाङ्क्षिते स्वनामचिह्न निचखान सायकम् ॥३॥ ॥५५॥

६ गृहीतप्रतिमुक्तस्य स धर्मविजयी नृप।

धिय महेंद्रनाथस्य जहार न तु मेदिनीम् ॥४॥ ॥५५॥

७ अधोपयन्त्रा सदृशेन युक्ता स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्।

स्वसारमादाय विदर्भनाथ पुंरप्रवेशभिमुद्यो यमूव ॥७॥ ॥१॥

द्वारा स्कन्दगुप्त के हार जाने के बाद गुप्त साम्राज्य की दयनीय दशा का सबेरा मिलता है। मेघदूत १४५ श्लोक में भी देवगिरि पर शत्रुओं का दमन करने के लिए रहने वाले स्कन्द पर पुष्पवर्षा करने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसमें भी स्कन्दगुप्त की ओर ही सबेरा मिलता है। डॉ० क्रीध भी मजुमदार के विचार ही का समर्थन करते हैं।^१ उनका भी कथन है कि रघुश के चतुर्थ सर्ग के २६ वें श्लोक में गुप्त राजाओं का उल्लेख है तथा चतुर्थ सर्ग के ही ४२,५० और ६८ वें श्लोक में चन्द्रगुप्त द्वितीय का उल्लेख पाया जाता है।^२

आधुनिक पश्चात्य विद्वान् भी कालिदास को किसी न किसी गुप्त सम्राट् के शासन काल में ही मानते हैं। प्राचीन भारत में गुप्त काल (ई० ३००-६५० के लगभग) सस्कृत विद्या तथा भारतीय कलाओं के पुनरुत्थान के लिए प्रसिद्ध है। डॉ० वी० ए० स्मिथ का विश्वास है कि गुप्त राजाओं में प्रथम दो अथवा तृतीय राजा के शासन काल में ही कालिदास रचा होगा—

सम्राट् चन्द्रगुप्त	II	ई० ३५७-४१३
सम्राट् कुमारगुप्त	I	ई० ४१३-४५५
सम्राट् स्कन्दगुप्त		ई० ४५५-४८०

चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा स्कन्दगुप्त इन दोनों में ही विक्रमादित्य की उपाधि प्रहण की थी। मि० स्मिथ का कथन है—यह बात असंभव नहीं है कि कालिदास की पहली रचनाएँ ई० ४१३ से पहले चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में लिखी गईं हैं और बाद के ग्रन्थ कुमारगुप्त प्रथम (ई० ४१३-४५५) के शासनकाल में लिखे गए हों। हो सकता है कि कालिदास का सारा साहित्यिक जीवन कुमारगुप्त के शासन काल में ही रहा हो। यह बात भी असंभव नहीं है कि स्कन्दगुप्त के राजा होने के बाद भी कालिदास लिखता रहा हो। मि० स्मिथ का विचार है कि तीस साल से अधिक समय तक कालिदास का साहित्यिक जीवन रहा होगा।^३

शकों के द्वारा भारतवर्ष पर किया गया प्रथम आक्रमण स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य के द्वारा रोका गया था। लेकिन मन्दसौर के ई० ४७३ के घत्सभट्टि के शिलालेख में कालिदास के काव्य का अनुकरण देखकर स्मिथ और मैकडानल आदि विद्वानों ने कालिदास को घत्सभट्टि के शिलालेख के समय से प्राचीन अनुमान कर इसको

१ जर्नेल रायल एशियाटिक सोसायटी, १९०६, ४३३-६

२ स गुप्तमूलप्रयन्त शुद्धपाण्डुरयाम्बित ।
पद्मिर्ध पलमादाप प्रतस्थे दिग्जगीभया ॥४॥ ॥२६॥

३ वे० Early History of India पृ० ३०४ एवं ३११४

चन्द्रगुप्त द्वितीय (ई० ४००) का ही समकालिक माना है। ऐसा मानने से रघुवश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु का दिग्विजय समुद्रगुप्त के दिग्विजय से, कुमार सम्भव की रचना चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त के जन्म से, विक्रमादित्य की उपाधि के उद्भव में विक्रमोद्देशीय नाटक की रचना, भरिलनाथ के अनुसार कालिदास और बौद्ध नैयायिक दिङ्नाग का समकालीनत्व, कालिदास के ग्रन्थों से अनुमित उस काल की शान्ति आदि प्रायः सभी बातें संगत हो जाती हैं। इसके सिवाय इन्दुमती स्वयं-धर में उपस्थित मगधराज के लिए जो उपमा या विशेषण प्रयुक्त किए गए हैं उनसे भी चन्द्रगुप्त नाम की ध्वनि निकलती है। अन्य प्रमाणों के आधार पर भी बहुत से विद्वानों ने गुप्त राजाओं के काल में ही कालिदास का अस्तित्व माना है।^१

परन्तु इस मत के अनुसार यह भी आपत्ति उठती है कि कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक के लिए ५०० वर्ष पुराने शुंग वंश के अप्रसिद्ध राजा अग्निमित्र को ही नायक क्यों चुना। अश्वघोष और कालिदास के काव्यों में विशेष अनुकरण होने से यदि मान भी लिया जाए कि कालिदास ने ही अश्वघोष का अनुकरण किया तो उसने भाससौमिल्लकविपुत्रादि के साथ अश्वघोष का भी नामोल्लेख क्यों नहीं किया। रघुवश के पाण्ड्य सम्राट् का कालिदास द्वारा ऐसा विस्तृत वर्णन क्यों किया गया है जब कि उस समय पाण्ड्य वंशीय राजाओं की अत्यन्त अवस्था थी और पहलव वंशीय राजाओं का साम्राज्य था। इसके अतिरिक्त कालिदास का गुप्तकाल में माना जाना गुप्त राजाओं के विक्रमादित्य उपाधि धारण करने पर ही आश्रित है। लेकिन गुप्त राजाओं से पूर्व भी मालवा में विक्रम सवत् के प्रवर्तक राजा विक्रमादित्य का पता इतिहास से चलता है। महेंद्रादित्य के पुत्र विक्रमादित्य ने ही ई० पू० ५६ में यह विक्रम सवत् चलाया था। यह बात अथ निर्बिवाद सिद्ध हो चुकी है।

ईसवी पूर्व प्रथम शताब्दी का विचार

सर विलियम जोन्स ने निम्नलिखित श्लोक—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंह शकु धैतालभट्ट घटकर्पर कालिदासा ।
रयातो वराहमिहिरो वृषते सभाया रत्नानि धै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

को आधार मानकर ई० पू० ५६ में विक्रम सवत् के संस्थापक राजा विक्रमादित्य ही की सभा का राजकवि कालिदास को माना है। हाल की गाथा सप्तशती

१ 'ज्योतिष्मती चन्द्रमसैव राशि', 'इन्दु नवोत्थानमिवेन्दुमत्यै' में चन्द्रमा तथा इन्दु शब्द चन्द्रगुप्त के द्योतक यतलाए हैं।

२ मैकडानल का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३२५।

में भी दानशील राजा विक्रम का उल्लेख पाया जाता है।' हाल का समय स्मिथ की राय में सन् ६८ ई० के आसपास है। जय ६८ ई० के ग्रन्थ में विक्रम का नाम पाया जाता है तब सौ वर्ष पहले उसकी स्थिति मानने में किसी प्रकार की विप्रपत्ति नहीं हो सकती। विक्रमादित्य ने श्लेच्छों का नाश किया—

श्लेच्छोच्छेदाय वसुधा हरेरदतरिप्यत ।
शकान्विनाशय येनात्री कार्यभारो निवेशित ॥

इसके अतिरिक्त मन्द्रसौर के शिलालेख के रचयिता वत्सभट्टि ने प्रतुसहार के १,२,१०-११ तथा मेणदूत के ६५ श्लोक का अपने शिलालेख में अनुकरण किया है। इससे यह निश्चित ही है कि कालिदास ई० ८७३ से पूर्व ही रहा होगा। बुद्धचरित्र तथा सौन्दरनन्द के लेखक अश्वघोष के काव्यों में कालिदास के काव्यों से समानान्तर भाव वाले शब्दों से पद्य दृष्टिगोचर होते हैं। कालिदास ने प्रायः वात्सीय तथा अन्य प्राचीन लेखकों से ही प्रेरणा प्राप्त की है और उसके विचार नितान्त मौलिक हैं। अश्वघोष में कवि की अपेक्षा दार्शनिक का अंश अधिक है। अतः इस बात की अधिक सम्भावना हो सकती है कि अश्वघोष ने ही कालिदास के विचारों का अपनी रचनाओं में उपयोग किया हो। अश्वघोष कनिष्क का समकालीन था। अतः ई० ७८ ही उसका रचनाकाल समझा जाना चाहिये। इस तरह कालिदास भी ई० ७८ पूर्व ही माना जायगा। डॉ० पीटर्सन भी इसी मत के समर्थक हैं। उनका कथन है—Kaldasa stands near the beginning of the Christian era, if indeed, he does not overtop it

कालिदास के मालविर्नाग्निमित्र नाटक का नायक अग्निमित्र शुगरशीय पुष्यमित्र का पुत्र है। पतञ्जलि (ई० पू० १८८) ने पुष्यमित्र का अपने महाभाष्य में उल्लेख किया है। सी एम डफ ने (Chronology of India, Westminster) में पुष्यमित्र को ई० पू० १७८ का माना है। अतः उसके पुत्र को नाटक का नायक बनाने से यही सिद्ध होता है कि कालिदास ई० पू० प्रथम शतक में ही हुआ होगा क्योंकि उस समय अग्निमित्र की कथा अश्वशय प्रसिद्ध रही होगी। ई० चतुर्थ या पंचम शतक में होने वाला कालिदास अपने समय के प्रसिद्ध राजाओं को छोरकर

- १ सयाहन सुह-रस तोसिपण देन्तेण तुह करे लक्खम् ।
चलणेन विक्कमाइत्त चरित्र अणु सिक्खितं तिस्सा ॥५॥ ॥६४॥
सयाहन सुह रस तोपित्तन ददत्ता तय करे लात्ताम् ।
चरणेन विक्कमादित्य चरित मनुशित्तितं तस्या ॥ गाथा का संस्कृतानुवाद ॥

२ Buhler—Die Indischen Inschriften, P 18.

ई० पू० द्वितीय शतक के राजा को अपने नाटक के नायक के रूप में कभी नहीं चुन सकता। इसलिए कालिदास को प्रिक्रम सप्तक के आरम्भ में (ई० पू० प्रथम शतक) ही मानना आवश्यक हो जाता है।

प्रो० आष्टे^१ का मत है कि अश्वघोष का पुद्गल चरित कालिदास के रघुवंश के अनुस्मरण पर ही लिखा हुआ है।^२ इसके अतिरिक्त आन्तरिक साक्ष्य से भी कालिदास के ई० पूर्व में ही होने का निष्कर्ष निकलता है। शकुन्तला नाटक में चोरी के अपराध का दण्ड और उत्तराधिकार का नियम हमें प्रमाणस्वरूप प्राप्त होते हैं। प्रिना उत्तराधिकारी के मरने वाले धनमित्र गणिक की मृत्यु की सूचना देने वाला नाटक के छठे अंक का अनुस्मरण प्रो० आष्टे के अनुसार उस समय का निर्देश करता है जब कि मृत पुरुष को विधवा स्त्री को अपने पति की संपत्ति में कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त होता था। ऐसा समय ईसवी सदी से पहले ही पाया जाता है जब कि मनु, आपस्तम्ब और वसिष्ठ की ही स्मृतियाँ चलती थीं तथा बृहस्पति, शूब्र, लिपित और याज्ञवल्क्य की स्मृतियाँ नहीं चल पाई थीं। छठे अंक के प्रवेशक में रत्न की चोरी के अपराध में सूचित किया गया मृत्युदण्ड बड़ा कठोर सा प्रतीत होता है। प्रिक्रमोपदेशीय में भी (आत्मनो बधमाहर्ता-४१) ऐसे ही अभिप्राय का प्रसंग और दर्शने में आता है। सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ समय समय पर चोरी का दण्ड घटता रहा है। मनु और आपस्तम्ब बड़े कठोर दण्ड का विधान करते हैं। दण्ड के बदल में जुमनि का प्रिक्रम तो बाद में बृहस्पति की स्मृति में ही पाया जाता है। उपर्युक्त दो प्रमाणों से यही प्रतीत होता है कि कालिदास बृहस्पति से, जो प्राय ई० प्रथम शतक में ही माना जाता है, पूर्व के समय में रहा होगा।

इसके अतिरिक्त प्रो० आष्टे ने इस तथ्य की ओर भी ध्यान दिलाया है कि कालिदास के ग्रन्थों में न्यायदर्शन का बिलकुल संकेत नहीं मिलता है। (रघुवंश के त्रयोदश सर्ग के प्रथम श्लोक में (अद्यात्मन शब्दगुण गुणैश्च पद विमानेन प्रिगाहमान) आकाश के लिये शब्दगुण शब्द अवश्य आता है, लेकिन यह शब्द साध्य दर्शन से भी लिया हुआ हो सकता है)। इसमें भी वे यह निष्कर्ष निकालते हैं कि न्यायदर्शन के विकास से पहले कालिदास रहा होगा।

उपर्युक्त प्रमाणों के अतिरिक्त कविता की शैली भी विचार करने योग्य है। दण्डी, वाण, भवभूति तथा अन्य मध्ययुगीन लेखकों की रचनाओं में लम्बे समास, श्लेष अलंकार तथा अलङ्कृत शैली पाई जाती है। कालिदास की रचनाओं में ये सभी रीति ही अपनाई गई हैं और लम्बे समास इत्यादि नहीं हैं। इससे भी यह प्रतीत होता है कि कालिदास दण्डी इत्यादि से दया ७ शताब्दी पूर्व ही रहा होगा,

क्योंकि तत्कालीन प्रचार साधनों को देखते हुए साहित्यिक शैली में ऐसे महत्वपूर्ण परिवर्तन के लिए इतना समय तो चाहिए ही। अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि कालिदास कम से कम ई० पू० प्रथम शतक में ही रहा होगा।

कालिदास के काल के सम्बन्ध में उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस सम्बन्ध में मुख्य विचार दो ही हैं। प्रथम विचार कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में मानना है। इस विचार को हम भारतीय विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि प्रो० ए. टी. कीच के शब्दों में भारतवर्ष के बाहर इस विचार के समर्थक कम ही हैं^१। दूसरा विचार कालिदास को ई० पंचम या चतुर्थ शतक में मानना है। इस विचार को हम यूरोपियन विचार भी कह सकते हैं, क्योंकि कुछ भारतीय विद्वानों के अतिरिक्त प्रायः इस विचार के पोषक यूरोपियन विद्वान् ही हैं। यद्यपि समय के दृष्टिकोण से इन दोनों विचारों में बड़ा भेद है, लेकिन कालिदास को उज्जयिनी के किसी राजा विक्रमादित्य के (अनुमानतः प्रथम) शासन काल में मानने में दोनों मत एक हैं। चूंकि ऐतिहासिकों ने गुप्तवश के चन्द्रगुप्त द्वितीय को विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाला प्रथम सम्राट् भूल से अथ तक मान रखा है, अतः कालिदास को भी वे उसी के आश्रय में मानते हैं। लेकिन चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही प्रथम विक्रमादित्य मानना प्रामाणिक नहीं है। प्रो० के० एम० शेम्मानेकर ने इस मत का समूल परख कर दिया है^२।

कविता की शैली इत्यादि के बाह्य प्रमाणों से कालिदास का बाण, रत्नकीर्ति तथा मन्दसौर शिलालेख के लेखक घत्सभाट्टि से कई शताब्दी पूर्व होना ही निश्चित होता है। कवि की निश्चित तिथि का कोई निर्णय नहीं किया जा सकता। लेकिन कवि की धार्मिक प्रवृत्तियाँ तथा उसके ग्रन्थों की भाषा सम्बन्धी विशेषताओं से ई० पू० प्रथम शतक का स्पष्ट संकेत मिलता है। गुप्तवश के सब राजा वैष्णव थे

१ प्रो० एल. रे ने १९०६-१० में पाए गए एक Bhatta Medallion की ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। इस चित्र में आश्रमवासियों को राजा (दुष्यन्त और उनके सारथि से हिरण न मारने की प्रार्थना करता हुआ बताया गया है। यह दृश्य शकुन्तला नाटक के प्रथम दृश्य से मिलकुल मिलता जुलता है। इस चित्र को गुप्त काल (ई० पू० १२५ से ई० पू० ७२) का माना जाता है। प्रो० रे का कथन है कि कालिदास उस समय से पूर्व ही रहा होगा। अतः इनके मतानुसार ई० पूर्व द्वितीय शतक कालिदास का समय स्थिर होता है।

० दे० कीच का संस्कृत ज्ञाना, पृ० १४३

३ दे० Journal of Indian History, vol X, Part ० में A Puzzle in Indian Epigraphy नामक लेख।

लेकिन कालिदास निश्चित रूप से शैव था। क्या सरित्सागर में विक्रम सबत् का स्थापन विक्रमादित्य तथा उसका पिता महेंद्रादित्य दोनों ही शिव के परम भक्त बताए गए हैं। सारे मालवा प्रान्त में शैवधर्म का ही अधिक प्रचार दीखता भी है। अतः यही बात अधिक तर्कसंगत प्रतीत होती है कि गिण्टु धर्मावलम्बी गुप्त-राजाओं के शासनकाल में जबकि शैव धर्म का ह्रास हो रहा था, कालिदास को न मानकर शैव धर्मावलम्बी उन राजाओं के शासन काल में जबकि मालवा में शैवधर्म अपने उत्कर्ष पर था, माना जाय।

इसके अतिरिक्त भाषा के प्राचीन प्रयोग भी कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक का ही सिद्ध करते हैं। कुछ प्रयोगों से यह स्पष्ट है कि कालिदास ऐसे समय में रहा होगा जब पाणिनीय व्याकरण का पूर्ण प्रचार न हुआ होगा। 'त पातथा प्रथममास पपात पश्चात्' (रघु० ६ ६१) और 'प्रभ्र शया यो नहुप चकार' (रघु० १३ ३६) इत्यादि प्रयोगों को मरिलनाथ ने अपाणिनीय बतलाया है, लेकिन इनसे पाणिनीय व्याकरण के अतिरिक्त किसी और व्याकरण के भी व्यवहार में रहने का प्रमाण मिलता है। इसके अलावा कुछ वैदिक तथा उत्तर वैदिक रूप भी जैसे बभ्रू^१ के लिए आस, कामयमान के लिए कामयान,^२ दत्तयान् के लिए दाश्वान्,^३ त्रियम्बक के लिए त्रियम्बक^४ गुप्तयुग से कई शताब्दी के पूर्व के समझे जाने चाहिए। अतः कालिदास को जिना किसी कठिनाई के ई० पू० प्रथम शतक में रखा जा सकता है। यह समय ही ऐसा रहा होगा जब कात्यायन के वार्तिक तथा पतञ्जलि के महाभाष्य से सपन्न पाणिनीय व्याकरण व्यवहार में आता तो होगा, लेकिन इसका पूर्ण प्रभाव स्थिर न हो पाया होगा तथा भाषा में वैदिक या उत्तरवैदिक प्रयोग तब भी कुछ चलते रहे होंगे और पाणिनीय व्याकरण की प्रधानता के साथ साथ दूसरे व्याकरण भी प्रयोग में आते होंगे।

उपर्युक्त धार्मिक तथा भाषा सम्बन्धी प्रमाणों के अतिरिक्त मेघदूत में वत्सराज उद्यन का उल्लेख भी ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है।^५ अद्यति दश के वर्णन में कवि ने बहा के वृद्ध लोगों को वत्सराज उद्यन की कथाओं में पारगत बताया है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास के समय में उद्यन की

१ तेनास लोक पितृमान् विनेत्रा । रघु० १४ ०३ ॥

२ राज्यक्षत्रपरिहानिराययी कामयानसमरस्थया तुलाम् । रघु० १६ १०१
किन्तु यादृशीतिहास निरन्धेषु कामयानानामरस्था श्रयते । शकु० ३ अक्ष ।

३ दाश्वान्मुपुत्राशिपमित्युवाच । रघु० १० ७१ ॥

४ त्रियम्बिक सयमिन ददर्श । कुमा० ३ ३४१

५ प्राप्यावन्ती नुद्यन कथा कोविद ग्राम वृद्धान् ।

कथाएँ बड़ी प्रचलित थीं। चूँकि नायक की मृत्यु के बाद उसकी कथाएँ बहुत समय तक नहीं चल सकतीं, अतः कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में ही जगदि मालव देश में उदयन की वीरता तथा प्रेम की कथाएँ खूब प्रचलित रही हों, मानना युक्तियुक्त है। वत्सराज उदयन तथा कालिदास के मध्य में चार शताब्दी का ही अन्तराल अधिक सगत प्रतीत होता है। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में रखा जाए तो हमें यह मानने को विवश होना पड़ेगा कि नौ शताब्दियों के बाद भी उदयन की कथाएँ जीवित परम्पराओं के रूप में विद्यमान थीं। इसके अतिरिक्त ई० प्रथम शतक में गुणादय ने अपनी बृहत्कथा द्वारा उदयन की कथाओं का देश भर में प्रचार कर दिया था। यदि कालिदास को ई० चतुर्थ शतक में माना जाय तो उस समय उदयन की कथाओं का केवल उज्जयिनी में ही सीमित रहना सगत नहीं प्रतीत होता है। बृहत्कथा के अन्तिम परिच्छेद में कालिदास के आश्रयदाता राजा विक्रमादित्य का ही वर्णन किया गया है। यदि कालिदास की रचनाओं में उसके आश्रयदाता की प्रच्छन्न रूप से कुछ भी प्रशंसा या उसकी रचनाओं में उसके पात्रों तथा तत्कालीन नायक में सादृश्य बताने वाले कुछ भी प्रसंग हो सकते हैं, तो उन सबका बृहत्कथा में वर्णित प्राचीन विक्रमादित्य से ही सम्बन्ध हो सकता है न कि इस उपाधि के धारण करने वाले किसी उत्तर कालीन राजा से। इन प्रशस्तियों और प्रसंगों में कुछ ऐसी भी बातें हैं जिनसे कालिदास का गुप्त राजाओं के समय में मानने का विचार बिल्कुल छिन्न भिन्न हो जाता है।

सर्ग प्रथम विक्रमोर्वशीय नाटक को ही लीजिए। कालिदास ने अपने आश्रयदाता के नाम को अमर बनाने तथा उसकी प्रशंसा करने के लिये ही इस नाटक का यह नाम रखा है। कथा सरित्सागर के अनुसार विक्रमादित्य के पिता का नाम महेन्द्रादित्य था। इन्द्र के अन्य बहूत से विशेषणों में से महेन्द्र का ही धारण नाटक में प्रयोग कुछ रहस्य प्रकट करता है। इससे यह स्पष्ट ही प्रकट होता है कि युवावस्था में अपने आश्रयदाता बृद्ध राजा महेन्द्र का गुणगान करने के लिये यह शब्द धार धार प्रयुक्त किया गया है^१। इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों का भी प्रयोग इस नाटक में देखने में आता है लेकिन महेन्द्र शब्द की आवृत्ति विशेषतया उल्लेखनीय है। कुमारसम्भर के तृतीय सर्ग तथा शकुन्तला के ७ वें अंक में इन्द्र का प्रसंग होने पर भी इन्द्र के किसी भी नाम की आवृत्ति देखने में नहीं आती है। चूँकि महेन्द्र शब्द प्रायः गद्य वाक्यों में ही आया है, अतः यह स्पष्ट ही है कि जान बूझकर इस शब्द का प्रयोग किया है न कि छन्द की विषयता से। महेन्द्र शब्द की आवृत्ति के अतिरिक्त नाटक में कुछ ऐसे वाक्य भी पाए जाते हैं जो कि पङ्के महत्त्वपूर्ण हैं—

१ प्र० अं० में ६ बार, लृ० अं० के विष्कम्भक में ४ बार और अन्तिम अं० में चार बार महेन्द्र शब्द आया है।

- १ किं प्रभाय दर्शिता महेन्द्रेण । प्र० प्र०
 - २ दिष्ट्या महेंद्रोपकार पर्याप्तेन विक्रममहिम्ना वर्धते भवान् । प्र० अ०
 - ३ युक्तमेतत् । अनुत्सेक खलु विक्रमालकर । प्र० अ०
 - ४ सदृश पुरुषान्तरविदो महेन्द्रस्य । व० अ०
 - ५ प्रथम पुत्र दर्शनेन विस्मृताऽस्मि । इदानीं महेन्द्र सकीर्तनेन स्मारितः समयो मम हृदयमायासयति । प० अ०
- रम्भे । उपनीयता स्वयं महेन्द्रेण सभृत कुमारस्यायुषो यौवराज्याभिषेक । प० अ०

उपर्युक्त वाक्यों में तीसरा वाक्य तो निश्चित रूप से विक्रमादित्य की प्रशंसा में है ही । प्रथम और चतुर्थ उज्जयिनी के तत्कालीन राजा तथा विक्रमादित्य के पिता महेन्द्र की प्रशंसा में है । द्वितीय वाक्य में पिता और पुत्र के संध का स्पष्ट निर्देश करते हुए कवि ने यह कहने का प्रयास किया है कि विक्रम के गौरव अथवा वीरकार्यों से महेन्द्र को शान्ति मिलती है । पाचवें वाक्य में तो कवि ने जान बूझकर ही महेन्द्र शब्द का प्रयोग किया है, क्योंकि पिछले श्लोक के अनुसार पुरन्दर शब्द की ही आवृत्ति प्रसंग में उपयुक्त बैठती है । इसके अतिरिक्त इस वाक्य में कवि ने वृद्ध महेन्द्र के राज्यभार छोड़ने का भी यत्न सूझा सकते हैं । वास्तव में यह नाटक वृद्ध राजा महेन्द्र के राज्यभार से अवकाश प्राप्त करने तथा विक्रम के राज्याभिषेक होने के अवसर पर लिखा गया प्रतीत होता है । उपर्युक्त छठे वाक्य में इसका भी कुछ संकेत स्पष्ट दीख रहा है । कथा सरित्सागर में भी इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि वि० संवत् के संस्थापक विक्रमादित्य का पिता महेन्द्रादित्य वास्तव में राज्यभार से मुक्त होकर वाराणसी चला गया था—

ततश्च यौवनस्य त विलोक्य प्राज्यविक्रमम् ।
 अभिषिच्य सुत राज्ये यथाविधि जनप्रियम् ॥
 महेन्द्रादित्यनृपति सभार्यासचिवोऽपि सः
 वृद्धो वाराणसीं गत्वा शरणं शिथ्रिये शिवम् ॥

कथा १८० ५६ ६० ॥

- १ अद्याहं पुत्रिणामग्र्यं सुपुत्रेण तथामुना ।
 पौलोमीसभवेनेव जपन्तेन पुरन्दर ॥ ५ ॥ १४ ॥
- २ पुत्र के युवक हो जाने पर वृद्ध राजा का राज्य छोड़कर वानप्रस्थ आश्रम स्वीकार कर लेना कवि का अपना आदर्श रहा है । तुलना कीजिए रघु० प्र० ८, वृ० ७०, सप्तम ७१ इत्यादि ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने विजयमोक्षशीय नाटक में अपने आशयदाता राजाओं (महेन्द्रादित्य और विक्रमादित्य) के जीवन की भी घटनाओं का दिग्दर्शन कराया है। इसी प्रकार रघुवंश में भी कुछ ऐसे कथा प्रसंग हैं जो महेन्द्र और विक्रम के जीवन की घटनाओं से नितान्त मिलते जुलते हैं। दिलीप का पहिले पुत्र हीन होना तथा बाद में वशिष्ठ की गौ के वरदान से पुत्र को प्राप्त करना ठीक उसी तरह है जिस प्रकार कथासरित्सागर में महेन्द्रादित्य का पुत्रहीन होना और शिवजी की कृपा से विक्रमादित्य का प्राप्त करना वर्णित किया गया है। इसके बाद रघु की शिक्षा, अनेक राजकुमारियों से उसका विवाह, राजा होने के बाद उसका दृढ तथा उदार शासन और अन्त में उसका दिग्विजय यह सब घटनाएँ कथासरित्सागर में वर्णित विक्रमादित्य के जीवन की घटनाओं से इतनी समानान्तर हैं कि पाठक को निश्चय हो कर यह मानना पड़ता है कि कालिदास ने अपने वर्तमान सरलक के जीवन का चित्र प्रस्तुत करने के लिए ही पौराणिक रघु का चरित्र चुना है। तुलना के लिए दोनों ग्रन्थों से कुछ पद्य उद्धृत किए जाते हैं —

- १ तदा च तत्रापरितं वसु राजनि वर्षति । १ जनाय शुद्धान्तचराय शसते
सौगतव्यतिरेकेण नास्ति ऋद्धिदनीश्वर ॥ कुमार जन्मामृत समिताक्षरम् ।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपते
शशिप्रभ दृश्रमुभे च चामरे ॥
- २ उपनीतस्य विद्यासु गुरवो हेतुमात्रताम् । २ विनिन्युरेन गुरवो गुरुप्रियम्
यमुस्तस्याप्रभासेन प्रादुरासन्स्वय तु ता ॥ अरन्वयवहाश्च बभूवुरप्रत
क्रिया द्वि वस्तुपहिता प्रसीदति ॥
- ३ आज्ञान्तोपनतैर्दत्ता कन्या रूपनतीर्षुपै । ३ नरेन्द्रकन्यास्तमयाप्य सत्पति
आजहार पिता तस्य तास्ता श्रिय इधापरा ॥ तमोमुद दत्तसुता इदावमु ।
- ४ सोऽपितद्विक्रमादित्यो राज्यमासाद्यपैतृकम् । ४ सराज्य गुरुणा दत्त प्रतिपद्याधिकं वभौ
नभो भास्वानिपारंभे राजा प्रतपितु क्रमात् ॥

(कथा १८, १, ४०, ४४, ४८, ६१)

(रघु० वृ० १६, २६, ३३, च० १।)

उपर्युक्त प्रमाणों से यह बात यही सरलता से समझ में आ सकती है कि कालिदास के सरलक महेन्द्र और विक्रम ही उज्जयिनी के प्राचीन और प्रसिद्ध राजा थे। गुप्त राजाओं ने तो उनके नाम की उज्जयिनी में अपनी राजधानी बनाने के बाद उपाधिस्वरूप ग्रहण किया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अर विक्रमादित्य नाम उपाधिस्वरूप धारण किया तो उसके पुत्र कुमारगुप्त ने विक्रमादित्य व पिता महेन्द्रादित्य का ही नाम उपाधिस्वरूप धारण कर लिया। गुप्त राजाओं ने यह उपाधियाँ किसी उद्देश्य से ही धारण की होंगी। और यह

उद्देश्य यही हो सकता है कि उज्जयिनी को अपनी राजधानी बनाने के बाद गुप्त राजाओं ने यह देखकर कि मालव देश की जनता के हृदय में वहा के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम की स्मृतियाँ अब भी जागृत हैं तथा जनता उनके नाम को हर समय याद करती है, स्वयं भी जनता को प्रसन्न करने के लिए यह नाम उपाधि स्वरूप धारण किये हों। यद्यपि चन्द्रगुप्त द्वितीय और कुमारगुप्त प्रथम के सम्बन्ध में प्राचीन राजाओं के नाम का कम विपर्यस्त हो गया है, लेकिन स्कन्दगुप्त के पुन विक्रमादित्य उपाधि धारण करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त राजाओं की यह केवल उपाधियाँ थीं। अतः यह बात निगान्त निःसदिग्ध है कि कथामरित्सागर में वर्णित राजा ही कालिदास के सरक्षक है, न कि गुप्त वंश का कोई राजा। गुप्त राजाओं का परममागपत तथा वैष्णव होना तो इतिहासप्रसिद्ध ही है। अतः शीघ्र मत का मानने वाला कालिदास शैशमतात्रलम्बी मालवा के प्राचीन राजाओं महेन्द्र और विक्रम के सरक्षण में ही हो सकता है। कथामरित्सागर में विक्रम स्वतः के संस्थापक राजा का दूसरा नाम विपमशील दिया हुआ है न कि चन्द्र या स्कन्द। इस प्रकार के नाम की भिन्नता से भी विक्रम सरतः के संस्थापक राजा क सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं रह जाना चाहिये। अतः आयुधर्म के सरक्षक, पौराणिक गाथाओं के अमर गायक, विद्वशियों को भारतभूमि से निकालने वाले तथा सस्टुत विद्या का उत्थान करने वाले और ई० पू० १९ में उज्जयिनी में शासन करने वाले प्राचीन और अधिक यशस्वी विक्रमादित्य को ही कालिदास का सरक्षक माना जाना चाहिए।

कालिदास को ई० पू० प्रथम शतक में रले जाने का विचार शताब्दियों से चली आती हुई भारतीय-जनाश्रुति से तो मेल खाना ही है, आन्तरिक तथा बाह्य प्रमाण भी इसके पक्ष में हैं तथा इस विचार के मान लेने पर बृहत्कथा जैसे कुछ महत्वपूर्ण ग्रन्थों के समय में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

अब हमें यह देखा है कि कालिदास को अन्य विभिन्न समयों में मानने वाले विचार कहा तक भ्राम्यक और असत्य हैं। कालिदास को गुप्त राजाओं के समय में माननेवाले लोगों ने गुप्त धातु तथा इससे उभने वाले शब्दों, रघुवंश तथा कुमारसंभव में कुमार शब्द का प्रयोग और कुमार संभव के नाम को आधार मानकर कालिदास को गुप्तराजाओं के समय में रखने का आग्रह किया है। लेकिन किसी ग्रन्थ में कोई पद या वाक्यांश

१ प्रो० रे० एम० शेम्बाउनेकर (सेन्ट जेवियर्स कालेज, बम्बई) ने (जर्नल आफ दि यूनिवर्सिटी, आफ बाम्बे, १, पृ० २३०-२८६) में प्रबल प्रमाणों और तर्कों के आधार पर कालिदास को, ई० पू० १६ में ही रखा है। डॉ० एम० एन० दास गुप्त ने भी (प्राच्यशास्त्री पत्रिका, फलकत्ता, भाग २, सं० ३३, १९४५ पृ० १००-१०१) कालिदास को इसी समय का माना है।

तभी किसी विशेष अभिप्राय का द्योतक माना जा सकता है, जब कि जान बूझकर विशेषतया उसका प्रयोग किया गया हो या किसी विशिष्ट अभिप्रायपूर्ण प्रसंग में यह पाया जाय। रघुवंश में गुप् धातु का प्रयोग बड़े ही साधारण रूप में हुआ है, जैसा कि रामायण और महाभारत में भी पाया जाता है। राजनीति के ग्रन्थों में तो इस धातु का प्रयोग बड़ा ही प्रचुर है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में तो गुप्त जैसे शब्द स्थान स्थान पर पाये जाते हैं। कालिदास ने जिसका कि राजनीति का ज्ञान अग्रगण्य ही गम्भीर रहा होगा, गुप् धातु तथा इससे बनने वाले शब्दों को राजनीति के अर्थों में ही प्रयुक्त किया है। अतः गुप् धातु के प्रयोग में कोई विशेष तात्पर्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। वस्तुतः कालिदास ने पा, रक्ष, प्रे, इत्यादि पालनार्थक सभी धातुओं का छन्द की सुविधा के अनुसार प्रयोग किया है और गुप् धातु केवल राजनैतिक अर्थ में (रक्षा करना) प्रयुक्त की गई है। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रसंग में इस धातु के प्रयोग में कोई विशेष अभिप्राय दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतः इस तरह के तुच्छ आधार पर कालिदास का गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ना नितान्त निराधार है। यदि केवल गुप् धातु के प्रयोग मात्र से गुप्त राजाओं से सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है, तो शक धातु तथा इससे बने हुए शब्दों के भी कहीं कहीं पाये जाने वाले प्रयोग के आधार पर शक राजाओं से भी कालिदास का सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

कुमार शब्द का प्रयोग भी किसी तरह कुछ महत्वपूर्ण नहीं है। कादम्बरी, वेणीसंहार और मुद्रा राक्षस में भी यह शब्द बहुत बार आता है। कवि ने यदि कहीं भी रघुवंश में इस शब्द का प्रयोग किया है तो आवश्यकता से प्रेरित होकर, जिस तरह कि कुमारी शब्द रघुवंश के छठे सर्ग में आता है। वास्तव में कुमार शब्द संस्कृत साहित्य का बहुत ही साधारण शब्द है। 'सुत' 'पुत्र,' 'तनय,' 'आत्मज,' 'सूनु' इत्यादि अन्य पर्यायवाची शब्दों की तरह इसका भी स्थान स्थान पर प्रयोग पाया जाता है। अतः कुमार शब्द के प्रयोग में कोई विशेष बात नहीं दीखती है। इसके विपरीत विक्रमोर्वशीय में महेन्द्र शब्द की आवृत्ति जान बूझकर की गई प्रतीत होती है। चूँकि इन्द्र के पर्यायवाची अन्य शब्दों को छोड़कर इसी विशेषण की आवृत्ति की गई है तथा कुछ याच्य भी ऐसे हैं जो महेन्द्र नामक किसी व्यक्ति की प्रशंसा का संकेत करते हैं, अतः कालिदास को महेन्द्र जैसे किसी राजा का समकालीन ही मानना चाहिये। इस मत का कथासरित्सागर के प्रमाण से भी कोई विरोध नहीं पड़ता है।

प्रो० कीथ का यह कथन भी कि कालिदास की रचनाओं में गुप्तकाव्य के हिन्दु शास्त्रों का स्पष्ट प्रमाण दिखलाई देता है, सत्य नहीं है। वस्तुतः साध्य, योग, न्याय, वेदान्त, व्याकरण, अर्थशास्त्र, ज्योतिष यह सब विधायें गुप्त वंश के किसी भी प्राचीनतम राजा से ही प्राचीन नहीं, बल्कि ईसा से भी पूर्व की हैं।

कुछ विद्वानों ने यूनानी Diametron के अपभ्रंश जामित्र (कुमार० ७ १) तथा चन्द्रग्रहण के कारणों के वर्णन^१ (रघु १४ ५०) का भी उल्लेख किया है। उनका कहना है कि कालिदास ने ज्योतिष के यूनानी शब्द तथा ग्रहण के कारणों का अपने पूर्ववर्ती किसी भारतीय ज्योतिषी से ज्ञान प्राप्त किया होगा। सम्भव है कि ज्योतिष के प्रथम भारतीय विद्वान आर्यभट्ट के ग्रन्थों से जिनमें कि यूनानी ज्योतिष का प्रभाव देखने में आता है और जो कि ई० पंचम शतक के अन्त में लिखे गए हैं, कालिदास ने यह ज्ञान प्राप्त किया हो। अतः कालिदास ई० षष्ठ शतक का ही हो सकता है। लेकिन यह मत सत्य नहीं है। बोधायन गृह्यशेष सूत्र^२ तथा रामायण जैसे प्राचीन ग्रन्थों में भी ज्योतिष के पारिभाषिक शब्द पाये जाते हैं। भारतीयों को ज्योतिष का ज्ञान भले ही कहीं बाहर से प्राप्त हुआ हो लेकिन यह तो निश्चित ही है कि ई० पू० प्रथम शतक में भारतवर्ष में लग्न और राशि का ज्ञान सर्वसाधारण में प्रचलित था और यदि इस ज्ञान को यूनानी आधार पर भी माना जाये तो भी कालिदास की तिथि में परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती है, क्योंकि सिकन्दर के आक्रमण तथा विक्रम समुद्र की स्थापना में दो शताब्दियों से अधिक का अन्तराल ज्योतिष के प्रसार के लिये पर्याप्त है और फिर ऐसे देश में जहाँ कि वैदिक युग से ही ज्योतिष विद्या की उन्नति होती रही हो, ज्योतिष विद्या का इतना शीघ्र प्रसार होना कोई कठिन बात नहीं है। अतः कालिदास को गुप्त राजाओं के शासन काल में मानना न्याययुक्त नहीं है।

कालिदास और अश्वघोष के पौराणिक का निवेदन तो पहिले किया ही जा चुका है। अश्वघोष दार्शनिक था और उसका प्रधान ध्येय बौद्धधर्म का प्रचार करना था। उस समय के लोगों की अभिष्टि कायों में अधिक देख कर और विपरत लोगों को उस मार्ग से परावृत्त कर धर्मान्मुख करने के उद्देश्य से ही उसने अपना प्रथम काव्य सौन्दरनन्द लिखा था। यह बात उसने सौन्दरनन्द के अन्तिम श्लोकों में स्पष्टतया कही है।^३ क्योंकि उस समय लोक में किसी प्रसिद्ध कवि के प्रचलित सुन्दर शृंगार रस प्रधान कायों की बड़ी प्रसिद्धि थी, इसलिये अश्वघोष ने उसी कवि की शैली का अनुकरण किया और उसमें 'प्राह्य न ललितं' ऐसा उपदेश दिया। इसलिये मानना पड़ता है कि अश्वघोष ने ही अपने काव्यों में कालिदास का अनुकरण किया है। इसके अतिरिक्त अश्वघोष के ग्रन्थों का उत्तर

१ छाया हि भूमे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभिः ।

२ स्वर्गाय श्री ब्रह्मक गुह्याय काले ने बोधायन गृह्यशेष-सूत्र में राशियों के नाम पहिले ही खोज निकाले हैं। उक्त गृह्य-सूत्र में वसन्त ऋतु की सीमाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है—मीनमेपयोर्मेषवृषयोर्वा वसन्त । देखिये तिलक का गीता रत्नस्य ।

३ दे० म० म० हरप्रसाद शास्त्री का सौन्दरनन्द काव्य ।

कालीन अलंकार ग्रन्थों में अथवा सुभाषितावलियों में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं मिलता है। यदि कालिदास ने अश्वघोष का अनुसरण किया होता तो मालविकाग्नि मित्र नाटक के प्रारम्भ में भास, सीमिल्ल, कपिपुत्रादि की तरह अश्वघोष का भी निर्देश अग्रश्य करता। अतः ई० पू० प्रथम शतक में कालिदास को रखने हुए हमें यह कहना ही पड़ेगा कि अश्वघोष ने ही कालिदास के कार्यों से प्रेरणा प्राप्त की है। डा० कीथ का कहना है कि अश्वघोष की प्राकृत कालिदास की प्राकृत से प्राचीन है। लेकिन प्राकृत भाषा के स्वरूप के आधार पर कोई तर्क चल नहीं सकता, क्योंकि इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं है कि किसी विशेष प्रकार की प्राकृत किसी विशेष शताब्दी में ही बोली जाती थी।

मेघदूत के आधार पर कालिदास को दिङ्नाग का समकालीन मानना भी ठीक नहीं है। कुछ विद्वान् तो उपर्युक्त पद्य में अन्य अर्थ को बिल्कुल मानत ही नहीं है। यदि अन्य अर्थ को माना जाय तो भी यही प्रकट होता है कि दिङ्नाग नामक कोई कवि कालिदास से ईर्ष्या रखता था। लेकिन यह कवि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक नहीं हो सकता। इसके कई कारण हैं। प्रथम तो यह है कि इस बौद्ध दार्शनिक के कवि होने का कोई प्रमाण नहीं मिलता है। दूसरा यह कि एक दार्शनिक और एक कवि में परस्पर शत्रुता कभी हो ही नहीं सकती।

तीसरा कारण यह है कि दिङ्नाग नामक बौद्ध दार्शनिक के न केवल उज्जयिनी बल्कि मालवा तक के निवासी होने का पता नहीं है, वहाँ के राजा के आश्रय में रहने की तो बात ही दूर है। इन सब बातों के अतिरिक्त कुन्दमाला नामक नाटक के रचयिता एक अन्य दिङ्नाग का भी पता लगा है। यह दिङ्नाग बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग से भिन्न है, क्योंकि इसने नाटक की भाषा में ही गणेश की स्तुति की है। हो सकता है यही दिङ्नाग कालिदास का प्रतिस्पर्धी हो या अन्य कोई इस नाम का कवि कालिदास का प्रतिस्पर्धी रहा हो। कम से कम यह तो निश्चित हो है कि यह बौद्ध दार्शनिक कालिदास का प्रतिस्पर्धी नहीं है।

डा० वे० वी० पाठक का ईस्वी ११८० शतक का मत अतः तो बिल्कुल माना ही नहीं जाता है। लेकिन उनके मत की छुटियों पर वास्तव में लोगों का ध्यान नहीं गया है। वस्तु तर्क को आक्सस समझने की उनकी चेष्टा का समर्थन मुश्किल से ही हो सकता है। प्रथम तो पाठभेद के प्रामाणिक होने में ही सन्देह है। दूसरा कारण यह भी है कि कालिदास ने किसी नदी के वर्णन करने के अक्षर को छोड़ा नहीं है। फिर यह बात कुछ असम्भव सी दीवती है कि कालिदास भारतवर्ष की एक विशाल नदी सिन्ध (Indus) को छोड़कर आक्सस नदी का एक दम वर्णन करने लगे। इससे अतिरिक्त उस नदी के पास पेशवर उत्पन्न होती हुई बताई गई है। यह बात काश्मीर प्रदेश में यद्वती हुई सिन्धु नदी के तट पर ही संभव हो सकती है न कि आक्सस नदी पर जहाँ कि पेशवर का उत्पन्न होना सिद्ध नहीं है। वस्तु

नदी का आम्सस नदी से तादात्म्य जिस प्रकार माना गया है, उस प्रकार तो टेम्स नदी का वमसा नदी से भी तादात्म्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्री एस० क० रे ने त्रिपुण्ड्र पुराण तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धरण देकर वज्र और सिन्ध नदी को एक ही प्रमाणित भी किया है (दे० उनके शकुन्तला नाटक की भूमिका)

रघु के दिग्विजय में हूणों के उल्लेख के आधार पर भी कालिदास को ईसवी षष्ठ शतक का मानना उचित नहीं है। महाभारत में हूणों का उल्लेख पाया ही जाता है। बौद्धों के ललित विस्तर नाम के ग्रन्थ से भी हूण जाति के प्राचीन होने का उल्लेख मिलता है। उसमें अनेक लिपियों के साथ हूण लिपि का भी उल्लेख है^१। अश्वघोष ने इसी ग्रन्थ के आधार पर अपना बुद्ध-चरित लिखा था। ललित विस्तर का समय ई० प्रथम शतक के बाद का नहीं हो सकता। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हूण जाति ई० पू० प्रथम वा द्वितीय शतक में भी ज्ञान थी। इसके अतिरिक्त प्रो० आप्टे और नन्दर्गाकर का यह भी कथन है^२ कि रघुवश के श्लोक में उल्लिखित हूण लोग इन्डो-सीथियन थे जिन्होंने कि वैन्ट्रिया की सीमा या भारतवर्ष के द्वार पर अपना विशाल साम्राज्य ई० पू० तृतीय शतक के मध्य से ई० प्रथम या द्वितीय शतक के अन्त तक स्थापित कर रखा था।

कालिदास की तिथि के सम्बन्ध में कुछ अन्य मत भी हैं। श्री द्विपोलाइट फाचे कालिदास को रघुवश के अन्तिम सर्ग में वर्णित सूर्य वश के अन्तिम राजा अग्निवर्ण की मृत्यु के बाद उत्पन्न हुए उसके पुत्र का समकालीन मानते हैं और ई० पू० अष्टम शताब्दी के लगभग ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं^३। श्री एस० पी० परिडट इस मत का खण्डन करते हुए कहते हैं^४— यदि कालिदास अपने समय में शासन करते हुए इस राजा का समकालीन होता, तो उसके जीवन का अरश्व ही कुछ वर्णन करता। इसके अतिरिक्त रघुवश को हम सम्पूर्ण काव्य भी

१ श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने संस्कृत वाङ्मयाचा त्रोटक इतिहास में कहा है कि हूणों का उल्लेख महाभारत और हरिवंश में भी है।

२ दे० आप्टे का *Date of Kalidasa* पृ० २४ तथा नन्दर्गाकर के रघुवश की भूमिका पृ० ८८।

३ दे० *Collective Works of Kalidasa, Paris Literary Remains, Calcutta 7 Saturday Review, Jan 1860* और *जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई १८६१, २५* में भाउदाजी का कालिदास पर निबन्ध।

४ दे० एस० पी० परिडट के रघुवश की भूमिका पृ० २७-२८।

नहीं मान सकते। जनश्रुति के अनुसार सूर्यवंश के राजाओं का इतिहास अभी और अवशिष्ट है। कालिदास के काव्य के अग्निवर्ण तक पहुँचते पहुँचते समाप्त हो जाने से हम यह नहीं मान सकते कि सूर्य वंश ही बड़ा पर समाप्त हो गया होगा। विष्णु पुराण में अग्निवर्ण के बाद भी ३७ राजाओं की सूची दी गई है।

लासेन महोदय शिलालेखों में समुद्रगुप्त के लिये 'कवियों का मित्र' इस उपाधि के प्रयुक्त किये जाने के आधार पर कालिदास को समुद्रगुप्त की सभा का कवि मानते हैं और ई० तृतीय शतक का प्रारम्भ ही कालिदास का समय स्थिर करते हैं। मोनिपर विलियम्स (इण्डियन विज्डम, ४६४) भी इसी तिथि को मानते हैं। लेकिन श्री एस० पी० एण्डरट (एच० भूमिका) उपर्युक्त तर्क को निर्णायक नहीं मानते, क्योंकि अन्य राजाओं यथा मालवा के शीलालेख और कन्नौज के हर्षवर्धन के साथ भी यह उपाधि पाई जाती है।

श्री के० जी० शंकर ने 'इण्डियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली' भा० १ स० २, जून, १९२५, पृ० ३०८-३१६ में तथा श्री के० चट्टोपाध्याय ने अपने Date of Kalidasa नामक लेख (इलाहाबाद वि० स्टडीज, भाग २, ७६) में कालिदास को इससे पूर्व प्रथम शतक का ही माना है।

कवि की जन्मभूमि

कालिदास ने अपने सम्बन्ध में कहीं कुछ भी नहीं लिखा है। इसकी जन्मभूमि के सम्बन्ध में भी विद्वानों में बड़ा मत भेद है। काश्मीर, विदर्भ, बंगाल तथा मालवा इन प्रदेशों में कहीं न कहीं प्रायः इसकी जन्मभूमि बताई जाती है। हिमालयपर्वण तथा काव्यशैली के आधार पर कोई इसे काश्मीरवासी बताता है तो काली की उपासना वाली दन्त-कथा तथा इसके नाम के आधार पर कुछ लोग इसे बंगाली मानते हैं। श्री चिन्तामणि त्रिनाथक घैष का मत है कि कालिदास यदि बंगाली होता तो उसके ग्रन्थों में गौड़ी रीति का प्राधान्य होता जैसा कि प्रायः बंगाली कवियों के काव्यों में पाया जाता है। दण्डिन की अवन्तिसुन्दरी कथा में—

लिप्ता मधुद्रवेणासन्न्यस्य निर्दिशशा गिर ।

तेनेद यत्तं वैदमं कालिदासेन शोधितम् ॥

यह पद्य आया है। इस पद्य के आधार पर कोई इसे विदर्भ का बताते हैं। लेकिन मेघदूत में मेघ को अलका का मार्ग बताने हुए रास्ता देता होने पर भी यह उससे उज्जयिनी जाने का आग्रह करता है और कहता है कि उज्जयिनी के विशाल महल और रमणियों के कुटिल फटाखी के देखने से यदि यह बचित रह गया,

तो उसका जीवन ही निष्फल है। उज्जयिनी की शिप्रा नदी तथा महाकाल के वर्णन से कवि का उज्जयिनी के लिए विशेष पक्षपात प्रकट होता है। इसके अतिरिक्त कवि ने मेघदूत में अरवन्ति प्रदेश की भौगोलिक स्थिति का बड़ा सूक्ष्म वर्णन किया है। बड़ा की छोटी छोटी नदियों का भी नाम निर्देश किया है तथा वर्णन दिया है। इस आधार पर यही कहा जा सकता है कि कालिदास उज्जयिनी का रहने वाला था। बहुत सम्भव है कि यह काश्मीर में पैदा हुआ हो और बाल्यावस्था वहीं बिताकर उज्जयिनी में आ बसा हो, अन्यथा हिमालय पर्वत का ऐसा सजीव वर्णन करना केवल उस पर्वत को एक दो बार देखकर ही सम्भव नहीं है।

कवि का जीवन वृत्त तथा उसके धार्मिक विचार

कालिदास के सम्बन्ध में प्रचलित कुछ किम्बदन्तियां पहिले ही जा चुकी हैं। उसकी रचनाओं से यह प्रकट होता है कि वह एक आस्तिक ब्राह्मण रहा होगा तथा अपने जीवन का अधिकांश उसने विष्णुदेवता की राजसभा में रहकर उज्जयिनी में ही बिताया होगा। ब्राह्मण होने के अतिरिक्त हम और किसी उपजाति में उसने होने का ठीक २ अनुमान नहीं कर सकते। उसके ग्रन्थों से प्रतीत होता है कि अपने जीवन में वह बड़ा सुखी और सम्पन्न रहा होगा। जहां तक उसके धार्मिक विचारों का प्रश्न है, वह शैवमतानुलम्बी प्रतीत होता है। प्रायः उसके सभी ग्रन्थों में शिवजी की स्तुति पाई जाती है। त्रिकमोर्वशीय के प्रथम श्लोक में उसने लिखा है - स स्थाणु स्थिरभक्ति-योग सुलभो नि श्रेयसायास्तु व । मालविकाग्निमित्र में भी शिवजी की प्रार्थना की गई है -

एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुमले य स्वयं कृत्तियासा
कान्ता समिध देहोऽप्यविषयमनसा य पुग्स्ताद्यतीनाम् ।
अष्टाभियस्य कृत्स्न जगदपि तनुभिर्विभ्रतो नाभिमान
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वस्तामसीं वृत्तिमीश ॥

कुमारसंभव काव्य तो शिवजी की कथा को लेकर लिखा ही गया है। शकुन्तला नाटक के अन्तिम श्लोक में भी शिवजी की प्रार्थना की गई है। रघुवंश में भी कवि ने शिवजी और पार्वती की धन्दना की है। मेघदूत के पूर्वभाग में उज्जयिनी में स्थित महाकाल के मन्दिर का कवि ने बड़ा ही भव्य वर्णन किया है। अतः यही स्थाभाविक प्रतीत होता है कि कालिदास को शैव ही माना जाए। लेकिन शैव होते हुए भी कवि की रचनाओं में कहीं भी धार्मिक सर्कारिता नहीं दिखलाई देती है। उसकी शिवभक्ति सहिष्णुता तथा व्यापक दृष्टिकोण लिए हुए है।

कालिदास का देशाटन

कालिदास भारतवर्ष के प्रायः सभी भागों से परिचित प्रतीत होता है। रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में बंगाल, बिहार और उड़ीसा के पर्यटन वर्णन से यही अनुमान

होता है कि कालिदास ने इन प्रान्तों की यात्रा अवश्य की होगी। फोंकण प्रदेश में बीज बोने से पहिले जमीन के जलाने की प्रथा का वर्णन तो बड़ा ही आश्चर्य जनक है। रघुवश के चौदहवें सर्ग में विभिन्न देशों के प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से भी यही निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने उन देशों की यात्रा अवश्य की होगी, क्योंकि वेजल याप्राधिवरणों के पढ़ने से इतना विस्तृत ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। लेकिन इतना सब कुछ होते हुये भी हमें यह अवश्य मानना पड़ेगा कि दक्षिण भारत की अपेक्षा उत्तर भारत से कालिदास अधिक परिचित था। मेघदूत के मार्गवर्णन से भी इसी कथन की पुष्टि होती है।

कालिदास का पाण्डित्य

यद्यपि कालिदास के निजी जीवन के सम्बन्ध में निर्दिष्ट रूप से कुछ भी ज्ञात नहीं है, फिर भी उसकी रचनाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह विभिन्न विद्याओं तथा कलाओं का उत्कृष्ट विद्वान् था। दर्शनों के गम्भीर ज्ञान से लेकर बालक-बालिकाओं के साधारण खेलों तक का कालिदास को ज्ञान था^१। कालिदास ने मनु इत्यादि षी स्मृतियों का भी गम्भीर अध्ययन किया होगा, तभी तो शकुन्तला नाटक में षष्ठ अंक में मात्स्यिक और धनमित्र वणिक् के प्रसंग में चौर्य-दण्ड और उत्तराधिकार के नियम का शास्त्रसंगत उल्लेख पाया जाता है। बाह्य प्रकृति के साधारण से साधारण रूप का भी कवि को ज्ञान है। इन्द्रधनुष के बनने की प्रक्रिया तथा मेघों के स्वरूप का कालिदास के द्वारा किया गया वर्णन आयु-निक भौतिक विज्ञान के सर्वथा अनुकूल है। कालिदास का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। व्याकरण की दृष्टि से उसकी भाषा नितान्त शुद्ध है। व्याकरण के 'शब्दार्थयो स्तादात्म्यम्' इस सिद्धान्त को कालिदास भी मानता है, जैसाकि रघुवश के प्रथम श्लोक में 'वागर्थाधिप सपृक्तौ' इस कथन से स्पष्ट है। इसी प्रकार अल-कार शास्त्र तथा नाट्यशास्त्र से भी कालिदास पूर्ण परिचित प्रतीत होता है। कहीं भी उसने इन शास्त्रों के नियमों का अपनी रचनाओं में उल्लंघन नहीं किया है। आयुर्वेद तथा इसकी विभिन्न शाखाओं का ज्ञान भी कवि का प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त कवि ज्योतिषशास्त्र से भी परिचित प्रतीत होता है। दर्शन में कवि का वेदान्त दर्शन की ओर अधिक झुकाव प्रकट होता है।

वास्तव में देखा जाए, तो कालिदास अपने समय की सब विद्याओं का पारंगत विद्वान् था। सरस्वती की कृपा से कोई भी विद्या उसके लिये दुर्गम नहीं थी।

कालिदास नाम के अनेक विद्वान्

संस्कृत साहित्य में कालिदास नाम के अनेक विद्वान् हुए हैं। राजशेखर ने अपनी सुक्तिमुक्तावली में कालिदासत्रयी का उल्लेख किया है-

एकोऽपि जीयते हन्त कालिदासो न केनचित्
शृंगारे ललितोद्गारे कालिदास त्रयी किमु ॥

२२० म० म० ५० रामावतार शर्मा पांडेयजी ने बतलाया है कि नवसाहसक खरित का कर्त्ता पद्मगुप्त भी परिमल कालिदास कहाता था। यह धाराधिप मुज का सभापरिदित था। धारा के भोज की सभा में भी एक कालिदास था। ज्योतिर्विदाभरण और शत्रु जयमाहात्म्य का रचयिता भी कोई कालिदास था। परन्तु विक्रमादित्य का सभापरिदित महाकवि कालिदास जिसके सम्बन्ध में यहाँ विचार हो रहा है, इन सब कालिदासों से प्राचीन तथा भिन्न है।

कालिदास के ग्रन्थ

कालिदास नि सन्देह एक महाकवि और महान् कलाकार है। विविध प्रकार की अनेक साहित्यिक रचनाये उसकी लिखित बताई जाती हैं, परन्तु केवल सात ग्रन्थ ही मुख्यतया उसके लिये हुए मान जाते हैं। तीन नाटक (१) मालविकाग्निमित्र, (२) विक्रमोर्वशीय और (३) अभिज्ञानशाकुन्तल। दो महाकाव्य (१) कुमारसम्भव और (२) रघुपथ। दो खण्डकाव्य (१) शतसुहृद् और (२) मेघदूत (मेघसदेश)।

मेघ सदेश की कथा

कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी के स्वामी धनपति कुबेर के यहाँ एक यज्ञ किसी सेवा कार्य में नियुक्त था। सेवा में कुछ प्रमाद करने के कारण यज्ञराज कुबेर के द्वारा पत्नी से वियुक्त कर एक वर्ष के लिये ऊलका नगरी से निर्वासित कर दिये

१ यज्ञ के सेवाकार्य तथा प्रमाद के सम्बन्ध में कवि ने कुछ भी नहीं लिखा है। लेकिन कुछ जैन टीकाकारों का ऐसा कथन है कि प्रातः कालीन शिवपूजा के अवसर पर कुबेर के लिये मानसरोवर से सद्योविकसित कमल पुष्प लाना यज्ञ का कार्य था।

जाने पर घृमता ० वह रामगिरि पर्वत पर जा पहुँचता है और वहाँ रहने लगता है^१। किसी तरह वहाँ उसके आठ भहीने तो बीत जाते हैं लेकिन थापाड़

इस कार्य के लिये यक्ष को सूर्योदय से बहुत पहिले ही पत्नी के बाहुपाश से मुक्त होकर घर से निकलना पड़ता था। इसलिये एक दिन वह शाम को ही कुछ कलियाँ तोड़ लाया। प्रातःकाल जब कुबेर शिवजी की पूजा करने लगा, तब किसी पत्नी में छिपे हुये एक भौरि ने उसकी उगली में काट खाया। वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर कुबेर बहुत क्रुद्ध हुआ और उसने यक्ष को शाप दे दिया। कुछ टीकाकारों का यह भी कथन है कि यह यक्ष कुबेर के उद्यान का द्वाररक्षक था। एक दिन जब वह द्वार खुला छोड़कर चला गया, तब उसकी अनुपस्थिति में इन्द्र का पेरायत दायीं उद्यान में घुस गया और उसने पुष्पों की फ्यारिया कुचल डाली। इसलिये उसे कुबेर ने शाप दे दिया। कुछ अन्य विद्वान् ऐसा कहते हैं कि यक्ष प्रतिदिन कुबेर के लिए पुष्प शय्या तैयार किया करता था। एक दिन पुष्पशय्या पर सोने के आनन्द का अनुभव प्राप्त करने के लिये वह स्वयं उस पर लेट गया तथा गहरी नींद सो गया। इसी समय कुबेर वहाँ आ गये और उन्होंने उसे अपनी शय्या पर सोता हुआ देखा कर एक वर्ष के लिये निर्वासित कर दिया। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि कुबेर की निधियों की रक्षा करने के कार्य में ही यक्ष ने प्रमाद किया होगा।

श्री मन्दिफल राम शास्त्री ने मेघप्रतिसन्देश में (देखिये प्र० स० श्लोक स० ५५ ५७) यक्ष के शाप का कुछ अन्य ही कारण बताया है। उन्होंने लिखा है कि एक बार कुबेर ने सय्या के समय यक्ष से शिवजी को भेंट करने के लिये शीघ्रातिशीघ्र एक माला बनाने के लिये कहा। यक्ष ने माला बनाकर प्रेमवश पहिले अपनी पत्नी को पहिना दी। फिर उसी माला को शिवजी के लिये ले गया। जब सन्ध्या कालीन उत्सव में शिवजी के लिये वह माला भेंट की गई तो उन्होंने निर्माल्य समझ कर उसे अस्वीकृत कर दिया। इस घटना के सारे रहस्य को अपनी प्रविधानशक्ति से पूर्णतया जानकर कुबेर ने यक्ष को शाप दे दिया।

१ मल्लिनाथ ने भूल से रामगिरि को चित्रकूट समझ लिया है। यों तो किसी भी ऐसे पर्वत को जहाँ रामचन्द्रजी रहे हों, रामगिरि कह सकते हैं और चित्रकूट पर अपने बनवास में रामचन्द्रजी रहे भी थे। इसीलिये समस्त मल्लिनाथ ने रामगिरि से चित्रकूट का अर्थ ग्रहण किया है। लेकिन मेघ द्वारा अनुसरणीय मार्ग के प्रारम्भिक स्थान को देखते हुये रामगिरि से दक्षिण का कोई अन्य पर्वत ही समझ में आता है, क्योंकि मार्ग के मध्य में आम्रकूट का (किसी किसी पुस्तक में चित्रकूट का भी) उल्लेख आता है। अतः मल्लिनाथ के मतानुसार रामगिरि से नागपुर के निकट २४ मील के अन्तर पर उत्तर की ओर दिग्धत रामटेक ही समझना चाहिये। मराठी में टेक का अर्थ पहाड़ी ही होता है। इसके अतिरिक्त रामटेक में रामचन्द्रजी

मास को लगते ? उसका विरही हृदय बड़ा व्याकुल हो उठता है और पत्नी के जीवन की चिन्ता भी उसे सताने लगती है^१ ।

इसी समय आकाश में उत्तर की ओर जाता हुआ एक मेघ उसे दिखाई पड़ता है । प्रथम तो मेघदर्शन से उसे कुछ चिन्ता होती है, लेकिन बाद में बड़े प्रेम से स्थागत फेरता हुआ वह उसके कुल, शील और सामर्थ्य की प्रशंसा करता है और फिर उससे अलका नगरी जाने तथा अपनी पत्नी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है । शुभ निमित्तों, अपनी पत्नी के जीवित तथा पतिव्रता बने रहने की आशा और कैलाश पर्वत तक हमों के साथ यात्रा करने के आनन्द से मेघ को पात्रा के लिये प्रोत्साहित कर वह फिर रामगिरि से अलका तक का रमणीय मार्ग उसे बड़े विस्तार के साथ बताता है ।

इस प्रसंग में सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर मालदोज, ^२ वहाँ से फिर कुछ पश्चिम की ओर मुड़कर उत्तर की ही ओर चलने पर आम्रकूट पर्वत, ^३ तदनन्तर विन्ध्याचल के चरणों में बहती हुई नर्मदा नदी का जल ग्रहण करने के बाद

तथा उनके साधियों से सम्बद्ध बहुत से मन्दिर भी पाये जाते हैं और अनेकों यात्री वहाँ समय-समय पर आते हैं । अतः यह निश्चित ही है कि कालिदास के समय में भी यह स्थान एक तीर्थ रहा होगा ।

कुछ विद्वान् रामगिरि से मध्यप्रदेश का रामगढ़ पर्वत समझते हैं । नर्मदा के उद्गमस्थान आम्रकूट के निकट ही यह रामगढ़ पर्वत है ।

१ शेषान् मासान् गमय चतुर — इत्यादि अग्रिम कथन से यह प्रतीत होता है कि आषाढ़ मास तक यज्ञ ने अपने शाप के आठ मास प्रित दिये थे । उसका यह शाप कार्तिक मास से प्रारम्भ हुआ सम्भो जाना चाहिये ।

२ आधुनिक रतनपुर के समीप माटदा नामक स्थान अथवा कोई भी ऊँचा पहाड़ी स्थान ।

३ अमरकण्टक नामक पर्वत जिससे कि नर्मदा तथा अन्य नदियाँ निकलती हैं और जो विन्ध्य पर्वत का पूर्वी भाग है । डा० बराजपे आम्रकूट से सोहागपुर के दक्षिण तथा महादेव पर्वतमाला के उत्तर की कोई पहाड़ी मानते हैं । उनका कथन है कि रामकूट और भिलसा को मिलाने वाली सरल रेखा से पूर्व की ओर २०० मील के अन्तर पर अमरकण्टक स्थित है । अतः यह मेघ का प्रथम निधामस्थान नहीं हो सकता ।

दशार्ण^१ देश और घेन्नती नदी के तट पर स्थित इस देश की राजधानी विदिशा नगरी^२ पहुँचने का मेघ को परामर्श दिया गया है। वहाँ से फिर नीचे ' नामक किसी पर्वत पर विश्राम करने के बाद वननदी,^३ निर्विन्ध्या^४ तथा सिन्धु^५ नदियों पर से होते हुए अचान्त देश और उज्जयिनी नगरी जाने का मेघ से आग्रह किया गया है।

उज्जयिनी के उच्च प्रासादों में विश्राम करने के बाद गन्धवती^६ नदी के निकट

- १ दशार्ण-यह देश जिसमें दस दुर्ग (ऋण हों), यह नदी जिसमें दस नदिया (ऋण = जल) मिलती हों। विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली एक नदी (दोसन) का भी यह नाम है। प्राचीन दशार्ण देश भोपाल सहित मालवा का पूर्वी भाग तथा मध्यदेश का दक्षिण पूर्वी भाग था। मालवा के आधुनिक छत्तीसगढ़ जिले को दशार्ण देश कह सकते हैं।
- २ घेतवा नामक आधुनिक नदी।
- ३ आजकल का भिल्सा नामक नगर।
- ४ विदिशा नगरी के पास की कोई छोटी और नीची सी पहाड़ी।
- ५ मल्लिनाथ बने या नद्य तासाम् ऐसी व्याख्या देकर वननदी नाम की कोई विशेष नदी नहीं मानते हैं। सारोद्धारिणी टीका के लेखक ने मालवदेश में स्थित इस नाम की एक नदी को ही माना है। विटसन ने 'नगनदी' पाठ भेद मानकर पार्वती नदी का ही यह नामान्तर माना है। पार्वती नदी घेतवा नदी से पश्चिम की ओर बहती है और शिप्रा में मिलती है।
- ६ विन्ध्य पर्वत से निकलने वाली नदी। यह नदी पूर्वोक्त वननदी अथवा नग नदी (पार्वती) तथा शिप्रा के मध्य में उत्तर की ओर बहने वाली कोई नदी है। संभवतः आजकल की नेवज नदी का ही यह प्राचीन नाम रहा हो।
- ७ मल्लिनाथ ने सिन्धु नदी से निर्विन्ध्या नदी का ही तात्पर्य लिया है। उसके मत से काश्मीर के सिन्धु नद के अतिरिक्त सिन्धु नाम की कोई नदी कहीं है ही नहीं। लेकिन उसका यह विचार सत्य नहीं है। मालवा में काली सिन्धु नाम की एक नदी पाई जाती है। यह घग्गी नामक स्थान से निकलती है और घग्गल में मिलती है अथवा सिन्धु नदी से उस छोटी सी सिन्धु नदी का भी ग्रहण हो सकता है, जो देवास से निकलकर तथा और भी बहुत सी छोटी नदियों के साथ उज्जैन के पास से गुजरती हुई घग्गल में मिल जाती है।
- ८ उज्जैन के पास एक छोटी सी नदी तथा शिप्रा की एक शाखा जिसके तट पर मदाकाल का मन्दिर बना हुआ है।

महाकाल' के मन्दिर में सायकालीन पूजा के समय तक ठहर कर फिर कहीं किसी भवन बलभि में ही रात्रि बिताकर प्रातः काल आगे बढ़ने के लिए मेघों से कहा गया है। इसके बाद गम्भीरा^२ नदी में विहार करते हुए देवगिरि^३ पहुँचकर वहाँ स्कन्द^४ स्वामी पर पुष्पवर्षा करने और फिर चर्मएवती^५ नदी तथा दशपुर^६ नगर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

तदनन्तर ब्रह्मवर्त^७ और कुरुक्षेत्र^८ होते हुए सरस्वती^९ नदी और वहाँ से फिर कनखल^{१०} के समीप गंगाजी के दर्शन करते हुये हिमालय पहुँचने का मेघ को

१ उज्जैन का प्रसिद्ध शिव मन्दिर तथा शिवजी की मूर्ति—इन दोनों के लिये ही महाकाल कहा जाता है।

२ गन्धवती नदी की तरह मालवा की एक छोटी सी नदी। जिसे ने अपने आदि पुराण, अध्याय २६ में इस नदी का उल्लेख किया है। सभयत जहाँ से चर्मएवती निकलती है, वहाँ से यह नदी भी निकलती है।

३ विरसन के मतानुसार मालवा प्रान्त के मध्य में चम्बल नदी के दक्षिण में स्थित आजकल का देवगढ़ नामक स्थान। डा० फ्लीट के अनुसार भासी से दक्षिण पश्चिम की ओर लगभग ६० मील पर स्थित देवगढ़ नामक ग्राम।

४ कुमार कार्तिकेय। ५- आधुनिक चम्बल नदी

६ आधुनिक चम्बल नदी से कुछ उत्तर की ओर स्थित आजकल का रन्तिपुर या रन्तमपुर नामक स्थान। कुछ लोग सिधना नदी के उत्तरी या बायें तट पर स्थित मन्दसोर के दोसर नामक स्थान को ही दशपुर समझते हैं। पश्चिमी मालवा में मन्दसोर जिले में यह एक प्रमुख नगर है। प्राचीन समय में भी यह एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा, क्योंकि महाभारत, नासिक और गुप्त शिलालेखों में भी इसका उल्लेख मिलता है।

७ ब्रह्मवर्त नाम का पवित्र देश हस्तिनापुर के उत्तर पश्चिम में कुरुक्षेत्र के निकट का देश है। मनु महाराज ने सरस्वती और दृषद्वती नदियों के बीच में इस देश की स्थिति बताई है।

८ कौरवों और पाण्डवों के बीच महाभारत युद्ध का घटनास्थल तथा याने श्वर से दक्षिण पूर्व की ओर का स्थान।

९ भारतवर्ष की एक पवित्र नदी जो कि हिमालय के दक्षिण भाग से निकलती है और मरस्थल के रेत में जाकर बिलीन हो जाती है।

१० दरिद्वार के निकट कनखल नाम का तीर्थ। यह ग्राम गंगा के पश्चिमी किनारे पर बसा हुआ है। मल्लिनोथ ने कनखल नाम का पर्वत माना है, जिसके मुख से गंगा निकलती है।

परामर्श दिया गया है। हिमालय पर्वत पर शिवजी के चरण न्यास^१ की परिक्रमा करने के बाद क्रौंचरन्ध्र^२ में से निकलकर उत्तर की ओर ऊपर चलने पर कौलाश^३ पर्वत और वहा से फिर अलका^४ नगरी जाने के लिए मेघ से कहा गया है।

मार्ग वर्णन के बाद यज्ञ अलका नगरी के वैभव^५ और तिलासप्रय जीवन का वर्णन करता है। फिर अपने गृह तथा उसके आसपास के दृश्यों का वर्णन कर मेघ से स्वल्प शरीर होकर तथा गृहस्थित क्रीडाशैले पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में यज्ञ ने विरहिणी प्रेयसी का बड़ा ही भावपूर्ण काल्पनिक चित्र अंकित किया है। तदनन्तर यज्ञ मेघ से मध्यरात्रि में सौधगतावन में बैठकर और शीतल वायु द्वारा उसे जगाकर (यदि सो रही हो) सन्देश सुनाने की प्रार्थना करता है।

अपना सन्देश^६ रतने के बाद यज्ञ मेघ से प्रेयसी के प्रति सन्देश लाने की भी प्रार्थना करता है तथा उसके मौन भाव से अपने दूत कार्य के स्वीकृत हो जाने की आशा कर अन्त में उसको आशीर्वाद देता है कि सन्देश कार्य को पूरा करने के बाद वह अपनी इच्छा के अनुसार यज्ञ तत्र घूमता रहे और विद्युत् रूपी प्रेयसी से कभी भी उसका वियोग न हो^७।

१ समस्त हरिद्वार के निकट 'हर की पैटी' नामक पहाड़ी।

२ कोई पहाड़ी दर्रा जो कि परशुरामजी के बाण से बना था। हिमालय पर्वत पर स्थित नीति दर्रे का ही शायद यह नामान्तर हो।

३ यह पर्वत मानसरोवर से २५ मील के अन्तर पर स्थित बताया जाता है तथा शिवजी और पार्वती का यह निवासस्थान है।

४ कुबेर की प्रख्यात राजधानी। अपने वैभव के कारण ही इस नगरी का नाम अलका है। अल् धातु का अर्थ ही 'सजाना' है।

५ कुछ पुस्तकों में कथा को कुछ और आगे भी बढ़ाया गया है। उसका सारांश यह है कि मेघ यज्ञ का सन्देश लेकर अलकापुरी पहुँचता है। पूर्व निर्दिष्ट कक्षणों से यज्ञ के घर की पहिचान कर यज्ञ पत्नी के लिए यह यज्ञ का सन्देश सुनाता है। पति के वृत्तान्त को सुनकर यज्ञ कधू बड़ी प्रसन्न होती है। इसी अथ सर पर मेघ द्वारा कहा हुआ यज्ञ वृत्तान्त धनपति कुबेर के भी पास पहुँच जाता है। यज्ञ की कठण दशा को जानकर कुबेर को बड़ी दया आ जाती है और व शपथ को समाप्त कर यज्ञ दम्पती का पुनर्मिलन करा देता है।

काव्य समीक्षा

मेघ सन्देश की कथा सक्षेप में ऊपर दी जा चुकी है। वस्तुतः कथानक 'जैसी कोई वस्तु इस काव्य में है ही नहीं'। यक्ष का नाम क्या था, कुबेर के यहाँ वह क्या कार्य करता था तथा उसका अपराध क्या था—इन सब विषयों पर कवि ने कुछ भी प्रकाश नहीं डाला है। यदि कवि चाहता तो इन सब विषयों पर भी विस्तार के साथ लिख सकता था। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि काव्य में कथा तो उपलक्षणमात्र है। अपने परिचित देशों और स्थानों का यथार्थ वर्णन करना तथा प्रथम बार त्रियुक्त भावुक प्रेमियों की भावनाओं का चित्रण करना ही कवि का मुख्य उद्देश्य है।

काव्य का मूल स्रोत

इस सम्बन्ध में दक्षिणार्थ और मल्लिनाथ का कहना है^१ कि कालिदास ने इस काव्य के लिखने में वारमीकि-रामायण से अग्रश्य ही प्रेरणा प्राप्त की है। रामायण में सीताजी के पास हनुमान् द्वारा रामचन्द्रजी ने सन्देश भेजा ही है। इसी घटना के आधार पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य में—

(१) यक्षश्चक्रे जनकतनयास्तनयं पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥१॥

(२) इत्याप्यात्ते पयन तनय मैथिलीजोन्मुखी सा ॥२॥४०॥

जैसे स्थलों में जनकतनया, राम और पयनतनय के उल्लेख से भी रामायण की घटना का पाठकों के समक्ष चित्र उपस्थित हो जाता है। इसके अतिरिक्त विरद्विणी नायिका का वर्णन भी विरद्विणी सीता के वर्णन से बहुत कुछ मिलता जुलता है। यक्ष पत्नी के सम्बन्ध में कहे गये—

ता जानीथा परिमितकथा जीयित मे द्वितीय
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिदं काम् ।

गाढोत्कण्ठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बाला
जाता मन्ये शिशिर मथिता पदिमर्नां वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

१ प्रायः सभी सन्देश काव्यों में कथा वस्तु का ऐसा ही स्वरूप पाया जाता है।

२ यह खलु कवि सीता प्रति हनुमता हारितं सन्देशं हृदयेन समुद्बुद्धन् तत्स्थानीयनायकाद्युत्पादनेन संदेशं करोति । (दक्षिणार्थ) सीता प्रति रामस्य हनुमत्सन्देशं मनसि निधाय मेघसन्देशं कवि कृतवान् । (मल्लिनाथ)

पद्य में

हिमद्वत-नलिनीय नद्यशोभा व्यसनपरम्परया निपीड्यमाता ।

सहचर रहितेन चक्रवाकी जनक सुता कृपणा दशा प्रपन्ना ॥ रा० रा० सु० १६ ३० ।

की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है ।

इसी प्रकार कई अन्य स्थलों में भी समानान्तर भाव पाये जाते हैं । रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वर्षावर्षान के प्रसंग में कहा गया है—

१ मही धार्य विमुचति ॥२८॥७॥

२ प्रवासिनो यान्ति नरा स्वदेशान् ॥२८॥२२॥

३ (मिथा) महत्सु शृगेषु महीधराणा विश्रम्य विश्रम्य पुन प्रयान्ति ॥२८॥२२॥

४ मेधाभिकामा परिसम्पतन्ती समोदिता भाति धलाक पक्ति ।

धातायधुता धरपोण्डरीकी लम्बेव माला रचिराम्बरस्य ॥२८॥२३॥

मेघ सन्देश में भी मेघ के प्रसंग में ऐसे ही समानान्तर भाव व्यक्त किए गये हैं—

१ काले २ भयति भवतो यस्य संयोगमेव

स्नेहव्यक्तिश्चिर विरहजं मुचतो वाष्पमुष्णम् ॥१॥१२॥

२ यो वृन्दानि त्वरयति पयि धाम्यता प्रोषितानाम् ॥२॥२८॥

३ विन्न खिन्न शिखरिषु पद न्यस्य गन्तासि यत्र (मारो) ॥१॥१३॥

४ नूनमाघद्धमाला

सेविष्यन्ते नयन सुभगं खे भजन्त धलाका ॥१॥६॥

इस काव्य के—

१ (मिथे) त्वप्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शके मृगान्या

मीन क्षोभाच्चल कुबलय धी तुलामेष्यतीति ॥२॥३५॥

२ सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्त सवाहनानाम् ।

यास्यत्यूरु सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥२॥३६॥

३ आलिंगयन्ते गुणयति मया ते तुपाराद्रिपाता

पूर्वं स्पृष्ट पदि किल भवेदगमैभिस्तथेति ॥२॥३६॥

इत्यादि स्थलों में भी, रामायण के क्रमशः निम्नलिखित, पद्यों की छाया विद्यमान है—

- १ तस्या शुभ वाममरालपद्मराजीवृत कृष्णविशालशुक्लम् ।
प्रास्पन्दतैक नयन सुकेश्या मीनाहत पद्ममिराभिताम्रम् ॥
॥रा० सु० २६ २॥
- २ गजेन्द्र दस्तप्रतिमश्च पीनस्तयो ह्वयो महतयोस्तु जात ।
प्रस्पन्दमान पुनरुरुरस्या राम पुरस्तात्स्थितमाचचक्षे ॥
॥रा० सु० २६ ४॥
- ३ षाढि वात, यत कान्ता ता स्पृष्ट्वा मामपि स्पृशे ।
त्वयि मे गात्र सस्पर्शश्चन्द्रे दृष्टिसमागम ॥

रामायण में हनुमान्जी के प्रति विश्वास उत्पन्न कराने के लिये रामचन्द्रजी ने सीताजी के पास अपनी अंगूठी भेजी है तथा सीताजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी चूड़ामणि हनुमान्जी को देकर जयन्त की कथा का उल्लेख किया है। इसी तरह इस काव्य में भी यज्ञ अपने वैवाहिक जीवन की एक घटना मेघ को अभिज्ञान के रूप में बताता है तथा अपनी प्रेयसी के पास से भी कुछ अभिज्ञान के, लाने के लिये कहता है। इस तरह रामायण और मेघसन्देश में विभिन्न स्थलों में सादृश्य दृष्टिगोचर होता है। भारतीय रामायण में हनुमान्जी के द्वारा रामचन्द्रजी के सन्देश तथा उनकी अंगूठी देने के बाद सीताजी के सम्बन्ध में कहा गया है—

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुं करविभूषितम् ।
भर्तारमिथ सप्राप्तं जानकी मुदिताऽभवत् ॥सु०॥३६॥४॥

मेघ सन्देश में भी मेघ के परिचय के बाद यज्ञपत्नी के दत्तचित्त हो जाने की संभावना करते हुए कहा गया है—

धोष्यत्यस्मात्परमवहिता सीम्य सीमन्तिमीनां
कान्तोदन्त सुहृदुपगत सगमात् किञ्चिद्दूत ॥२॥३८॥

लेकिन रामायण की घटना तथा वर्णन साम्य के आधार पर हम यह नहीं मान सकते कि कवि ने रामायण के भागों का अपहरण कर यह काव्य लिखा है। भले ही उसने रामायण से इस काव्य के लिखने की प्रेरणा प्राप्त की हो, लेकिन उसने काव्य का विस्तार अपने ही दृग से किया है।

काव्य में विभिन्न स्थलों में जो भावसाम्य पाया जाता है, उसका भी कारण यही है कि कालिदास आदि कवि भारतीय की रामायण का, परम प्रशंसक था

और उसकी शैली न केवल मेघसन्देश में बरिक्त सभी रचनाओं में रामायण से प्रभावित है^१। वृहत्कथा में वर्णित यक्षों के शापों^२ की कथाओं^३ और महाभारत, श्रीमद्भागवत^४ तथा जातक कथाओं में आये हुए दूत प्रसर्गों से

१. रामायण में रावण को परास्त करने तथा मारने के बाद रामचन्द्रजी सीताजी तथा अपने अन्य माधियों के साथ लका नगरी से अयोध्या वापिस लौटते हैं। पुष्पक विमान द्वारा इस यात्रा के वर्णन प्रसर्ग में कवि को लका से अयोध्या तक के भूभाग का वर्णन करने का अवसर प्राप्त हुआ है। कालिदास ने भी इसी स्थल से सजेत लेकर रघुवश के स्तरद्वय सर्ग में इस वायु यात्रा का ही वर्णन किया है। चूंकि रघुवश कवि की मेघसन्देश से पूर्व की रचना है, अतः समझ है कि रघुवश के इस सर्ग को लिखते समय कवि के मन में अकस्मात् मेघसन्देश लिखने की प्रेरणा उत्पन्न हो गई हो।

इसके अनिश्चित कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि विक्रमोर्वशीय नाटक के लिखते समय भी कवि के मन में मेघदूत की कल्पना कुछ प्रस्फुटित हो रही थी। तभी तो इस नाटक के चतुर्थ अंक में पुरूरवा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए चित्रलेपा कहती है—अनेन पुनर्निर्वृतागमप्युत्कण्ठकारिणा मेषोदयेनापतीकारो भविष्यतीति तर्कयामि। और पुरूरवा भी अपनी प्रेयसी के प्रियोग में उन्मत्त होकर मेघ को रात वार सम्बोधन करता है तथा मयूर, कोकिल, राजहंस, शकशाक, भ्रमर, गजराज, परंत, नदी और हिरन इत्यादि से उर्वशी का पता पूछता है।

२. समझ है कि 'योगिनी माहात्म्यम्' में वर्णित आपाठ कृष्ण पकादशी की कथा के आधार पर यह काव्य लिखा गया हो। यह कथा इस प्रकार है कि हेममाली नामक यक्ष मानसरोवर से कुरेर के लिए पुष्प तोड़ कर लाया करता था। एक दिन उसने अपने कर्त्तव्य पर ध्यान न दिया और अपनी पत्नी त्रिशालाक्षी के पास ही रह गया। इस बात पर कुब्ज होकर कुरेर ने उस श्वेतकुष्ठ लगाकर निर्वासित कर दिया। हिमालय पर घूमने २ उसे मार्सगहेय श्रुति मिले और उनके कहने से उसने आपाठ मास के कृष्ण पक्ष में योगिनी जल रक्षला। इस प्रकार रोग से मुक्त होकर वह समय पर अपने घर लौट आया और अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

३. श्रीमद्भागवत में दशम स्कन्ध में ६० वें अध्याय में स्त्रियों द्वारा मेघ को भी सम्बोधन किया गया है—

मेघे श्रीमन्ममसि दयितो यादवेन्द्रम्य नूनम्

धीवत्साक धयमिव भवान् ध्यायति प्रेमवद् ।

अयुत्कण्ठ शबल हृदयोऽस्मद्विधो पाप्मधारा

स्मृत्या स्मृत्या विस्तृजसि मुहुर्दुःखदस्तप्रसंग ॥२०॥

इस श्लोक में मन्दाप्रान्ता छन्द का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है।

भी कवि ने कुछ प्रेरणा भले ही प्राप्त की हो तथा यह भी सम्भव है कि घटकपर्प कवि के यमक काव्य से भी मेघ के दूत बनाने का विचार कवि के ध्यान में आया हो, लेकिन यह तो मानना ही पड़ेगा कि विभिन्न नगरों, नदियों और पर्वतों इत्यादि का वर्णन कवि ने बड़े सजीव और सरस ढंग से किया है तथा यक्ष दम्पती की विरहावस्थाओं का चित्रण भी बड़ा ही भावपूर्ण और अद्वितीय है। अन्य प्राचीन स्रोतों से सहायता लेकर इस काव्य के लिखने पर भी कवि की धमलकीर्ति में कुछ भी घट्टा नहीं आता है। अपने अन्य ग्रन्थ जैसे अभिज्ञान शाकुन्तलम्, रघुवशम् और कुमारसम्भवम् के लिखने में भी कवि को पुराणों तथा अन्य काव्यों से सहायता लेनी पड़ी है। अन्य देशों के बड़े बड़े कवियों ने भी जैसे अग्नेज कवि शेक्सपियर ने अपने ग्रन्थों के लिये प्लाट अपने से प्राचीन स्रोतों से ग्रहण किये हैं। कवि का महत्त्व उसके वर्णन प्रकार, मनुष्य स्वभाव की भीतरी पेंड और पात्रों के ठीक तथा प्रभावशाली चुनाव पर निर्भर है। इसलिये यदि यह मान भी लिया जाये कि मेघ-दूत के लिखने में कवि को अन्य स्रोतों का आधार लेना पड़ा है, तो भी भारतीय कवियों में उनका पद कवि सम्राट के सर्वाथा उपयुक्त है। कविता के क्षेत्र में एक नये शिल्पविधान के साथ साथ एक नई काव्यपरम्परा के जन्म देने का श्रेय कालिदास को ही है और उसका यह सन्देश काव्य भावपक्ष तथा कलापक्ष दोनों दृष्टिकोणों से एक अभिनव रचना है।

साहित्यक आलोचना

कवि ने इस काव्य को दो भागों में विभक्त किया है। प्रथम भाग को पूर्ण मेघ तथा द्वितीय भाग को उत्तरमेघ भी कहा जाता है। प्रथम भाग में विरही यक्ष का मेघदर्शन, मेघ का स्वागत, सन्देश लेजाने की प्रार्थना तथा मार्ग-वर्णन है। द्वितीय भाग अथवा उत्तर मेघ में अलका नगरी, यक्ष गृह तथा विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद सन्देश कथन और अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया गया है।

मार्ग वर्णन के प्रसंग में कवि ने विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों तथा रमणीय स्थानों का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है। वर्षा ऋतु के आगमन से प्रकृति में होने वाले परिवर्तनोंका भी बड़ा ही भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मार्ग वर्णन कुछ स्थानों की केवल सूचीमात्र नहीं है, बल्कि

१ चीन के हुस्कन (Huskun) (१२६००१ ई०) नामक कवि ने भी एक स्थान पर एक भद्र महिला द्वारा मेघ को दूत नियत करके अपने स्वामी के पास भेजने का वर्णन किया है। इसने नागार्जुन की प्रज्ञामूल शास्त्र टीका का चीनी भाषा में अनुवाद किया था। यह ग्रन्थ कालिदास के पूर्वनिश्चित समय के अनुसार उत्तर कालीन रचना है। अतः इस ग्रन्थ के प्रभाव का तो कुछ प्रश्न ही नहीं उठता है।

तत्तत् स्थान को एक शब्दचित्र है और इसके द्वारा तथा मेघ को दूत बनाने से भी पूर्व मेघ में कवि को प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन करने का एक बड़ा सुअवसर प्राप्त हुआ है। मेघ स्वयं ही प्रकृति का एक सुन्दर रूप है और इन्द्र धनुष के साथ तो उसका सौन्दर्य और भी बढ़ जाता है। ऐसे ही दृश्य का वर्णन करते हुए कवि ने मेघ से कहा है—

रत्नच्छायव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेत त्पुरस्तात्
वर्तनीकाप्रातप्रभवति धनु खण्डमाखण्डलस्य ।

येन श्यामं, वपुरतितरा कान्तिमापत्स्यते ते
बह्वेषु स्फुरितरचिमो गोपवेशस्य विष्णो ॥१॥२॥

कवि ने इन्द्र धनुष से सयुक्त मेघ के लिये मयूरपंख धारण किये हुये गोपवेश विष्णु की कितनी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है।

मेघ के सम्पर्क से शोभायमान आम्रकूट पर्वत का भी कवि ने बड़ा ही मनोहर चित्र अंकित किया है—

द्वन्नोपान्त परिणतफलद्योतिभिः काननाम्नै,
त्वय्यारूढे शिखरमचल स्निग्धषेणीसवर्णे ।

नून यास्यत्यमर मियुन प्रेक्षणीयामयस्याम्
मध्ये श्याम स्तन इव भुव शेषविस्तार पाण्डु ॥१॥२॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ हो जाने पर सारंगों (भृ गों), कुरगों और हाथियों) द्वारा मेघमार्ग के सूचित किये जाने का बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है—

नीपं दष्ट्वा हरितकपिश केशरैरर्धरूढै
आग्निभूतप्रथम मुकुला कन्दलीशिवानु कच्छम् ।

अग्निारण्येष्वधिक सुरभि गन्धमाघ्राय चोर्वा
सारगास्त जल लघमुक्त्वा सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥१॥२॥

विन्ध्य पर्वत पर विभिन्न धाराओं में बहती हुई नर्मदा नदी के लिये कवि यही सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

रेया द्रक्ष्यस्युपलधिपमे विन्ध्यदे विशीर्णा
भक्तिन्दैरिय विरचिता भूतिमगे गजस्य ॥१॥२॥

नर्मदा नदी को विन्ध्य पर्वत रूपी हाथी के शरीर की शृंगार रचना बताकर कवि ने इन दोनों के स्वरूप का एक चित्रता उपस्थित कर दिया है।

मेघ दर्शन अथवा वर्षा ऋतु के आने पर मयूरों का आनन्दित होना प्रसिद्ध ही है। इसीलिये कवि ने मेघ के लिये लिखा है -

शुक्लापागै सजल नयनै स्वागतीकृत्य केका
प्रत्युद्यत् कथमपि भवान् गन्तुमाशु व्यवस्थेत् ॥१॥२३॥

वर्षा ऋतु में दशार्ण देश के वर्षाकालीन प्राकृतिक धैम्य का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है -

पाण्डुच्छायोपरनवृतय केतकी सूचिभिन्नै
नीडारम्मैर्गृहवलि भुजामाकुल ग्राम चैत्या ।
त्वय्यासन्नैः परिणत फलाश्याम जम्बू वनान्ता
सपत्स्यन्ते कतिपयदिनं स्थायिहस्ता दशार्णा ॥१॥२४॥

वर्षा ऋतु के प्रारम्भ होने पर केतकी पुष्पों का खिलना, वायस इत्यादि पक्षियों का घोंसला बनाना और जामुनों का परना प्रसिद्ध ही है। इस त्रिविध सौन्दर्य को देखकर वर्षा ऋतु में भी बड़ा हसों का कुछ दिन और ठहर जाना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर शैलराज से उतरती हुई गंगा का भी कवि ने बड़ा भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है -

तस्माद्गच्छेरनुकनखल शैलराजावतीर्णाम्
जहो कन्या सगरतनयस्वर्गसोपातपक्तिम् ।
गौरीरम्भ्रुकुटिरचना या विहस्येय फेनै
शम्भो केशप्रदणमकरोदिन्दुलक्ष्मोर्मिहस्ता ॥१॥२५॥

शिवजी द्वारा अपनी जटाओं में गंगा के धारण किये जाने की घटना के आधार पर कवि ने बड़ा गंगा में किसी प्रौढ़ा नायिका का भाव कितनी सुन्दर रीति से आरोपित कर दिया है।

गंगा के स्फटिक समान निर्मल जल को पीने के लिये मेघ के रुहने की सभा बना करते हुए कवि ने क्या ही सुन्दर उल्लेख का ही है -

ससर्पन्त्या सपदि भयत स्रोतसिच्छाययाऽसौ (गंगा)
स्यादस्थानोपगतयमुनः(स्वगमेशाभिरामा ॥१॥२६॥

गंगा के बाद हिमालय पहुँचने पर मेघ की शोभा के लिये भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है -

तस्या एव प्रभञ्जमचल प्राप्य गौर तुपारै
 वक्ष्यस्यध्वजमविनयन तस्य शृ गे निवर्ण
 शोभा शुभ्रनिनयनवृषोत्खातपकोपमेयाम् ॥१॥५३॥

तुपार से श्वेत हिमालय के किसी शृ ग पर बैठे हुए मेघ को शिवजी के वृष के सींग में लगी हुई पक से उपमा देकर कवि ने मेघ के सौभाग्य को बढ़ाया ही है।

कौलाश पर्वत के वर्णन में तो कवि ने बड़ा ही चमत्कार दिखाया है। इस पर्वत की धबलता को हृदयगम कराने के लिये कवि ने इसे दिव्यागनाओं का दर्पण तथा शिवजी का अट्टहास ही बना दिया है—

कौलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि स्या ।
 शृ गोच्छ्रायै कुमुद विशद्रेयों वितत्य स्थित च
 राशीभूत प्रतिदिशमिन् त्र्यम्बकस्याट्टहास ॥१॥५६॥

इस प्रकार पूर्व में कवि ने विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों का बड़ी सुन्दरता के साथ चित्रण किया है। साथ में स्थान स्थान पर उत्कृष्ट मानवीय भावनाओं का भी सम्मिश्रण पाया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कालिदास का मेघ 'धूम-ज्योति-सलिलमरता सन्निपात' ही नहीं है, बल्कि बह यज्ञ का मित्र और बन्धु है तथा यज्ञ की पत्नी उसकी सखी अथवा उसके भाई की जाया है।

पर्वतों के वर्णन में भी कवि ने प्रायः सर्वत्र ही मेघ को उनका मित्र बताया है। तभी तो रामगिरि के सम्बन्ध में कवि कहता है—

काले काल भवति भवतो यस्य (रामगिरे) संयोगमेत्य
 स्नेह व्यक्तिश्चिरविरहज मु चतो वाप्यमुष्णाम् ॥१॥५३॥

चिर विरह के बाद मिलने वाले मित्रों का अश्रुपात करना स्वाभाविक ही है। वर्षा ऋतु के आगमन से वन की अग्नि शान्त हो जाती है। इस बात को मेघ का आश्रुकूट पर्वत के प्रति उपकार बताकर पर्वत द्वारा मित्र रूप से उसके भी अध्यथम दूर करने का वर्णन किया गया है—

त्वामासार-प्रशमित-यनीपप्लवं साधु मूर्ध्ना
 वक्ष्यत्यध्यथम परिगतं सानुमानाश्रुकूटं ।
 न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुहृतापिप्तया संश्रयाथ
 प्राप्त मित्रे भयति विमुञ्च किं पुन यस्तथोच्चै ॥१॥५७॥

इसी प्रकार नीचे नामक पर्वत को भी मेघ के सम्पर्क से पुलकायमान बताया गया है—

नीचैराख्यं गिरिमधिरसेस्तत्र विश्रामहेतो
स्वत्सम्पर्कात् पुलकितमित्र प्रौढपुष्पै कदम्बै ॥१॥२६॥

मित्र के सम्पर्क से मित्र का पुलकित होना स्वाभाविक ही है।

आकाश में जाते हुए मेघ के वर्णन में कवि ने यही ही कोमल मानवीय भावनाओं का उल्लेख किया है -

त्वमारूढ पवन पदवीमुदुग्दृहीतालकान्ता
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रत्ययादाश्रसत्य ॥१॥२७॥

प्रोपितभर्तृकाश्रों का मेघ दर्शन होने पर प्रिय के वापिस लौटने के विश्वास से अत्युत्कण्ठित होना स्वाभाविक ही है।

ग्रामीण सरल स्त्रियों द्वारा मेघ के देये जाने का भी कौसी भावभंगिमा के साथ कवि ने वर्णन किया है -

त्वग्यापत्त कृपिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञै
प्रीतिस्निग्धैर्जनपद्वधू लोचनै पीयमान ॥१॥२६॥

मार्ग में पडनेवाली नदियों को प्रायः मेघ की प्रेयसियों के रूप में ही कवि ने वर्णित किया है। वेजवती (वेतवा) नदी का निम्नट मेघ के पहुँचने का प्रसंग लेकर कवि कहता है -

गत्वा सद्यः फलमविकल कामुकत्वस्य लब्धा ।
तूरीयान्तस्तनितसुभग पात्यसि स्वादु यस्मात्
सभ्रभृगं मुपमित्र पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥१॥२७॥

यहाँ पर मेघ को कामुक तथा वेजवती नदी को विलासिनी स्त्री के रूप में चित्रित किया गया है।

निर्विन्ध्या नदी के पास पहुँचने पर भी कवि ने इस नदी को मेघ की नायिका के रूप में ही वर्णित किया है -

धीक्षिन्नोभस्तनित विहगश्रेणि काची गुणया
ससर्पन्त्या स्खलित सुभग दर्शितार्तनाभे ।
निर्विन्ध्याया पथि भव रसाभ्यन्तर सन्निपत्य
स्त्रीणामार्थं प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥२६॥

रूपक और श्लेष की सहायता से कवि ने किस सुन्दर रीति से यहाँ निर्विन्ध्या नदी में नायिका के व्यवहार का वर्णन किया है।

सिन्धु नदी (मालवा की काली सिन्धु नदी) को भी मेघ की प्रेयसी के रूप में ही चित्रित किया गया है —

पेणीभूतप्रतनुमतिला ताम्रतीतस्य सिन्धु,
 पाण्डुच्छायातटरुद्धतरभ्र शिभिर्जीर्णं पर्यै ।
 सौभाग्य ते सुभग'त्रिहाजस्थया व्यजयन्ती
 काश्य येन त्यजति विधिना स त्रयैर्बोषपाद्य ॥१॥३०॥

मेघ के प्रियोग में सिन्धु नदी (मालवा की काली सिन्धु नदी) को कृश बता कर कवि ने उसे मेघ की प्रोपितभर्तृ का नायिका का रूपक दिया है ।

आगे चलकर गम्भीरा नदी भी एक उदात्त नायिका के रूप में ही वर्णित की गई है —

गम्भीराया पयसि सरितश्चेतसीन प्रमन्ते
 छायात्माऽपि प्रकृति सुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
 तस्मादस्या घुमुदशिवान्यर्हसि त्व न धैर्यात्
 मोधीकतु चट्टलशफरोद्धर्तनप्रेक्षितानि ॥१॥४१॥

उपमा और रूपक की सहायता से गम्भीरा नदी को एक उदात्त और अनुरक्त नायिका के रूप में यहाँ उपस्थित किया गया है ।

नदियों के वर्णन प्रसंग में उनके साथ मेघ के प्रणय सम्बन्ध की चर्चा करने पर भी कुछ नदियों के प्रति मेघ की न करल नम्र वरिष्क श्रद्धालु भी दिखाया गया है । इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ से चर्मएवती (चम्पल) नदी का सत्कार करने के लिये भी कहा गया है —

व्यालम्येया सुरभितनयालम्भजा मानयिष्यन्
 स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणता रन्तिदेवस्य कीर्तिम् ॥१॥४६॥

सारस्वती के जल से तो मेघ क अन्त शुद्ध होने तक का उल्लेख किया गया है —

वृत्त्या ताम्रामभिगममृषा सौम्य सारस्वतीनाम्
 अन्त शुद्धस्त्वमपि भविता पर्यभाषेण वृष्ण ॥१॥५०॥

कवि ने न केवल नदियों को ही मेघ की नायिकाओं के रूप में चित्रित किया है, वरिष्क उज्जयिनी के प्रसंग में तो यदा की पौराणनाश्री के साथ भी मेघ के प्रणय संबंध की व्यंजना की गई है —

त्रिद्युद्दामस्फुरित चकितैस्तत्र पीरागनानाम्
लोलापागै र्यदि न रमसे लोचनै र्यन्चितोऽसि ॥१॥२८॥

उज्जयिनी में रात्रि के समय अभिसार के लिए जाती हुई रमणियों को कथि ने विजली द्वारा मार्ग दिखाने का भी मेघ से आग्रह किया है तथा बरसने और गरजने क लिये तो सर्वथा निषेध किया है —

सौदामन्या कनक निक्प स्निग्धया दर्शयोर्मम
तोयोत्सर्गन्तन्तिमुखरो मा स्म भूर्निम्नवास्ता ॥१॥३८॥

इसके अतिरिक्त उज्जैन में महाकाल की पूजा करने, देवगिरि में स्कन्द स्वामी पर पुष्पपर्वा करने तथा हिमालय पर शिवजी के चरणन्यास की भक्तिपूर्ण परिक्रमा करने का यथास्थान मेघ को आदेश दिया गया है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मार्ग वर्णन के द्वारा वाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों का ही कवि ने सश्लिष्ट रूप में चित्रण किया है। साथ में काव्य की कथा के मूल तर्कों-प्रेमियों का प्रियोग, तज्जन्य मानसिक वेदना और इस अस्थिति में मेघ का सहायक होना- को कवि ने पाठकों की दृष्टि से कहीं भी दूर नहीं होने दिया है। प्रकृति वर्णन तथा मानवीय भावनाओं क चित्रण में सयोग और प्रियोग के मिश्रित धाताधरण की भलक सर्वत्र ही दिखाई देती है। नगर, पर्वत तथा उदिया केवल भौगोलिक दृष्टि से ही वर्णित नहीं की गई हैं, बल्कि उनको भी काव्य में उल्लामक ढंग से समन्वित कर और किसी न किसी रूप में मेघ से संबद्ध मान कर ही वर्णित किया गया है।

पूर्वमेघ में जिस प्रकार वाह्य प्रकृति ने वर्णन की प्रचुरता है, उन्ही प्रकार उत्तर मेघ में मानव प्रकृति के चित्रण का प्राचुर्य पाया जाता है। अलका नगरी तथा अपने गृह के वर्णन के बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी के स्वरूप का वर्णन करता है-

तन्वी श्यामा शिपरिदशना पञ्चविभ्याधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकित हरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभि ।
श्लोणीभारादलसगमना स्तोक नम्रा स्तनाभ्याम्
या तत्र स्थाद्युति विपथे सृष्टिराथेव धातु ॥ २ ॥ २१ ॥

यक्ष पत्नी के इस स्वरूप वर्णन में कवि ने आदर्श सौन्दर्य की अपनी कल्पना को ही साकार रूप दे रखा है। यक्ष पत्नी को दूसरे शब्दों में हम पद्मिनी भी कह सकते हैं। कवि ने भी अग्रिम पद्य में 'जाता मन्थ शिशिरमथिता पद्मिनी वाऽन्य रूपाम्' ॥२॥२२॥ कहकर यक्ष पत्नी के पद्मिनी होने की ही पुष्टि की है।

यक्ष दम्पती का परस्पर प्रेम भी दाम्पत्य प्रेम का एक उत्कृष्ट आदर्श है। तभी तो यक्ष मंत्र से कहता है -

ता जानीया परिमितकथा जीवित मे द्वितीयम्
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमित्रकाम् ॥२॥२०॥

यक्ष ने अपनी पत्नी को अपना द्वितीय जीवन तथा अपनी अनुपस्थिति में उसे चक्रवाक वधू की तरह एकाकिनी बनाकर अपने पारस्परिक प्रेम की अनन्यता तथा दृढता प्रतिपादित की है। इसीलिये तो उसे शका होती है कि उसकी पत्नी अग्र-य ही प्रथम विरह में बड़ी दुखी हो रही होगी।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण कल्पना चित्र प्रस्तुत करता है -

नून तस्या प्रथमरदितोच्छ्रुनेत्र प्रियाया
निश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम् ।
हस्तन्यस्त मुखमसकलव्यक्ति लभ्यालकत्वात्
इन्दोर्देन्य त्वदनुसरणकिलकान्तेर्विभक्ति ॥२॥२३॥

पतिवियोग में नितान्त रोते रहना, उष्ण निश्वास से अधरोष्ठ का फीका पद जाना, केशसंस्कार न करना तथा हथेली पर मुख का रखे रहना पतिप्राण यक्ष पत्नी के विषाद, शोक और चिन्ता की पराकाष्ठा को व्यक्त करते हैं। कवि ने इस पद्य में विरहिणी यक्षपत्नी का बड़ा ही भावपूर्ण कल्पना चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर विरहिणी यक्ष पत्नी की विरह कालीन विभिन्न अस्मयाश्रों तथा चट्टाश्रों की बड़ी मधुर समायना की गई है। यक्ष मेघ से कहता है कि उसकी पत्नी या तो देवताओं की पूजा में लगी होगी, या विरह में धीरे धीरे आकृति का अपने मनोभावों के अनुसार चित्र बनानी होगी, या पिंजड़े की मैना से पूछती होगी- हे रसिके, क्या तुम्हें भी स्वामी की याद आती है? तू तो उनकी बड़ी दुलारी थी। सभ्य है कि मलिन वस्त्र पहिने हुए गोद में धीला रखकर नेत्रों के जल से भंगे हुए तन्तुओं को किसी तरह ठीक ठाक करके मेरे नामांकित पद को गाने की इच्छा से सर्गात में प्रवृत्त वह अपनी स्वरविधि को भी भूलती हुई दिखाई पड़े? इस प्रकार

१ आलोके ते निपतति पुरा सा यलि व्याकुला या
मन्सादश्य विरहतनु या भावगम्य लिखन्ती ।
पृच्छन्ती वा मधुर वचना सारिका पञ्जरम्याम्
कच्चिद्भर्तु रमरसि रसिके त्व हि तस्य प्रियेति ॥२॥२०॥ ।

२ उत्सवे या मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य धीणा
मद्गोत्राश्च विरचितपदं गेपमुद्गातुक्वामा ।
तन्त्रीमात्रां नयनसन्निहै सारयित्वा कथञ्चिन्
भूयो मूय स्वयमपि पृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥२॥२५॥

प्रेयसी की मन सग अवस्था के वर्णन के बाद यक्ष कहता है कि एक वर्ष के लिये निश्चित मेरे वियोग की अधि के अवशिष्ट मासों को गिनने के लिये देहली पर चढाये पूजा के फूलों को उडा कर, समग्र है, उह भूमि पर रख रही हो। या फिर भौंति भौंति के समागम सुखों का अपने मन में वह आनन्द ले रही हो।

विरह काल में विभिन्न मनोविनोदों के द्वारा प्रेयसी की मन सग और सकृपा वस्था के वर्णन के बाद यक्ष ने उसकी अन्य अवस्थाओं का भी अपनी कल्पना के आधार पर बडा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। यक्ष कहता है कि चित्र लेखन या वीणा बजाने आदि में दिन तो किसी तरह उसकी प्रेयसी का कट जाता होगा, लेकिन रात्रि में तो वह बडा दुःख उठाती होगी और मध्य रात्रि में भी जमीन पर जागती ही रहती होगी—

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोग
शके रात्रौ गुह्यतर शुच निर्विनोदा सखां ते ।
तामुन्निद्रामभनिशयना पश्य साध्वीं निशीथे ॥ २ ॥ २७ ॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका की अगरावस्था का भी वर्णन किया है।

यक्ष अपनी विरहिणी पत्नी को बडा कृश तथा विरह शय्या पर पक करवट से लेटा हुआ और रात्रि भर रोता हुआ ही बताता है—

आधिक्षामा विरहशयने सन्निपण्णैकपात्र्याम्
(रात्रिम्) तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥२॥२८॥

प्रिय सयोग में चन्द्रमा की जो किरणें अमृत के समान शीतल लगती थीं, वियोग में वे विरह-वेदना को और भी उर्दीत करती हैं। इसलिए चन्द्रमा को देखकर भी विरहिणी यक्ष पत्नी के नेत्रों से आसू वहने लगते हैं और वह अपने नेत्रों को बन्द कर लेती है। यक्ष पत्नी की विरह जन्य इसी विषय द्वेष अवस्था का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

पादानिन्दोरमृतशिशिरान् जालमार्गप्रविष्टान्
पुर्वं प्रीन्या गतमभिमुख सन्निवृत्त तथैव ।
अक्षु रोदात् सलिल गुरभि पद्मभिश्रद्धादयन्तां
साध्रं ऽह्नीय म्थलकमलिनीं न प्रमुञ्जा न सुप्ताम् ॥२॥२९॥

१ शेषान्मासान् विरहदिनसम्थापितम्यारधेयां
विन्ध्यस्यन्ती भुवि गणनया देहर्तादत्तपुष्पै ।
मत्सर्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्यादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वगनाना विनोदा ॥२॥३०॥

यक्ष पत्नी की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण करने के लिए कवि ने उपमा भी वहीं ही उपयुक्त दी है ।

विरहवेदना की उत्कटता में यक्ष पत्नी को शरीरसंस्कार से रहित, उष्ण निश्वासे छोड़ता हुआ और स्वप्न में ही प्रियसमागम के विचार से निद्रा को चाहने पर भी प्रबल अश्रुवेग के कारण निद्रा न पाता हुआ वर्णित किया गया है—

निश्वासेनाधरकिशलयन्लेशिना विश्विपन्ती
शुद्धस्तानात् परंपमलक नृनमागएडलम्भम् ।
-मत्सभोग कथमुपनयेत् स्वप्नजोऽपीति निद्राम्
आकाक्षन्तीम् नयनसलिलोत्प्लवङ्गद्वानकाशाम् ॥२॥३०॥

वियोग में यक्षपत्नी को रोता हुआ बताकर कवि ने यहाँ उसके लज्जास्याग की व्यञ्जना की है ।

विरहिणी यक्षपत्नी का चित्त विलकुल ही अस्थिर रहता है । वह खुरखुरी, बेचैनी और एक में लिपटी हुई अपनी चोटी को जो लूने मात्र से पीछा पहुँचाती हो, अपने गण्डस्थल के पास से लम्बे नरों वाले हाथ द्वारा बार बार दटाती हुई वर्णित की गई है—

आद्ये वद्धा विरहदिवसे वा शिष्या दाम द्वित्वा
शापस्यान्ते प्रिगलितशुचा ता मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनत्वेनासकृत् सारयन्ती
गण्डाभोगात् कठिनविपमामेकत्रैणीं करण ॥२॥३१॥

विरह कालीन पक्ष वेणी को बार बार कपोलस्थल से दटाना नायिका के चित्त विभ्रम अथवा उन्माद को सूचित करता है ।

अन्त में यक्ष भेग से कहता है कि आभूषणों से रहित, भौंति भौंति के दुर्लों से तड़ते हुए तथा विरहशय्या के मध्य में किसी तरह पड़े हुए उसके सुकुमार शरीर को देखकर तुम भी अवश्य रो पड़ोगे—

सा सन्न्यस्ताभरणमरला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्संगे निहितमसकृद्बुद्धु'गेन गात्रम् ।
त्वामप्यस्त्र नवजलदय मोचविष्यत्यवश्यम् ॥२॥३२॥

यक्ष पत्नी को इस पद्य में अत्यन्त शीण और अशक्त बताकर कवि ने उसकी मूर्च्छास्थिति की ओर संकेत किया है । इसीलिये तो उसे देखकर भेग के भी रो पड़ने का समाधान की गई है । आगे चलकर वियोगिनी यक्षपत्नी के नयन के सम्बन्ध में—

रुद्रापागप्रसरमलैरजनहनेहशून्यम्
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
नयनम् ॥२॥३४॥

फइ कर तो कवि ने विरह की प्रतिच्छाया सी उपस्थित कर दी है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विरहिणी यक्षपत्नी की तत्तत् विरहावस्थाओं और चेष्टाओं का कवि ने कोमल भावनाओं को लेकर वहे ही भावपूर्ण और मार्मिक ढंग से यहाँ चित्रण किया है । समृत साहित्य अथवा किसी अन्य साहित्य में इस तरह का कोई अन्य उत्कृष्ट उदाहरण मिलना असम्भव न भी हो, लेकिन दुर्लभ तो अग्र्य ही है ।

प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की समाधना करने के बाद यक्ष मेश से कहता है कि यदि मध्य रात्रि में किसी तरह मेरी प्रेयसी सोती हुई मिले, तो अपना गरजना बन्द करके एक प्रहर तक तुम उसकी अग्र्य प्रतीक्षा करना^१ । तदनन्तर अपने जल कणों से शीतल वायु द्वारा उसको जगाकर^२ पहिले तुम उसे इस प्रकार अपना परिचय देना—

भर्तुर्मिश्र प्रियमविधवे विद्धि मामम्युवाहम्
तत्सन्देशे हृदय निहितैरागत त्वत्समीपम् ।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि धाम्यता प्रोपितानाम् ।
मन्द्रस्तिग्धैर्धनिमिरबला-वेणि मोक्षोत्सुकानि ॥२॥३५॥

मेश के परिचय में कवि ने कैसे प्रभावपूर्ण और सार्थक शब्दों का प्रयोग किया है । परिचय के आदि में ही पतिवाचक भर्तु शब्द को इसलिये रखा गया है कि उससे तत्काल ही यक्ष पत्नी का ध्यान आकृष्ट हो जाये । वियोगिनी पतिव्रताओं के कान में यह शब्द जैसी अमृतउर्पा करता है, उसका अनुमान सभी सहृदय कर सकते हैं । कवि यदि चाहता तो 'भर्तुर्मिश्र' की जगह 'मिश्र भर्तु' भी लिख सकता था । उससे भी वृन्द की गति में कोई व्यागत न आता । परन्तु नहीं, उसने यक्ष पत्नी के कान में सर्वप्रथम 'भर्तु' का सुनाना ही उचित समझा ।

इसके अतिरिक्त, 'भर्तु' का समकक्ष और अर्थ विशेष से पूर्ण 'अग्रिधवे' शब्द भी बड़ा महत्त्वपूर्ण है । इसके रखने में भी कुछ कारण है । इस शब्द के द्वारा यक्ष

१ तस्मिन् काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्था-
दन्यात्पैना स्तनितयिमुखो याममात्र सहृदय ॥२॥३६॥

२ तामृत्याप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
यक्षु धीर स्तनितयचनैर्मानिर्ना प्रक्रमेथां ॥२॥३७॥

अपनी पत्नी को यह सूचित करना चाहता है कि वह विधवा नहीं हो गई है, सोभाग्यवती बनी हुई है, उसका पति अभी जीवित है। पति के जीवित रहने के समाचार से बढ़कर और कौन समाचार पति प्राणा स्त्री के लिये आनन्ददायक हो सकता है।

मेघ के लिये 'अभ्युवाह' शब्द भी यदा जानबूझ कर ही प्रयुक्त किया गया है। जो मेघ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जल ले जाने का शुस्तर कार्य कर सकता है, उसके लिये सन्देश ले जाना कोई कठिन कार्य नहीं है। मेघ को न केवल सन्देश वाहक, प्रत्युत प्रेमियों का मिलन कराने वाला भी बतलाया गया है।

मेघ के परिचय को सुनकर प्रेयसी के दत्तचित्त हो जाने की आशा पर यत्न फिर मेघ से प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने के लिये कहता है। सर्वप्रथम प्रेयसी की कुशल वार्ता ही पूछने के लिये मेघ से कहा गया है—

भूया एव तव सहचरो रामगिर्याधमस्थ
अव्यापन्न कुशलमत्रले पृच्छति त्वा वियुक्त ॥२॥४०॥

इन पक्तियों में यत्न पत्नी की कुशल तो पूछी ही गई है, लेकिन साथ में यत्न के निहास स्थान तथा जीवित होने का भी समाचार दिया गया है। 'अव्यापन्न,' से यक्ष के जीवित होने की प्रतीति के साथ साथ उसकी तीव्र विरहव्यथा का भी अनुमान लगाया जा सकता है। इसीलिये तो बाद में उसे वियुक्त भी कहा गया है।

कुशल प्रश्न के बाद यक्ष मेघ से प्रेयसी को अपना वृत्तान्त सुनाने के लिये कहता है—

अग्नेनाग प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तम्
साक्षे शाक द्रुतमग्निरोत्कण्टमुत्कण्टितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोग्च्छ्रासिना दूरवर्षी
सकरपे स्तैर्विशति विधिना यरिणा रुद्धमार्गं ॥

कहकर उसकी विरगता भी प्रकट की गई है। तापक और नायिका को समान अवस्था में बताकर कवि उनके प्रेम की भी समानता प्रकट कर रहा है।

आगे चल कर फिर कहा गया है—

शब्दाख्येयं यदपि बिल ते यं सर्गीना पुरस्तात्
कण्ठे लोल कथयिन्ममृगाननस्पर्शं लोभात् ।
सोऽतिश्रान्तं भयणविषयं लोचनाभ्यामदृश्यं
त्यामुत्कण्टाविगचितपदं ममुद्येनेदमाह ॥२॥४१॥

यक्ष की त्रियोग से पूर्ण तथा उत्तरकाल की श्रवस्थाओं के महान् वैषम्य का इस पद्य में बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया है। प्रेम की प्रबलता में प्रेयसी से अस्यन्त दूर हो जाने पर यक्ष का उत्कण्ठित हो जाना स्वाभाविक ही है। इसीलिये तो वह मेघ के द्वारा अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। सन्देश में सर्व प्रथम यक्ष ने कहा है -

श्यामास्त्रग चकित हरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्
 वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना बर्हभारेषु केशान् ।
 उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीतीचिषु भ्रूत्रिलासान्
 हन्तैकरिम्न क्वचिदपि न ते चरिड सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

प्रकृति के तत्सदृशमणीय दृश्यों में प्रेयसी के अंगों की शोभा दूढ़ने से प्रेयसी में यक्ष की तन्मयता प्रतीत होती है। 'हन्तैकस्मिन् क्वचिदपि न ते चरिड सादृश्यमस्ति' कह कर यक्ष के विपाद की ही व्यजना नहीं की गई है, प्रत्युत यक्षपत्नी के सौन्दर्य की अनुपमता भी व्यक्त की गई है।

इसके बाद यक्ष अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है—

त्वामालिख्य प्रणय कुपिता धातुरागै शिलायाम्
 आत्मान ते चरण पतित यात्रदिच्छामि कर्तुम् ।
 अस्त्रैस्ताग्न्मुदुरुपचितै हृष्टिरालुप्यते मे
 क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगम नो कृतान्त ॥२॥४४॥

यक्ष पत्नी द्वारा यक्ष के चित्र बनाने की सभाजना पहिले की ही गई है। यक्ष भी उसी प्रकार अपनी पत्नी का चित्र बनाता है। लेकिन दैव की क्रूरता तो देखिये कि जत्र वह प्रणयकुपिता प्रेयसी का चित्र बनाकर उसके चरणों में अपना चित्र भी

१ उपर्युक्त पद्य के अनुरूप भार कवि की अन्य रचनाओं में भी पाये जाते हैं:-

I कलमन्यभृतासु भाषित कलहसीषु मद्रालस गतम् ।
 पृषतीषु विलोलमीक्षित पथनाधृतलतासु विभ्रमा ॥२॥७०॥२०५६॥

II मृदु पथन विभिन्नो मतिप्रयाया प्रणयात्
 धनरचिरकक्षापो नि सपत्नोऽथ जात ।
 रतिविगलितपन्धे केशपाशे सुकेश्या
 सति सुसुमसनाधे किं करोत्येष बर्हा ॥विभ्रमो० ॥४॥१०॥

'चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपातम्' का भाव पहिले भी इसी काव्य में चकित हरिणी प्रेक्षणा ॥२॥२१॥ में पाया जाता है।

बनाना यादता है, तो उसकी आँखों से अभ्रधारा प्रवाहित होने लगती है और उसका चित्र अधूरा ही रह जाता है। यक्ष के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त करते हुए कवि ने इस पद्य में यही ही कोमल भावनाओं का चित्रण किया है। उत्तरकालीन अन्य सन्देश काव्यों में भी इस पद्य का भावानुकरण देखने में आता है।^१

जिस प्रकार यक्ष की पत्नी कथंचित् अपने पति से स्वप्न में ही मिल पाती है, वैसे ही यक्ष भी कथमपि अपनी पत्नी से स्वप्न में ही मिल पाता है —

मामाकाशप्रणिहित भुज निर्दयाश्लेषहेतो
लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु ।
पश्यन्तीना न खलु बहूशो न स्थलीदेवतानाम्
मुकास्थूला स्तव किसलयेषु य । पतन्ति ॥२॥४१॥

स्वप्न में भी प्रेयसी से भेंट होने पर उसे अक में भर कर निर्भर आलिंगन करने के लिये यक्ष अपनी भुजायें आकाश में फैलाता है। इस दृश्य को देखकर वन-देविया भी करुणा से आर्ट हो रो पड़ती हैं। उनके अध्रुविन्दु ही नये तरुपर्लवों पर मोती के सदृश दिखाई पड़ते हैं।

वन देविया तक जिसके दुःख स द्रवित होती हैं, वनस्थली को भी जिसने अपने समान शोकवाली बना दिया है, वह यक्ष हम सरकी करुणा का पात्र तो अवश्य ही है। अपने कारणभरे विलाप से यक्ष सब प्राणियों की शुभकामनाओं को अपनी ओर आकृष्ट करता है। सुख दुःख की चक्र-नेमि पर सवार जितना प्राणि-जगत् है, उसमें कोई भी ऐसा नहीं होगा, जो वियोग व्यथाओं से अशरण बने हुये यक्ष के प्रति सहानुभूति न दिखाये।

रामगिरि पर सनसनाती हुई जो हवा चलती है, वह मानो यक्ष के लिये प्रिया के जीवन का सन्देश लाती है। यद्यपि वह दयिता को प्राणाऽलम्बन देने की इच्छा

१ कवि की अन्य रचनाओं में भी इस पद्य के अनुरूप मात्र पाय जाते हैं —

I न च मुषद्गमालेख्येऽपि प्रियामसमाप्य ता
मम नयनयोरुद्गापत्य सने न भविष्यति ॥विश्रमो०॥२॥१०॥

II प्रजागरात्त्रिलीभूतस्तस्या स्वप्नसमागम ।
शापस्तु न ददात्येना द्रष्टु चित्रगतमपि ॥शकु०॥६॥२०॥

III सादृश्य प्रतिवृत्तिदर्शने प्रियाया स्वप्नेषु क्षणिकसमागतोऽसर्वेश्वर ।
तेनाद्यो परिगमिता समा कथंचिद्दालन्यादक्षिणसन्तरेण सूनो ॥रघु॥२॥६०॥

IV इति स्वदस्त्रोऽङ्गितश्च मुग्धया रक्षसुपालम्प्य चन्द्रशंकर, ॥कुमार॥४॥२५॥

से मेघ को वृत्त बनाकर भेज रहा है, पर तो भी वह सन्देश-वार्ता में ही यह सूचित कर देना चाहता है कि वह अपनी पत्नी को अभी तक ऋष्यापन्न ही समझ रहा है। अहोरात्र बहते हुये समीरों में उसकी यही भावना रहती है कि ये उसकी गुणवती प्रिया का स्पर्श सुख लेकर आ रहे हैं। वस्तुतः उत्तर से आने वाली पत्रों में इस प्रकार की भावना ही यक्ष के सुखानुभव का कारण है। दक्षिण रुख बढ़ती हुई कौन सी हवा यक्षिणी के गात्र सस्पर्श सुख से संपृक्त है, इसके लिये कोई प्रमाण नहीं है। यक्ष वेचल हिमालय की वायु को पहचान सकता है। उन तुषाराद्रियातों में फिर अधिक विवेचन वह नहीं कर सकता। उन सब का आलिंगन करने की आवश्यकता इसीलिये है, क्योंकि उसको सदा सन्देह रहता है कि शायद इनमें से कोई भौंका प्रिया के गात्र को छूकर आया हो। यह सन्देह ही उसके विनोद को बढ़ाने के लिये पर्याप्त है। अपनी इसी भावना का वर्णन करते हुये यक्ष कहता है -

भिरया सद्यः किसलयपुत्रान् देवदाहद्रमाशाम्
ये तत्क्षीरं स्युत्सिन्नु रम्यो दक्षिणो न प्रवृत्ता ।
आलिंग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रियाता
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

सन्देश के प्रथम चार श्लोकों में यक्ष के विरहकालीन चार मनोविनोदों का वर्णन किया गया है। सद्यश्चस्तु दर्शन, प्रति कृति दर्शन, स्पर्शन-दर्शन तथा तद्गम स्पृष्ट वस्तु-स्पर्श—यह चारों विनोद क्रमशः उपर्युक्त चार पद्यों में पाए जाते हैं। यक्ष पत्नी की विरहावस्था के चित्रण में भी इन मनोविनोदों की संभावना की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष और यक्षिणी की समान वियोगदशा और प्रेम का यहा वर्णन किया गया है।

१ कालिदास ने शाकुन्तल में भी कुछ पेसी ही कटपना की है -

शक्यमरविन्दसुरभिं फण्यगर्ही मालिनीतरगाणाम् ।
अगैरनग तप्तेरिरेलमालिगितु पवन ॥३॥११॥

भयभूति ने भी मालतीमाधव में ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं -

उन्मीलन्मुकुल कराल कुन्द केश प्रश्च्योतद्घन मकरन्द गन्धबन्धो ।
तामीपत्प्रचलविलोचना नतागीमालिगन्पवन मम स्पृशागमगम् ॥१॥३८॥
अन्यच्च विकसत्कदम्बं निकुरम्ब पाशुना सह जीवितं यह मम प्रिया यत ।
अथवा तद्गपरिवासशीतल मयि किञ्चिदर्पय भवान्ति मे गति ॥६॥४३॥

गीतगोविन्द में अपदेव ने भी उक्त पद्य से मिलते जुलते भाव व्यक्त किये हैं -

यद्दु मनुते ननु ते तनुसगतपवनचलितमपि रेणुम् ॥११॥१०॥

अपनी प्रेयसी के विरह में यक्ष बड़ा ही व्याकुल रहता है। रात्रि में वह यह सोचता है कि कब दिन हो और दिन में वह यह सोचता है कि कब रात्रि हो। इसी तरह की दुर्लभ प्रार्थनाओं से पूर्ण अपने चित्त की असहायावस्था का यक्ष ने निम्न पद्य में वर्णन किया है—

सन्निप्येत क्षण इय कथ दीर्घयामा प्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथ मन्दमन्दातप स्वात् ।
इत्थ चेतश्चद्रुलनयने दुर्लभप्रार्थन मे
गाढोष्माभि, कृतमशरण त्वद्वियोग व्यधामि ॥२॥४७॥

यह यात किसी भी सहृदय से छिपी नहीं है कि विरह में थोड़ा सा भी समय बड़ा कष्ट कर प्रतीत होता है और जब विरह वेदना बड़ी प्रबल हो तब तो चित्त की असहायावस्था का कहना ही क्या? कवि ने इस पद्य में यक्ष की भावनाओं का बड़ा ही यथार्थ वर्णन किया है।

अपनी दयनीय दशा का वर्णन करते २ यक्ष को आशका होती है कि कहीं उसकी पत्नी बड़ी चिन्तित न हो जाय। इसीलिए वह एकदम कहता है—

नभ्यात्मान बहु विगणयन्नात्मनेशशलभ्ये
तत्कत्याणि त्वमपि नितरा मा गम कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्त सुखमुपनत दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिप्रमेण ॥२॥४८॥

संसार में कोई न हमेशा दुःखी रहता है, न हमेशा सुखी ही रहता है। दुःख के बाद सुख और सुख के बाद दुःख आते ही रहते हैं। यक्ष का दुःख भी हमेशा नहीं बना रह सकता।^१ इसीलिए वह फिर अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

१ उपर्युक्त पद्य में प्रयुक्त 'आत्मानमात्मना' जैसा पद विन्यास प्रसंगान्तर में अन्यत्र भी कवि ने प्रयुक्त किया है—

आत्मानमात्मना यत्सि सृजन्त्यात्मानमात्मना ॥३॥५०॥१०॥

यहा यह तो स्पष्ट ही है कि कवि ने धीमदुर्भाग्यदुर्गीता के उपदेश का आश्रय लिया है। यथा—

I उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत् ॥६॥१॥

II संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥३॥४३॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
 शेवान्मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा^१ ।
 पश्चादाग्रा विरहगुणित त तमात्माभिलापम्
 निर्वेद्याय परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४६॥

विरहिणी यत्न बधू के लिये प्रिय मिलन के आश्वासन से बढ कर और मधुर सन्देश क्या हो सकता है । यत्न के सन्देश की मुख्य बात तो इसी पद्य में छिपी हुई है और वास्तव में सन्देश भी यहा पर समाप्त हो जाता है ।

मेघ को अपना सन्देश धताने के बाद यत्न को शका होती है कि कहीं उसकी पत्नी मेघ को कोई धूर्त न समझ बैठे । इसलिये अपने वैवाहिक जीवन की एक छोटी पर बड़ी गूढ घटना भी यक्ष मेघ को बताता है, ताकि मेघ से उस घटना को सुन कर यत्न पत्नी को यह विश्वास हो जाये कि मेघ वास्तव में यत्न का भेजा हुआ दूत है —

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
 निद्रा गत्वा किमपि रुदती सस्वर विप्रबुद्धा ।
 सान्तर्हास कथितमसकृत् पृच्छुतश्च त्वया मे
 दृष्ट स्वप्ने न्निव रमयन् कामपि त्वं मयेति ॥२॥४०॥

कस्यात्यन्तमित्यादि पक्तिया भी अवश्य ही महाभारत के—
 सुखं च दुःखञ्च भयामयच लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
 पर्यायस्य सर्गमिदं स्पृशन्ति तस्माद्दीरो न प्रहृष्येन्न शोचेत् ॥महा०शा०॥२५॥३१॥
 श्लोक के आधार पर लिखी गई हैं । मनुस्मृति में भी नृक्र की उपमा पाई जाती है —

चक्रवर्त्तपरिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥१०॥४५॥
 भास ने भी एक स्थल पर ऐसा ही निर्देश किया है—

काल क्रमेण जगत परिवर्तमाना
 चक्रारपक्तिरिव गच्छति भाग्यपक्ति ॥स्व०न०॥१॥४॥

ऐसे ही समानान्तर भाव—‘सयोगा विप्रयोगाश्च भवन्ति बहवो नृणाम्’ इस तरह कथा-सरित्सागर में, ‘समागमा सापगमा सर्गमुत्पादि भगुरम्’ इस तरह पञ्च-तन्त्र में, ‘एष कीडति कूप यन्त्र घटिकान्यायप्रसक्तो विधि’ इस तरह मृच्छकटिक नाटक में भी पाये जाते हैं ।

१ अमरशतक में भी यह भाव कुछ दूसरे शब्दों में पाया जाता है—

कान्ते कत्यपि वासराणि गमय त्व मीलयित्वा दृशौ ॥२५॥

यद्यपि घटना बहुत छोटी है लेकिन इस घटना को यक्ष-दुम्पति के अतिरिक्त और कोन जान सकता था। मेघ के मुख से यह घटना सुनकर उसे 'भर्तु' मित्र प्रियम्' मानने में यक्ष-वधू को कोई सन्देश नहीं रह सकता, क्योंकि यक्ष यह घटना अपने किसी अन्तरंग मित्र को ही बता सकता है। रामायण में रामचन्द्रजी ने भी अभिज्ञान स्वरूप अपनी अँगूठी देकर हनुमानजी को सीताजी के पास भेजा है और सीताजी ने भी काक जयन्त की घटना के साथ एक अन्य घटना भी अभिज्ञानस्वरूप वर्णित की है और अपनी चूषामणि भी हनुमानजी के साथ भेजी है। लेकिन कवि यक्ष को पहिले ही 'कनकवल्लभ शरित्प्रकोष्ठ' बता चुका है, अतः बाह्य अभिज्ञान के अभाव में किसी अन्तरंग घटना का ही अभिज्ञानस्वरूप बताया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। अभिज्ञान घटना के द्वारा अपनी कुशल सूचित करने के बाद यक्ष अपनी पत्नी को यह भी विश्वास दिलाता है कि विरह में उसका प्रेम नष्ट नहीं हुआ है प्रत्युत और भी समृद्ध हो गया है -

एतस्मान्मा कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनादसितनयने मय्यविश्रवासिनो भू ।
स्नेहानाहु किमपि विरहे घृसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥११॥

विरह में यक्ष प्रेम के समृद्ध होने का वर्णन कर कवि प्रेम सम्बन्धी अपने विचारों को ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर रहा है। इसके पूर्व भी कवि एक स्थल पर 'विरहगुणित तम तमात्मामिलापम् ॥२॥१६॥ कह चुका है।

इस प्रकार मेघ को अपना सन्देश बता कर यक्ष फिर मेघ से अपनी पत्नी के भी सन्देश लाने की प्रार्थना करता है। अन्त में मेघ के मौन रहने पर भी उसका द्वारा अपनी प्रार्थना के स्वीकार किये जाने का विश्वास कर वृत्तवृत्ता प्रदर्शन और आशीर्वाद के साथ यक्ष मेघ को विदा कर देता है -

इष्टान् श्रेष्ठान् जलद विचर प्रावृषा सम्भृतधी
मा भूदेय क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥२॥१२॥

(१) न्ये तस्य तत प्रांत म्यनामाकोपशोभितम्
अगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्या परन्तप ॥कि० ४४॥१०॥

अनेन स्या हरिधेष्ट चिह्नं न जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥कि० ॥४४॥१३॥

(२) मनशिलाया मित्तको गयदपाश्वे निवेशित ।
तथा प्रनष्टे तिलके त किल स्मनुमर्दसि, सु० ॥४०॥१॥

यक्ष के इस आशीर्वाद में भी उसके विरह त्रिधुर हृदय की ही प्रतिध्वनि पाई जाती है। और यह आशीर्वाद है भी बड़ा ही हृदयस्पर्शी तथा काव्यिक। विद्युत् को मेघ की पत्नी के रूप में पहिले भी वर्णित किया जा चुका है—नीत्या रात्रि चिर-विलसनात् खिन्नविद्युत्कलत्र ॥१॥३६॥ इसीलिये यक्ष मेघ को विद्युत् से क्षणमात्र के लिये भी विप्रयुक्त न होने का आशीर्वाद देता है। विरही व्यक्ति इससे बढ़कर और शुभ आशीर्वाद क्या दे सकता है ?

काव्य में यक्ष का सन्देश बड़ा ही भावपूर्ण और काव्यिक है। कवि ने विरही यक्ष के हृदय की भावनाओं का यही सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है। साथ में भाव योजना भी बड़े व्यवस्थित और मनोवैज्ञानिक ढंग से की गई है। सर्वप्रथम अपने निवासस्थान तथा कुशल का समाचार देने के साथ साथ यक्ष अपनी पत्नी की कुशल वार्ता पूछता है। इसके बाद वह अपनी विरहावस्था का वर्णन करता है। तदनन्तर अपनी पत्नी को धैर्य वधात हुए वह उसे शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन देता है। अन्त में वह विरह में भी अपने प्रेम की प्रगाढ़ता का अपनी पत्नी को विश्वास दिलाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यक्ष का सन्देश विरहिणी यक्षपत्नी के निष्प्राण जीवन में भी प्राण का संचार कर सकता है। अपनी प्रियतमा के जीवन की रक्षा के लिए ही तो यक्ष मेघ के द्वारा सन्देश भेज रहा है और उसका यह सन्देश न केवल मेघ के ही लिए प्रत्युत उसकी पत्नी के लिये भी वस्तुतः श्रोत्रपेय है।

उज्जयिनी और अलका

इस काव्य में कवि ने विभिन्न पर्वतों तथा नदियों का वर्णन तो किया ही है, कुछ नगरों के प्राकृतिक सौन्दर्य, सासारिक वैभव और विलासमय जीवन का भी यथास्थान कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। इन नगरों में उज्जयिनी और अलका विशेष उल्लेखनीय हैं। उत्तर की ओर जाने वाले मेघ के लिए उज्जयिनी का मार्ग यद्यपि सीधा नहीं पड़ता है, फिर भी उससे बड़ा जाने का आग्रह किया गया है, ताकि वह बड़ा के उच्च प्रासादों और विलासिनी पौराणनाओं के दर्शन से वंचित न रह जाय—

यक पन्था यद्यपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्सगप्रणयविमुद्यो मा म्म भूकज्जयिन्या ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराणानाम्
लोलापागै यदि न रमसे लोचनैर्वंचितोऽसि ॥१॥२॥

उज्जयिनी के वैभव का अनुमान लगाने के लिये कवि का निम्न कथन ही पर्याप्त है—

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणा गां गतानाम्
शेषं पुण्यैर्हृतमिदं दिव्यं कान्तिमत्पण्डमेकम् ॥१॥३१॥

उज्जयिनी की पर्यवधीकाश्रों में विक्रयार्थ रक्षते हुए हीरे और मोती इत्यादि को देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि समुद्र में केवल जल ही शेष रह गया होगा—

हारास्तारास्तरलगुटिकान्कोटिश शशशुकी
शष्पश्यामान्भरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्या विपणिरचितान्विद्राणां च भगान् ।
सलदयन्ते सलिलनिधयस्तीपमाश्रयशेषा ॥१॥३३॥

ऐसे वैभवशाली नगर में प्रत्येक गवाक्ष से सुगन्धित धूप का निकलते रहना, घर-घर में मयूर का नृत्य करना तथा प्रासादों का विभिन्न प्रकार के पुष्पों से सुगन्धित और सुन्दर स्त्रियों के पादरागसे अंकित होना स्वाभाविक ही है। मेघ को अपनी यात्रा की थकान दूर करने का उपदेश देता हुआ यद्य प्रकाशन्तर से नगर के सौन्दर्य का ही वर्णन करता है—

जालोद्गीर्णैरुपचितरपु केशसस्कारधूपै
धन्धुप्रीत्या मनशिखिभिर्देननूलोपहार ।
हृम्येप्वस्या कुसुमसुरभिर्भ्रजेद नयेथा
लक्ष्मीं पश्यन् ललितरनितापादरागान्तिरेपु ॥१॥३२॥

उज्जयिनी न केवल सासारिक वैभवं से ही पूर्ण है प्रत्युत यहा का प्राकृतिक सौन्दर्य भी कुछ कम नहीं है। प्रातःकाल होने पर हंसों के मधुर कलरव तथा कमलों की मधुर सुगन्ध से युक्त जो शीतल हवायें शिवा नदी से चलती हैं, वे किस प्रकृति-प्रेमी के हृदय को सुग्ध न करेंगी। उज्जयिनी की प्रातःकालीन सुषमा का कथि ने निम्न पद्य में कितना मधुर चित्र अंकित किया है—

दीर्घकुर्वन् पट्टमदक्षल कृजित सारसानाम्
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषाय ।
यत्र रश्मिणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल
शिवायात प्रियतम इव प्रार्थनाचातुकार ॥१॥३०॥

यहा प्रकृति की वृष्टभूमि में मानवीय भावनाओं का बड़ी सुन्दर रीति से यहा पर समन्वय किया गया है।

। प्राकृतिक सौन्दर्य तथा सासारिक वैभवं से पूर्ण इस नगर में अभिसरिकायें विविध अन्धकार में भी अपने प्रेमियों के पास रात्रि में आती हुई बताई गई हैं—

गच्छन्तीना रमणवसतिं योपिता तत्र नक्तम्
रद्धान्तोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ॥१॥३८॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य, सासारिक वैभव और मानवीय भावनाओं को लेकर उज्जयिनी नगरी का बड़ा ही रमणीय चित्र उपस्थित किया है।

उज्जयिनी नगरी के समान अलका नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और भव्य चित्र प्रस्तुत किया है। कैलाश पर्वत पर स्थित अलका नगरी का परिचय देता हुआ यक्ष मेघ से कहता है -

तस्योत्सगे प्रणयिन इव अस्तगंगादुकुलाम्
न त्व दृष्ट्वा न पुनरलका शस्यसे कामचारिन् ।
या न काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुकाजालप्रथितमलक कामिनीनाश्रुन्दम् ॥२॥६४॥

कैलाश पर्वत और अलका नगरी के लिये प्रिय और प्रेयसी की बड़ी ही मधुर तथा उपयुक्त उपमा यहाँ प्रदान की गई है।

अलका नगरी के उच्च प्रासादों का भी बड़े सुन्दर ढंग से वर्णन किया गया है। इन प्रासादों में सुन्दर दिव्यागनायें तो रहती ही हैं, भित्तियों पर चित्र भी बने हुए हैं, सगीत के साथ मृदंग भी बजते रहते हैं और फर्श भी पारदर्शक मणियों का बना हुआ है।

विद्युत्बन्त ललितानिता सेन्द्रचाप सचिना
सगीताय प्रहृतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तु गमभ्र लिहाप्रा
प्रासादास्तत्र तुलयितुमल यत्र तैस्त्रैविशेषैः ॥२॥१॥

मेघ और प्रासादों में परस्पर सादृश्य पताने वाले विशेषणों का यहाँ बड़ा ही सुन्दर उपयोग किया गया है।

अलका नगरी में सर्वदा ही सय ऋतुयें पाई जाती हैं। तभी तो यहाँ की स्त्रियाँ अपने विभिन्न अंगों को विभिन्न ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले विविध पुष्पों से सर्वदा सजाती रहती हैं। इसी भाव को लेकर काव्य में कहा गया है -

हस्ते लीलाकमलमलके पालकुन्दानुविद्धम्
नीता लोघ्रप्रसरजसा पाण्डुतामानने ध्री ।
चूडापाशे नयकुरयक चारु कर्णै शिरीषम्
सीमन्ते च त्वदुपगमज्ञं यत्र नीपं यधूताम् ॥२॥२॥

अलका की स्त्रियों को रत्न इत्यादि के अलकारों से भूषित न घटाकर पुष्पों से ही उनके भूषित होने का वर्णन कर कवि उनके अत्यधिक सौकुमार्य तथा विलासयती होने की व्यंजना कर रहा है ।

अलका नगरी की कुछ अन्य प्राकृतिक विशिष्टताओं को भी देखिये -

यत्रोन्नत भ्रमर मुखरा पादपा नित्यपुष्पा
 हंसश्रेणीरचितरसना नित्यपद्मा नलिन्य ।
 केकोत्कराटा भवनशिखिनो नित्यमास्वत्कलापा
 नित्यज्योत्स्ना प्रतिहततमोवृत्तिरम्या प्रदोषा ॥२॥३॥

अलका नगरी का यहाँ पर बड़ा ही उदात्त और समृद्ध चित्र अंकित किया गया है ।

प्राकृतिक वैभव से पूर्ण यह अलका नगरी सासारिक वैभव में भी कुछ कम नहीं है । यहाँ का जीवन भी वहाँ विलासप्रिय ही वर्णित किया गया है -

यस्या यक्षा सितमणिमयान्धेत्य इर्म्यस्थलानि
 ज्योतिश्छाया घुसुमरचितान्युत्तमरीसहाया ।
 आसेजन्ते मधु रतिकल कटवधुधप्रसूतम्
 (मैघ) त्वदुगम्भीरध्वनिषु जनके पुष्करेऽगाहतेषु ॥२॥४॥

अलका नगरी के वैभव और विलासप्रिय जीवन का एक और दृश्य देखिये -

नीधीरन्ध्रोच्छ्वसितशिथिल यत्र रिम्बाधराणाम्
 क्षौमं रागादिनिभृतकरेऽग्राक्षिपत्सु प्रियेषु ।
 अर्चिस्तु गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान्
 हीमूढाना भवन्ति विफलप्रेरण चूर्णमुष्टि ॥२॥७॥

अलका नगरी के वैभव के साथ-साथ यह पद्य यहाँ की रमणियों की मुग्धता को भी व्यक्त कर रहा है ।

जिस प्रकार उज्जयिनी में अभिसारिकायें रात्रि में अपने प्रेमियों के पास जाती हुई वर्णित की गई हैं, उसी प्रकार अलका में भी रात्रि में अभिसारिकायें अपने अपने प्रेमियों के पास जाती हुई यतलार्थ गई हैं -

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पं
 पत्रच्छेदे कनक कमलै कर्णविभ्र शिभिश्च ।
 मुक्ताजाले म्नात परिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै
 नैशो मारुग सयितुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

अलका नगरी का कवि ने शृ गार रस से पूर्ण बड़ा ही सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। अलका की स्त्रिया नयन विभ्रमों में बड़ी ही दक्ष हैं तथा उनके विविध शृ गार की सामग्री अकेले कटपवृक्ष से ही उन्हें उपलब्ध हो जाती है। वहाँ की चतुर यनिताओं के भ्रू विलास और तिरछे कटाक्ष रूपी श्रमोधारत्रों से ही कामीजन चूर चूर हो जाते हैं। उनको विभ्रम की शिक्षा देने वाला रतिफल नामक मधु है जो कि कटपवृक्ष से चुआ कर धनाया गया है। कामी क्षय को प्राप्त न होने वाली निधिया जिनके घरों में हैं, वे कामी यक्ष वारागनाओं को साथ लेकर कुंजर के वैभ्राज नामक उपरन में विहार करते हैं —

अक्षय्यान्तर्भवननिधय प्रत्यह रक्तकण्ठे
रदुगायद्विभर्धनपतियश किन्नरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्य त्रिभुधयनिता धारमुख्यासहाया
यद्दालापा वहिदपयन कामिनो निर्दिशन्ति ॥२॥१०॥

अलका में चरम कोटि का अर्थस्वातन्त्र्य है। यह अनन्त सम्पत्ति की पुरी है, फिर भी उसमें कल्पवृक्ष है। यद्यपि इस नगरी में कटपवृक्ष की उपयोगिता कुछ भी नहीं है, फिर भी कवि ने कटपवृक्ष के लिए कुछ उपयोग दूढ़ ही लिया है —

यासद्विचित्र मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षम्
पुष्पोद्भेद सह विसलयै र्भूषणाना विकल्पान् ।
लाक्षारग चरणकमलन्यासयोग्यच्च यस्याम्
एकं सूतं सकलमवलामण्डन कटपवृक्ष ॥२॥१३॥

अर्थात् अलका में एक कटपवृक्ष ही अवलाओं के प्रसाधन की समस्त सामग्री पूरी कर देता है। अगर सौन्दर्य के देश में स्त्रियों को कोई कामना यदि होती है, तो वह वेचल मण्डनसामग्री की। जैसा मण्डन वे चाहती हैं, कटपवृक्ष उन्हें दे देता है। यही कटपवृक्ष की सार्थकता है।

अलका और उज्जयिनी में अनेक समानताएँ पाई जाती हैं। दोनों नगरियों की अभिसारिकाओं का उल्लेख किया ही जा चुका है। अलका में अप्सरा रूपी एण्डस्त्रिया हैं। उज्जयिनी में भी उनके समकक्ष गणिकाएँ हैं जो महाकाल के मंदिर में चामरनृत्य करती हैं। पशुपति की पूजा का विधान दोनों जगह समान है। उज्जयिनी में सायकाल आरती के समय ढोल बजाए जाते हैं। अलका में सगीत के लिए मुरजों की ध्वनि होती है। अलका में वे सुन्दरी बालाय जिनके लिए देव भी ललचाते हैं, सुवर्ण की बालू में मणिया छिपा कर गुप्तमणि नामक खेल खेलती हैं (सक्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्या ॥२॥६॥)। उज्जयिनी में युपतिषा गन्धवती नदी के तीर में जल प्रीडा करती हैं। अलका में सुरत खिन्न अवलाओं की श्रान्ति

हरने की सामग्री चन्द्रकान्त मणिया हैं।^१ उज्वयिनी में प्रातःकाल खिलने वाले कमलों से सुगन्धित होकर जो शिवा की दृषा चलती है, वही रतिधान्त रमणियों की ग्लानि हरती है।^२ अलका और उज्जयिनी दोनों जगह भरनों में गवाह हैं। उज्जयिनी में इन जालमार्गों से स्त्रियों के केश सस्कार का जो धूप निकलता है, वही ऊँचे बढ़कर मेघ के गात्र को पुष्ट करता है। अलका में भी जालमार्गों से जो धुँवाँ निकलता है, वह मेघों की ही रक्षा करने के काम में आता है। अलका में घर घर पर मोर पले हुए हैं जिन्हें गृहस्वामिनी खिया नचाती हैं। उज्जयिनी के भरनों के नील कण्ठों को वर्षा का सन्देशवाही मेघ नचाने वाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अलका और उज्जयिनी में परस्पर बड़ा सादृश्य है। यद्यपि उज्जयिनी इस भूलोक का ही एक भाग है, लेकिन उसका प्राकृतिक सौन्दर्य, सांसारिक वैभव और विलासमय जीवन स्वर्ग से किसी भी प्रकार कम नहीं है। इसीलिये तो कवि ने इस नगरी को 'द्विष कान्तिमन्थरुडमेकम्' कहा है। वास्तव में उज्जयिनी पृथ्वी पर एक आदर्श नगरी है और अलका तो साक्षात् स्वर्ग है ही। इस नगरी के वर्णन में कवि की सुख और सौन्दर्य की कल्पना ही साकार हो उठी है। इस नगरी को कवि का आनन्दपूर्ण कोई स्वप्न नगर माना जाय, तो अनुचित न होगा।

यक्ष का गृह

अलका जैसी सुन्दर नगरी में यक्ष का गृह भी कुछ कम सुन्दर नहीं है। कुचेर के गृह से उत्तर की ओर ही यक्ष का यह गृह है। अपने उच्च तथा मणिमय तीरण के द्वारा यह दूर से ही चमकता है। इसके पास में बालमन्दार वृक्ष लगा हुआ है। मरुतशिलाओं की सीढियों से युक्त तथा स्वच्छ जल से पूर्ण एक बापी भी इस घर में है। वर्षा ऋतु में भी इस बापी के जल में विहार करते रहते हैं। इस बापी के किनारे ही कनक कदली से घिरा हुआ एक क्रीडाशैल है।

इसके शिखर पर इन्द्रनीलमणिया लगी हुई हैं तथा इस पर माधवी मण्डप के पास ही रक्ताशोक और केशर के वृक्ष लगे हुए हैं। इन वृक्षों के मध्य में सुवर्ण निर्मित तथा स्फटिक के फलक वाली एक धास्यष्टि है जिस पर कि यक्ष के घर का मयूर सायंकाल को प्रायः बैठा करता है और यक्ष पत्नी उसे अपने हाथ से ताल

१ यत्र स्त्रीणां प्रियतमं भुजोच्छ्रुयासितालिंगनाताम्
अगग्लानिं सुरतं जनिता तन्तुजालापलम्भा ।
(मेघ) त्वरसरोधापगामविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीघे ।
व्यालुम्पन्ति स्फुटजल लयस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ता ॥२॥६॥

२ यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिर्मगानुसूलं
शिमाघातं प्रियतमं इयं प्रार्थनाचातुकारं ॥

दे दे कर नचाया करती है। गृह के द्वार पर शूल और पदुम के चित्र बने हुए हैं। इस प्रकार कवि ने यक्ष के गृह की बड़ी ही उदात्त कल्पना की है। इस गृह वर्णन से यक्ष के ऐश्वर्यवान् और वैभवसम्पन्न होने में कुछ भी सन्देह नहीं रह जाता है। निर्धन होने पर भी प्रेमी जनों में पति पत्नी सखी प्रेम की मात्रा कम नहीं होती फिर जो जन्म से ही धन सम्पन्न हैं, उनके प्रेम की प्रगाढ़ता का तो कहना ही क्या ? पत्नी वियोग होने से यक्ष को कितना दुःख, कितनी मनोव्यथा, कितना शोक सन्ताप हो सकता है, इसका अनुमान लगाना कठिन नहीं है। यक्ष पत्नी भी पति के वियोग में बड़ी ही अधीर तथा गाढ़ोत्कण्ठा बतलाई गई है। अलका नगरी तथा गृह के वैभव और समृद्ध वातावरण को देखते हुए यक्ष दम्पती का विरह में परस्पर उत्कण्ठित होना स्वाभाविक ही है। यक्ष दम्पती के विरह-वर्णन में अलका नगरी और यक्षगृह का वैभव तथा विलासमय वातावरण पृष्ठभूमि के समान कार्य कर रहा है।

यक्ष और यक्षपत्नी -

यक्ष और यक्ष पत्नी का विरही प्रेमियों के रूप में विवेचन किया ही जा चुका है। काव्य के नायक और नायिका के रूप में भी उनका कुछ विवेचन करना अनुचित न होगा। शास्त्रीय दृष्टि से यक्ष को धीरे ललित नायक कहा जा सकता है। वह युवक है, कला प्रेमी है तथा अपनी पत्नी के प्रति उसका प्रेम भी काफी तीव्र है। देवयोनि होने के कारण वह कामचारी है। इसलिये उसका भौगोलिक ज्ञान बड़ा ही गम्भीर और यथार्थ है। किसी योग्य और सूक्ष्मदर्शी पर्यटक के समान ही वह मेघ के मार्ग का निर्देश करता है।

जीवन के प्रति उसका दृष्टिकोण बड़ा ही स्वस्थ तथा आशावादी है जैसाकि उसके निम्न कथन से प्रतीत होता है -

कस्यात्यन्त सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥२॥४॥

विरह में भी उसके प्रेम की तीव्रता बढता ही जाती है। सन्देश के अन्त में उसने स्वयं ही कहा है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्वसितस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभजन्ति ॥२॥५॥

इसके अतिरिक्त यक्ष का व्यावहारिक ज्ञान भी कुछ कम नहीं है तथा मनुष्य प्रकृति की गम्भीरताओं से भी वह परिचित जान पड़ता है। इसीलिये तो अपने सन्देश वादक मेघ को वह अपना भ्राता तथा सुहृद् और अपनी पत्नी को मेघ की भ्रातृजाया बनाता है। संगीत तथा चित्रकला से भी उसे प्रेम है। तभी तो स्वरचित पदों में उसने अपना सन्देश भेजा है—

त्वामुत्कण्ठाविरचितपद मन्मुलेनेदमाह । १

यक्ष के द्वारा अपनी प्रेयसी के चित्र बनाने का उल्लेख तो काव्य में आया ही है ।

यक्ष की विरह विधुरता तथा स्वभाव कोमलता देखकर काव्य के अन्त में स्वत ही उसके प्रति हमारी सहानुभूति उत्पन्न हो जाती है और जिस प्रकार उसने अन्त में मेघ को आशीर्वाद दिया है -

मामूदेव क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोग ॥

उसी तरह हम भी उसके प्रति यह शुभकामना व्यक्त किए बिना नहीं रह सकते ।

मामूदेव क्षणमपि च ते जायया विप्रयोग ॥

यक्षपत्नी-

काव्य की नायिका के रूप में यक्षपत्नी पर यदि हम विचार करते हैं, तो वह बड़ी ही पतिपरायणा, धर्मनिष्ठ और सुन्दर स्त्री सिद्ध होती है। प्रोषितमर्तु का नायिका के रूप में उसका जीवन बड़ा ही सयत तथा कठोर है। साहित्यशास्त्र में विरहिणी स्त्रियों का जैसा स्वरूप बतलाया गया है, यक्ष पत्नी प्रायः वैसी ही है। वह भूमि पर सोती है और किसी भी प्रकार के प्रसाधन से सर्वथा दूर ही रहती है। विरहावस्था में भी वह देवताओं की पूजा करती रहती है* ।

सगीत तथा चित्ररत्ना से वह भी परिचित है। विरहावस्था में अपने पति के नाम से युक्त कोई गाना गाकर अपना अपने पति का चित्र बनाकर वह समय बिताने की चेष्टा करती है। कवि ने उसका जैसा वर्णन प्रस्तुत किया है, उससे वह पद्मिनी प्रतीत होती है। स्थान स्थान पर कुछ उपमाओं द्वारा भी कवि ने उसके पद्मिनी होने की पुष्टि की है^२। इसके अतिरिक्त उसकी शिष्टाचार की भावना भी बड़ी ही उदात्त है और वह बड़ी ही मानिनी है। तभी तो मेघ ने विद्युत् रूपी अपनी स्त्री को साथ लेकर उससे धार्तालाप प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है^३। यक्ष ने अभिज्ञानस्वरूप जो घटना वर्णित की है, उससे भी यक्ष पत्नी के मानिनी होने का निश्चय होता है।

* आलोके ते निपतनि पुरा सा यलिव्याकुला या ॥२॥२४॥

२ जाता मन्ये शिशिरमधिता पद्मिनीं याऽन्व्यरूपाम् ॥

साध्रेऽक्षीय न्यल कमलिनीं न प्रमुद्धा न सुताम् ॥

३ विषद्वर्गं स्तिमितनयना त्यत्सनाथे गवाक्षे

पपतु धीरं स्तनित वचनैर्मानिनीं प्रक्रमेया ॥२॥३७॥

मेघ का दूत कार्य

यों तो यक्ष का मेघ को दूत कार्य में नियुक्त करना कुछ अनुचित सा ही प्रतीत होता है, लेकिन कवि के इस कथन से —

यक्षश्चक्रे जनक-तनया स्नान पुरणोदकेषु
स्निग्धच्छाया तरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥

यह सूचित होना है कि यक्ष एक स्थान पर स्थिर रूप से नहीं रहता है, प्रत्युत उन्मादावस्था में इधर उधर घूमता फिरता है। ऐसी अवस्था में चेतन और अचेतन के विवेक का नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। और मेघ के द्वारा अपनी पत्नी के पास यक्ष का सन्देश भेजना कुछ भी असंगत नहीं प्रतीत होता है। कवि ने भी—

कामार्ता हि प्रकृति कृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥४॥

कह कर मेघ के दूत कार्य के अनौचित्य का परिहार कर दिया है। दूत में प्रायः निम्न गुणों का होना आवश्यक समझा जाता है —

ब्रह्मचारी बली धीरो मायावी मानर्जित ।
धीमानुदारो नि शको यक्ता दूत स्त्रिया भवेत् ॥
दूत चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्र विशारदम् ।
इ गिताकार चेष्टश्च शुचिं दक्ष कुलोद्गतम् ॥
अनुरक्तश्शुचिर्दक्षस्मृतिमान्देशकालवित्
वपुष्मान् वीतभीर्गमी दूतो राज प्रशस्यते ॥

कवि ने अपनी प्रतिभा से मेघ में प्रायः सभी गुणों का समावेश किया है। मेघ को उच्चवयस में उत्पन्न बताया गया है, वह इन्द्र का प्रधान पुरुष है तथा इच्छा अनुसार कोई भी रूप धारण कर सकता है। मेघ कामचारिण है, सततों की सहायता करने वाला है, कृपकों के जीवन का मुख्य अवलम्ब है, उसका अन्त करण कष्टों से पूर्ण है और स्त्रियों के प्रति तो वह बड़ा ही उदार है। शिवजी का वह परम भक्त है। इसीलिये तो महाकाल के मन्दिर में सायकालीन पूजा के समय वह पटह का कार्य करता है और शिव चरणन्यास पहुँचने पर भक्तिपूर्वक उसकी प्रदक्षिणा करता है। इन सब गुणों के होते हुए भी मेघ को पूर्ण ब्रह्मचारी तो नहीं कहा जा सकता, क्योंकि रिधत् रूपी उसकी प्रेयसी तो उसके साथ ही रहती है तथा उज्जयिनी की स्त्रियों के चंचल कटाक्षों से भी वह झीडा करता है।

समय समय पर अपने पुरोचित साहस का भी मेघ ने परिचय दिया है। शरभों द्वारा आक्रमण किये जाने और सुगयुवतियों द्वारा यन्त्रधारणरूप में परिवर्तित किये जाने पर वह अपनी चतुरता का भी परिचय देता है। उसका घोर गर्जन उसकी गम्भीर वाणी है। कवि ने 'सखे' 'सौम्य' 'वन्धु' और 'सुहृद्' जैसे सम्बोधनों द्वारा उसके उदार चरित्र की स्थान स्थान पर अभिनयजना की है।

रस, छन्द और शैली

इस काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ शृंगार है। शाप द्वारा उत्पन्न प्रवास से पति पत्नियोंका विरह इस काव्य में पाया जाता है और नायक की उन्मादावस्था का विशेष रूप से चित्रण किया गया है। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। कवियों की सम्मति है कि विषय के अनुकूल छन्दो योजना करने से वर्ण्य विषय में सजीवता आ जाती है। वह विशेष सुलता है, उसकी सरलता और सहृदयों को आनन्दित करने की शक्तिरह जाती है। इस काव्य में विप्रलम्भ शृंगार और करुण रस के मिश्रण की अधिकता है। यक्ष का सन्देश कारुणिक उक्तियों से भरा हुआ है। जो मनुष्य कारुणिक आलाप करता हो, या जो प्रेमोद्रेक के कारण अपने प्रेम पात्र से मीठी मीठी बातें करता हो, वह न तो साप के सदृश टेढ़ी मेढ़ी नाल चलता है, न रथ के सदृश दौड़ता ही है। अतः उसकी बातें भुजगप्रयात या शथोद्धता श्रधवा और ऐसे ही किसी वृत्त में अच्छी नहीं लगतीं। वह तो ठहर-ठहर कर कभी धीमे और कभी कुछ ऊँचे स्वर में अपने मन के भाव प्रकट करता है। यही जान कर कालिदास ने मन्दाक्रान्ता वृत्त का उपयोग इस काव्य में किया है। कहा भी गया है—

प्राट्ट् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते ।

वर्षाश्रुतु, यात्रा तथा आपत्ति के वर्णन में मन्दाक्रान्ता छन्द विशेष रूप से उपयुक्त रहता है। इस काव्य में यह तीनों ही बातें पाई जाती हैं। वास्तव में कालिदास ने समग्र काव्य को इस छन्द में लिखकर सन्देश काव्यों के लिये मन्दाक्रान्ता छन्द की परम्परा सी निर्धारित कर दी है और उसे इस छन्द के प्रयोग में सफलता भी खूब मिली है। हेमचन्द्र ने भी कालिदास के मन्दाक्रान्ता वृत्त की अत्यन्त प्रशंसा की है—

सुधशा कालिदासस्य मन्दाक्रान्ता प्रथमगति ।

सदश्वदमकस्येय कामोज नुरगागना ॥ सुवृत्त तिलक ।

विन्यास ३ । श्लोक ३४॥

कालिदास की इस सफलता से प्रेरित होकर ही कुछ पर्यर्त्ता कवियों ने अपन सन्दर्भ-काव्यों में इस वृत्त का आश्रय लिया है।

कवि यदि अपने मन का भाव ऐसे शब्दों में कहे जिनका आशय सुनने के साथ ही सुनने वाले की समझ में आ जाय, तो ऐसा काव्य प्रसाद गुण से पूर्ण कहा जाता है। जिस तरह पके हुये अमूर का रस बाहर से भलकता है, उसी तरह प्रसादगुण परिप्लुत कविता का भावार्थ शब्दों के भीतर से भलकता है। उसके हृदयंगम होने में देर नहीं लगती। अतएव जिस काव्य में करुणार्द्र सन्देश और प्रेमातिशयद्योतक बातें हों उसमें प्रसाद गुण की कितनी आवश्यकता है, यह सहृदय जनों को बताना न पड़ेगा। प्रेम की बात यदि कहते ही समझ में न आ गई—कारणिक सन्देश यदि कानों की राह से तत्काल ही हृदय में न पहुँचा, तो उसे एक प्रकार से निष्फल ही समझिये। प्रेमालाप के समय कोई कोप लेकर नहीं बैठता। करुणा क्रन्दन करने वाले अपनी उक्तियों में व्यग्य और झिलझिला लाने नहीं बैठते। वे तो सीधी तरह सरल शब्दों में अपने मन की बात कहते हैं। यही समझ कर महाकवि कालिदास ने इस काव्य को प्रसाद गुण से ओतप्रोत कर दिया है और वैदर्भी रीति तथा कौशिकी वृत्ति में ही इस काव्य की रचना की है। चुन चुन कर सरल और कोमल शब्दों को ही रखा है। माधुर्य, सरलता और स्पष्टता ही कालिदास की शैली की प्रमुख विशेषतायें हैं। उदात्त तथा दीप्यमान कल्पनाशक्ति के द्वारा कवि की शैली में प्रवाह, लय तथा चित्रोपमता आदि गुण पर्याप्त रूप से पाये जाते हैं। बाह्य तथा मानव प्रकृति दोनों के चित्रण में कवि कुशलहस्त है। उज्जयिनी तथा अलका के वर्णन में प्रत्येक पद्य में तत्तद् दृश्य का एक शब्दचित्र सा प्रस्तुत किया गया है। मानवीय भावनाओं के चित्रण में भी कवि ने पूर्ण कुशलता का परिचय दिया है। यक्ष पत्नी की विरहावस्था का वर्णन बड़ा ही भावपूर्ण है और सहृदय पाठकों के हृदय में करुणा का संचार किये बिना नहीं रह सकता। काव्य की प्रत्येक पंक्ति से कवि की सुकुमार भावनाओं तथा उपयुक्त शब्द-चयन का प्रमाण मिलता है। भावों के अनुकूल भाषा भी बड़ी सरस और मधुर है। विभिन्न अलंकारों के साथ उपमा अलंकार का भी काव्य में प्रयोग किया गया है और यह उपमायें भी बड़ी उपयुक्त तथा चमत्कारपूर्ण हैं। विरहिणी यक्षपत्नी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

आधिक्षामा विरहशयने सन्निपण्णैकपाश्र्वात्
 प्राचीमूले तनुमिव कलामात्र शेषा हिमाशो ॥२॥२॥

यद्वा पर विरह हीण यक्ष पत्नी के लिये कला मात्र चन्द्रमा के शरीर की कितनी सुन्दर उपमा दी गई है।

इसी प्रकार कवि ने आगे भी फिर बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

पादान्द्वोरमृतशिशिरान् जालमार्गं प्रविष्टान्
 पूर्णप्रीत्या गतमभिमुख सन्नियुक्त तथैव ।

चक्षु खेदात् सलिल गुहमि पद्मभिश्छादयन्तीं
साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रनुद्धा न सुताम् ॥२॥२६॥

आँसुओं से भारी पलकों द्वारा आँखें बन्द किये हुई यक्ष पत्नी के लिये दुदिन में न तो पूर्ण विकसित और न पूर्ण बन्द स्थल कमलिनी की बड़ी ही उपयुक्त उपमा दी गई है। दोनों ही स्थलों में गुणसाध्य के साथ साथ उपमेय और उपमान के लिंग की समानता भी ध्यान देने योग्य है। वास्तव में कालिदास की शैली में चित्रोपम वर्णन के साथ साथ सगीतात्मक अभिव्यक्ति की भी शक्ति छिपी हुई है। संस्कृत के अन्य कवियों में यह गुण प्रायः कम ही देखने में आता है। कालिदास की रचनाओं में मेघसन्देश सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य माना जाता है। इस काव्य को आदर्श मान कर परवर्ती कवियों ने इसके अनुकरण पर विभिन्न सन्देशकाव्य लिखे हैं। ईसा की अष्टम शताब्दी में जैन आचार्य श्री जिनसेन ने जैन तीर्थरर श्री पार्श्वनाथ के जीवन चरित्र को लेकर चार सर्गों में पार्श्वभ्युदय नामक अपना काव्य लिखा। इसमें मेघसन्देश की प्रत्येक पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। सम्पूर्ण मेघसन्देश को इस प्रकार पार्श्वभ्युदय काव्य में समाविष्ट कर दिया गया है। मेघसन्देश की लोकप्रियता का इससे बढ़कर और प्रबल प्रमाण क्या हो सकता है? न केवल भारतवर्ष में, प्रत्युत विदेशों में भी मेघसन्देश के प्रशंसक पाये जाते हैं। फ्रांस के श्री एम० फाचे का कथन है — *There is nothing as perfect in the elegiac literature of Europe as the Meghaduta of Kalidasa*

काव्य में नैतिक तथा अन्य विचार

कालिदास की रचनाओं में यत्र तत्र उनके विचार-रत्न बिखरे हुये पाये जाते हैं। यों तो काव्य का उद्देश्य मुख्य रूप से पाठकों को आनन्दित करना ही है, लेकिन उसके शिक्षणात्मक पक्ष को भी अस्वीकृत नहीं किया जा सकता। उत्तम काव्य की विशेषता भी यही है कि वह अप्रत्यक्ष रूप से पाठकों को सद्विचार तथा नैतिकता की भी शिक्षा दे। कवि के कुछ ऐसे ही उपदेशप्रद विचार मेघसन्देश से यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

(१) कृतज्ञ रहना

मित्र के साथ उपकार करना भारतीय जीवन की एक प्रमुख विशेषता है तथा मित्र के उपकार को समाज का तुच्छ से तुच्छ व्यक्ति भी कभी नहीं भूलता है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए कवि ने कहा है—

न ह्यद्रोऽपि प्रथमं सुरुतापेक्षया संधपाय
प्राणं मित्रे भवति विमुप किं पुनर्यस्तथोच्चै ॥१॥१०॥

(२) निर्धन

निर्धनों के विषय में कालिदास का यह विचार सर्वथा अखण्डनीय है—

रिक्त सग्नो भवति हि लघु पूर्णता गौरवात् ॥२०॥

सब खाली चीजें हल्की होती हैं, निर्धन का सब जगह निरादर होता है, परन्तु भरपूर होने से भारीपन आ जाता है। धनिकों का सब जगह आदर होता है। कवि का यह कथन एक कटुसत्य है।

(३) सच्चा प्रेम

किसी किसी कवि ने प्रेम के विषय में इसे सिद्धान्त सा समझ लिया है—मैत्री चाप्रणयात् समृद्धिरनयात् स्नेह प्रयासाश्रयात्—अर्थात् विदेश में रहने से प्रेम नष्ट हो जाता है। कालिदास ने इस मत का सर्वथा खण्डन किया है। उनका मत है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे ध्यसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वन्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२१॥

घटने की बात तो दूर रही, वियोग में स्नेह बढ़ता है। कारण यह है कि वियोग में स्नेह रस का आस्वादन नहीं होता। अतः इस के एकत्र होते होते यह महान् राशि बन जाता है। किस सहृदय को यह सिद्धान्त मान्य नहीं होगा ?

(४) सज्जन

सज्जनों के विषय में कालिदास के विचार बड़े ही उच्च हैं। उनके सम्बन्ध में कवि कहता है—

नि शब्दोऽपि प्रदिशति जल याचितश्चातकेभ्य
प्रत्युक्त हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थकिमैव ॥२२॥

सज्जन प्रणयी जनों की याचना का उत्तर उनकी अभिलाषा को पूरा करने में ही देते हैं। मुख से इच्छा पूर्ति का वचन नहीं कहते।

(४) सुख-दुःख

कालिदास ने सुख दुःख के परिवर्तन की उपमा पहिये की नेमि से दी है। जिस प्रकार पहिये की नेमि नीचे से ऊपर तथा ऊपर से नीचे घूमा करती है, उसी प्रकार सुख-दुःख की भी दशा है—

कस्यात्यन्त सुखमुपनत तु खमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिकमेण ॥२॥४२॥

ससार में कौन ऐसा मनुष्य है जो सदा सुख भोगे और कौन ऐसा है जो दुःख के गर्त में पड़ा हुआ सदा आहें भरा करे। अवनति के बाद उन्नति तथा उन्नति के बाद अवनति अवश्य होती है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

(६) धन का फल

धन इकट्ठा करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य नहीं है। धन इकट्ठा कर दूसरों के दुःख दूर करने में ही उसका व्यय करना चाहिये—

आपन्नार्तिप्रशमनफला, सपदो ह्युत्तमानाम् ॥१॥४३॥

कवि का यह कथन भी बड़ा समीचीन है।

(७) मित्र का कर्त्तव्य

मित्र के कार्य को एक बार हाथ में ले लेने के बाद फिर सच्चे मित्र उसमें विलम्ब नहीं करते—

मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥१॥४४॥

इस प्रकार काव्य में कवि के अनेक गम्भीर विचार पाये जाते हैं।

सन्देश की विशेषता

इस काव्य में एक विरही पति के द्वारा अपनी विरहिणी पत्नी के पास प्रणय सन्देश भेजा गया है। इन विरही पति पत्नियों का प्रेम बही उच्चकोटि का है। यह मि स्वारथ है—निर्दोष है। यद्यत् अपने और अपनी प्रियतमा के जीवन को अन्वोन्याभित समभता है और अपना सन्देश भेजकर अपनी पत्नी की प्राणरक्षा करना चाहता है। बहुत सम्मम है कि उसकी पत्नी भी वियुक्त होने के कारण पति की प्राण धारणा के विषय में सशक रही हो। कवि ने यद्यत् के सन्देश के द्वारा यह बतलाने की चेष्टा की है कि प्रेम से जीवन परिष, सुन्दर और स्वार्थक हो सकता है तथा मानवीय प्रेम के द्वारा ईश्वरीय प्रेम भी हृदय में जागृत किया जा सकता है। इस यात व और भी कई उदाहरण इस देश में पाये जाते हैं। गोपियों के प्रेम को हम लौकिक नहीं कह सकते। यह सर्वथा अलौकिक है। अन्यथा—

नो चेद्दयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा
स्वातेन याम पदयो पदयां सरो ते ॥

उनके मुख से कभी न निकलता ।

इसके अतिरिक्त इस काव्य में एक और शिक्षा यह भी मिलती है कि सासारिक विषयों के आनन्द में ही जीवन का सच्चा उपयोग नहीं है, बरिक्त सच्चे प्रेमियों का त्यागमय तथा दुःख पूर्ण जीवन भी स्पृहणीय है ।

कुछ विद्वान् इस काव्य को आख्यात्मिक दृष्टिकोण से समझाने की चेष्टा करते हैं । प्रो० एम० रमाचारियर का कथन है कि यज्ञ बधू के प्रति यज्ञ के प्रेम और उत्कण्ठा में भक्त का परमात्मा से प्रेम तथा मिलने की उत्कण्ठा भूलकती है । यह दृष्टिकोण दूसरे शब्दों में वैष्णव दृष्टिकोण कहा जा सकता है ।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी मेघदूत पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है -

“हममें से प्रत्येक निर्जन गिरि शृंग पर अकेला खड़ा होकर उत्तर की ओर देख रहा है । बीच में आकाश, मेघ और सुन्दरी पृथ्वी के सुख, सौन्दर्य भोग और ऐश्वर्य की चित्रलेखा के स्वरूप देवा, शिवा तथा अरुन्ती वर्तमान है । ये सब मन में स्मृति जगा देते हैं, पर पास में पहुँचने नहीं देते, आकाश का उद्रेक करते हैं पर उसकी निवृत्ति नहीं करते । दो मनुष्यों के बीच में इतना अन्तर ? किन्तु यह बात मन में उठती है कि किसी समय हम लोग एक ही मानस लोक में थे, पर अब वहाँ से निर्वासित हो नये हैं ।

केवल यही नहीं । वैदिक परम्परा के अनुसार अनेक पर्व (सयोजक अंग) होने से पिण्डाण्ड और ब्रह्माण्ड पर्ववान् या पर्वत कहलाता है, रमणीय (मोग्य) होने से इसे रामपर्वत कह सकते हैं । यहाँ अपृच्छका नरद्वारा देवपुरी अयोध्या से यज्ञ (जीर) मानों निर्वासित हुआ सा रहता है । है तो वह अकेला ही, परन्तु उसमें पंचकोश, तीनपुर, दश इन्द्रिय-स्थान आदि अनेक आश्रम (आश्रयस्थान) हैं जिनमें वह निवास करता है - स्निग्धच्छाया तर्पु वसति चक्रामगिर्याश्रमेषु । यों तो वह भोगों में फसा हुआ अपनी दूरस्थ प्रिया को भूला रहता है, परन्तु ग्रीष्म (शम, ठम, संयम आदि तपस्या) में तपने के पश्चात् जग आयाद, सदाचार) के प्रथम दिवस (प्रमुख दीर्घ) पर मेघ (मन) आश्लिष्ट साजु (उन्नत) होता है, तत्र प्रिया की विशेष याद आती है और उसकी ओर मेघ (मन) दूत बनकर जाता है । इसके मार्ग में अन्तरसमय से लेकर मनोमय जगत् तक के अनेक भोग पड़ते हैं । इन्हीं का वर्णन पृथ्वीमेघ में नदियों, नगरों आदि के प्रतीकों द्वारा किया गया है । मनोमय जगत् पार करके विज्ञानमय जगत् आता है । यहाँ उत्तरमेघ की अमरावती है, जहाँ योगी को 'सोऽहम्' की अनुमृति होती है -

इस रूपरू की वास्तविक पूर्ति तभी होती है, जब यक्ष अपनी प्रिया से मिल जाता है और जब 'सोऽहम्' की अनुभूति प्राप्त हो जाती है। इसीलिये काव्य के अंतिम दो पदों में दोनों का मिलन दिखा दिया गया है^१। समस्त दो पदों में कथा के एक दम शीघ्रता से समाप्त होने तथा इतना सहसा मिलन होने के लिये आलोचक को तैयार न होने से यह श्लोक प्रक्षिप्त माने जाते हैं। लेकिन हमें रवीन्द्र दाबू के निम्न लिखित शब्द न भूलने चाहिये —“महाभारत में भी यही बात है। स्वर्गारोहण पर्व में ही कुरुक्षेत्र के योद्धाओं को स्वर्ग लाभ हो गया। कथाप्रिय व्यक्तियों को जहाँ कथा समाप्ति रुचिकर होती, वहाँ महाभारतकार नहीं रुके, इतनी बड़ी कहानी को घूल से बने गूह की भाँति वे एक क्षण में छिन्न भिन्न कर आगे बढ़ गये। जो संसार से विरागी हैं और कथा कहानियों को उदासीन भाव से देखते हैं, उन्होंने इसके भीतर से सत्य का भी अनुसंधान किया, वे झुंघ नहीं हुये। विलकुल यही बात मेघसन्देश के लिये भी कही जा सकती है^२।”

कुछ विद्वानों को इस काव्य में शैवदर्शन की भी झलक दिखलाई देती है। उनका कथन है कि कालिदास शिवजी को ही वेदान्त द्वारा प्रतिपाद्य प्रधान पुरुष (वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुष व्याप्य स्थित रोदसी) मानते थे तथा शिव सायुज्य प्राप्त करने की भी उन्हें वही उत्कण्ठा थी। उनका यह भी विश्वास था कि जीवात्मा इन्द्रियों के विषयों में अनुरक्त होने और परमात्मा के ध्यान में उपेक्षा करने से ही परमात्मा से वियुक्त है और यह वियोग तब तक चलता रहेगा जब तक कि जीवात्मा अपने मन को शिखलोक में शिवजी के पास नहीं भेजता है।

यक्ष को भी अपनी पत्नी के प्रेम तथा अपने स्वामी की सेवा में अनुरधानता करने के कारण वियुक्त रहना पड़ता है। मेघ के प्रति कहे गये यक्ष के वचनों को हम ऐसा मान सकते हैं कि यक्ष अपनी अन्तरात्मा से परमात्मा के आनन्दमय स्थान पर विभिन्न केन्द्रों में से होते हुए जाने की प्रार्थना करता है। आषाढ मास से प्रारभ

१ तत्सन्देश जलधरधरो दिव्य वाचाऽचचचे
 प्राणास्तस्या जन हितरतो रक्षितु यक्षवध्या ।
 प्राप्योदन्त प्रमुदितमना साऽपि तस्थौ स्वमर्तुं
 केषा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमानाम् ॥२॥५६॥
 श्रुत्वा वार्ता जलद-वधिता ता धनेशोऽपि सद्य
 शापस्यान्तं सदृषदृदयं सविधायास्तकोप ।
 सयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती दृष्टचित्तौ
 भोगानिष्टानभिमतसुषान् प्रापयामास मूय ॥२॥५७॥

२ इस प्रसंग में भी नेमिदूतम् (कोटा) की ३।० फतेहसिंह द्वारा लिखित भूमिका दर्शनीय है।

करना, राम गिरि पर (भारतवर्ष के केन्द्र में रहना तथा आँखों के बन्द करने से शाय का अवसान-यह सब बातें सन्देश की आध्यात्मिक विशेषता को ही प्रकट करती हैं।

श्री डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने भी अपने 'मेघदूत एक अध्ययन' में काव्य की अध्यात्मपरक ही व्याख्या की है। उनका विचार है कि कवि ने मेघदूत में यद्ये कौशल से शिव के स्वरूप का सन्निवेश किया है। उज्जयिनी में महाकाल शिव के पुण्यधाम का वर्णन है। शिव के गणों का, उनके नीलकण्ठ गुण का, शिवजी के नृत्य का तथा उसके आरम्भ में गजासुर की कृत्ति के परिधान का उल्लेख है (१।५०)॥ शकर को शूली कह कर उनके त्रिशूल की ओर भी संकेत है। चण्डी, भयानी और गौरी के नाम भी हैं। शिवजी के अट्टहास का (१।५६), उनकी जटाओं में कल्लोल करती हुई जह्नुतनया का तथा पार्वती के साथ गंगा के सपत्नी भाव का भी वर्णन है। शम्भु के भुजगों का, पार्वती के साथ उनके विहार का (१।६१), कुबेर के साथ उनकी मैत्री का, किन्नरियों द्वारा उनके यशोगान का, त्रिपुर की विजय का एवं उनके वृषभ का भी वर्णन किया है। शिवजी त्रिनयन है (१।५६।), मदन का वे दहन कर चुके हैं, इसलिये जहाँ शिव का निवास है वहाँ कामदेव जाने से डरता है। देवागनाओं द्वारा दर्पण के काम में लिये जाने वाले रजतगिरि कौलाश के उत्सव में तो अलकापुरी बसी ही हुई है। शिवजी पशुपति हैं (१।५६।), उनके चरणन्यास की परिक्रमा और दर्शन करके अर्धालु जन स्थिर पद अर्थात् अनावृत्तिमय मोक्ष पाने में समर्थ होते हैं (१।५६।)। इस प्रकार अनेक प्रकार से वृषराज केतन शिव के स्वरूप का कालिदास ने मेघदूत में निर्देश किया है। आगे चल कर विद्वान् लेखक ने शिव के इस स्वरूप पर विस्तृत रूप से विचार किया है। उनका कथन है—

“कालिदास उत्कृष्ट कोटि के अद्वैतवाद् को मानने वाले थे। वेदान्त प्रतिपादित ब्रह्म को वे शिव ही कहते हैं तथा शिव, विष्णु और ब्रह्म में वे कोई भेद नहीं मानते (कुमार० २।४)। शिव, विष्णु और ब्रह्म का अद्वैतभाव शिव और कूटस्थ आत्मा का तादात्म्य और योग द्वारा उस अक्षर ब्रह्म का साक्षात्कार ही कालिदास का दार्शनिक मत है।”

“अतएव वृषवेतु, वृषाचन, शिवरूप आत्मा के दर्शन नहीं होते, तब तक काम-याथा चित्तवृत्तियों को अधोमुख रखती है। वृषपति शिव की साधना और भक्ति (१।५६॥) प्राप्त करना प्रत्येक कामरूप पुरुष के लिये अत्यन्त आवश्यक है। कालिदास के अनुसार योग के द्वारा परमात्मा सशक परम ज्योति का दर्शन करना ही जीवन की परम सिद्धि है—

योगात्स चान्त परमात्मसह
दृष्ट्वा पर ज्योतिरुपात्तराम^१॥कुमार० ३।५=॥

शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान ही कालिदास के दर्शन और आध्यात्मिक ज्ञान है। कवि ने इस काव्य में भी पाठकों को शिव के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान कराने की चेष्टा की है।^१

भारतीय साहित्य में लौकिक और पारलौकिक, भौतिक तथा आध्यात्मिक का सम्बन्ध कराने की प्रथा चली आती है। इस काव्य में भी मानवीय प्रेम से सशिलपटु बाह्य प्रकृति के प्रेम के साथ परमात्मा के प्रेम की ओर सकेत किया गया है। जीवात्मा तथा परमात्मा के बीच की खाई को पार करने के लिये यह सन्देश काव्य एक स्थायी सेतु का कार्य करता है। प्रेयसी रूपी परमात्मा के निवासस्थान से आती हुई शीतल वायु के लिये जीवात्मा सर्वदा ही उत्कण्ठित रहेगा। कवि ने निम्न पद्य में इसी भाव का सकेत किया है -

भित्त्वा सद्यः विशलय पुटान् देवदारुद्रमाणा
ये तत्क्षीरं स्मृतिं सुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः ।
आलिङ्ग्यन्ते गुण्यति मया ते तुषाराद्रिधाता
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥

काव्य के अन्त में भी कवि ने कुछ आध्यात्मिक सन्देश अपने पाठकों को दिया है। यत् मेघ के प्रति शुभकामना व्यक्त करते हुये कहता है -

मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ।

दूसरे शब्दों में इस पंक्ति का यह भी अर्थ हो सकता है कि जीवात्मा का क्षण भर के लिये भी ज्योति स्वरूप परमात्मा से वियोग न हो^२ ।

१ इस मत का विशेष अध्ययन करने के लिये उक्त लेखक की 'मेघदूत एक अध्ययन' का 'शिव का स्वरूप' नामक अध्याय देखिये।

२ श्री सुधीर कुमार गुप्त, एम० ए०, शास्त्री (गुरजा यू० पी०) ने 'मेघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश' नामक अपनी पुस्तक में मेघदूत के तत्सत पौराणिक कथाओं को वेद मन्त्रों के अर्थ से मिलाने का प्रयास किया है और सारे काव्य को भ्रामरी दयानन्दजी द्वारा निर्दिष्ट प्रणाली के अनुसार किये गये वेद मन्त्रों के अर्थ से अनुप्राणित सिद्ध करने की चेष्टा की है। लेकिन कालिदास की रचनाओं में जिस सृष्टि की अन्तर्धारा प्रवाहित हो रही है, वह शुरू पौराणिक है, मले ही उसका मूल वेदों में ही क्यों न पाया जाये। कालिदास ने अपने समय में प्रचलित पौराणिक सृष्टि को लेकर ही अपने काव्यों की रचना की है। किसी सम्प्रदाय विशेष या

पहत सभर है कि कवि ने केवल मनोपैधानिक पृष्ठभूमि को लेकर ही यह काव्य लिखा हो। इस काव्य में जो कुछ भी सांस्कृतिक अथवा दार्शनिक विचार आये हैं, वे कवि की अन्तरात्मा तथा मन के परिष्कार को ही प्रमाणित करते हैं। पाठकों के मनोरजन और आनन्दोत्पादन की सामग्री इस काव्य में पर्याप्त रूप से है। इसमें आम्बकृत पर्वत के ऊपर बने हुये ऐसे कुज दंपने को मिलते हैं, जिनमें वनचरों की स्त्रियों विहार किया करती हैं। पर्वतों के ऐसे दृश्य देखने में आते हैं जिन्हें वर्षा ऋतु में केवल उही लोग देख सकते हैं जो पर्वतवासी हैं या जो विशेष करके इसी निमित्त पर्वतों पर जाते हैं। दशार्ण की केतकी यदि किसी ने नहीं देखी है, त्रिदिशा की वेप्रवती की लहरों का भ्रमण यदि किसी ने नहीं देखा है, उस प्रान्त के उपरनों में चमेली के पुष्पों को चुनने वाली पुष्पलारियों से यदि किसी का परिचय नहीं हुआ है, तो उसे मेघ सन्देश अवश्य पढ़ना चाहिये। उज्जैन की यदि सैर करनी हो अथवा उदयन का कीर्ति-गान सुनना हो, तो और कहीं न जाकर केवल मेघसन्देश पढ़ना ही पर्याप्त होगा। प्राचीन दशपुर प्राचीन ब्रह्मारत प्राचीन कनखल, प्राचीन कौलाश और प्राचीन अलका के दर्शन अब दुर्लभ है, तथापि उनकी छाया इस काव्य में पाई जाती है। यदि किसी को इन नगरों तथा उत्तरीय भारत के प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा देखने की उत्कण्ठा हो तो उसे मेघ सन्देश अवश्य ही पढ़ना चाहिये।



सिद्धान्त विशेष का निधिधत् उसके काव्यों में प्रतिपादन नहीं किया गया है। उसने अपने समकालीन ज्ञान, दर्शन तथा धर्म की परम्पराओं का ही काव्य में दर्शन कराया है। जो कुछ भी साहित्येतर गुण—उसकी रचनाओं में पाये जाते हैं, वे उसकी प्रगाढ़ विद्वत्ता और सारग्राहिणी प्रवृत्ति के द्योतक हैं, न कि उसके किसी सम्प्रदाय विशेष का अनुपायी होने के।

द्वितीय अध्याय

द्वितीय भाग-मेघसन्देश के उत्तराख्यानकाव्य

- १ परमेश्वर भक्त का यत्न मिलन काव्य
- २ मन्द्रिकल रामशास्त्री का मेघ प्रति सन्देश

परमेश्वर भा का यज्ञ समागम काव्य (वि० स० १९१३-१९२१)

दरभगा राज्य के तस्वनी (तरौनी) नामक ग्राम में पीप शुटक प्रतिपदा वि० स० १९१३ में इनका जन्म हुआ था। इनके पितामह श्री भोलानाथ भा व्याकरण के परम विद्वान् थे तथा दरभगा नरेश महाराज श्री छत्रसिंह (स० १८०७ ई०-स० १८२६ ई०) के सभापरिडत थे। इन भोलानाथ भा के ही पुत्र पूर्णनाथ भा उपनाम वावूनाथ भा हुए। यह भी व्याकरण के श्रद्धे विद्वान् थे। इन पूर्णनाथ भा उपनाम वावूनाथ भा के दो पुत्र हुए। एक का नाम प्रयाग भा था तथा दूसरे का श्रीपरमेश्वर भा। यह परमेश्वर भा बड़े विद्वान् थे। वैयाकरणकेसरी तथा कर्मकारण्डोद्धारक और महोपदेशक इत्यादि पदविया इन्हें भारतवर्ष की विभिन्न सस्थाओं से सम्मान में मिली थीं। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने इन्हें महामहोपाध्याय पदवी से भी भूषित किया था। विहार परिडत-सभा ने इन्हें विद्यानिधि पदवी भी प्रदान की थी। अपने समय के सस्कृत विद्वानों में इनकी वही प्रतिष्ठा थी।

इन महामहोपाध्यायजी ने स्वरचित 'कुसुम कलिका श्राव्यायिका' नामक ग्रन्थ में सलेप में अप्तम कुच्छु वश परिचय दिया है। यह इत्यन्त-प्रतिभाशाली थे। वात्स्यायन्य में अपने ग्राम की पाठशाला में ही व्याकरण तथा साहित्य का अध्ययन करने के बाद सोलह वर्ष की अवस्था में फ्रांस कालेज बनारस में प्रविष्ट हुए। यहाँ श्री राजाराम शास्त्री तथा श्री बालशास्त्री से इन्होंने व्याकरण, धर्मशास्त्र, मीमांसा, साख्य और वेदान्त इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। वार्षिक परीक्षा में व्याकरण तथा धर्मशास्त्र विषय लेकर विशिष्ट योग्यता के साथ उत्तीर्ण होने के उपलक्ष्य में कालेज के तत्कालीन प्रिंसिपल श्री टी० पून० आर० ग्रीफिथ के समय में ता० १४ मार्च स० १८७७ ई० को लार्ड नाथंजुक के दरबार में इन्हें पारितोषिक मिला। डा० बुलर जो कि दक्षिणप्रान्त के उच्च शिक्षाधिकारी थे, एक बार सस्कृत कालेज में आए थे। वे भी परमेश्वर भा के सस्कृत ज्ञान और शास्त्रीय विद्वत्ता से परम सतुष्ट हुए थे।

इस प्रकार १६ वर्ष की अवस्था में ही अध्ययन समाप्त कर राजस्थान के भालरापाटन नामक नगर में कैंट पाठशाला में कुछ दिनों तक इन्होंने सस्कृत व्यापक का कार्य किया। दूर होने के कारण इस स्थान को छोड़कर यह विहार वापिस चले आए। इसका बाद पूर्णिया जिले के अन्तर्गत धनेली राज्य में कुछ दिनों राजपरिडत रहे। यहाँ की जलवायु के स्वास्थ्य-कर न होने के कारण पुन पद त्याग कर घर आ गए। फिर दरभगा के निकट गन्धवारि स्टेट में राज्य पाठशाला में १२ वर्ष तक इन्होंने अध्यापन कार्य किया। गन्धवारि स्टेट के दरभगा में मिला दिए जाने पर दरभगा नरेश श्री रामेश्वरसिंह बहादुर जी० सी० आर० ई०, के० सी० ई० ने ता० १७ १८९६ ई० को इन्हें दरभगा का राजपरिडत नियुक्त कर लिया। ४० वर्ष तक श्री परमेश्वर भा ने दरभगा राज्य की सेवा की। कुछ दिनों तक यह

राजकीय संस्कृत पुस्तकालय, दरभंगा के अध्यक्ष भी रहे। राजकीय रामेश्वर लता संस्कृत विद्यालय के प्रिंसिपल के पद पर भी इन्होंने कार्य किया।

धर्मान्ति तथा विद्योन्नति में निरन्तर लगे रहने के कारण इन्हें अनेक स्थानों से अनेक पदविया भी प्राप्त हुईं। सर्वप्रथम कर्मकाण्ड के उद्धार करने के कारण विद्वन्मण्डली से इन्हें कर्मकाण्डोद्धारक पद प्राप्त हुआ। भारत धर्म महा मण्डल बनारस से कार्तिक कृष्ण ५ सम्भत् १९६३ में इन्हें व्याकरण केसरी तथा महोपदेशक की पदवी प्राप्त हुई। ता० ११ १९१४ ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने इन्हें महा महोपाध्याय पद प्रदान किया। बिहार पंडित सभा, बाकीपुर ने ता० २८ ७ १९१७ ई० में विद्यानिधि पद से इन्हें विभूषित किया। प्रान्तीय संस्कृत कौंसिल के यह सदस्य थे। पटना विश्वविद्यालय, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस, हिन्दु विश्व विद्यालय, बंगाल, बिहार और उड़ीसा की संस्कृत परीक्षा समितियों में विभिन्न रूप से यह अपना सहयोग देते रहे। सन् १८०० ई० में ब्रिटिश गवर्नमेन्ट ने सम्मान के रूप में रेशमी धोती तथा रेशमी चपकल इन्हें भेंट की।

इन्होंने कर्मकाण्ड, धर्मशास्त्र, नाटक, काव्य और कोप इत्यादि विषयों पर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। महिषासुर उध नाटक, घाताह्वान काव्य, कुसुमकलिका आत्पायिका, ऋतु-वर्णन काव्य तथा यज्ञ समागम काव्य' यह इनकी साहित्यिक रचनायें हैं। कालिदास के ऋतुसंहार के आधार पर ऋतु वर्णन काव्य तथा मेघदूत के आधार पर यज्ञ समागमकाव्य लिखा गया है।

साहित्य, कर्मकाण्ड और धर्मशास्त्र में विभिन्न ग्रन्थों का निर्माण कर महा महोपाध्याय परमेश्वर भा ने अतुल रचयिता प्राप्ति की। ता० जून ३०, सन् १९२४ ई० को इस विद्वान् का स्वर्गवास हुआ।

काव्य की कथा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें यज्ञ का उसकी प्रेयसी के साथ समागम वर्णित किया गया है। मेघदूत में अपनी प्रेयसी के लिये सदेश देते समय यज्ञ कहता है—

१ यह काव्य दरभंगा से शाके १८०७ में प्रकाशित हुआ है। अंत' वि० स० १९५० अथवा इससे कुछ पूर्व का समय इस काव्य का रचनाकाल होना चाहिये।

२ लेखक के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिये मिथिला भाषा में लिखा हुआ लोकक का 'मिथिला-सत्य विमर्श' उत्तरार्ध पृष्ठ १८-१९ देखिये।

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥

तदनुसार चार महीने बाद देवोत्थान होने पर यक्ष अपनी प्रियसी के पास पहुँचता है। सर्वप्रथम अपनी प्रियसी से वह कुशल-वार्ता पहुँचता है। कुछ कथायें भी उसे सुनाता है। बर्दा उत्सुकता से उसका किसी तरह दिन बीतता है। रात्रि होने पर यक्ष की अपनी प्रियसी से फिर कुछ बातचीत होती है। इस प्रसंग में कवि ने दोनों प्रेमियों की विभिन्न प्रणयकथायें और प्रणयलीलायें बड़े सरस और मधुर ढंग से वर्णित की हैं। यक्ष की पत्नी द्वारा यक्ष को प्रेमपूर्वक हाला पिलाने तथा वीणा वादन द्वारा उसे प्रसन्न करने का वर्णन किया गया है। यक्ष भी इस अवसर पर अपनी प्रियसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस प्रकार बड़े प्रेम से उनकी रात्रि बीतती है। प्रातः काल होने पर बन्दीगण मधुर गीतों से उन्हें जगाते हैं। पति पत्नी शय्या से उठकर सर्व प्रथम ब्राह्मणों के दर्शन करते हैं। उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर तथा प्रातः कालीन कृत्यों से निवृत्त होकर यक्ष अपने मित्रों के साथ डरता डरता कुबेर के पास जाता है और उन्हें प्रणाम करता है। कुबेर भी प्रसन्न होकर उसके लिये और भी अधिक उत्तरदायित्व का कार्य सौंप देते हैं। इस प्रकार यक्ष और उसकी पत्नी अपना जीवन फिर बड़े सुख से बिताने लगते हैं।

काव्य की कथा वहीं पर समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

यह काव्य आकार में तो छोटा ही है। केवल ३५ श्लोक ही इस काव्य में हैं। मेघदूत के अनुसार इसमें भी मन्दाकिन्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। जैसा कि काव्य के नाम से भी कुछ प्रतीत हो जाता है, इसमें सभोग शृंगार का वर्णन किया गया है। मेघदूत में यक्ष केवल सन्देश देकर ही रह जाता है। इस काव्य में कवि ने मेघदूत की कथा को ही पल्लवित किया है। मेघदूत में यक्ष कहता है कि भगवान् त्रिष्यु के भुजग शयन से उठने पर उसके शाप का अन्त हो जायगा, अतः केवल चार महीने का उसकी प्रियसी को और कष्ट है। कवि ने इसी बात को लेकर अपना काव्य प्रारम्भ किया है। चार महीने बाद यक्ष स्वयं अपनी प्रियसी के पास पहुँच जाता है। इस मिलन-वेला में दोनों प्रेमियों को जो अपूर्व आनन्द हुआ होगा, उसे सहृदय पाठक हरय ही जान सकते हैं।

जैसाकि यक्ष ने मेघदूत में कहा था —

पश्चादाया धिरदगुणित त तमात्माभिलाष
निर्येक्ष्याय परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षणसु ॥२॥२६॥

उसी के अनुसार इस काव्य में यक्ष और उसकी प्रियसी के मिलने का वर्णन किया गया है। यह लघु-काव्य संयोग शृंगार की मधुर धारा से श्रोतप्रोत है। काव्य

क प्रत्येक पद्य में तो क्या, प्रत्येक पंक्ति में शृंगार रस की छटा विद्यमान है। अपनी प्रेयसी से मिलते समय सर्वप्रथम यक्ष कहता है—

ये ये क्लेशा सुमुपि त्रिहे ते मया सोढपूर्वा-
स्तानानन्दानुभवसमयेऽल पुन स्मारयित्वा ।
सम्प्रत्येकीभव सह मया प्राण वद्गोपनीये
भूयान्नेत्र पलमपि कदाऽप्यात्रयोविप्रयोग १ ॥३॥

चिर त्रिरह के बाद मिलन होने पर यक्ष की ऐसी इच्छा स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर कवि ने दोनों प्रेमियों के सयोग का बड़ा मधुर और भावपूर्ण चित्र अंकित किया है। कटपना की सुकुमारता तथा भावों की तीव्रता दर्शनीय है। यक्ष अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ है। उसकी प्रेयसी उसे मझिरा तो पिलाती ही है, साथ में धीणा भी बजा रही है—

पत्याऽऽघात्ये मधुरमुखरे पुष्करे चान्प्रवीणा
धीणामेणीनयनतक्षणी चारुणीधूर्णितके ।
कोणप्रान्ते लक्षु लक्षु तथाऽवाद्यत्सा यथाऽद्धा
ताल कास्या इव समददु ककणा निम्नणन्त ॥१२॥

प्रेमियों के मिलन के अवसर पर कवि ने सुरा और संगीत का प्रसंग उपस्थित कर वातावरण को और भी मधुर बना दिया है। साथ में भावों के अनुकूल शब्द भी ऐसे प्रयोग किये गये हैं जो धीणा वादन का दृश्य उपस्थित करते हैं^२।

जो चिरदिली नायिका चिरहावस्था में लम्बी-लम्बी रात्रियों को रोते-रोते बिताती थी, अब प्रत्येक रात्रि उसके लिये एक उत्सव बन गई है। कवि ने लिखा है—

१ इस पंक्ति की मेघदूत की— मा भूदेव क्षणमपि च ते विद्युत्ता विप्रयोग ॥२॥१५॥
पंक्ति से तुलना की जा सकती है।

२ उद्धृत पद्य में एकार बहुल शब्दों पर विचार कीजिये।

कवि को नायिका के धीणा बजाने का दृश्य उपस्थित करने में मेघदूत के—

उत्सगे वा मलिनयसने सौम्य निक्षिप्य धीणाम् ॥२॥२५॥

इत्यादि पद्य से प्रेरणा अवश्य ही प्राप्त हुई होगी, क्योंकि चिरदिली नायिका अब चिरह में भी धीणा बजाने की चेष्टा करती थी तो प्रियसयोग में तो उसका धीणा बजाना स्वाभाविक ही है।

यां या रात्रिम्प्रियविरहिता^१ घाटेनेक्षमाणा
निद्राहीना कठिनकठिन क्षोणिपृष्ठे लुठन्ती ।
अलीवाक्यैरपि परिपल बोधिता नैव नेतु
शक्ता सैषा दयितयुतया सोत्सवन्नीयते स्म ॥१३॥

इस पद्य में वियोग और सयोग का कवि ने एक साथ ही बड़ा सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है ।

आगे चलकर यक्ष अपनी प्रियसी के अपूर्व सौन्दर्य का वर्णन करता है । इस वर्णन में कवि ने बड़ी चमत्कारपूर्ण कल्पनायें पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं । यक्ष बेणीबन्धन में सलग्न अपनी पत्नी से कहता है—

“ बाले । यक्षत्र तव त्रिकलुप चन्द्रमुत्प्रेक्ष्य पूर्ण
प्रस्त्यै^२ पातस्त्वरितमपतत्केशपाशापदेशात् ।
स्वचेदानीं लकुचितकुचे पाणिनोद्गृह्य राहुम्
घोरकार चिकुरनिकर पुष्टबन्ध यधान ॥१६॥

नायिका के मुख में चन्द्र, अलकों में राहु और बेणी बन्धन में घोर बन्धन की कल्पना कितनी चमत्कारपूर्ण है ।

यक्ष फिर अपनी प्रियसी के लिये कहता है—

चक्षुर्लीलाकमलमतुला भिक्षते तेऽत्युदारे
पाच मोक्षामधुररुचिरा कोकिल कूजितेन ।
बन्धूकश्चाप्यधर सुपमा नम्रभावेण कम्प्रे
मुष्याऽभिव्या तव नयनजा वर्धतेऽथापि काऽपि ॥१७॥

नायिका के नेत्र, याणी और अधर सुपमा का कवि ने किस प्रकार भाव भंगिमा के साथ वर्णन किया है ।

अपनी प्रियसी के सौन्दर्य का वर्णन करते हुये एक स्थान पर यक्ष कहता है—

बाले बाले रचिररुचिर सूक्ष्मसिन्दूरविन्दु
कण्ठे पुष्प दशनयसने गाढताम्बूलराग ।
सौरीरन्ते दृशि नक्षतती पायकश्चित्ररासो
गौरे गात्रे गुणिनि सुभगम्भावुक्य गृणन्ति ॥२३॥

१ घाटेने = मुद्राविशेषण, यत्र निर्निमेदं दृश्यते

२ पात = राहु ।

कवि ने इस पद्य में नायिका का बड़ा ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है ।

आगे चल कर कवि ने नायिका की वियोग-कालीन और सयोग-कालीन अरन्धाओं की बड़े सुन्दर ढंग से तुलना की है—

अक्रादुधीना वररमयितु शापकालाच्च दीना
'कीनाशाशा जिगमिपुरिवातीव खिन्ना भवीना ।
मीनाक्षी या क्षणमिव शिला' क्षायन्ती सतीना
सा दिष्ट्याय स्वपिति ललना कान्तदेहेऽतिलीना ॥२७॥

भावों के साथ साथ कवि ने भाषा भी बड़ी सुकुमार ही प्रयुक्त की है । अनु-
प्रास की छटा तो दर्शनीय है ही ।

इस प्रकार एक अन्य स्थान पर भी कवि ने वृत्त्यनुप्रास की छटा बाध दी है ।
यक्ष का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

अके कृत्वा कथमिव कला कोविद् कामुकोऽसौ
कान्ता कर्णे किमपि कुतुकाद्भक्तुकाम करेण । इत्यादि ॥१०॥

यद्यपि यह काव्य छोटा ही है, फिर भी इसमें स्थान-स्थान पर अनेक सूक्तियों
शिवरी हुई हैं -

१ मध्यस्थाना लघु समुचित सन्धिकृत्य हि तत्र ॥७॥

२ नैव द्वेष्यो न च खलु सुहृत्कोऽपि कस्याप्यकस्मात्
स्वस्याचारादुभजति हि जनो गर्हणामर्हणा वा ॥१४॥

३ अल्पादरपो भवति त्रियम कल्पकल्पो हि काल
सकरपात्त शमयसमयो ह्यन्यते द्राधितोऽपि ॥३४॥

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण जान सकते हैं कि यह लघु काव्य
किस कोटि का है । भाषा, भाव, और शैली की दृष्टि से यह एक प्राज्ञल रचना है ।
मायुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति का काव्य में बाहुल्य है । कालिदास ने
में अमन्देश में प्रियलभ्य शृ गार की यदि वृष्टि की है, तो इस काव्य में शरद् ऋतु
की चादनी में समोग शृ गार धरसाया गया है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते
हैं कि यह लघुकाव्य में अदूत का सहोदर ही है । इस काव्य का एक-एक पद्य शृ गार
की स्पष्ट छवि से अंकित हो रहा है । कवि ने काव्य के अन्त में उचित ही कहा है—

माऽस्याकारे कुरुत कृतिनो दृक्प्रसार कथञ्चित्-
 शृङ्खलीताम्य, रसगुणममु यो न लभ्यो बहुत्र ।
 प्रेक्ष्य पक्व सुललित फल त्रिभुक् तुण्डिकेयं
 स्त्यन्त्या विद्यास्तलितसरसम् पत्रमास्वादयन्ति ॥३४॥

कालिदास के मेघदूत की कथा को परलपित करते हुये जिस तरह इन्होंने यक्ष-समागम-काव्य लिखा, उसी तरह ऋतु संहार के विषय का उपसंहार करते हुये इन्होंने ऋतु-वर्णन नामक काव्य भी लिखा है। इस काव्य में भी कवि ने यही सुन्दर उत्प्रेक्षायें प्रयुक्त की हैं-

नवकिसलयदम्भाक्षित सिन्दूर मुष्टि
 प्रतिचनतति लक्ष्म्याऽऽक्रीड्य होत्सुत्सवेऽसौ
 कमलदलमिपेणोत्कीर्य सागौरमध्र
 सरसि कविसहाय स्नाति किंसिद्धसन्त ॥

वसन्त होली के महोत्सव में वनश्री के साथ नये किसलयों के गुलाल और कमलदलों के अक्षरख मिले हुये अक्षर से होली खेलकर सरोवर में कवि अथवा जलपक्षियों के साथ नहा रहा है। रंग खेलने के बाद स्नान करना स्वाभाविक ही है।

महामहोपाध्याय परमेश्वर भा न केवल पद्यरचना में सिद्धहस्त थे, बल्कि गद्य भी बड़ा सुन्दर लिखते थे। इनकी लिखी हुई कुसुम कलिका आख्यायिका संस्कृत गद्य की एक प्रौढ रचना है। उदाहरण के लिये निम्न अवतरण पर्याप्त होगा -

वाचन्ते चाव्यक्त मधुराणि पदानि धालनां श्याङ्गगा
 कोमलागा मृदंगा, आलाप्यते चालिग्य नरोद्ध
 कृशागीव तन्त्री, शयनीयशयेन शयेन सारगी, सयोज्यन्ते
 धयस्या इव नृत्य काला कास्थताला, परामृश्यते
 च शनकै कामिनीय मानिनी शोडीकृताकरागुनिमि
 सगुणा धीणा ।

उपर्युक्त अवतरण में कवि ने किस प्रकार श्लेषमूलक अपमा द्वारा वाद्यवादन का विवरण प्रस्तुत किया है।

कवि के सम्यग्ध में और कुछ अधिक न कह कर हमें केवल यही पर इतना ही कहना है कि मेघदूत की कथा को परलपित कर कवि ने अपनी लोकोत्तर प्रतिभा का परिचय दिया है। कवि व्याकरण और कर्मकाण्ड के प्रकाण्ड विद्वान् होने के अतिरिक्त एक सहृदय व्यक्ति भी है। मेघदूत की कथा को परलपित कर लिखे जाने वाले काव्यों में यक्ष समागम काव्य भाव, भाषा और शैली सभी दृष्टि से एक सुन्दर काव्य है।

मन्दिकल रामशास्त्री का मेघप्रतिसन्देश [स० १९२३ ई०]

दक्षिण भारत के आधुनिककालीन संस्कृत विद्वानों में श्री मन्दिकल राम शास्त्री का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इस विद्वान् का जन्म सन् १८५६ ई० में मैसूर राज्य के अन्तर्गत मन्दिकल नामक नगर में हुआ था। वह रथीतरगोत्र के श्री अर्प्पा स्वामी ज्योतिषी के पौत्र तथा बेंकट सुब्बाशास्त्री के पुत्र थे। इनकी माता का नाम अक्काम्मा था। आठ वर्ष की अवस्था में इनका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ तथा मैसूर में श्री द्विवेदी गुरु से इन्होंने ऋग्वेद का अध्ययन किया। सोलह वर्ष की अवस्था तक यह वहा ऋग्वेद का अध्ययन करते रहे। इसी समय अपने पिता के स्वर्गास का समाचार सुन यह अपने घर आ गये और अपने नगर में ही श्री बेंकट रामाचार्य के वहा चार वर्षों तक संस्कृत साहित्य का अध्ययन करते रहे। तदनन्तर उत्तर भारत में आकर विभिन्न विद्वानों से इन्होंने न्याय, व्याकरण इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन किया। इसके बाद यह फिर मैसूर चले गये तथा महाराज कृष्ण राज वोडियर तृतीय के प्रासादाध्यक्ष श्री वल्ली नरसप्पा की देख रेख में परिङ्कतरत्नम् श्री सीताराम शास्त्री के पास न्याय तथा साहित्यशास्त्र का अध्ययन करते रहे। महाराज संस्कृत कालेज मैसूर से संस्कृतविद्वत् परीक्षा इन्होंने उसी वर्ष उत्तीर्ण की जिस वर्ष कि यह वहा चालू की गई थी। बाद में श्री वल्ली नरसप्पा द्वारा स्थापित शारदा विलास-संस्कृत पाठशाला में चिरकाल तक इन्होंने अध्यापक पद पर कार्य किया और अपने अनेक शिष्यों को संस्कृत का विद्वान् बनाया।

शु गेरी मठ के जगद्गुरु श्री शिवाभिनव सच्चिदानन्द भारती से अद्वैत वेदान्त की शिक्षा प्राप्त कर आर्य धर्म प्रकाशिका नामक कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का एक सुन्दर ग्रन्थ इन्होंने लिखा। प्रो० मैक्समूलर ने इस ग्रन्थ की मूरे मूरे प्रशंसा की थी।

इसके अतिरिक्त चामराजकर्त्याणचम्पू, चामराज राज्याभिषेक-चरित्र और कृष्णराजाभ्युदय आदि ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे। स्वर्गीय हिज हार्नेस श्री चामराज वोडियर ने इन ग्रन्थों पर इन को कई पुरस्कार भी प्रदान किये। तदनन्तर स० १९१४ ई० में इन्होंने 'भैमी परिणय' नामक नाटक लिखा। इनकी विद्वत्ता पर मुग्ध हो श्रीमान् कृष्णराज वोडियर चतुर्थ ने इनको कथि रत्न की उपाधि प्रदान की तथा महाराज संस्कृत कालेज मैसूर के प्रधान परिङ्कत के पद पर नियुक्त कर दिया।

शु गेरी मठ के महोत्सव वृत्तान्त को लेकर इन्होंने पुष्पामिषेक चम्पू लिखा। इस ग्रन्थ पर श्री शु गेरी जगद्गुरु चन्द्रशेखर भारती ने इन्हें कवि-कुलात्कार की उपाधि प्रदान की। अपनी विद्वत्ता और गम्भीर शास्त्र ज्ञान के कारण समग्र भारत में विभिन्न स्थानों से इन्हें अनेक उपाधियाँ प्राप्त हुईं। इस प्रकार उत्तरादि मठ के

श्री सत्य ध्यान तीर्थ गुरु से इन्हें 'कवि शिरोमणि,' गरल पुर स्थित श्री राखे-ट मठ के स्वामी श्री सुब्रह्मण्याभिनव सच्चिदानन्द भारती से 'कवि कुला-यतस' तथा भारतधर्म महामण्डल काशी से 'कवि विभूषण' की उपाधि प्राप्त हुई।

सन् १६२३ ई०के लगभग इन्होंने मेघप्रतिसन्देश की रचना की। इसके अतिरिक्त सस्कृत कथा सप्तति और भगवत्प्रार्थना आदि ग्रन्थ भी इनके लिखे हुये हैं।

मेघप्रतिसन्देश की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इसमें मेघ-सन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यक्ष के सन्देश को लेकर मेघ अलका नगरी पहुंचता है और उसकी पत्नी को यक्ष का सन्देश सुनाता है। अपने प्रिय के सन्देश को सुनकर यक्षी बड़ी प्रसन्न होती है, लेकिन प्रिय की विरह व्यथा से उसे वेदना भी कम नहीं होती है। तन्मन्तर हाथ के सहारे किसी तरह उठकर धीरे धीरे वह मेघ से वार्तालाप प्रारम्भ करती है और उसे देव-स्वरूप मानकर उससे कृष्णा और श्रीद्वार्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा करने के बाद यक्ष के पास अपना प्रति सन्देश ले जाने की प्रार्थना उससे करती है।

प्रतिसन्देश में सर्वप्रथम यक्षके सद्गुणों का वर्णन, अपनी विरहावस्था का निवेदन तथा अपने और यक्ष के दुर्भाग्य पर पश्चात्ताप प्रकट किया गया है। इसके बाद यक्षी ने अपने घर की दुरवस्था का वर्णन किया है और फिर यक्ष के सन्देश का यथोचित उत्तर दिया है। अन्त में यक्ष के शाप से सज्ज अभिज्ञानस्वरूप कुक्षु घटनाये वर्णित कर और शिवजी की कृपा से शाप के शान्त होने का समाचार बता कर यक्ष से शांति ही घर लौटने की प्रार्थना की गई है।

प्रति सन्देश सुनाने के बाद मेघ को रामगिरि तक का सरल मार्ग भी बतलाया गया है। अलका नगरी से हिमालय पहुँच कर और वहाँ से फिर दक्षिण की ओर चलने पर सिन्धु नदी का जल पीते हुये काश्मीर पहुँचने का सर्वप्रथम मेघ को परामर्श दिया गया है। काश्मीर में श्रीनगर तथा वहाँ शारदाम्बा के दर्शन के बाद पञ्जाब में अमृतसर तथा शतद्र नदी देखते हुये देहली पहुँचने का फिर मेघ को परामर्श दिया गया है। वहाँ से फिर जयपुर, उदयपुर, चित्तौड़ और अराल पर्वत प्रदेश होते हुये उज्जयिनी पहुँच कर तथा वहाँ महाकाल की पूजा करने के बाद विन्ध्य पर्वत जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। विन्ध्य पर्वत से फिर तापती नदी, विदर्भ देश, पूर्णा नामक नदी, गोदावरी और कृष्णा नदी को पार कर आन्ध्र देश होते हुये राम दुर्ग पहुँचने का फिर मेघ को यक्षी ने परामर्श दिया है।

रामदुर्ग पर्वत पर ही यहाँ यक्ष के मिलने की संभावना के साथ साथ उसकी विभिन्न विरहावस्थाओं का यक्षी ने वर्णन किया है। संभव है कि वहाँ (रामदुर्ग पर)

यज्ञ न मिले और विरह जन्य अधीरता के कारण घूमता हुआ दक्षिण देश की ओर कहीं चला गया हो, अतः मेघ से भी यक्ष की योज करते हुये दक्षिण की ओर जाने की प्रार्थना की गई है। इस प्रसंग में सर्वप्रथम रामदुर्ग से पम्पा सरोवर तथा पम्पा नगर और तु गमट्टा नदी होते हुये शृष्यमूक पर्वत जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। इसके बाद क्रमशः वेद भाष्यकर्ता श्री माधवाचार्य (अद्वैताचार्य त्रिघारण्य) के विजयनगर, पेन्गोड, मन्दिफल, घोपाद्रि, धेनुशैल, नन्दि दुर्ग, कल्याणनगर (गलोर), रामगिरि, यदुगिरि, और कावेरी नदी के तट पर स्थित श्रीरगपत्तन होते हुये महिसुरपुरी (मैसूर) जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। समझ है कि मैसूर नगर के वैभव और त्रिचाप्रसार इत्यादि से प्रभावित हो यक्ष बड़ा घूमने चला गया हो, अतः मैसूर नगर के विभिन्न महत्त्वपूर्ण स्थानों में भी यक्ष की योज करने के लिये मेघ से कहा गया है। इसके बाद चामुण्डा देवी के निवास स्थान महा-बल गिरि और फिर गरलपुर-क्षेत्र होते हुए केरल देश पहुँच कर अनन्तशयन भगवान् के दर्शन कर कोच्चि नामक स्थान से होते हुये कुञ्ज पर्वत की ओर श्री शंकराचार्य के जन्मस्थान कालटी नामक ग्राम में जाने का मेघ को परामर्श दिया गया है। यहाँ से फिर पूर्णा नदी को पारकर पाण्ड्य देश पहुँच कर बड़ा मदुरा नगरी में मीनाक्षी देवी के दर्शन करने के बाद वृत्तमाला नदी, श्रीपति पदगिरि (तिरुमालिरुशोले पर्वत) तथा दर्भशयन तीर्थ होते हुये रामेश्वरम् और धनुष्कोटि पहुँचने तथा वहाँ यक्ष के दृढ़ने का परामर्श दिया गया है। अन्त में यक्षी मेघ से इन्हीं किन्हीं स्थानों में विरह से व्याकुल यक्ष को दृढ़कर अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है और विजली के साथ स्वच्छन्द विहार करत रहना का उसे आशीर्वाद भी देती है।

अन्त में कवि ने लिखा है कि यक्षी के उपर्युक्त विरह घचन किसी प्रकार यक्षराज कुबेर के पास पहुँच जाते हैं। उन्हें यक्षी की दीन दशा पर दया आ जाती है। स्वयं अपना रथ भेजकर रामदुर्ग से यक्ष को अलका गुला लेते हैं। यक्ष दम्पती फिर यथापूर्व अपने घर पर सुखपूर्वक रहने लगते हैं।

यस, काव्य की कथा यहाँ पर ही समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

जैसा कि काव्य के नाम और कथा-यस्तु से स्पष्ट है, इसमें मेघसन्देश की कथा को ही पल्लवित किया गया है। मेघ-सन्देश में यज्ञ ने अपनी पत्नी के पास मेघ द्वारा सन्देश भेजा है। इस काव्य में मेघ द्वारा यज्ञ के सन्देश को सुन कर उसकी पत्नी मेघ के द्वारा ही यज्ञ के पास अपना उत्तर भेजती है। अतः इस काव्य का मेघ प्रति सन्देश नाम उचित ही है। मेघसन्देश में मेघ को अपना सन्देश सुनाने के बाद यज्ञ मेघ से कहता है—

साभिधानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातःकुन्द प्रसवशिथिल जीरित धारयेथा ॥२॥४२॥

इस कथन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कालिदास को भी यक्ष के सन्देश का प्रत्युत्तर अभीष्ट था। अतः यह मानना पड़ेगा कि रामशास्त्री कवि ने मेघ सन्देश के इस प्रसंग से ही प्रेरणा लेकर अपने काव्य की रचना की है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी दो सर्ग हैं, लेकिन कथा का क्रम विल-कुल विपरीत है। मेघ-सन्देश में पृथ्वी भाग में मार्ग वर्णन तथा उत्तर भाग में सन्देश कथन इत्यादि है। इस काव्य में कवि ने पूर्वभाग में यक्षी का प्रतिसन्देश दिया है तथा उत्तरभाग में अलका से रामेश्वर और धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है। मेघ के द्वारा यक्ष के सन्देश को सुनकर विरह व्याकुल यक्षवधू का प्रथम यक्ष के लिये प्रति सन्देश देना ही उचित प्रतीत होता है, क्योंकि मार्ग तो मेघ का देखा हुआ ही है। यदि विचार किया जाय तो इस काव्य में मार्गवर्णन की आवश्यकता ही नहीं थी, लेकिन फिर भी जो मार्गवर्णन किया गया है, वह इसीलिये कि मेघ शीघ्र से शीघ्र यक्ष के पास पहुँच जाय, क्योंकि यक्ष के पास से मेघ वडे चक्र दार और लम्बे मार्ग से आया था, जैसा कि मेघ सन्देश के निम्न पद्य से प्रकृत होता है—

यकं पन्था यदपि भवत प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्सगप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्या ॥१॥२॥

इसलिये इस काव्य में यक्ष की पत्नी मेघ को सरल मार्ग बताती है—

क्षिप्र गन्तु निशमय रुजु कथ्यते कोऽपि मार्ग ॥१॥६॥

विरह व्याकुल नायिका का अपने प्रिय के पास प्रतिसन्देश भेजते हुये विलम्ब न सहना स्वाभाविक ही है। इसके अतिरिक्त कवि को भी मार्ग वर्णन के द्वारा अपनी वर्णनशक्ति तथा तत्तद् स्थानों के सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष रखने का अर्थ सर प्राप्त हुआ है। अलका नगरी से रामगिरि तक का एक नवीन मार्ग तो कवि ने बतलाया ही है। साथ में विरहजन्य चपलता के कारण यक्ष के दक्षिण देश चले जाने की समाचना द्वारा कवि ने रामगिरि से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर काव्य को और भी सुन्दर और सरस बना दिया है।

काव्य में प्रथम सर्ग में ६० और द्वितीयसर्ग में ६६ श्लोक हैं और मन्दाकिन्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है।

मेघसन्देश में जिस प्रकार यक्ष की विरहायस्था का वर्णन किया गया है तथा विप्रलम्भशृंगार की प्रधानता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी यक्ष-यधू की विरहा

वस्था का बड़ा भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया गया है। यक्ष वधू प्रिय विरह में अपने जीवन की व्यर्थता बताते हुये कहती है -

दूरीभूते दयित भवति त्वा विनाऽह वृथाऽसम्
निर्यत्ना धीरिव विरहितेनाकृतिस्सद्गुणेन ।
भोगेच्छेव द्रविणरहिता श्रीरिवारोग्यशून्या
वाणी सत्यादिव विगलिता श्रूयता महशाऽपि ॥१॥२०॥

प्रिय विरह में नायिका की व्यर्थता का वर्णन करते हुये कवि ने कौसी सार्थक उपमाये प्रयुक्त की हैं।

अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यक्ष वधू फिर कहती है -

भित्तेर्मूले भवन धरणावर्धपद्मा सनम्या
द्वारे चतुर्जलकणचित न्यस्य पाणी कपोलम् ।
ध्यायन्ती त्वा प्रचलति तृणेऽप्यागत तर्कयन्ती
मासानष्टौ कथमपि भवदर्शनार्थिन्यनैपम् ॥१॥२१॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहकालीन चिन्ता और उत्सुकता का बड़ा स्वाभाविक चित्र अंकित किया है। आगे चल कर नायिका कहती है -

द्रष्टुं दृष्टिं प्रचलति मन कर्पति ध्यातुमन्त-
निर्निद्रा धी र्धश्यति तनु क्षीयते त्वामलब्ध्या ।
दिव्यान् भोगानपि मम रचिर्द्वेष्टि लज्जाप्रवासा-
दुन्मत्ताऽस नविदितमथो मूर्च्छिता वाऽन्यथा वा ॥१॥२५॥

विरह की विभिन्न अवस्थाओं का एक ही पद्य में कवि ने कितना सुन्दर वर्णन किया है।

प्रिय विरह में नायिका बार बार अपना जीवन छोड़ना चाहती है, लेकिन प्रिय व दर्शनों की इच्छा से किसी तरह जीवित धनी रहती है -

त्यक्तुं प्राणान् त्वरयति मुहुर्स्वद्वियोगव्यथा मा
शापोदन्त क्वच इव मामन्तरेव क्षिणोति ।
श्रीदास्यं ते मम न सहते जीवित जीवितु मे
हस्तालम्ब पितरति पुनर्दर्शनेच्छा तवैका ॥१॥२४॥

प्रिय विरह में नायिका ही बेचल दीन और दुःखी नहीं है, बल्कि घर का सारा धाताधारण ही विपादमय हो गया है। मेघ-सन्देश में यक्ष ने भी अपनी अनुपस्थिति में अपने घर के सम्यन्ध में कहा है -

क्षामच्छायं भजनमधुना मद्दियोगेन नूनम्
सूर्यापाये न खलुकमल पुष्यति स्वामभिव्याम् ॥२॥१६॥

यक्ष का यह कथन ठीक ही है। यक्ष यक्ष भी गृह स्वामी के चले जाने पर गृह की दुरवस्था का वर्णन करते हुये कहती है -

उत्सार्यन्ते श्वसितपवनैर्दहलीधूलयो मे
प्रक्षारयन्ते गृहधरण्य प्रत्यह वाष्पसेके ।
भित्तेश्चित्र भवति विकृत सिन्धगात्रानुपगै
लूततन्तुप्रकरनिचिता मचकास्ते मनोशा ॥१॥३१॥

गृहस्वामी के वियोग में न केवल गृह पत्नी ही उदासीन है, बरिक्त घर की मैना, मोर और यहा तक कि पुष्पाटिका और रक्ताशोक इत्यादि भी विरह का अनुभव करते हैं।

इसी प्रसंग में यक्ष पत्नी आगे चलकर कहती है-

नाहारेऽपि प्रणयति मनश्शारिकादारिकाऽसी
तुच्छ पुच्छ नमयति शिखी शोकमूकीकृतोऽयम् ।
शशत्सिकाऽप्यनिशमयते शुष्कता पुष्पघाटी
क्षामच्छाय भजनमधुना त्वद्वियोगेन नूनम् ॥१॥३२॥

कवि ने मधसन्देश की मूलपक्ति में केवल एक शब्द का परिवर्तन कर अपने माथों को कैसी सुन्दर रीति से व्यक्त किया है।

यक्ष ने अपने गृह की पहिचान के प्रसंग में रक्ताशोक और केसर वृक्ष का उल्लेख किया है। उन वृक्षों की भी दशा इस समय बड़ी दयनीय बताई गई है -

रक्ताशोकमत्व विरहृतमत्प्यते केसरश्च
द्वौ मुचन्तौ परिणतिपतरपाण्डुपत्राश्रुविन्दून् ।
प्रोचच्छाखासमुद्य 'भुजालिगितान्योन्यगात्रौ
काकारावै प्रददित इव प्राप्तकावुप्रकारे ॥१॥३३॥

रक्ताशोक और केसर वृक्ष पर कौए बैठे हुए हैं। उनके कलरव को लेकर कवि ने स्यामिविरह में उनके (रक्ताशोक और केसर) रोने की कैसी भावपूर्ण उम्रेक्षा की है।

अपने घर का वर्णन करते हुए यक्ष ने अपनी विलासयात्री को यहा वैभवापूर्ण बनाया था-

यात्री चास्मिन् मरुत शिलावड सोपान मार्गा
द्विमैरदन्ना विषचकमलै स्निग्ध-यैद्व्यन्तलै ॥२॥१४॥

इस विलासवापी की भी उठी दीन अवस्था बतलाई गई है —

कीर्णं जीर्णैररुणरुमलैः प्राप्तकापायवेया ।
शैवालौघैर्विसपरिचितैः शशीर्षत कीर्णकेशा ॥
पट्टमाक्षौघैः परिवृततनु भस्मितालक्रियाऽसी ।
वापी चापि व्यथयति मनो दीनकात्यायनीव ॥१॥३४॥

कवि ने श्लिष्ट विशेषणों की सहायता से वापी को दीन कात्यायनी की कितनी उपयुक्त उपमा दी है ।

अपनी विरहावस्था तथा गृहस्थामी की अनुपस्थिति में अपने घर की दुरवस्था का वर्णन करने के बाद यक्षरथू यक्ष के सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण प्रत्युत्तर देती है । प्रायः यक्ष की प्रत्येक बात का उत्तर दिया गया है । यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी पत्नी से कहा था —

श्यामास्यग चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातम्
धक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना वर्धभारेषु केशान् ॥२॥४३॥ इत्यादि

इस बात का उत्तर देती हुई यक्षपत्नी कहती है —

श्यामास्यग चकितहरिणी प्रेक्षणादौ च तत्त-
न्मत्सादृश्यं धक्त्रिदपि न चेद्दर्शिता प्रीतिरेवम् ॥
ता मा हित्वा तृणमिव कथं दूर-देशं गतोऽभू ।
तत्ते चित्तं व्यरचि कुसुमैः प्रस्तरैश्चेति मन्ये ॥१॥४२॥

यक्ष पत्नी के इस प्रति धचन में नायक के प्रेम की प्रशंसा के साथ साथ उसकी कठोरता पर उसे मृदु उपालम्भ भी दिया गया है ।

इसके बाद यक्ष पत्नी कहती है —

मामालिख्य प्रणयकुपिता नेक्षिताऽभूस्त्वमस्त्रै ।
स्वप्ने धाह्य क्षणमपि भयत्सगमिच्छामि यावत् ॥
तामग्निद्रा प्रवसति मया प्रार्थ्यमानाऽपि सत्यम् ।
कूरुस्तरिमग्नपि न सहते सगम नो कृतान्त १ ॥१॥४५॥

१ इस पद्य की मेघसन्देश के —

त्वामालिख्य प्रणयकुपिता धातुरागैः शिलायाम् ॥२॥४५॥
इत्यादि पद्य से तुलना कीजिये ।

यक्ष तो चित्र में ही अपनी प्रेयसी से नहीं मिल पाता है, लेकिन उसकी प्रेयसी के लिये तो स्वप्न में भी प्रिय का समागम दुर्लभ है, क्योंकि प्रिय विरह में उसे नींद तो आती ही नहीं है, फिर स्वप्न का तो कहना ही क्या ।

इसी बात को लेकर वह फिर कहती है—

मामाकाश प्रणिहितभुज श्लिष्यसि स्वप्नलम्बाम् ।
देवी निद्रा त्वयि सकरुणा भाग्यमेतत्तवास्ते ॥
उन्निद्राह दिशि दिशि समालोभ्य ते रूपप्रेयम्
गाढाश्लेषोद्यतभुजलता त्वामनासाय लज्जे^१ ॥१॥२६॥

नायिका के इस कथन में कितनी दीनता भरी हुई है ।

विरहिणी नायिका को प्रिय के स्वस्थ बने रहने की भी चिन्ता है । इसीलिए तो वह यक्ष से हिमालय की ठठी हवाओं से बचने की प्रार्थना करती है—

भिन्या सद्य किमलयपुटान् वान्तु वातास्समन्तात्
स्तात्वा भय्या कदशनमदन् निद्रितो वाऽस्यनिद्र ।
माऽलिंग्यन्ता मदनुसृतये ते तुपाराडिवाता
शीतार्तिस्त्या त्यजन्तु भगवान् शकरोऽव्यादेमरन्तम् ॥१॥२७॥

उपर्युक्त वचन से नायिका का यक्ष के प्रति तीव्र प्रेम भी व्यक्त होता है^२ ।

यक्ष ने अपनी विरह व्यथा का निवेदन करते हुए कहा था—

सक्षिप्येत क्षण इव कथ दीर्घायामा त्रियामा
सर्वावस्थास्यहरपि कथ मन्दमन्दातप स्यात् ॥२॥२७॥

^१ इस पद्य की मेघ सन्देश के—

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो
लम्बायास्ते कथमपि मया स्वप्नसदर्शनेषु ॥२॥४४॥

इत्यादि पद्य से तुलना कीजिए ।

^२ इस पद्य का भाव समझने के लिए मेघसन्देश का—

भिन्या सद्य किमलयपुटान् देवदाहद्रमाणाम् ॥२॥२६॥

इत्यादि पद्य दक्षिए ।

इस बात का यक्ष-वधू बड़ा ही भावपूर्ण उत्तर देती है —

सक्षिय्योक्ति रजनिदिनयोर्विम्बर स्व वियोगम्
सर्वेषा नस्त्वमसि शरणं त्व कथं निश्शरण्यम् ।
शुश्रूषुरां निजगुरजनान् गेहमायाहि तूर्णम्
सन्वस्तानामिव तव कथं दन्ववृत्त्या व्यर्थं वा ॥१॥४८॥

शीघ्र गृह लौटने की प्रार्थना को यक्ष-वधू ने प्रसंग बदल कर कितने सुन्दर ढंग से यक्ष के सामने रक्खा है।

जिस प्रकार यक्ष ने अपनी प्रेयसी को सान्त्वना दी थी^१, उसी प्रकार उसकी प्रेयसी भी उसे सान्त्वना देती है —

नन्वेपाऽहं तव वचनतो मा गम कातरत्वम्
त्व च श्रीमन् मम गतिमनुस्मृत्य मा गा विपादम् ।
दुःखी जातोऽस्म्यविदित सुखोऽस्मीति धैर्य लभेथा
चित्तेऽधीने सपदि समता याति दुःखं सुखं च ॥१॥४९॥

यक्ष ने अपने सन्देश में अपनी प्रेयसी से कहा था कि भगवान् विष्णु के शेषशय्या पर मे उठने पर उसका शाप समाप्त हो जायगा। अथशिष्ट चार महीने किसी तरह और बिता लिए जायं। बाद में तो मिलन होगा ही^२। इस बात का भी यक्ष की पत्नी बड़ा उचित उत्तर देती है —

शापान्तस्ते भवति हि हरी शेषशय्या जिह्वाने
धात्ये तात्कथमहमसून् लोचने मीलियन्ता ।
अद्य शो वा प्रल निरहा प्राणभगो यदि स्यात्
निर्वेद्याय कथमिव सन्ने तन्तमात्माभिलापम् ॥१॥५०॥

प्रिय विरह में व्याकुल नायिका के लिये एक २ दिन भारी बना हुआ है। चार महीने तक वह कैसे धीरज रख सकती है। अतः प्राणभग होने की उसकी आशका श्रामानिक ही है।

यक्ष ने अपने दाम्पत्य जीवन की साधारण होते हुए भी एक महत्त्वपूर्ण घटना अपनी प्रेयसी को यताने के लिये मेघ संज्ञा का ताकि उसकी प्रेयसी को मेघ क सम्बन्ध में प्रिय के दूत होने का विश्वास हो जाय—

१ नम्यात्मानं यद्वा प्रियाण्यन्तामने रायलम्ये
तत्कल्याणि त्वमपि सुतरा भागम् कातरत्वम् ॥१॥४८॥

२ दे० मेघ० उत्तरभाग श्लो० स० ४., शापातो मे भुङ्गशयनादित्यादि ।

भूयश्चाह त्वमपि यने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रा गत्वा मिमपि रदती सम्पर विप्रबुद्धा ।
सान्निर्हास कथितमसकृत् पृच्छुतश्च त्वया मे
दृष्ट स्वाने कितव रमयन् कामपि त्व मयेति ॥२॥५०॥

लेकिन इस घटना को अभिज्ञान स्वरूप न समझ कर यक्ष वधू यह समझती है कि यह केवल उसके अपराध को जताने के लिये कही गई है और यह बड़े प्रिय के साथ अपने प्रिय से क्षमायाचना करती है —

भूयोदृष्ट कितव रमयन् कामपि त्व मयेति
स्वाप्त वृत्त मदभिहितमालोच्य रष्टोऽसि नूनम् ।
ज्ञात तत्त्व पद्मकमलयोस्सन्निरपत्याद्य याचे
क्षान्त्या सद्य मद्पचरित देहि मे सन्निधानम् ॥१५१॥

पतिप्राणा प्रेयसी अपने प्रिय के रष्ट हो जाने को कैसे सह सजती है । क्षमा-याचना तथा शीघ्र आने की प्रार्थना दोनों ही बड़ी भावपूर्ण हैं ।

यक्ष के सन्देश का उत्तर देने के बाद यक्ष वधू कुछ अपना भी सन्देश यक्ष के लिए देती है । वह कहती है —

अर्चयामि तव शुभमभिप्रार्थये नाथ हर्षात्
साधे मासे यदि मम दशोर्गोचरत्व न याया ।
याचो वदन्ती मृगयतु भगान् वातमध्ये ममासून्
चक्षुस्सूर्ये शशिनि हृदय व्योम्नि मे पापि जीवम् ॥१॥५२॥

यक्ष वधू के उपर्युक्त वचनों में कितनी वेदना भरी हुई है । उसकी विरह वदना अनुभूति की चरमावस्था पर पहुँच चुकी है ।

प्रति-सन्देश के बाद अभिज्ञानस्वरूप कुछ घटनायें भी मेघ को बताई गई हैं । इनमें धनपति के क्रोध का कारण, शाप का स्वरूप तथा उसकी धर्म भर की अवधि का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में शकर भगवान् तथा कुबेर द्वारा यक्ष के अपराध को भसा कर देने का भी वर्णन किया गया है । अन्त में यक्ष वधू फिर कहती है—

स म्याच्छ्रामी भुज्जगशयनादुत्थितोऽनुत्थितो वा
शापम्यान्तो धनपतिमुत्तेनोच्यता मोच्यता वा ।
शापान्तस्ते समजनि सखे शकरोक्तं प्रभावात्
सामान्या दध्यधिकचलयत्स्याद्विशेषं हि शास्त्रम् ॥१॥६६॥

इस प्रकार भगवान् शंकर की कृपा से शाप के शान्त हो जाने का समाचार बताकर अन्त में फिर यक्ष से घर लौट आने की प्रार्थना की गई है —

गेहे स्वीये गमयतु भवान् शेषकाल सुगे न ॥१॥६६॥

इस प्रकार कवि ने प्रथम सर्ग में यक्ष यक्ष की विरहाग्म्या, यक्ष के गृह की दुरवस्था, यक्ष पत्नी का प्रतिसदेश, अभिज्ञान घटनायें तथा आप के परिहार और यक्ष के घर लौट आने की प्रार्थना इत्यादि बातें दिखलाई हैं। द्वितीय सर्ग में कवि ने मार्ग वर्णन किया है। मार्ग वर्णन में कवि ने मेघ सन्देश में बताया हुए अलग-अलग रात्रि-रात्रि के मार्ग से भिन्न मार्ग का तो निर्देश किया ही है। साथ में रामगिरि से धनुष्कोटि तरु का मार्ग भी यक्ष के बड़ा चल जाने की सभायना द्वारा वर्णित कर काव्य में और भी सरसता ला दी है। मार्ग वर्णन में पञ्जाब, अमृतसर, देहली, जयपुर, उदयपुर, चित्तौर और उज्जयिनी इत्यादि नगरों का कवि ने बड़ा ही भावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। चित्तौर के वर्णन में कवि ने बड़ा ही स्त्रियों की धीरता का क्या ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है —

चित्तौडास्य जयति नगर तैर्नृपैः पात्यमानम्
घोरे युद्धे विनिहतधरा विथुता धीरपत्न्य ।
सुद्रारिभ्यो निज कुलभय शकमानाश्च यस्मिन्
पातिप्रत्यप्रवणमतपो वृन्दशोऽग्नि प्रविष्टा ॥२॥२१॥

आगे चलकर विन्ध्य घन का भी कवि ने बड़ा स्वाभाविक वर्णन किया है —

तत्र क्रुद्धा लुधितहरयः क्वापि गर्जन्ति घोरम्
प्रस्ता क्वापि द्विरदपतयो घाटितान्युद्विगरन्ति ।
भाकुर्जन्ति प्रदग्पतनैः क्वाप्यहो निर्भरोधा
शब्दायन्ते मधुर नितदैः क्वापि खान्ताश्शकुन्ता ॥२॥३४॥

रामदुर्ग पर स्थित विरहा यक्ष का भी कवि ने बड़ा स्वाभाविक और भावपूर्ण वर्णन किया है। यक्ष यक्ष अपने प्रिय की तत्तद् विरहाग्म्याओं की सभायना करत हुए मेघ से कहती है —

मद्वृत्तान्ति शरण कुतुकात्तवत्प्रतीक्षापरो वा
मामुत्तप्ता मनसि गल्यन् मोहसम्मीलितो वा,
स्मृत्वा पूजान् स्मृत्वायिभशान् स्तम्भयन्तिश्चततो वा
निद्रालो वा कथमपि स ते नेत्र पात्री-वृत्तस्यात् ॥२॥४६॥

इसी प्रसंग में यह फिर कहती है —

निद्राहीनो निटिल-तटभून्यस्तपामार्धपाणिं
 पश्चात्तिर्यङ्कृतपरवरालमितासोर्ध्वभाग ।
 वामे जानीं निहितं निज-जौन्यन्तरशोकमूला-
 न्युत्तानेनोच्छ्वयनविधिना मन्दमालोचयन्वा ॥२॥८७॥

सस्तभ्य स्व कथमपि मन कन्दमूलान्यदन्वा
 ध्यात्वा ध्यात्वा तटदृपदि मद्भावचित्रं लिखन्वा
 वामे पाणौ त्रिनमति मणीबन्धशीर्षेण मन्द
 मच्चिन्तातो मुहुषपचिता मार्जयन्वाऽश्रुधाराम् ॥२॥८८॥

विरह व्याकुल यत्न का कवि ने कैसे कारणिक और स्वाभाविक भावचित्र इन पद्यों में प्रस्तुत किया है। विरह जन्य चपलतासे ही तो यत्न के दक्षिण देश चले जाने की सम्भावना की गई है। इसी सम्भावना से कवि को फिर रामदुर्ग से धनु रकोटि पर्यन्त मार्ग के वर्णन करने का अरसर भी प्राप्त हुआ है।

इस मार्ग वर्णन में कवि ने श्री शंकराचार्य^१, श्री रामानुजाचार्य और श्री व्यास राजाचार्य इत्यादि का तत्तद् स्थानों पर बड़ी श्रद्धा के साथ उल्लेख किया है। यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टि से काव्य की कथा से उत्तरकालीन व्यक्तियों का काव्य में उल्लेख होना असंगत ही है, फिर भी इस उल्लेख से कवि की इन व्यक्तियों के प्रति श्रद्धा तो प्रकट होती ही है। इसी प्रकार बगलौर और मैसूर जैसे आधुनिक नगरों का वर्णन भी काव्य में कुछ खटकता है, लेकिन इन नगरों के वैभव और प्राकृतिक सौन्दर्य के वर्णन से काव्य में रमणीयता की कुछ वृद्धि ही हुई है। जिस प्रकार मेघ-सन्देश में उज्जयिनी और अलका नगरियों के वर्णन में शृंगार रस का पुट पाया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में मैसूर नगर के वर्णन में भी शृंगार रस का पुट दीख पड़ता है। यथा -

धीध्या धीध्या प्रतिगृहमपि स्थापिते लोकहेतो
 स्सर्वा रात्रिं दिनपति तटि द्वीपजालप्रकारे ।
 पु वेपेण प्रियगृहमभिप्रसिधता पद्मलाक्ष्य
 पार्श्वेव्यन्यैरविदितमिदास्तत्र धीर प्रयान्ति ॥२॥७४॥

आगे चलकर मैसूर नगर की सुशिक्षित स्त्रियों का वर्णन करते हुये कवि कहता है -

तस्या रात्रीविरचितमहापाठशालात्तवित्ता
 प्रेक्ष्या' प्रेष्टाभरण वसनै प्रौढविद्याप्रवीणा ।
 वीणालापैर्विनयविभवै र्धटगुवाचा विलासै
 गेहे गेहे निज निज जनान् प्रीणयन्ते तरुण्य ॥२॥७५॥

मैसूर नगर में नल द्वारा जल की व्यवस्था का कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है -

विद्युच्छ्रुत्या सतत रितते नालिकान्तनिरुद्धै
 प्राप्ते शब्दे पुरभिन्नसम्प्रेक्षयेतोत्पतद्भिभ ।
 कारेरीयैर्मधुरमधुरै पावनैश्चाम्बुपुरै-
 स्तोयाधाराश्चिरविरचितास्तत्र सर्वे परस्ता ॥२॥७६॥

इस प्रकार मैसूर के राज प्रासाद, विश्वविद्यालय, कौतुकागार और संस्कृत कालेज इत्यादि का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन काव्य में प्रस्तुत किया है ।

मैसूर से फिर धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित किया गया है । अन्त में यहीं कहीं पर यक्ष के मिलने की संभावना कर यक्ष यधू यक्ष को सन्देश सुनाने की मेघ से प्रार्थना करती है । इसके बाद मेघ को आशीर्वाद भी देती है -

सौदामन्या सह विचर ते सन्तु सन्मगलानि ॥२॥६५॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को इस काव्य के भाव, भाषा और शैली से परिचय तो हो ही गया होगा । लेखक ने मेघ सन्देश का प्रत्युत्तर लिखकर कालिदास की इच्छा तो पूर्ण की ही है, साथ में मेघसन्देश के समान ही भाषा और शैली अपना कर मेघ-सन्देश के समकक्ष ही एक खण्ड-काव्य संस्कृत साहित्य को प्रदान किया है । लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है । क्लिष्ट तथा लम्बे समास तो काव्य में हैं ही नहीं । विप्रलम्भ शृंगार के अनुकूल ललित भाषा का ही सर्वत्र प्रयोग किया गया है । माधुर्य तथा प्रसाद गुण और पैदमी रीति ही सर्वत्र देखने में आती है । अलंकारों में उपमा, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति, अर्थान्तरन्यास और दृष्टान्त जैसे सरस और सरल अलंकारों का ही प्रयोग किया गया है ।

कवि ने यक्ष सन्देश का बड़ा ही भावपूर्ण और उपयुक्त प्रत्युत्तर यक्ष यधू के द्वारा भिजवाया है । यदि सन्देश का एक एक पद्य विरह से ओत प्रोत है तो प्रति-सन्देश में यक्ष यधू की विरहवेदना और विरही प्रिय के लिये उसकी चिन्ता भी कम नहीं है ।

यद्यपि कवि ने मेघसन्देश की समस्यापूर्ति नहीं की है, फिर भी कहीं कहीं मेघ-सन्देश की पकिया इस काव्य में स्वतः आ गई हैं । यक्ष यधू यक्ष के फँलास पर्यंत छोड़ जाने तथा रामगिरि चले जाने पर उस पर आक्षेप करती हुई कहती है -

कैलासाद्रो स्थितिमगणयन् तापसीभूय भूय
मर्त्यस्त्रीणामुखकमलवश्रीर्दिदलु किमासी ।
नो चेदेव वद कितत्र मे तेषु कस्मादकार्षी
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥२६॥

इस पद्य में मेघ-सन्देश के प्रथम श्लोक का अन्त्यपाद ही कवि ने रख दिया है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थान पर उपर्युक्त श्लोक का द्वितीय पाद पाया जाता है। यम बधू यक्ष से उसके भाग्य की अनुकूलता का वर्णन करते हुए कहती है —

दूरीभूत दुरितमयिल देवदेवप्रसादान्
कालोऽतीतस्स खलु त्रिपमो राजराज प्रसन्न ।
अस्मद्भाग्यं परिणतमभूदद्य नैराभरत्सम्
शापेनास्तगमितमहिमा वर्यभोग्येषु भर्तुं ॥१॥६०॥

इसके अतिरिक्त मेघ-सन्देश में जिस प्रकार विभिन्न लोकोक्तिया तथा जीवनोपयोगी सुभाषित पाये जाते हैं, उसी प्रकार इस काव्य में भी विभिन्न स्थानों पर अनेक सुभाषित तथा लोक नीतिया कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। सज्जनों के सम्बन्ध में कवि की धारणा बड़ी ही उच्च है —

- (I) लोके सन्तो न हि खलु पर प्रार्थना व्यर्थयन्ति ॥१॥१॥
(II) स्त्रीपत्रान्त महदपि वलात्साध्यन्त्येव सन्त ॥२॥१०॥
(III) मध्ये सन्तो न खलु सुहृदामभ्युपेत त्यजन्ति ॥२॥५०॥

दान के सम्बन्ध में भी कवि के विचार बड़े सतुलित हैं। कवि का कहना है कि दान दरिद्रों को ही देना चाहिये न कि सम्पन्न व्यक्तियों को —

पूणं दानं भवति हि वृथा धारिदानं यथाध्या ॥१॥६॥

इसके अतिरिक्त स्थान स्थान पर कवि ने अपने विभिन्न विचारों को काव्य में व्यक्त किया है। यथा —

- (१) स्वार्थं हित्वा परहितवृत्ता सन्तो गौरव हि ॥१॥६॥
(२) शुद्धे चित्ते भुवनमखिल पुण्यतीर्थायते हि ॥१॥१२॥
(३) कष्टे काले जगति महता बुद्धयोऽपि स्मरन्ति ॥१॥१३॥
(४) वक्तव्याशे जगति महता मौनमगीक्रिया हि ॥१॥१४॥
(५) कष्ट कष्ट विधिविलिपितं केन शक्यं प्रमाप्टुं भू ॥१॥२०॥

जिस प्रकार मेघ-सन्देश में कालिदास ने लिखा है —

कान्तोदन्त सुहृदुपगत संगमार्त्तिकचिदून ॥२॥३६॥

इसी प्रकार प्रिय के वृत्तान्त की इस काव्य में भी महत्ता बतलाई गई है -

प्रेयोवृत्तात्प्रणयगुणितानान्यदाश्रयासहेतु ॥१॥१॥

इस तरह उच्च कविता के साथ साथ काव्य में सांसारिक ज्ञान की भी बहुत सामग्री भरी हुई है।

कवि ने मेघ-सन्देश में उल्लिखित न होने पर भी यक्ष - रूपा का नाम, यक्ष का पद, धनपति के क्रोधका कारण तथा शाप इत्यादि की बड़ी सुन्दर कल्पना की है। कालिदास ने धनपति के क्रोध तथा शाप के केवल वर्णन न रह जाने का भी कोई कारण नहीं दिया था। इसी बात को यक्ष बधू के द्वारा अभिज्ञान-स्वरूप बतलाकर कवि ने मेघ-सन्देश के कथानक को और भी पूर्ण कर दिया है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि यह काव्य एक सुन्दर दूतकाव्य है। कथानक, भाव, भाषा, शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य सर्वांगपूर्ण है। मेघ सन्देश के समान विप्रलम्भ शृंगार ही इसका मुख्य रस है। यक्ष के सन्देश का यक्षी के द्वारा कवि ने बड़ा ही सुन्दर प्रयुक्त भिन्न किया है। जिस प्रकार कालिदास के मार्ग वर्णन से उसकी तत्त्व स्थानों से आत्मीयता प्रतीत होती है, उसी प्रकार रामशास्त्री कवि का मार्ग वर्णन भी आत्मीयता लिए हुए है। दक्षिण देश का वर्णन प्रस्तुत कर कवि ने काव्य को और भी महत्त्वपूर्ण बना दिया है। मेघ सन्देश में तो केवल उत्तर भारत का ही वर्णन पाया जाता है, लेकिन इस काव्य में उत्तर और दक्षिण तथा काश्मीर से धनुष्कोटि तक का मार्ग वर्णित कर कवि ने भारत देश का बड़ा ही सुन्दर शब्द चित्र प्रस्तुत किया है। तत्त्व स्थानों की भौगोलिक स्थिति का परिचय देने के साथ साथ उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी बतलाया गया है।

यह काव्य भी मेघ सन्देश के समान सरस और आनन्द दायक है। कोई भी सहृदय पाठक मुक्त कण्ठ से इसकी प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकता।



तृतीय अध्याय

जैन सन्देश काव्य

- १ जिन सेन का पार्श्वाम्युदय
- २ विक्रम कवि का नेमिदूत
- ३ मेरुतु ग का जैनमेघदूत
- ४ चरित्र-सुन्दर-गणि का शीलदूत
- ५ वादि चन्द्र का पवनदूत
- ६ अज्ञात कवि का चेतोदूत
- ७ विनय विजयगणि का इन्दुदूत
- ८ मेघ विजय का मेघदूतममस्यालोक

जिनसेन का पार्ष्वा युद्ध (वि० नवम शतक)

पार्ष्वाभ्युदय के लेखक श्री जिनसेनाचार्य के रचना काल के सम्यन्ध में किसी विवाद की आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र-कूट वंश के राजा अमोघवर्ष^१ प्रथम के शासनकाल में यह काव्य लिखा गया है। कवि ने काव्य के अंत में स्वयं इस बात का उल्लेख किया है -

इति विरचितमेतत्काव्यमावेष्ट्य मेघ
बहुगुणमपद्रोप कालिदासस्य काव्यम् ।
मलिनितपरकाव्ये तिष्ठतादाशशाकम्
भुवनमवतु देव सर्वदाऽमोघवर्ष ॥१॥

श्री वीरसेनमुनिपाद पयोजभृग
श्रीमानभूद्विनयसेनमुनिर्गरीयान् ।
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण
काव्य व्यधायि परिवेष्टितमेघदूतम् ॥२॥

विनयसेन और जिनसेन यह दोनों श्री वीरसेन (वीरगर्वा) के शिष्य थे। विनयसेन के कहने पर ही श्री जिनसेन ने इस काव्य की रचना की। काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में श्री जिनसेन को राजा अमोघवर्ष का गुण बताया गया है। अमोघवर्ष राष्ट्रकूट वंश का राजा था और कर्नाटक तथा महाराष्ट्र पर शासन करता था। यह शक स० ७३६ (वि० स० ८७१) में राज्यासन पर बैठा और शक स० ७६८ (वि० स० ९३४) तक शासन करता रहा। माण्यसेट अथवा मालाखेड इसकी राजधानी थी। यह बड़ा साहित्यप्रेमी था। श्री जिनसेनजी के द्वारा जैन धर्म में दीक्षित कर लिये जाने पर इसने अपने पुत्र के लिये अपना राज्य सौंप दिया और स्वयं साधु बन गया। इसने प्राचीन कनाडी भाषा में अलकारशास्त्र पर 'कविराजमार्ग' नामक एक ग्रन्थ लिखा तथा 'प्रश्नोत्तरमाला' नामक एक संस्कृत लघुकाव्य भी इसका लिखा हुआ माना जाता है। इस प्रश्नोत्तरमाला के अन्त में ही निम्नलिखित श्लोक पाया जाता है -

त्रिवेकात्यक्तराज्येन राज्ञेय रत्नमालिका ।
रचिताऽमोघवर्षेण सुधिया सदलश्रुति ॥

१ इसके शिलालेखों के लिये 'इण्डियन एन्टिक्वेरी', (१२, २१४,) (१३, १२३, १३३, २१५) पृष्ठ देखिये। फ्लॉट्ट का *Dynasties of kanarese Districts*, पृष्ठ ५०७ देखिये। इण्डियन एन्टिक्वेरी (१४, १०१) तथा (१५, १०१) में ४० वीं पाठक का लेख देखिये।

राजा अमोघवर्ष श्री जिनसेन का परमभक्त था और श्री जिनसेन श्री वीरसेन के शिष्य थे। उत्तर पुराण की प्रशस्ति के अन्त में इस वान का स्पष्ट उल्लेख किया गया है—

अमरदिह हिमाद्रिदेवसिन्धुप्रवाहो
धनिरिव सकलज्ञात्सर्गशास्त्रैरुमूर्ति
उदयगिरितटाद्वा मास्करो भासमानो
मुनिरनु जिनसेनो वीरसेनादमुष्मात् ॥
यस्य प्राशुनताशुजालरिसरदृधारान्तराविर्मर-
त्पादाभ्मोजरज पिशगमुकुटप्रत्यप्ररताद्युति ।
सक्षमतां स्वममोघवर्षनृपति पृतोऽहमत्रेत्यल
स श्रीमान् जिनसेन पूज्यभगवत्पादो जगन्मगलम् ॥

राजा अमोघवर्ष और उनके गुरु श्री जिनसेन का वीरसेनकृत जयधरला टीका में जो कि शक सन् ७५६ (वि० स० ८६४) की लिखी हुई है, उल्लेख पाया जाता है—

इति श्री वीरसेनीया टीका सूत्रार्थदर्शिनी
भटग्रामपुरे श्रीमद्गुर्जगार्यानुपालिते ॥
फारगुने मासि पूरार्द्धे दशम्याशुक्लपक्षके ।
प्रवर्धमानपूजाया नन्दीश्वरमहोत्सवे ॥
अमोघवर्ष राजेन्द्र प्राज्य-राज्य गुणोदया ।
निष्ठितप्रधय यायादाकरपान्तमनल्पिका ॥
पष्टिरेध सहस्राणि ग्रन्थाना प रमाणत ।
श्लोकेनानुष्टुभेनात्र निर्दिष्टान्यनुपूर्वश ॥
त्रिभक्ति प्रथम स्कन्धो द्वितीय सक्रमोदय ।
उपयोगश्च शेवास्तु तृतीयस्कन्ध इष्यते ॥
एकोनपष्टिसमधिकसप्तशतादेषु शकनरेन्द्रस्य ।
समतीतेषु समाप्ता जयधरला प्राभृतन्याख्या ॥
गाथासूत्राणि सूत्राणि चूर्णसूत्र तु वार्तिकम् ।
टीका श्री वीरसेनीयाऽशेषा पद्धतिपत्रिका ॥
श्री वीरप्रभु भाषितार्थघटना निर्लोडितान्यागम
न्याया श्री जिनसेन सन्मुनि वरेरादेशितार्थमिधिति ।
टीका श्रीजयचिद्दिनतोम्धरला सूत्रार्थसंघोनिर्वा
स्थेयादारविचन्द्रमुज्ज्वलना श्रीपालसपादिना ॥

श्री श्रीराचार्य गणितशास्त्र के प्रकाण्ड विद्वान् थे। अपने गणितसागरप्रह^१ की प्रशस्ति के अन्त में भी उन्होंने राजा अमोघवर्ष प्रथम का उल्लेख किया है। शक सं० ७०४ (वि० सं० ८४०) में जब कि अमोघवर्ष का पितामह और कृष्ण राज प्रथम^२ का पुत्र श्री वल्लभ शासन करता था, श्री जिनसेन ने अपना प्रथमग्रन्थ जैन हरिवंश पुराण^३ लिखा। पार्श्वाम्युदय^४ उनकी दूसरी रचना है और शक समत् ७३६ (वि० सं० ८७१) के कुछ दिनों बाद ही यह लिखा गया होगा। आदिपुराण^५ उनका अन्तिम ग्रन्थ है। वे केवल ४४ सर्ग ही इसके लिख पाये। अन्त के पाच सर्ग उनके शिष्य श्री गुणभद्र ने पूर्ण किये और अपने गुरु के आदेशानुसार उनका नाम उत्तरपुराण रख दिया। कर्नाटक और महाराष्ट्र पर अमोघवर्ष प्रथम का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कृष्णराज द्वितीय अकालवर्ष^६ जब शासन करता था, तब शक सं० ८२४ (वि० सं० ९५९) में धारवाड जिले के बाकापुर नामक स्थान में श्री गुणभद्र ने उत्तरपुराण का संपादन किया।

आदि पुराण और हरिवंश पुराण इन दोनों काव्यों के किसी एक जिनसेन के द्वारा ही लिखे जाने पर विद्वानों में मतभेद है। हरिवंश पुराण शक सं० ७०४ (वि० सं० ८४०) में लिखा गया है जब कि कृष्णराज प्रथम का पुत्र श्री वल्लभ दक्षिण में राज्य करता था। काव्य के मंगलाचरण में कवि ने निम्नलिखित विद्वानों की प्रशंसा की है - जीमसिद्धि और युम्त्यनुशासन के रचयिता समन्तभद्र, सिद्धसेन, इन्द्र, चन्द्र, अर्क और देव जैसे धैर्याकरण वज्रसूरि, सुलोचन कथा के लेखक महासेन, पद्म पुराण के लेखक रत्रिपेण, वरागचरित, कुमारसेन, वीरसेन और जिनसेन। अन्तिम दो नामों के उल्लेख से यह सिद्ध उठता है कि हरिवंश-पुराण के रचयिता जिनसेन तथा आदिपुराण के रचयिता जिनसेन में क्या समझ है। कुछ विद्वानों की धारणा

१ ग्रन्थकार का आत्मानुशासन, श्लोक १०२ देखिये।

२ इसके शिलालेखों के लिये जो कि शक सं० ६७४ के हैं, इण्डियन एन्टिक्वेरी (१२, २३८) देखिये।

३ बम्बई में मुद्रित।

४ श्री के० वी० पाठक द्वारा पूना से तथा सेठ नाथारगजी गाधी द्वारा पण्डित चार्य योगिराट की टीका सहित बम्बई से प्रकाशित।

५ तीन भागों में इन्दौर से प्रकाशित।

६ शक सं० ८२२ तथा ८३१ क. इसके शिलालेखों के लिये 'इण्डियन एन्टिक्वेरी' (१२ २२०, २२१) और (१५ १४१) देखिये।

है कि आदि पुराण के रचयिता जिनसेन का ही इस मगलाचरण में उल्लेख किया गया है और आदिपुराण तथा हरि वंश पुराण दोनों का लेखक एक ही है। लेकिन इन दोनों काव्यों के रचना काल में कम से कम ५० साल का अन्तर है जिसके कारण इन दोनों काव्यों का एक ही लेखक के द्वारा लिखा जाना नितान्त असम्भव जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त इन दोनों लेखकों की गुरु परम्परा भी अलग अलग है। हरिवंशपुराण का लेखक पुन्नतगण के कीर्तिसेन का शिष्य है और आदि पुराण का लेखक सेनगण के वीरसेन का शिष्य है। हरिवंश पुराण में जिस ढंग से जिनसेन का उल्लेख किया गया है, उससे भी यही प्रतीत होता है कि लेखक अपने से अतिरिक्त किसी और व्यक्ति का उल्लेख कर रहा है। श्लोक इस तरह है —

यामिताभ्युदये तस्य जिनेन्द्र गुण सस्तुति ।
स्वामिनो जिनसेनस्य कीर्तिस्सकीर्तयत्यसौ ॥

किसी भी लेखक का इस तरह से अपनी प्रशंसा करना गवोंक्ति ही कहा जायगा। लेकिन इन दोनों लेखकों को यदि दो अलग अलग व्यक्ति माना जाता है, तो दूसरी समस्या यह उठती है कि हरिवंश पुराण के लेखक ने अपने ग्रन्थ का जो निर्माण काल दिया है उसके अनुसार जयधवला टीका के लेखक वीरसेन और आदि पुराण के लेखक जिनसेन का हरिवंश पुराण में उल्लेख युक्ति संगत नहीं प्रतीत होता, क्योंकि हरिवंश पुराण के लिखे जाने के बाद इन दो विद्वानों का नाम सुनने में आता है। अतः इस कठिनाई को दूर करने के लिये ऐसा मानना अनुचित न होगा कि हरिवंश पुराण के लिखे जाने से पूर्व वीरसेन और जिनसेन नाम के कोई और दो व्यक्ति भी प्रसिद्ध हो चुके हैं तथा उन्हीं का इस काव्य में उल्लेख किया गया है न कि जयधवला टीकाकार वीरसेन और आदिपुराण के रचयिता जिनसेन का।

पार्श्वभ्युदय काव्य पर मैसूरराज्यान्तर्गत श्रवण-बेलगुल निवासी जैन धर्म गुरु श्री पंडिताचार्य योगिराट्ट की एक प्राचीन टीका उपलब्ध है। इस टीका में महिल नाथ की शैली का ही अनुकरण किया गया है तथा शाकटायन व्याकरण और नानार्थरत्नमाला नामक कोष का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया गया है। यह कोष ग्रन्थ शक सम्वत् १३२१ (वि० स० १४५६) में विजयनगर राज्य में शासन करने वाले हरिहर द्वितीय के आश्रित जैन विद्वान् श्री हरगूढ़एडनाथ का लिखा हुआ है। अतः यह निश्चित है कि पार्श्वभ्युदय का टीकाकार शक स० १३२१ वि० स० १४५६) के बाद का है। टीकाकार ने पार्श्वभ्युदय काव्य की रचना के प्रसंग का उल्लेख करते हुए लिखा है—

श्री जिनेन्द्रमताधीन्दुमूलसंघाम्बराशुमान् ।
वीरसेनाभिधानो पार्श्वार्थिष्ठाचार्यपु गय ॥१॥

तच्छिष्यो जिनसेनार्या बभूव मुनिनायक ।
यत्कृतिर्भुवनेऽद्यापि चन्द्रिका प्रसरायते ॥२॥

बंकापुरे जिनेन्द्राग्नि सरोजैदिन्द्रोपम ।
अमोघवर्षनामाऽमून्महाराजो महोदय ॥३॥

स स्वस्य जिनसेनर्षि विधाय परम गुरुम् ।
सद्धर्मं द्योतर्यस्तस्थौ पितृघटपालयन्प्रजा ॥४॥

कालिदासाह्वय कश्चित्कवि कृत्वा महोजसा ।
मेघदूताभिध काव्य ध्राययन्गणशो नृपान् ॥५॥

अमोघवर्षराजस्य सभामेत्य मदोद्गुर ।
विदुषोऽवगणय्यैष प्रभुमथावयत्कृतिम् ॥६॥

तदा विनयसेनस्य सतीर्थस्योपरोधत ।
द्विद्याहकृतिच्युतै सन्मार्गोद्दीप्तये परम् ॥७॥

जिनसेनमुनीशानस्त्रैविद्याधीश्वराग्रणी ।
विशत्यप्रशतग्रन्थ प्रबन्धश्रुतिमात्रत ॥८॥

एक सधित्वतस्सर्वं शृद्धीत्या पद्यमर्थत
भृशुद्धिद्वत्सभामध्ये प्रोचे परिहसन्निति ॥९॥

पुरातनकृतिस्तेयात्काव्यं रम्यमभूदिदम् ।
तच्छ्रुत्वा सोऽप्रवीद्रुष्टं पठतात्कृतिरस्तिचेत् ॥१०॥

पुरान्तरे सुदूरेऽस्ति वासराष्टकमात्रत ।
आनाय्य वाचयिष्यामीत्ययोन्नयमिक्कु जर ॥११॥

इत्येतद्वलोक्त्याद्य सभापति पुरोगमा ।
तथैवास्तिवति माध्यस्थ्यात्समयं चकिरे मिथं ॥१२॥

धीमत्पार्ष्यार्दिदीशस्य कथामाधित्य सोऽतनोत् ।
धीपादपार्ष्याम्युदयं काव्यं तत्पादार्धादिषेष्टितम् ॥१३॥

संकेत दिवसे काव्यं वाचयित्वा स संसदि ।
तदुदन्तमुदीर्योद्य कालिदासममानपत् ॥१४॥

धीमद्वेलगुल विन्ध्याद्रि प्रोत्सहो र्बलीशिन ।
धीपादाभ्युज्जमूलस्थं परिहृताचार्ययोगिराट् ॥१५॥

तन्मुनीन्द्रमतिप्रौढिप्रकटीकरणोत्सुकः ।
तद्दयाप्या प्रार्थितश्चक्रे निजसुन्दरसुनुना ॥१६॥

श्री पार्श्वनाथुत साधु कमठाखलत खल ।
पार्श्वाम्युदयत काव्य न च क्वचिदधीष्यते ॥१७॥

तत सौजन्य सम्पूत्यै दीर्जन्यपरिहाणये ।
काव्य कौशल्य सधित्यै सद्भिर्भ्यस्यस्यतामद् ॥१८॥

इस अथतरण से यह प्रतीत होता है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन था। लेकिन यह बात नितान्त असंगत है, क्योंकि जैन कवि श्री रविकीर्ति ने शक संवत् ५५६ (वि० स० ६६१) के अपने पेवेल के शिलालेख में कालिदास का भी उल्लेख किया है और यह कवि चालुक्यवंश के पुलकेशी द्वितीय का राज्याश्रित था। चालुक्यवंश के पुलकेशी /द्वितीय का शासन काल शक स० ५४० पष्ठ शतक के आस पास ही पड़ता है। अतः यह निश्चित है कि कालिदास जिनसेन का समकालीन नहीं हो सकता। टीकाकार ने किसी भ्रान्त दन्त कथा का आश्रय लेकर ऐसा लिख डाला है।

पार्श्वनाथ चरित्र

काव्य की कथा को पाठकों के हृदयगम कराने के लिये सन्क्षेप में श्री पार्श्वनाथ का चरित्र नीचे दिया जा रहा है। श्री पार्श्वनाथ का जन्म जन्मान्तरों के अनुसार जीवन चरित्र इस तरह है। इसी जम्बू द्वीप के भरत क्षेत्र में पोतनपुर नाम का एक नगर था। वहाँ अरविन्द नामका प्रतापी और जैन धर्म परायण राजा राज्य करता था। उसका विश्वभूति नामक एक पुरोहित था। उसकी पत्नी का नाम अनुद्धरा था। इस अनुद्धरा से विश्वभूति के कमठ और मरुभूति नाम के दो पुत्र हुये। योग्य होने पर विश्वभूति ने कमठ का विवाह वरुणा और मरुभूति का विवाह वसुन्धरा के साथ कर दिया।

अपना अधस्तान समीप जानकार विश्वभूति पुरोहित अनशन करके शरीर त्याग देह-लोक को चला गया। विश्वभूति की स्त्री अनुद्धरा भी पति वियोग से दुःखित हो नयकार मन्त्र का जप करती हुई शरीर छोड़ गई। अपने पिता के बाद कमठ और मरुभूति दोनों राजा अरविन्द के मन्त्री हो गये। इन दोनों भाइयों में छोटा भाई मरुभूति विषय भोग से पराङ्मुख था और पौषघादि धर्मक्रियायें करता रहता था तथा उसके मन में यह भावना रहा करती थी कि कब यह गुरु के समीप जाकर सूर्यसायध योग का त्याग करे।

इस बीच कमठ स्वच्छन्द हो गया था। उसमें समस्त दुर्गुण निवास करने लगे थे। वह परदारगामी और झुपारी भी था। एक बार मरुभूति राजा अरविन्द के

साथ युद्ध में गया हुआ था। उसकी अनुपस्थिति में श्वसुर पाकर दुर्गाचारी कमठ ने उसकी पत्नी वसुन्धरा को अपनी पत्नी बना लिया। विपक्षियों को परास्त करने के बाद जब राजा अपने नगर में वापिस आया और उसे कमठ के इस दुर्वृत्त का पता लगा, तब उसने मरुभूति के परामर्श से कमठ को नगर से बाहर निकाल दिया। कमठ भी भाई पर क्रुद्ध होकर घन चला गया और तापसों के पास जाकर स्वयं तापस बनकर अज्ञान तप करने लगा।

कमठ के चले जाने क पश्चात् मरुभूति ने विचार किया कि मेरे भाई कमठ ने मेरा जो अपराध किया था, उसकी अपेक्षा मैंने कमठ का अधिक अपराध किया है, क्योंकि मैंने ही राजा से प्रार्थना करके कमठ को नगर से बाहर निकलवाया और उसे अपमानित कराया है। मरुभूति ने राजा से प्रार्थना की कि कमठ का अपराध क्षमा कर दिया जाय और उसे नगर से बाहर जाने का दण्ड न दिया जाये, परन्तु राजा ने मरुभूति की यह प्रार्थना स्वीकार न की। तब मरुभूति कमठ से क्षमा मांगने के लिये उसके आश्रम में जाता है। कमठ के चरणों में पड़कर मरुभूति उससे क्षमा मांगता है, परन्तु कमठ के हृदय में जलने वाली अपमान की ज्वाला शान्त न हुई थी। वह क्रोध के बशीमूत होकर मरुभूति पर शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात से मरुभूति को पीड़ा प्रारम्भ होती ही है कि कमठ मरुभूति पर दूसरी शिला प्रहार कर देता है। शिलाघात के कष्ट से आर्त ध्यान करता हुआ मरुभूति मर जाता है और विध्याचल पर युत्यपति हाथी का जन्म प्राप्त करता है। दूसरी ओर कमठ की स्त्री वरुणा भी क्रोधवश शरीर त्याग देती है और वह इसी युत्यपति हाथी की हथिनी होती है।

पोतनपुर के महाराजा अरविन्द एक समय अपने महल की छत पर बैठे हुये थे। उन्होंने एक मंत्र घटा को चढ़ते और बिखरते देखा। इस घटना को देखकर उन्हें विरक्ति हो गई और वे समय में प्रवृत्त हो गये। अवधिज्ञान से युक्त गीतार्थ अरविन्द मुनि एकलविहारी प्रतिमा को धारण करके विचरते हुये उसी घन में आ निकले जिसमें मरुभूति का जीव हाथी का भय धारण करके रहता था। परिवार सहित जलपान करके लौटता हुआ युत्यपति हाथी अरविन्द मुनि की ओर दौड़ा। अरविन्द मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ़ हो खड़े हो गये। हाथी ने मुनिको उपसर्ग तो देना चाहा परन्तु मुनि के तप-तेज से हाथी का क्रोध ही नष्ट हो गया। यह दानता धारण करके मुनि सम्मुख खड़ा रहा। ध्यान समाप्त करके मुनि ने हाथी को उपदेश दिया और कहा कि तू अपने पूर्व भय को याद कर जिसमें तू मरुभूति थायक था। आरत रुद्रध्यान में मृत्यु पाने से ही तू इस भय में हाथी हुआ है। मैं भी पूर्वमय में अरविन्द राजा था। तूने यह मनुष्य मय तो द्वारा ही परन्तु अथ इस मय को भी क्यों कुहल्य में लगाता है। इस प्रकार मुनि के उपदेश से युत्यपति हाथी को जातिस्मृति ज्ञान हुआ। उसने मुनि को प्रणाम करके उनसे थायक धर्म स्वीकार किया। युत्यपति हाथी की हथिनी भी पास ही खड़ी थी। मुनि का उपदेश सुनकर यह भी विचार करने लगी। विचार-करते करते हथिनी को भी जाति-स्मृति-ज्ञान हो गया

और उसने भी श्रावकधर्म स्वीकार कर लिया। श्रावक धर्म स्वीकार करके हाथी तप करने लगा और वह भाजना करने लगा कि मनुष्य जन्म पाकर महाव्रत धारण करने वाले प्राणी ही धन्य हैं। मुझे धिक्कार है जो मृनि दीक्षा न लेकर मनुष्य जन्म को यो ही यो दिया। इस प्रकार की शुभ भाजना करता हुआ वह हाथी समय व्यतीत करने लगा।

कमठ अपने भाई मरुभूति को मारकर भी शान्त नहीं हुआ था। मनुष्य वध क दुरहृत्य को देखकर तापसों ने भी कमठ की निन्दा की। अन्त में वह आरत ध्यान पूर्वक मर कर कुक्कुट जाति का सर्प हुआ।

एक समय उक्त हाथी एक सरोवर में जल पीने गया था। तपन्या की निर्बलता के कारण वहाँ वह कीचड़ में फस गया और प्रयत्न करने पर भी न निकल सका। इतने में ही सर्प भयघारी कमठ भी वहाँ आ गया। पुरुष जन्म के वैर के कारण साप ने हाथी के कुम्भस्थल को इस लिया। हाथी को विष चढ़ा। अपना अन्तकाल समीप जानकर हाथी ने अनशनादि कर शुद्ध भाव से शरीर त्याग दिया और अष्टम स्रष्टार करण में सत्रह सागर की आयु वाला महर्द्धिक देव हुआ। इस हाथी की हाथिनी भी कठिन तप करती हुई शरीर त्याग कर ईशान्य करण में अनाभिप्रहरीक देवी हुई और देव सवधी सुख भोगने लगी। अनेक जीवों का सहार करके कुक्कुट नाग भी मरा और पाचवें नरक में सत्रह सागर की आयु लेकर उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में प्राग्विन्देह की सुकन्धु विजय में वैताड्य गिरि पर तिलका नाम की नगरी थी। वहाँ विद्युद्गति नाम का विद्याधरों का राजा रहता था। विद्युद्गति की कनकलतिका नाम की पत्नानी थी। सहस्रार देवलोक का आयुष्य भोग कर हाथी का जीव कनकलतिका के उदर में आया और गर्भकाल समाप्त होने पर पुत्र रूप में उत्पन्न हुआ। विद्युद्गति ने पुत्र का नाम किरणतेज रक्खा। किरणतेज जब बड़ा हुआ तो एक समय वहाँ सुरगुह नाम के आचार्य पधारे। उनसे उपदेश से प्रभावित होकर किरणतेज ने समय स्वीकार कर लिया और गीतार्थ हो एकल विद्वारी प्रतिमा धारण करके विचरने लगा।

पाचवें नरक का आयुष्य भोगकर कुक्कुट नाग का जीव द्विमगिरि की गुफा में सर्प योनि में उत्पन्न हुआ। वहाँ भी वह अनेक प्राणियों के प्राण हरण करता हुआ कठिन और कूर कर्म करने लगा। किरणतेज मुनि भी विचरत विचरते इसी गुफा में पधारे। एकाल स्थल देखकर मुनि गुफा में ध्यान करके राठे रहे। ध्यान में खटे हुए मुनि को उस सर्प ने देगा। पुरुष भय के वैर के कारण सर्प क्रोधित होकर मुनि के शरीर से लिपट गया और उसने मुनि के शरीर को कई जगह इस लिया। मुनि ने कर्म क्षय करने में सर्प को उपकारी मान और शुभ ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। शरीर त्याग कर किरणतेज मुनि का जीव पारहवें देवलोक में वाईस सागर का

आयुष्य वाला उत्कृष्ट देव हुआ। वह सर्प भी महाभयंकर कर्म बाधकर दावानल में दग्ध हो अशुभ परिणामों के कारण छुट्टी तम प्रभा नरक में बाईस सागर की उत्कृष्ट स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पश्चिम महाविदेह की सुगन्धाविजय में शुभकरा नाम की नगरी थी। वहा यज्ञवीर्य नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीवती था। किरणतेज का जीव चारहवें वरुण का आयुष्य समाप्त करके लक्ष्मीवती की कोख से उत्पन्न हुआ। यज्ञवीर्य ने बालक का यज्ञनाभि नाम रक्खा। वहा होने पर यज्ञनाभि अनेक कलाओं का ज्ञाता हुआ। यज्ञवीर्य ने यज्ञनाभि का विवाह अनेक राजकन्याओं के साथ कर दिया। कुछ काल पश्चात् राजा यज्ञवीर्य अपना राजपाट यज्ञनाभि को सौंपकर आत्म कल्याण में लग गया।

यज्ञनाभि के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम अक्रायुध रक्खा गया। बहुत काल तक राज्य करने के पश्चात् राजा यज्ञनाभि की इच्छा सयम लेकर आत्मकल्याण करने की हुई। पुरणयोग से शुभकरा नगरी में क्षेमकर नाम के तीर्थंकर भगवान् पधारे। भगवान् क्षेमकर का उपदेश सुनकर राजा यज्ञनाभि सयम में प्रमजित हो गये। थोड़े ही समय में यज्ञनाभि मुनि सूत्र सिद्धान्त के पारगामी हो गये और अनेक प्रकार के तप करते हुए विचरने लगे। उन्हें आकाशगामिनी आदि अनेक लब्धियाँ भी प्राप्त हुईं।

एक बार आकाशमार्ग से विहार करते हुए यज्ञनाभि मुनि सुकच्छ विजय में पधारे। छठे नरक से निकल कर कमठ का जीव भी इसी सुकच्छ विजय के ज्वलन गिरि धन में कुरगक नाम का भील हुआ। कुरगक भील उस जगल में भ्रमण करता हुआ शिकार द्वारा जीवन विताता था। यज्ञनाभि मुनि भी विहार करते हुये उसी ज्वलनगिरि नाम के जगल में आ निकल। सध्या का समय हो गया था इस कारण यज्ञनाभि मुनि ज्वलनगिरि की एक कन्दरा में ही कायोत्सर्ग करके ध्यानारूढ हुये। जगल में भ्रमण करता हुआ कुरगक भील भी वहाँ जा निकला जहा यज्ञनाभि मुनि कायोत्सर्ग करके ध्यान में थे। पूर्व भय के बैर के प्रभाय से मुनि को देखकर कुरगक भील ने अपने लिए अपशकुन समझा। उसने क्रोधित होकर के मुनि के घाण मारा। घाण लगने म मुनि पीडित हुए। क्रूरकर्मी कुरगक भी समय पर बुरे परिणामों से मृत्यु पाकर सातवें नरक के रौरव नामक नरकावास में उत्पन्न हुआ।

इसी जम्बू द्वीप में पृथ्व महाविदेह में पुराणपुर नामक नगर था। वहा कुलिश बाहु नामक राजा राज्य करता था जिसकी सुदर्शना नाम की पटरानी थी। मध्य-मैथिल्य का आयुष्य भोग कर यज्ञनाभि का जीव महारानी की कोख में आया। महारानी सुदर्शना ने चौदह महास्वप्न देखे। पति से स्वप्नों का फल सुन कर कि तुम्हारी कोख से चक्रवर्ती या धर्म-शक्ती पुत्र उत्पन्न होगा, महारानी सुदर्शना प्रसन्न हुई और साधना के साथ गर्भ का पोषण करने लगी। समय पर रानी ने एक सुन्दर

और पुण्यवान् बालक को जन्म दिया। राजा कुलिश बाहु ने पुत्र-जन्मोत्सव मनाकर बालक का नाम स्वर्णगाहु रक्खा। थोड़े ही समय में स्वर्णगाहु सब प्रकार से योग्य हो गया। महाराज कुलिशबाहु ने राज्यभार स्वर्णगाहु को सौंप दिया और स्वयं समय में प्रमत्त हो गये। स्वर्णगाहु का प्रताप दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया। कुछ काल पश्चात् स्वर्णगाहु के यहाँ चौदह रत्न प्रकट हुये और वह छु खण्ड पृथ्वी साध कर चक्रवर्ती हुआ।

एक समय भगवान् तीर्थंकर पुराणपुर में पधारे। स्वर्णगाहु चक्रवर्ती भगवान् को वन्दना करने गये। भगवान् की वाणी सुनकर स्वर्णगाहु को ससार से प्रिक्रि हो गई और वे समय में प्रवृत्त हो गये। कठिन तप और अर्हद्भक्ति आदि बीस बोलों की आराधना करके स्वर्णगाहु ने तीर्थंकर नामक कर्म का उपाजन किया।

सातवें नरक का आयुष्य भोगकर पुरगक भील का जीव क्षीरगिरि के पास के शीरवणा जगल में सिंह हुआ था। विहार करते हुये स्वर्णगाहु मुनि इसी क्षीरवणा जगल में आ निकले। सिंह ने मुनि को देखा। पूर्वभय के वर से मुनि को देखकर सिंह क्रुद्ध हुआ और मुनि पर भ्रपटा। उपसर्ग जान कर मुनि सचेत हो गये थे। इसलिये उन्हेनि आत्मशुद्धिपूर्वक अनशन कर लिया सिंह ने मुनि की हत्या कर डाली। स्वर्णगाहु मुनि समाधिपूर्वक शरीर त्याग कर ढसवें कल्प के महाप्रभ विमान में बीस सागर की स्थिति के महद्धिक देव हुए और सिंह भी मर कर चौथे नरक में ढस सागर की स्थिति वाला नैरयिक हुआ।

अन्तिम भव

इस प्रकार पूर्व जन्मों के इतिवृत्त के बाद अन्तिम जन्म की कथा प्रारम्भ होती है। मध्य जम्बू द्वीप के भरतक्षेत्रान्तर्गत मध्यखण्ड में गंगा नदी के तट पर स्थित काशी देश में धाराणसी नाम की रमणीय नगरी थी। वहाँ इच्छाकुवश शिरोमणि अश्वसेन (विश्वसेन) नाम का राजा राज्य करता था। अश्वसेन की गनियों में वामादेवी (प्राङ्मी देवी) सबसे श्रेष्ठ रानी थी। स्वर्णगाहु चक्रवर्ती का जीव प्रणत कल्प का आयुष्य भोग कर क्षेत्र कृष्णा ४ को वामादेवी के गर्भ में आया। सुखशय्या पर शयन किये हुए महारानी वामादेवी ने तीर्थंकर के गर्भस्त्वक चौदह महास्वप्न देखे। स्वप्नों को देखकर वे जाग उठीं। उन्हेनि देखे हुए स्वप्न अपने पति महाराज अश्वसेन को सुनाये और पति से स्वप्नों का फल सुनकर प्रसन्न होती हुई अपने शयनागार में लौट आई तथा शेष रात्रि धर्म जागरण में व्यतीत की।

गर्भकाल के समाप्त होने पर महारानी ने पीप कृष्ण की रात्रि को जय वि चन्द्रमा अनुराधा नक्षत्र में आया हुआ था, नीलमणि की शोभा को हरने वाले तथा सर्प के मुख्य चिह्न वाले पुत्र को जन्म दिया। इतिहास वेत्ताओं ने अनुसार यह

घटना ई० पूर्व ८७७ की कही जाती है^१। प्रातःकाल महाराजा अश्वसेन ने पुत्र जन्मीत्स्य मनाकर पुत्र का नाम पार्श्वकुमार रक्खा। धीरे धीरे पार्श्वकुमार बड़े होने लगे। जब वे युवक हुए उस समय उनका नव हाथ^२, ऊँचा नीलवर्णीय^३ शरीर बड़ा शोभायमान मालूम होता था। वे बड़े लोकप्रिय,^४ चतुर, अद्वितीय सुन्दर, इन्द्रियों को बश में रखने वाले, सौभाग्यशाली और नम्र स्वभाव के थे।

इन्हीं दिनों कुशस्थल^५ नगर के राजा प्रसेनजित् के प्रभावती नाम की एक अद्वितीय सुन्दरी बन्या थी। जय प्रभावती विवाह योग्य हुई, तब उसके माता पिता प्रभावती के अनुरूप घर की खोज करने लगे। एक दिन प्रभावती अपनी सखियों के साथ बाग में टहल रही थी। वहाँ उसे किन्नरियों द्वारा गाया जाने वाला एक गीत सुनाई दिया जिसमें अश्वसेनसुत पार्श्वकुमार क उत्कृष्ट रूप का वर्णन होने के साथ ही उस स्त्री को धन्य बताया गया था जिस पार्श्वकुमार की पत्नी बनने का सौभाग्य प्राप्त हो। इस प्रकार का गीत सुनकर प्रभावती के हृदय में पार्श्वकुमार के प्रति अनुराग उत्पन्न हुआ। उसने पार्श्वकुमार के ही साथ विवाह करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। प्रभावती की सखियों ने प्रभावती का यह निश्चय प्रभावती के माता-पिता को सुनाया। राजा प्रसेनजित् भी इस निश्चय को सुनकर प्रसन्न हुआ। वह प्रभावती को लेकर वाराणसी गया। इधर प्रभावती का सौन्दर्य, उसका शील और

१ Guerinot ने अपने Intro Bibliographica Jaina में पार्श्वनाथ को ई० पू० अष्टम शतक में कार्य करता हुआ माना है। श्री जगदीशचन्द्र जैन ने Life in Ancient India as depicted in the Jaina Canons में पार्श्वनाथ को ई० पू० नवम शतक के अन्त में माना है। Jacobi के अनुसार ई० पू० अष्टम शतक ही उचित है। उनके जैन-सूत्रों को देखिये।

२ श्री वापटिया द्वारा लिखित जैन धर्म और साहित्य, भाग १, पृ० २४ देखिये।

३ श्री नाहर और घोष द्वारा लिखित Epitome of Jainism 46 पृष्ठ देखिये।

४ पुरियादानीये (पुरियादानीय) कल्पसूत्र, १४६, १५४ वाली पुरिसाजानीय, अगुत्तर, १, २६०, २, ११५। इसका यह भी अर्थ हो सकता है—उच्च जन्म वाला या प्रतिष्ठित व्यक्ति। याकोबी ने इसको इस तरह समझाया है कि ऐसा आदर्मी जो अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा चुना जाय—जैन सूत्र १ S B E, Vol XXII P 271

५ यह नगर कान्यकुब्ज या यत्तमान बन्नीज ही था (महाभारत, ८७, १७ भागवतपुराण ६, १, २१, योगिनी तन्त्र २, ४, इर्ष्यचरित, ६, विनय पिटक २, २६६)

ज्ञान सारे देश में प्रसिद्ध हो रहा था। कलिगदेश के राजा यवन भी प्रभावती से विवाह करना चाहते थे। प्रभावती के पार्श्वकुमार के वहा जाने का समाचार सुन कर उसने अपनी विशाल सेना के साथ कुशस्थल पर चढ़ाई करदी और नगरी को घेर लिया। राजा प्रसेनजित् ने राजा अश्वसेन से सहायता मागी। इसी बीच अपने एक वृद्ध मंत्री के सत्परामर्श से कलिगराज यवन ने प्रसेनजित् से युद्ध छेड़ने का विचार छोड़ दिया और क्षमा माग कर वापिस लौट गया। यद्यपि पार्श्वकुमार प्रारम्भ से ही ससार से विरक्त रहते थे और विवाह बन्धन में पडना न चाहते थे, फिर भी अपने पिता तथा राजा प्रसेनजित् के आग्रह से उन्होंने विवाह करना स्वीकार कर लिया। तदनंतर दोनों आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक समय भरोचे में बैठे हुए भगवान् पार्श्वकुमार धाजार की दृटा देख रहे थे। उस समय भगवान् ने देखा कि भुराड के भुराड लोग हाथ में फल-फूलादि लिये हुये नगर से बाहर की ओर जा रहे हैं। पूछने से पता लगा कि कमठ नाम का तापस पत्वाग्नि तपस्या करता है। लोग उसी की भेंट पूजा के लिये सामग्री लेकर जा रहे हैं। इतने में ही माता यामा-देवी का भेजा हुआ यह सन्देश भी भगवान् के पास आया कि मैं कमठ तपस्वी की पूजा करने जा रही हूँ, आप भी वहा चलें। यद्यपि भगवान् पार्श्वकुमार इस प्रकार के तप को अज्ञान कष्ट समझते थे, फिर भी माता की आज्ञा का पालन करने के विचार से वे भी गंगा तट पर वहा गये जहा कमठ तापस ताप ले रहा था। यह कमठ तापस कोई अन्य व्यक्ति नहीं है प्रत्युत पूर्व जन्म में विश्वभूति के कमठ और मरुभूति के नाम के जो दो पुत्र थे, उन्हीं में से इस जन्म में भी कमठ तो वहा तापस के रूप में है और मरुभूति पार्श्वकुमार के रूप में है। भगवान् पार्श्वकुमार ने कमठ तापस की धूनी के पास जाकर देखा कि धूनी में जलते हुए एक लकड़ के में बैठे हुए एक नाग भी जल रहा है। पार्श्वकुमार ने कमठ तापस को उसके हिंसात्मक इस अज्ञान तप का बोध कराया और अपने सेवकों से उस लकड़ को धूनी से बाहर निकलवाया तथा साग्धानी से लकड़ फाड़ने की आज्ञा दी। लकड़ के फाड़ते ही उसमें से तरुपता हुआ नाग निकल आया। भगवान् ने उस नाग को नमस्कार मन्त्र की शिक्षा दी। धर्म पर धडा लाने के कारण वह नाग अपना शरीर त्याग कर नागों का स्वामी धरणिन्द्र हुआ। इसके बाद भगवान् पार्श्वनाथ भी अपने महल को लौट आये।

इस घटना को देखकर लोगों ने कमठ तापस की बहुत निन्दा की। अपनी निन्दा होने के कारण तापस को भगवान् पार्श्वनाथ पर बहुत क्रोध आया परन्तु विवश था। अतः उसने अपने तप के फलस्वरूप यह कामना की कि वह अपने घरी पार्श्वनाथ के लिये दुःखदायी बने। अज्ञान तप के फल से कमठ तापस मृत्यु पाकर मेघमाली देव हुआ और भगवान् पार्श्वनाथ से बदला लेने के समय की प्रतीक्षा करने लगा।

इधर तीस वर्ष की आयु हो जाने पर भगवान् पार्श्वनाथ भी आत्मकल्याण के

विचार से घर से निकल पड़े। धूमते २ किसी दिन भगवान् पार्श्वनाथ तापसों के आश्रम के समीप पधारे। सूर्यास्त हो चुका था, इसलिये भगवान् पार्श्वनाथ वहाँ कुएँ के समीपस्थ घट वृक्ष के नीचे कायोन्सर्ग करके खड़े हो गये। मेघमालि देव ने इस अबसर को अपना वैर चुकाने के लिये उपयुक्त समझा। उसने पहले तो रीछ-चीता, हाथी और सिंह वन कर भगवान् को डराने की चेष्टा की, परन्तु जब उसे सफलता न मिली, तब उसने आकाश से मेघ लाकर जल बरसाना शुरू किया। मेघ के गरजने-बरसने, विजली के कड़कने और वायु के वेग से बड़े २ वृक्ष भी उखड़ कर गिरने लगे। वन के पशु पक्षी इधर उधर भागने लगे। सारा वन जलमय हो गया। जल क्रमशः भगवान् पार्श्वनाथ की कमर, छाती और नाक तक पहुँच गया। फिर भी भगवान् ध्यान में अविचल रहे। अनायास धरणेन्द्र का ध्यान इस ओर गया। भगवान् पर यह सकट देखकर धरणेन्द्र शीघ्र ही भगवान् की सेवा में उपस्थित हुआ। भगवान् को नमस्कार करके धरणेन्द्र ने भगवान् के चरणों के नीचे स्वर्ण कमल वैविय किया और भगवान् के मस्तक पर अपने सप्तफल का छत्र करके भगवान् के शरीर को अपने शरीर से आच्छादित कर दिया। धरणेन्द्र ने इस प्रकार भगवान् का उपसर्ग निवारण किया। पश्चात् यह क्रुद्ध होकर मेघमालि देव से कहने लगा— अरे दुष्ट, तू यह क्या कर रहा है। या तो शीघ्र ही अपनी माया समेट कर भगवान् की शरण ले, अन्यथा मैं तेरे इस अपराध को क्षमा न कर गा। धरणेन्द्र की बात सुन कर मेघमालि बहुत लज्जित हुआ। अपनी माया समेट कर वह अपने मन में कहने लगा कि मैंने इन महापुरुष को कष्ट देने के लिए अपनी सारी शक्ति लगा दी, तब भी ये महापुरुष धीरे धीरे बने रहे और मेरी समस्त शक्ति वृथा हो गई। ये महापुरुष अगूठे से मेरे पर्यंत को हिलाने में समर्थ हैं, फिर भी इन्होंने मुझ पर क्रोध नहीं किया। अतः अब मेरी कुशल इन महापुरुष की शरण लेने में ही है। इस प्रकार विचार कर मेघमालिदेव अभिमान तज भगवान् के चरणों में गिर पड़ता है और भगवान् से क्षमा प्रार्थना करने लगता है। धीतरतः भगवान् पार्श्वनाथ के लिए तो धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों समान ही थे। अतः भगवान् पार्श्वनाथ ने मेघमालि को आश्रय दे दिया। अन्त में धरणेन्द्र और मेघमालि दोनों भगवान् को नमस्कार करके अपने अपने स्थान चले जाते हैं। भगवान् पार्श्वनाथ भी अन्यत्र विहार करने लगते हैं।

आगे चलकर भगवान् पार्श्वनाथ ने अपना एक सप्रदाय चलाया जो कि तीर्थ कहलाया और यह तीर्थकर कहलाए। इन्होंने अनेक नगरों की यात्रा की। ई० पू० ७७७ में अपने हाथों को फँलाते हुए तथा सर्व दुःखों से मुक्त हो समेत पर्यंत के शिवर पर अपने २३ शिष्यों के सामने वर्षा ऋतु के प्रथम मास

१ आचार्य नियुक्ति, ३३५, नायाधर्मकहाओं, २, २२२-२३० ला, Geography of Early Buddhism पृ० १८, १९, २०, ५३, ८६, १६, १५, १७, २३, ३५ देखिए।

२ यह समेत शिघर नाम का ही पर्यंत है जो कि बाद में पार्श्वनाथ पर्यंत कहलाया है।

में मर्दाने भर तक अनशन करके यहाँ तक कि जल^१ तक न लेकर भगवान् पार्श्वनाथ ने निर्वाणपद^२ प्राप्त किया। भगवान् पार्श्वनाथ इस प्रकार १०० वर्ष तक इस ससार में जीवित रहे^३। भगवान् पार्श्वनाथ का जीवनचरित सलेप में जान लेने के बाद पार्श्वभ्युदय काय का कथानक समझने में पाठकों के सामने अब कोई कठिनाई नहीं रह सकती। अतीत और वर्तमान जन्मों में भेदभाव न मानकर यह काय लिखा गया है, और मेघदूत के अनुकरण पर कमठ के यज्ञ होने, अलका में रहने तथा वर्ष भर के शाप की कल्पना कर ली गई है।

कान्य की कथा

राजा अरविन्द के द्वारा नगर से बहिष्कृत कर दिये जाने पर कमठ सिन्धु नदी के तट पर तपस्या करने लगता है। अपने बड़े भाई की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर पश्चात्ताप से प्रेरित हो उसका छोटा भाई मरुभूति (पार्श्वनाथ) खोजते खोजते कमठ के पास पहुँचता है। मरुभूति को देखकर कमठ के हृदय में पूर्व बैर जागृत हो उठता है और वह मरुभूति के मारने का उपाय सोचता है। अपनी माया के प्रभाव से वह घोरवृष्टि उपस्थित कर देता है, सिद्ध की तरह गरजता है और मरुभूति को धिक्कारता है। इस पर भी जब मरुभूति (पार्श्वनाथ) की ध्यानवृत्ति विचलित नहीं होती है, तब कमठ उससे युद्ध करने का आग्रह करता है और युद्ध में अपने हाथ से मृत्यु पाने के बाद स्वर्गलोकस्थित अलकापुरी जाने का मरुभूति को परामर्श देता है। कमठ के विभिन्न दुर्वचनों को सुन कर भी मरुभूति मौन ही रहता है। कमठ इस अरसर पर मरुभूति को विभिन्न पूर्ब कथायें याद दिलाता है और अन्त में फिर युद्ध करने के लिये प्रेरित करता है। युद्ध में मरुभूति के मर जाने की सम्भावना को लेकर भय मेघरूप के धारण करने के कारण कमठ मरुभूति को भी मेघ का ही रूप देखकर उत्तर दिशा की ओर स्वर्गस्थित अलकापुरी जाने का परामर्श देता है।

इस प्रसंग में रामगिरि से अलकापुरी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। सर्वप्रथम रामगिरि से उत्तर की ओर चलने पर आस्रफूट पर्वत, तत्पश्चात् पुन उत्तर की ओर चलने पर नर्मदा नदी, विन्ध्य-वन, दशार्ण देश और दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन किया गया है। विदिशा नगरी में प्रपथती नदी के जल को ग्रहण करने के बाद किसी अट्टालिका के ऊपर दिन बिता कर रात्रि में

१ कल्पसूत्र १६८।

२ कल्पसूत्र १६६।

३ धी तीर्थंकरचरित्र, द्वि० भा० रतलाम तथा वादिराजसूरि का धीपार्श्वनाथ चरितम् विशेष ज्ञान के लिये देखें।

नीच नामक किसी पर्वत पर विधाम करने, तदनन्तर निर्विन्ध्या और सिन्धु नदियों पर से होते हुए मेघ को (मरुभूति) उज्जयिनी जाने का परामर्श दिया गया है। उज्जयिनी पहुँच कर सर्वप्रथम जिनेन्द्र के मन्दिर में जिनेन्द्र की स्तुति करने तथा महामाल नामक वन में स्थित जिनालयों के दर्शन करने के बाद नगरी की शोभा देखने का मेघ (मरुभूति) को परामर्श दिया गया है।

उज्जयिनी के बाद गम्भीरा नदी होते हुये देवगिरि पर्वत पर पहुँचने तथा वहा स्वन्द देव की पूजा करने और फिर चर्मएरी नदी में कुछ देर जलक्रीडा करने के बाद दशपुर नगर तथा सीता नामक किसी नदी पर से होते हुये ब्रह्मावर्त देश पहुँचने के लिये मेघ से कहा गया है।

ब्रह्मावर्त के बाद कुरुक्षेत्र, तदनन्तर कुरुक्षेत्र के निकट ही बलराम के पुण्य क्षेत्र होते हुए वनखल पर्वत के समीप गगाजी पर पहुँचने के बाद हिमालय पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है।

हिमालय पर्वत पर पहुँच कर वहा के विभिन्न रमणीय दृश्यों को देखकर 'कौचरन्ध्र' में से होकर कौलास पर्वत पर जाने के बाद अलकापुरी में उतरने का मेघ को परामर्श दिया गया है। इस अवसर पर कवि ने अलकापुरी का शृ गारमयी विविध भाग भगिमाओं के साथ कमठ के मुख से वहा सरस वर्णन कराया है। इस तरह मेघ (मरुभूति) के अलकापुरी पहुँच जाने पर उसकी पूर्व जन्म की पत्नी वसुधरा से उसके मिलने का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में वसुधरा की विरहा वस्था का मेघ-दूत के यक्ष की प्रेयसी के समान वहा ही भावुक तथा करुण वर्णन किया गया है।

कमठ के इतना सब कुछ कहने पर भी जय मरुभूति शान्त ही बना रहता है, तब कमठ उसे फिर युद्ध के लिये प्रोत्साहित करता है। युद्ध में मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग जाकर किसी देवागना के साथ रहने का उसे प्रलोभन देता है। विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहित किये जाने पर भी जय मरुभूति युद्ध के लिये तैयार नहीं होता है, तब कमठ अपनी माया शक्ति से स्त्री-समूह की सृष्टि करते हुए गाना प्रारम्भ कर देता है और स्त्रियों की प्रणय चेषाओं तथा प्रिय वचनों द्वारा उसे विमुग्ध करना चाहता है। इतनी शडता करने पर भी मरुभूति (पादार्थनाथ) को शान्त देखकर कमठ को अपनी असफलता पर बड़ा क्रोध आता है और वह मरुभूति के मस्तक पर शिला प्रहार करना चाहता है कि उसी समय मरुभूति (पादार्थनाथ) की पूजा के लिये सपत्नीक आये हुये नागराज धरणेन्द्र को स्मरण पृथ्वी पर पतार फेंक कर वह भाग रहा

होता है। नागराज धरणेन्द्र उसे अभयदान देकर भागने में रोक लेता है और उसे उसके पूर्व जन्मों के अपराधों की याद दिलाता है। इसके बाद नागराज धरणेन्द्र पार्श्वनाथ की स्तुति करता है तथा कमठ पर भी कृपा दृष्टि के लिये भगवान् से प्रार्थना करता है। अन्त में कमठ द्वारा किये हुए उपसर्ग से भगवान् की रक्षा के लिये उनके मस्तक पर अपने फणों का छत्र फैला देता है। उसकी स्त्री भी भगवान् की धीरता पर विमुग्ध होकर अपने फणों को छत्र रूप से उनके ऊपर फैला देती है। तदनन्तर कमठ भी पश्चात्ताप से प्रेरित हो भगवान् पार्श्वनाथ की शरण में जाकर उनसे अपने पापों के लिये क्षमायाचना करता है और सम्यग्ज्ञान की प्रार्थना करता है। प्रार्थना करते करते उसकी आँसुओं से निरन्तर अश्रुधारा बहने लगती है। देवगण इस दृश्य को देखकर आकाश से पुष्पवृष्टि करते हैं, दुन्दुभिया वज्राते हैं और स्वर्ग से उतर कर पार्श्वनाथ की स्तुति करने लगते हैं। दूसरे तापस भी श्री पार्श्वनाथ की महिमा को देखकर उनकी शरण में आ जाते हैं।

धम यहा पर ही काव्य का कथानक समाप्त हो जाता है।

समालोचना

मेघदूत के पदों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे गये काव्यों में पार्श्वनाथ भ्युदय सर्वप्रथम काव्य है। इसमें प्रायः मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मान कर कविता की गई है। कहीं कहीं दो पंक्तियाँ मेघदूत की हैं और दो कवियों की स्वरचित हैं। इस तरह यह एक चम्पकारपूर्ण रचना है। इसको दूतकाव्यों की परम्परा में साक्षात् सम्मिलित करना कुछ उपयुक्त तो कम ही जान पड़ता है, लेकिन मेघदूत के पदों को समस्या मानकर इसकी रचना की गई है, अतः दूतकाव्यों के अनुशीलन में इसका भी समावेश कर लिया गया है। लेखक ने स्वयं इस काव्य का नाम पार्श्वनाथभ्युदय रक्खा है। अतः यह प्रतीत होता है कि लेखक को भी इसे दूतकाव्य के रूप में मानना अभीष्ट नहीं था।

सारा काव्य चार सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में ११८, द्वितीय सर्ग में ११८, तृतीय सर्ग में ५७ तथा चतुर्थ सर्ग में ७१ इस तरह समग्र काव्य में कुल २६४ श्लोक हैं। समस्या पूर्ति होने के कारण सारा काव्य मन्द्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। केवल चतुर्थ सर्ग के अन्तिम छः श्लोकों में से पांच मालिनीवृत्त हैं और छठा वसन्त तिलका है।

छन्द के साथ साथ भाषा भी मेघदूत जैसी ही है। लेकिन अनावश्यक और नीरस प्रसंगों के समावेश के कारण काव्य में मेघदूत जैसा प्रवाह नहीं है। वास्तव में मेघदूत से प्रतिस्पर्धा करने के लिये इस काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथावस्तु तो सक्षेप में दी ही जा चुकी है। काव्य की शैली कुछ वेसी अटिल है कि काव्य की कथा एक दम पाठक के सामने नहीं आ सकती।

समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण तथा मूल पक्तियों के भाग को यत्र तत्र विपर्यस्त करने से काव्य जटिल हो गया है और प्रसाद गुण की काव्य में न्यूनता आ गई है। कथानक की दृष्टि से काव्य बहुत शिथिल है। चूंकि मेघदूत की समस्या पूर्ति कवि का मुख्य लक्ष्य है, इसलिये बहुत सी बातें विवश होकर उसे कल्पित करनी पड़ी है। इसी कारण से काव्य में वैसी श्यामाधिकता नहीं है जैसी कि एक स्वतन्त्र रचना में होनी चाहिये।

इसके साथ समस्यापूर्ति के बन्धन ने जहाँ काव्य के कथानक को शिथिल और कुछ कृत्रिम सा बना दिया है, वहाँ इससे एक लाभ भी हुआ है कि कवि को विभिन्न प्राकृतिक दृश्यों तथा कथानक के भागपूर्ण रम्य स्थलों के वर्णन करने का पर्याप्त अवसर मिला है। इन वर्णनों में कवि ने अपनी सहृदयता और कल्पनाशक्ति का पूर्णरूपेण परिचय दिया है। आम्रकूट पर्वत के शिखर पर मेघ के पहुंचते समय पर्वत की शोभा का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

कृष्णाहि किं बलयिततनुर्मध्यमस्याधिशेते
किं वा नीलोत्पलरिरचित शेखर भूभृत स्यात् ।
इत्याशका जनयति पुरा मुग्धविद्याधरीणा
त्यय्यारूढे शिखरमचल' स्निग्धवेणीसयणे ॥१॥७०॥

विद्याधरियों को पर्वत के शिखर पर स्थित श्यामवर्ण के मेघ को देखकर कृष्ण संपन्न अथवा नीले कमलों की माला का भ्रम हो जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने आगे चल कर रेवा नदी का वर्णन भी बड़ा ही सुन्दर किया है—

गत्योदीचीं भुव इव पृथु हारयष्टि विभक्ता
घन्येभाना रदनहृतिभिर्मिन्नपर्यन्तप्राम् ।
धीना वृन्दैर्मधुरयिस्तैरात्ततीरोपसेवाम्
रेवा द्रक्ष्यस्युपलविपमे विन्ध्यपादे यिशीर्णाम् ॥१॥७१॥

रेवा नदी को पृथ्वी की टूटी हुई बटी सी माला बताकर उसके तट पर घन्य हाथियों की दन्तकीड़ा तथा पक्षियों के मधुर कलरव का वर्णन कर कवि ने नदी के तट का चित्र सा खींच दिया है।

दशार्ण देश की राजधानी विदिशा नगरी का वर्णन करते हुये कवि ने बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

गत्या पश्ये पवनविचलत्वेतुहस्तैरमीक्षणम्
दूरादुच्चैर्मथन शिखरैराह्वयन्तीमिथ त्याम् ।
सालोद्गमा द्वियमिथ भुवो रूपिणीं नाभिभूताम्
(दशार्णानाम्) तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणं राजधानीम् ॥१॥७२॥

त्रिदिशा नगरी के ऊंचे २ प्रासादों पर वायु के जोर से लहराते हुये भगदों को देखकर ऐसा लगता है मानों यह नगरी अपने दार्थों के सकेत से मैत्र को बुला रही हो। नगरी इतनी सुन्दर है मानों पृथ्वी की शोभा ही साक्षात् खड़ी हुई हो।

आगे चल कर सिन्धु नदी के वर्णन में किसी विरहिणी स्त्री की विरहजन्य लज्जा त्याग और काश्य अवस्थाओं का उदा ही सश्लिष्ट वर्णन कवि ने किया है—

हंसश्रेणीकलत्रितिभिस्त्वामिरोपाह्वयन्ती
धृष्टा मार्गं शिथिलजसनेऽगमना दृश्यते ते ।
वेणीभूतप्रतनुसलिला तामतीतस्य^१ सिन्धु
पागदुच्छ्रया तटद्वतरभ्रशिभिर्जीर्णपर्णं ॥१॥१८७॥

क्षामा पागदु प्रतनुसलिला वेणिका धारयन्ती
हसस्वानैरिव त्रिदधती प्रार्थनाचाटुमेया ।
सौभाग्य ते सुभग त्रिग्हाजस्थया व्यजयन्ती
काश्य येन त्यजति त्रिधिना स त्ययैरोपपाद्य ॥१॥१८८॥

इन श्लोकों में सिन्धु नदी का वर्णन करते हुए कवि ने विरहिणी स्त्री का चित्र उपस्थित कर दिया है।

इसके बाद उज्जयिनी नगरी का भी कवि ने बड़ा उदात्त और सरस वर्णन किया है। उज्जयिनी के राजमार्गों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

यस्या विभ्रत्यग्निपथ्या रत्नराशीगुदघ्रा
शूर्पोन्मेयाजलधय इषापीनतोया युगान्ते ।
हारास्तारास्तरलघुट्टिकान्कोटिश शम्भुकी
शष्पश्यामान्भ्रकतमणीनुन्मयूवप्ररोहान् ॥ ॥११५॥

भूयो नानाभरणरचनायोग्य रत्नप्रवेका
ज्योतिलोत्सारचित रचिमत्सुकचापानुकारान् ।
दृष्ट्वा यस्या विपणि रचितान्विद्रुमाणा च मगान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रापशेषा ॥१॥१६॥

उज्जयिनी के राजमार्गों में शम्भु, मोती और रत्न तथा भ्रकत मणिया इतनी प्रचुर मात्रा में लगी हुई हैं कि मालूम पड़ता है अब समुद्र में केवल पानी शेष रह गया हो। इसी तरह बाजार में भी तरह-२ का रत्न और प्रवाल विकते हुए देखकर

लोगों को भ्रम होता है कि अब समुद्र में केवल जल ही रह गया होगा। इस तरह समुद्र से भी बढ़कर नगरी की सम्पत्ति बतार्ह गई है।

उज्जयिनी के समीप की शिप्रा नदी की शीतल वायु का कवि ने कैसा सरस वर्णन किया है —

यस्यामुच्चै रूपनतरून्तामयन्मातरिश्या
वीचिन्नोभादधिक शिशिर सचरत्यङ्गणौ ।
दीर्घा कुर्वन्पट्टमदकल कृजित सारसानाम्
प्रत्यूपेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकपाय ॥१॥११॥

कल्लोलान्तर्यलनशिशिर शीकरासारवाही
धूतोद्यानो मदमधुलिहा व्यजयन्सिजितानि ।
यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल
शिप्रायात प्रियतम इय प्रार्थना चाटुकार ॥१॥१२॥

यद्यपि इन दो श्लोकों में दो दो पक्तियां मेघदूत की ही हैं, फिर भी समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने मूलपक्तियों के भाव को बड़ी सुन्दर रीति से पल्लवित किया है।

जिस तरह मेघदूत में अलकापुरी का वहा सरस वर्णन किया गया है, उसी तरह इस काव्य में भी अलकापुरी का वर्णन पाया जाता है। अलकापुरी के इन्डनील मणियों से युक्त छोटे २ पर्यत और देवदारु वृक्षों के सुगन्धित घूम से युक्त, सुन्दर स्त्रियों के निवास स्थान तथा चित्रों से सुसज्जित ऊँचे २ प्रासाद इमेशा वर्षामृतु जैसा दृश्य बनाए रखते हैं —

यत्रानील हरिमणिमया छुद्रशैला नभोग
प्रोचहं वद्रूपपरिसरद्धपधूमानुबन्धा ।
प्रासादाश्च प्रथयितुमल सर्वदा मेघकालं
त्रिद्युतवन्त ललितवनिता सेन्द्रघाप सचिप्रा ॥२॥८४॥

अलकापुरी के वर्णन प्रसंग में कवि ने वहा के स्त्रीपुरुषों की विविध श्रृ गार-मयी घेष्टाप बड़े उत्कृष्ट ढंग से वर्णित की है। ऐसे ही एक स्थान पर कवि लिखता है —

यस्या कामद्विपमुखपटच्छायमास्रस्तनीवि
धीमच्छोणीपुलिनपरणं पारि काचीविमंगमम् ।
पूर्यं सज्जा विगलति ततो घर्मतोषं वधूना
जोमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु त्रियेषु २॥११४॥

मेघदूत में जिस तरह अलकापुरी की स्त्रियों की मुग्धाऽस्था वर्णित की गई है, उसी तरह इस का य में भी अलका की रमणियों को वहा मुग्ध बतलाया गया है —

आक्षिप्तेषु प्रियतमकरैरशुकेषु प्रमोहा-
दन्तलीलातरलितदृशो यत्र नाल नगोढा
शय्योत्थाय वदनमरुताऽपासितु धारमाना
अचिस्तु गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान् ॥२॥११५॥

अलका की रमणियों की मुग्धाऽस्था का इसी से अनुमान लगाया जा सकता है कि वे रत्नों के दीपों को फूँक से बुझाने की व्यर्थ चेष्टा करती हैं ।

अलकापुरी की रमणियों के ऋ गार का वर्णन करते हुए कवि ने अलका में हमेशा सब ऋतुओं का एक साथ होना बतलाया है —

पाणी पद्म कुरवकयुत स्तोचितेधाम्नि कुन्द
लोड्रो रेणु स्तन परिसरे हारि कर्णे शिरोपम् ।
व्यक्तिव्यक्तम् व्यतिकरमद्वो तत्र पणामृतनाम् ।
सीमन्ते च त्रदुपगमज यत्र नीप यधूनाम् ॥

कमल से शरद्, कुरवक से वसन्त, कुन्द से हेमन्त, लोड्र के चूर्ण से शिशिर, शिरीष पुष्प से ग्रीष्म तथा कदम्ब से वर्षा ऋतु का एक साथ अलका में होना कवि ने मिड किया है ।

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कविता की गई है । अतः मेघदूत में केवल सकेत मात्र से निर्दिष्ट भाव इस काव्य में पूर्ण रूप से वहाँ-वहाँ विकसित पाया जाता है । मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए पक्ष ने मेघ को वहा की रमणियों के नेत्रों से क्रीडा करने का आदेश देते हुए कहा है—

विद्यहामस्फुरितचञ्चितं यंत्र पौरागनानाम्
लोलापार्यैदि न रमसे लोचने चचित स्या ॥

इसी भाव को और अधिक विशद करते हुए इस काव्य में कवि ने लोचनों के बड़े ही उपयुक्त विशेषण दिए हैं —

जैत्रैरीली कुसुम धनुषो दूरपातैरमोघै
मर्माधिदिम् हृदपरिचितभ्रूधनुषैरिमुकैः ।

लोचनों के इन विशेषणों से उज्जयिनी की अगताओं की और भी अधिक विलासिता व्यक्त होती है ।

मेघदूत में उज्जयिनी स्थित महाकाल के मन्दिर में सार्यकालीन पूजा के समय नगाड़े के समान धीरे २ गरजने के उपलक्ष्य में मन्दिर की वेश्याओं द्वारा अपने सुदीर्घ कटाक्षों द्वारा देया जाना ही मेघ को उसकी शिव पूजा का फल बतलाया गया है —

पादन्यासे क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूते
रत्नच्छायावचितवलिभिश्चामरे क्लान्तहस्ता ।
वेश्यास्तपत्तो नखपदसुखान् प्राप्य वर्षाप्रविन्दून्
श्रामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान् कटाक्षान् ॥१॥३६॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर प्रस्तुत काव्य में कवि ने पाठकों के समस्त विभिन्न दृश्यों को रचने का प्रयास किया है । महाकाल नामक धन में स्थित जिनालय में मेघ के सार्यकाल पहुँचने की सभायना को लेकर कवि कहता है—

सायाहने चेत्तदुपगतवाग्धाम तत्कालपूजा
सगीतान्ते श्रमजलकणैराचितागी सुकण्ठी ।
मन्द यान्तीश्चतुर गणिका शीकरै सन्नयेस्त्वं
पादन्यासे क्वणितरसनास्तत्र लीलावधूते ॥

हे मेघ ! महाकाल धन में यदि सन्ध्या के समय तुम जैन मन्दिर में पहुँचो तो सन्ध्याकालीन पूजा के बाद स्वयं विन्दुओं से भीगी हुई, धीरे २ चलती हुई, अपने चरण निक्षेप के साथ करधनी का शब्द करती हुई कोमल कण्ठ वाली चतुर गणिकाओं को तुम लीला (खेल) में ही बिलेने हुये अपने जलकणों से सिक्त करना ।

इसके बाद कवि कहता है —

तास्तत्राहर्मेणिमघरशन्नूपुरा परवयोपा
श्रोद्गाम्यन्ती सुललितपदन्यासमुद्भ्रूलिलासा ।
पश्योत्पश्या नयजलकणद्विप्रसिक्ता विलोला
रत्नच्छायावचितवलिभिश्चामरे क्लान्तहस्ता ॥

हे मेघ ! यदि जैन मन्दिर में दिन में तुम पहुँचोगे, तो तुम्हें वहा गणियों से युक्त तथा यजते हुए नूपुरोंवाली, सुललित पदन्यास के साथ गती हुई, भ्रूलिलाम से युक्त, रत्न जड़े हुए दण्ड वाले चामरों से धके हुए हाथों वाली, वर्षा के नवीन विन्दुओं से सिक्त तथा चञ्चल और ऊपर को देखती हुई गणिकाएँ देखने को मिलेंगी ।

अन्त में गणिकाओं को लेकर कवि कहता है —

भूयश्च त्वस्तनितचकिता किंस्विदित्यात्तशका
किंचित्तिर्यग्नलितमदनास्तत्र परयागनास्ता ।
वदोत्कम्पस्तननटलुटलोलद्वारा सलीला
नामोद्यन्ते रयि मधुकरधेणुदीर्घान् कटाक्षान् ॥

हे मेघ । जैन मन्दिर में तुम्हारे गर्जन से चकित, 'यह क्या है' इस तरह शका करती हुई, मुख को कुछ टेढ़ा किए हुई तथा स्तननट पर चंचल द्वार को धारण किए हुई परयागनाएँ तुम्हारी और बड़े हाव भाव के साथ देखेंगी ।

मेघदूत में अलकापुरी की विशेषता बतलाते हुए एक कल्पवृक्ष से ही स्त्रियों के विविध शृंगार की सामग्री के मिल जाने का वर्णन किया गया है—

वासश्चित्र मधु नयनयोर्भिभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेद सह किसलयैर्भूषणाना विकल्पान् ।
लाक्षागगं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्याम्
एक सूते सकलममलामण्डन कल्पवृक्ष ॥२॥१३॥

इसी विचार को और भी अधिक पल्लवित करते हुए कवि ने किस सुन्दर ढंग से समस्यापूर्ति की है —

यस्मिन् कल्पद्रुमपरिकर सर्वकालोपभोग्या
निष्ठान्भोगान्सुठतिनि जने शंकलान्पम्फलीति ।
वासश्चित्र मधु नयनयोर्भिभ्रमादेशदक्षम्
पुष्पोद्भेद सह किसलयैर्भूषणाना विकल्पम् ॥३॥६॥

रच्याद्वार रसमभिमतस्त्रयिकल्प विपची
माहायांशि स्वरुचिरचितान्यशुकान्यगरागम्
लाक्षागगं चरणकमलन्यास-योग्यं च यस्मिन्
एक सूते सकलममलामण्डन कल्पवृक्ष १ ॥३॥७॥

प्रस्तुत काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति विभिन्न ढंग से की गई है । मेघदूत को केवल एक पक्ति कहीं छन्द के आदि या अंत में पाई जाती है, तो कहीं दो पक्तियाँ एक साथ छन्द के अंत में देखने को मिलती हैं । यही नहीं, कहीं २ मेघदूत की दो पक्तियों के बीच में बीच की दूसरी और तीसरी पक्तियाँ कवि की स्वरचित हैं । कहीं २ छन्द में दूसरी और चौथी पक्ति कवि की स्वलिखित है तथा प्रथम और पृथीय मेघदूत से ली गई हैं ।

मेघदूत में यज्ञ अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए मेघ से कहता है—

(आलोके ते निपतति)

उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा
मदुगोत्राक विरचितपद् गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलै सारयित्वा कथञ्चित्
भूयोभूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥२॥२५॥

प्रस्तुत काव्य में इस श्लोक की एकान्तरित तथा द्वयन्तरित रूप से समस्या पूर्ति का समतकार देखिये । कमठ मेघ (मरभूति) को उसकी पत्नी वसुन्धरा का हाल बताते हुए कहता है—

उत्सगे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणा
गाढोत्कण्ठ करणविस्त रिप्रलापायामानम् ।
मदुगोत्राक विरचितपद् गेयमुद्गातुकामा
त्वामुद्दिश्य प्रचलदलक मूर्च्छना भावयन्ती ॥३॥३८॥

तन्त्रीमार्द्रा नयनसलिलै सारयित्वा कथञ्चित्
स्वागुत्थयै कुसुम मृदुभिर्नलकीमास्पृशन्ती ।
ध्याय ध्याय त्वदुपगमन शन्यचिन्तानुक्कण्ठी
भूयोभूय स्वयमपि कृता मूर्च्छना विस्मरन्ती ॥३॥३६॥

मूल श्लोक के भाव को सुरक्षित रखते हुये कवि ने जिस सुन्दरता से यहा समस्यापूर्तिकी है ।

कालिदास का यज्ञ अपनी प्रेयसी से चित्र में ही नहीं मिल पाता है, लेकिन इस काव्य में विरहिणी स्त्री की दीनता का वर्णन करते हुये कवि कहता है कि यह स्वप्न में भी अपने प्रेमी से नहीं मिल पाती है —

तीव्रास्थे तपति मदने पुण्वाणैर्मदंगम्
तत्पेऽनल्प दहति च मुहु पुण्णभेदै प्रकल्पते ।
तीव्रापाया त्वदुपगमनं स्वप्नमात्रेऽपिनाऽयम्
कूर स्तस्मिन्नपि न सद्दते संगमं नो वृत्तान्त ॥४॥३५॥

समस्या पूर्ति के साथ साथ भाव सी-दर्प भी इस पद्य में दर्शनीय है ।

समस्यापूर्ति के यन्धन में आकर कवि को कहीं कहीं मूलपंक्ति के भाव को रिपर्यस्त भी करना पडा है और प्रसगातर में कहीं कहीं यात को प्रसगातर में कहना पडा है—

यत्पुनर्मोढ्याद्बहु विलसित न्यायमुत्लक्ष्य वाचा
तन्मे मिथ्या भवतु च मुने दुष्कृत निन्दितस्यम
भक्त्या पाद्री जिन विनमत पाप्यं मे तत्प्रसादात्
मा भूदेवं क्षणमपि सखे विद्यता विप्रयोग ॥४॥६५॥

काव्य के अन्त में कमठ भगवान् पार्श्वनाथ से अपने अपराधों के लिए क्षमा
याचना करते हुए प्रार्थना करता है—हे भगवान् ! आपके चरणों की कृपा से मेरा
सम्यग्ज्ञान (विद्युत्=विशेष दीप्ति=सम्यग्ज्ञान) से विश्लेष न हो। यहाँ पर कवि ने
विद्युत् शब्द का विजली अर्थ न लेकर सम्यग्ज्ञान अर्थ लिया है।

मधुत में यक्ष अपनी प्रियसी क वाम ऊर को लेकर कहता है —

वामश्चाम्या कररुहपदै मुच्यमानो मदीयै
मुकाजाल चिरपरिचित त्याजितो दैवगत्या ।
सम्भोगान्ते मम समुचितो हस्तसंग्रहनानाम्
यास्यत्यृदं सरसकदलीन्तम्भगौरश्चलत्तम् ॥३॥३५॥

इस श्लोक की प्रत्येक पंक्ति को समस्या मानकर कवि ने विभिन्न प्रसंग प्रस्तुत
किए हैं। कमठ मरुभूति को अलकापुरी के मार्ग उर्णन तथा उमुन्गरा की अरम्या
बताने के बाद कहता है —

सदृष्ट च प्रणयमधुर जातया मे द्वितीयै
प्राणै प्राणा नवनगर सन्निति त्या प्रतीदम् ।
तत्कर्तुं त्वं त्वरय लघुन किंकिमेव न दुर्या
वामश्चास्या कररुहपदै मुच्यमानो मदीयै ॥३॥३६॥

हे मेघ ! (मरुभूते) प्राणों के समान प्रिय मेरी पत्नी ने भी इस तरह के प्रणय
मधुर ध्वनन कहे हैं। इस कार्य के करने के लिए तुम शीघ्रता करो। मेरे नारतुनों से
यत्नकर (न मर कर) तथा अपनी प्रियसी के लिए मनोहर (वाम) होकर अर्थात् उस
पाकर तुम क्या क्या नहीं कहीं करोगे अर्थात् सब कुछ करोगे।

दूसरी पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि कहता है —

भो भो भिक्षो मयि सदृशपि क्व प्रयाम्यन्वयस्य
त्यामुद्धतिप्रक्षिपतनकै सारयिष्य तद्ग्रम् ।
न प्राणान्स्थान्वटपितुमल तास्यो निर्णयो वा
मुकाजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या ॥३॥३७॥

कमठ के बहुत कुछ कहने पर भी मरुभूति शान्त ही रहता है, तब कमठ उमंग
कहता है—हे भिक्षो ! मेरे क्रुद्ध होने पर तुम क्या जाओग ? मैं तुम्हें अपनी तलवार

की नोक का अवश्य शिकार बनाऊंगा। चिरकाल से अभ्यन्त मौक्तिक आभूषणों को दैववश छोड़ देने का तुम्हारा निर्णय भी तुम्हारे प्राणों को बनाए नहीं रख सकता।

इसके बाद तृतीयपक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने लिखा है —

किं ते वैरि द्विरदनघटा कुम्भ सभेदनेषु
प्राप्तस्थेमा समरविजयी वीरलक्ष्म्या करोऽयम् ।
नास्मत्प्रग श्रुतिपथमगाद्रक्तपानोत्सवानाम्
सभोगान्ते मम समुचितो हस्तसगाहनानाम् ॥४॥३॥

कमठ मरुभूति से कहता है—हे भिक्षो! वैरियों के हाथियों के कुम्भस्थल को विदीर्ण करने में अभ्यस्त, समर विजयी, युद्ध में कार्य करने के बाद (सम्भोगान्ते) मेरे हाथों द्वारा सगाहन करने योग्य तथा वीर लक्ष्मी के बाहुम्वरूप इस मेरे खग का क्या तुमने नाम नहीं सुना है ?

अन्त में अपनी तलवार के आघात से मरुभूति की जंघा के काप जाने का प्रसंग लेकर कमठ कहता है —

अस्युद्गीणे मयि सुरभटास्तेऽपि विभ्यत्यसभ्य
कस्त्वं स्थातु भण मम पुर किं न जिह्वेपि भिक्षो ।
मायत्कोऽयं मदसिञ्जिताखण्डनात्तपुरस्ता
द्यास्थायूह सरसकदलीस्तभगौरश्चलत्वम् ॥४॥४॥

कमठ कहता है—मेरे तलवार हाथ में होने पर स्वर्ग तक के योद्धा डरते हैं। असभ्य ! तू तो क्या ही है ? हे भिक्षो ! तुझे लज्जा नहीं आती। मेरी तलवार के विस्तृत आघात से सरस कदलीस्तभ के समान गौरवर्ण धाली तेरी यह जंघा काप उठेगी।

इन श्लोकों में पाठकों ने देखा होगा कि मूल पक्ति के भाग को किस तरह प्रसंगान्तर में कवि ने बँटाने की चेष्टा की है। इसी तरह के अन्य स्थल भी विद्वत् पाठकों के सामने काव्य में आ सकते हैं। काव्य की जटिलता ऐसे ही स्थलों से बढ़ गई है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि कथानक की दृष्टि से काव्य शिथिल है और अनावश्यक वर्णनों की काव्य में भरमार है। इसी तरह रस के विचार से भी यही कहा जा सकता है कि काव्य में इसका पूर्ण परिपाक नहीं हुआ है। कवि का मूल लक्ष्य केवल मेघदूत की समस्यापूर्ति ही रहा है और इसमें कवि को पूर्ण सफलता भी मिली है, लेकिन स्थान २ पर काव्य में दुरुहता और नीरसता आ गई है। पाश्चर्याय और कमठ की विभिन्न जगों की कथाओं को एक साथ लेकर लिखे जाने से

कथानक में वह सरलता और स्वाभाविकता नहीं, जैसी कि किसी खण्डकाव्य में होनी चाहिए। मार्ग-वर्णन में काव्य मेघदूत का पूर्ण अनुकरण करता है। इसके बाद मरुभूति की पत्नी वसुन्धरा की विरहावस्था भी मेघदूत जैसी ही वर्णित की गई है। फिर जिस स्थान से मेघदूत में सन्देश कथन प्रारम्भ होता है वहां से मेघदूत और इस काव्य में कोई समानता नहीं दिखलाई पड़ती है। पार्श्वभ्युदय काव्य में सन्देश कथन जैसी कोई चीज ही नहीं है। कमठ मरुभूति की धीरता, सौजन्य और सहिष्णुता से प्रभावित हो वैरभाव को छोड़कर उसकी शरण में चला जाता है और अपने अपराधों के लिए पश्चात्तापपूर्वक क्षमायाचना करता है तथा सम्प्राप्त की भिक्षा मागता है। उसके नेत्रों से अत्रिरत्न अश्रुधारा बहने लगती है। अन्त में और भी तापस भक्ति भावना के साथ पार्श्वनाथ की शरण में आते हुए बतलाए गए हैं। इस तरह काव्य के अंत में पार्श्वनाथजी की महिमा बतलाकर कवि ने काव्य को भक्तिपरक अवश्य बना दिया है।

यों तो काव्य में जैन धर्म का कहीं पर भी कोई विशेष सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया गया है लेकिन कहीं कहीं कवि ने जिनालयों^१ तथा अर्हत् का अवश्य उल्लेख किया है। कौलास पर्वत पर भी जैन मन्दिर के होने का कवि उल्लेख करता है। मेघदूत में उज्जयिनी के पास महाकाल का मन्दिर बतलाया गया है, लेकिन इस काव्य में महाकाल नामक किसी अरुण्य को लेकर वहां पर जैन मुनियों तथा जैन मन्दिरों की स्थिति बतलाई गई है और मेघ को यथाममय जैन मन्दिरों में पूजा करने का आदेश दिया गया है। काव्य के अन्त में तो श्री पार्श्वनाथजी की महिमा वर्णित की ही गई है। इसके अतिरिक्त काव्य में जैन धर्म का और अधिक कुछ भी प्रमाण नहीं है।

काव्य में कहीं कहीं पर बड़ी सुन्दर सूक्तिया भी पाई जाती हैं -

(I) दानादन्यन्न खलु सुदृतं देहिना श्लाघ्यमस्ति ॥१॥३०॥

(II) पापापाये प्रथममुदित कारण भक्तिरेष ॥२॥६५॥

(III) रम्यस्थानं त्यजति न मनो दुर्विधान प्रतीदि ॥१॥७५॥

समस्त काव्य के अनुशीलन करने के बाद यह निष्पत्ति रूप से कहा जा सकता है कि समस्या पूर्ति की दृष्टि से यह काव्य अपने ढंग का अद्वितीय है। कहीं कहीं कालिदास के मूलभावों को कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से परिलभित किया है और

^१ देखिए— २ रा सर्ग २ रा श्लोक, = या श्लोक, ३० या श्लोक और ७६ वा श्लोक।

कहीं ० कालिदास के भाव को प्रसंगान्तर में कवि ने बड़ी सूक्ष्मता से सन्निविष्ट करने की चेष्टा की है। मेघदूत को समझा मानकर लिखे गए काव्यों में यह काव्य सर्व प्रथम है। जैन कवियों ने आगे चलकर इसी काव्य से इस क्षेत्र में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्राप्त की है। काव्य में विभिन्न नदी, शैल, नगरी और ऋतुओं के सरस वर्णन से लेखक की भावुकता और कल्पनाशक्ति का परिचय मिलता है। जैन धर्म के आचार्य होते हुए भी लेखक का ऐसी सरस रचना लिख सकना वस्तुतः उनकी विद्वत्ता और सहृदयता सिद्ध करता है। साथ में भगवान् पार्श्वनाथ के चरित्र को गुम्फित कर देने से काव्य की धार्मिक दृष्टि से भी उपादेयता बढ़ गई है। संस्कृत साहित्य में अद्वितीय काव्य रत्न होने के साथ साथ जैन साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

विक्रम कवि का नेमिदूत (वि० चतुर्दश शतक)

नेमिदूत काव्य किसी विक्रम कवि का लिखा हुआ है। यह कवि कदा का रहने वाला था, इसका जन्म कब हुआ और इस काव्य की रचना इसने कब और कदा की—इन प्रश्नों का उत्तर अभी तक नहीं मिल सका है। इस काव्य के निम्न लिखित श्लोक —

सद्वृत्तार्थप्रवरकविना कालिदासेन काव्या
दन्त्य पाद सुपदरचितान्मेघदूताद् गृहीत्वा ।
श्रीमन्नेमेश्चरितविशद सागण्ड्यागजन्मा
चक्रे काव्यं युधजनमन प्रीतये विनेमाख्य ॥१२६॥

में कवि ने अपने लिए सागण्ड्यागजन्मा बताया है। मूल की कितनी ही प्रतियों में 'सागण' के स्थान पर 'भाभण' मिलता है, किन्तु काव्य की पुरातन प्रतियों एवं टीका के आधार पर सागण ही ठीक प्रतीत होता है।

१ पार्श्वार्थभ्युदय काव्यम्—श्री के० वी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराज पण्डिताचार्य, धयशंखलगोलनिरासी की टीका के साथ बम्बई से प्रकाशित।

रुच कवि के सम्बन्ध में विद्वत्समाज में निम्नलिखित मत पाए जाते हैं —

- १ जैन साहित्यमहारथी श्री मोहनलाल दमाईजी के 'जैन साहित्य को सक्षिप्त इतिहास' में एव श्री छोटालालजी द्वारा लिखित 'जैन मेघदूत की प्रस्तावना' में इस कवि को सागण सुत मान कर गुर्जर महाकवि ऋषभ दाम का भ्राता माना गया है ।
- २ प० नाथूराम प्रेमी ने अपने "जैन साहित्य का इतिहास" में स्वभात क शिला लेख को देखकर तथा यश कीर्ति सहस्र कीर्ति की कीर्ति शापा और हुम्वरु क्षाति को देखकर इस ग्रन्थकर्ता को १५ वीं शताब्दी का दिगम्बर माना है ।
- ३ मुनि त्रिचात्रिजयजी ने नेमिदूत पद्यानुवाद की प्रस्तावना में इस कवि को १० वीं शताब्दी के कर्णवर्ती के मन्त्री सागण का पुत्र बतलाया है ।

इन मतों के अनिश्चित श्री मुनि त्रिनयसागरजी ने स्व संपादित नेमिदूत की भूमिका में अपना मत सलेप में इस तरह दिया है । उन्हें मूल काव्य की ३ प्रतिया प्राप्त हुई हैं । इनमें से एक तो वि० सं० १५१६ की लिखित है और दूसरी सोलहवीं स० की । एक प्रति अजमेर के डड्डाजी के संग्रह में देखने को प्राप्त हुई है । यह वि० सं० १८७२ की लिखी हुई है । जय मूल काव्य की ३ प्रतिया १५ और १६ वीं शताब्दी की लिखित प्राप्त हुई हैं, तब काव्यकर्ता १७ वीं शताब्दी में कवि ऋषभ दाम का भाई कैसे हो सकता है ।

दूसरे, धरतर गच्छालमार युग प्रधानाचार्य गुर्गांगलि (जो कि १४ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध की रचना है) में श्री जिनपति सूरिजी के शिष्य श्री जितेश्वर-सूरिजी ने स० १०८५ से स० १३३० तक लगभग १२-१५ शिष्य कीर्ति नदी के दीक्षित किए थे । उनमें यश कीर्ति का उल्लेख मिलता है । इसके अनिश्चित इसी गुर्गांगलि में एक यात्र और है कि वि० सं० १००६ में श्री जिनेश्वर सूरिजी की अध्यक्षता में यात्रार्थ जो मध्य निशला था वह क्रमशः यात्रा करता हुआ समाप्त पहुंचा था । वहां मंदिर में पूजा माला की बोलिया हुई थीं, उनमें सागणसुत ने चमरधारक पद धारण किया था ।

तीसरे, जिस हुम्वरु क्षाति को देखकर कवि को दिगम्बर बतलाया गया है, यह हुम्वरु क्षाति श्वेताम्बरों में भी होती है और आज भी मालवप्रदेश में प्रतापगढ़ में लगभग ७५ घर हुम्वरु क्षाति के हैं, वे सब श्वेताम्बर ही हैं । पहिल भी १० वीं शताब्दी के युगप्रधान शदापद धारक श्री जिनदत्त सूरिजी मदारराज भी श्वेताम्बर हुम्वरु क्षाति के ही थे ।

चौथे, जो प्रथम प्रति स० १४७२ की उपलब्ध हुई है, केवल उसी में मन्त्री

विक्रम ऐसा शब्द मिलता है। इससे भी यही प्रतीत होता है कि मन्त्रिदलीय होने के कारण मन्त्रि शब्द कवि का विशेषण रहा होगा।

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकलता है कि विक्रम कवि न तो ऋषभदास का भाई था, न हुम्नड ज्ञातीय दिगम्बर ही था और न उनके गुरु ही दिगम्बर थे, किन्तु यह खम्भात का रहने वाला तथा १४ वीं शताब्दी के ज्वेताम्बर एव दरतर गच्छा धीश थी जिनेश्वर सूरि का श्रावक भक्त था।

इस कवि का जेजल यही एक ग्रन्थ उपलब्ध है।

नेमिदत्त की कथा

इस काव्य की कथाऋस्तु जैनियों के २२ वे तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी के जीवन से सज्ज है। काव्य की कथाऋस्तु को सम्पक् हृदयगम कराने के लिये कुछ पूर्ण कथा भी दी जा रही है। द्वारिका के यदुवशी राजा समुद्रविजय श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी के भाई थे। श्री नेमिनाथजी इन्हीं समुद्रविजय के ज्येष्ठ पुत्र थे। यह वचन से ही प्रिय पराङ्मुख थे। अपने माता पिता तथा श्रीकृष्ण क आग्रह से यह मथुरा के राजा उग्रसेन की पुत्री राजीमती से विवाह करने को तैयार हो जाते हैं। द्वारिका से वरात मथुरा आती है। ज्योंही वरात महाराज उग्रसेन के महल क पास आती है, उसी समय भगवान् नेमिनाथ को पशुपत्तियों की करुणापूर्ण चीत्कार सुनाई देती है। पशु पक्षी मूक भावा में भगवान् से अपनी रक्षा के लिये प्रार्थना करते हैं। सारथि के मुख से यह सुनकर कि उनके विवाह के उपलक्ष्य में दी जाने वाली रसोई में बनने वाले मांस के लिये इन पशु पक्षियों को बाटे और पिंजरे में बन्द किया गया है और मरने क भय से यह सज्ज चिरला रहे हैं, करुणानिधान भगवान् नेमिनाथ उन पशु पक्षियों को बन्धन मुक्त करने का सारथि को आदेश दे देते हैं। भगवान् की आज्ञा मानकर सारथि बाटे और पिंजरे में धिरे हुये समस्त पशु पक्षियों को मुक्त कर देता है। सारथि न इस कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् नेमिनाथ मुकुट के सिरा अपने समस्त आभूषण उसे पुरस्कार में दे देते हैं और रथ को वापिस लौटाने की आज्ञा दत हैं। श्री नेमिनाथजी के रथ को वापिस लौटता दस अपने सार सवधी उनसे वापिस न लौटने तथा राजा उग्रसेन की कन्या से विवाह करने का अनुरोध करत हैं। श्री नेमिनाथजी उत्तर देते हैं आप मुझे जिम सम्बन्ध में जोड़ना चाहत हैं, मैं उससे अधिक परिग्र और विशाल सम्बन्ध जोड़ना चाहता हूँ। मैं किसी एक को ही अपना नहीं बनाना चाहता, न स्वय ही किसी एक का रहना चाहता हूँ, किन्तु ससार क समस्त प्राणियों से प्रेम सम्बन्ध जोड़कर मैं सभी का बनना चाहता हूँ। तदनन्तर स्थावृद्ध हो भगवान् आगे बढ़ जाते हैं और द्वारिका क लिए प्रस्थान कर दत हैं। द्वारिका पहुंच कर भगवान् नेमिनाथ समार से विगत हो नगरी छोड़कर रैवतक (निरनार) पर्वत पर योगभ्यास और तपश्चर्या में लग जात हैं।

जय राजीमती को यह वृत्तान्त मालूम होता है, वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। वसियों द्वारा शीतोपचार किए जाने पर किसी तरह उसकी मूर्छा दूर होती है। श्री नेमिनाथजी द्वारा परित्याग कर दिए जाने पर भी उसका मन उनकी ओर ही लगा रहता है। वह उन्हें अपने मन में पति रूप से ही मानती है और एक वृद्ध ब्राह्मण को श्री नेमिनाथजी के पास उनकी कुशलवार्ता जानने के लिए भेजती है। तदनन्तर पिता की आज्ञा से वह स्वयं रैतक पर्वत पर एक सखी के साथ पहुँचती है। इस प्रकार गिरह विधुरा राजीमती के अपने प्रिय के साथ अनुनय प्रिय से काव्य का प्रारम्भ होता है।

अपनी दीन दशा का वर्णन करते हुए राजीमती श्री नेमिनाथजी से पर्वत शृंग छोड़कर द्वारिका चलने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में विविध प्रकार से द्वारिका नगरी के सौंदर्य और वैभव का वर्णन किया गया है। राजीमती विविध उपायों से श्री नेमिनाथजी को सासारिक सुखों का उपभोग करने के लिए प्रेरित करती है। रैतक पर्वत से द्वारिका तक के मार्ग तथा मार्ग में पढ़ने वाले विविध प्राकृतिक दृश्यों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। रैतक पर्वत से नीचे उतरने पर स्वर्णरेखा नदी के दूबरे तट पर स्थित वामनपुरी, तदनन्तर समुद्र के किनारे किनारे चलते हुए भद्रा नामक नदी और फिर उसको पार कर पौर नामक एक नगर का उल्लेख किया गया है। इसके बाद गन्धमादन तथा वेणुल नाम के एक पर्वत के घाट द्वारिका पहुँचने का श्रीनेमिनाथजी से अनुरोध किया गया है। इस प्रसंग में द्वारिका नगरी का विविध भाग भगिमाओं के साथ बड़ा ही सरस चित्र अंकित किया गया है। राजीमती के विविध प्रकार से द्वारिका लीटने के आग्रह करने पर भी जय श्री नेमिनाथजी का हृदय दृवीभूत नहीं होता है, तब उसकी सखी राजीमती की गिरहावस्था का बड़ा ही कर्मण वर्णन करती है और श्री नेमिनाथजी से द्वारिका लौट चलने की प्रार्थना करती है।

अन्त में श्री नेमिनाथजी राजीमती पर दयाभाव दिखलाते हैं और धर्मापदेश द्वारा मोक्षमुग्ध की प्राप्ति के लिए उसको योग की शिक्षा देकर अपनी सहचरी बना लेते हैं। सासारिक सुखों को त्यागकर राजीमती भी मोक्षपुरी के सतत आनन्द का श्री नेमिनाथजी के साथ उपभोग करने लगती है।

काव्य समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। सम्पूर्ण काव्य में १०६ श्लोक हैं। पूर्ण भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं है। काव्य के नाम से ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें श्री नेमिनाथजी को दूत बनाया गया होगा पर ऐसी बात नहीं है। यस्तुत समग्र काव्य राजीमती के विरह तथा विलाप के वर्णन से भरा हुआ है। अतः यदि इस

काव्य का नाम राजीमती विप्रलम्भ अथवा राजीमती विलाप रक्खा गया होता तो कुछ भी अनुचित न होता। मेघदूत के पद्यों के अंतिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिगे जाने के कारण इस काव्य को भी दूत काव्य जैसा मानकर श्री श्री नेमिनाथजी के चरित्र की प्रधानता होने के कारण इस काव्य का नाम नेमिदूत रखा दिया गया है।

मेघदूत में अपनी प्रियसी के त्रियोग में नायक की विरहावस्था वर्णित की गई है। इसका विपरीत नेमिदूत में नायिका की विरहावस्था का चित्रण पाया जाता है और ससार से विरक्त नायक को अपनी ओर अनुरक्त करने के लिये नायिका उससे अनुनयानय करती है। काव्य में किसी को दूत बना कर नहीं भेजा गया है। स्वयं राजीमती अपने प्रिय के पास जाकर अनुनयानय करती है। अन्त में उसकी सर्वा ही थी नेमिनाथजी से राजीमती की मानसिक अवस्थाओं और विरहवेदना का निवेदन करती है। इस प्रकार कवि ने राजीमती के शील और लज्जा की बड़े सुन्दर ढंग से रक्षा की है और राजीमती को एक प्रति परायणा साधरी भारतीय स्त्री के रूप में अंकित किया है। काव्य में विप्रलम्भ शृंगार और शान्तरस का अपूर्ण सगम दिखलाया गया है काव्य का प्रारम्भ राजीमती के विरह वर्णन से ही होता है। श्री नेमिनाथजी के विरह में व्यथित राजीमती उनसे द्वारिका लौटने की प्रार्थना करते हुये कहती है -

सा त दूना मनसिजशरैयादवेश रभावे
रक्षत्यात्त शरणगमसी क्षत्रियम्यति धर्म ।
तन्मा स्वामिन्नेव भवद्धीनासुमभ्यर्षये त्वा
याञ्चामोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥६॥

तन्न प्राणानव तत्र मतो जीवरक्षेत्र धर्मा
धासार्थं य सुरविरचिता ता पुरीमेहि यस्या ॥७६॥

त्वा यावेऽहं न पथि भयता क्वापि कार्यो विलम्बो
गन्तयात सपद्मि नगरी स्या यत सा त्वद्भ्या ।
मुक्तादाग सज्जनयता त्वद्वियोगार्तिदीना
काश्ययेन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्य ॥३१॥

अपनी प्रार्थना को और भी सजल बनाने के लिये राजीमती ने श्री नेमिनाथजी की माता की दशा का वर्णन कर बड़ी सुन्दर युक्ति प्रदान की है।

प्रार्थना के अन्त में राजीमती श्री नेमिनाथजी से कहती है -

नत्वं पूर्वं पितृमुत्पगुरून् तान्विरुज्याध बन्धून्
सौधं मा च ह्यमपि ततोऽलकुरम्यार्द्रचित्त ।

यन्नि श्रीक हरति न मनस्व्या पिना यादवेन्दो
सूर्यापाये न जनु कमल पुष्पति स्वामभिर्याम् ॥८७॥

इस श्लोक में सौध के साथ अपनी करुण दशा की भी बड़े गूढ़ ढंग से राजीमती ने व्यञ्जना की है।

राजीमती के अनुनय विनय करने पर भी जय श्री नेमिनाथजी उससे विरक्त ही रहते हैं, तब उसकी सखी फिर उसकी विरह-वेदना और करुण-दशा का वर्णन करती है। राजीमती के विरह वर्णन में काव्य में ३३ छन्द (६०-१२१) लिखे गए हैं। क्या भाव और क्या भाषा दोनों ही दृष्टि से यह पद्य बड़े सुन्दर हैं और राजीमती का करुण चित्र पाठकों के सामने उपस्थित करते हैं। सखी राजीमती का वर्णन करते हुए कहती है —

अस्वीकारात्सुमग भयत न्निवृष्टशोभा कियद्भि-
मृद्धीमन्निधिगहशिखिता-वासरैर्देह्यमानाम् ।
एता शुष्यद्दृढाकमला दूरविध्वस्तपाशाम्
जाता मन्ये तुहिनमयिता पद्मिनीं याऽन्य रूपाम् ॥६०॥

आकाङ्क्षसूया मृदुस्वरपरिपुगसौरयानि सख्या
पश्यासुत्या मुपमनुदित ग्लानमस्मेरमथि ।
उद्यत्तापात्सुमुक्षमिन् त कौरविया प्रियोगा
विन्दोर्देन्य एवदनुसरणविलाष्ट कान्तेरिभति ॥६१॥

प्रिय प्रियोग में राजीमती को समय काटना भी कठिन हो गया है। सखी कहती है —

या प्रागन्या क्षणमिव नवैर्गीतवार्ताविनोद्रे,
रासीन् शय्यान्तल प्रिगलितैर्गल्लभांग यिलय्य ।
रात्रि सगरसशतसंमा त्यदृष्टे तंतगात्री
तामैरोष्ये विरहेजनितैरश्रुभिर्पापयन्ती । ६७॥

प्रिय विरह विलास राजीमती ने अब्बड़ी तरह में सीती है और न उम्मे जागता हुआ ही कह सकते हैं —

अन्तमिने मनसिंजशरैर्मलिनाक्षी मुहूर्त्तं
लक्ष्या सदाभियमघ दशाऽपीक्षमाणाऽसिर्दिना ।
शय्योत्संगे नय किञ्चलपत्रस्तरैश्चर्म लेभे
साभ्रेऽहं य स्थलकमलिनी न प्रयुञ्ज न सुता ॥६६॥

राजीमती स्वप्न में भी नेमिनाथ को देखती है, लेकिन दुर्भाग्य कि घातलाप करने की चेष्टा करते ही उसकी निद्रा भंग हो जाती है —

राज्ञी निद्रा कथमपि चिरात् प्राप्य यावद्भवन्तं
लब्ध्वा स्वप्ने प्रणयवचनै किंचिदिच्छामि वक्तुम् ।
तावत्तस्या भवति दुरितै प्राक्कृतै मंत्रिराम
कूरस्तस्मिन्नपि न सहते सगमं नो कृतान्त ॥११३॥

कामदेव के क्रुद्ध होने का राजीमती ने बड़ा ही उपयुक्त कारण दिया है । यह कहती है —

मन्नाथेन ध्रुवमवजितो रूपलक्ष्म्या तपोभि-
स्तद् वैरान्मामिषुभिरथला हन्त्यशक्तो मनोभू ।
दग्ध्या तप्तोऽधिति मम निशि अस्तरे चिन्तयन्त्या
मुक्तास्यूलास्तकिसलयेष्वध्रुलेशा पतन्ति ॥११४॥

सन्देश के अन्त में राजीमती अपनी सखी के द्वारा श्री नेमिनाथ को कहलाती है —

सचिन्त्यैव हृदि मयि दया धारयन् तत्प्रसीद
स्यामिन्निर्वापय धपुरिद स्वागसंगाभूतेन ।
यत्सन्तप्यानिशमतिरग प्राणलावण्यशेष
गाढोष्माभि कृतमशरणं त्वद्वियोगोऽवथाभि ॥११६॥

दुःख येनानवधि बुभुजे त्वद्वियोगादिदानां
सयोगात्तऽनुभवतु सुखं तद्वपुर्मे चिराय ॥११७॥

राजीमती के सन्देश को सुनाने के बाद उसकी सखी अन्त में फिर कहती है —

तस्माद्बाला स्मरशरचयै दुःसहैर्जर्जरागीम्
सम्भाष्यैना नय निजगृहान् सत्वरं याद्वेन्द्र ।
प्रीत्या चास्या मधुर वचनाऽश्वासनाभि वृषार्द्र
प्रात कुन्दप्रसथशिथिलं जीवितं धारयेथा ॥१२१॥

राजीमत्या सह नवग्रनस्येष वर्यासु भूयो
मा भूदेव क्षणमपि ख ते विघृता विप्रयोग ॥१२३॥

इस प्रकार प्रारम्भ से अन्त तक काव्य में विप्रलम्भ श्रु गार ही पाया जाता है । स्थान स्थान पर द्वारिका नगरी, उपवनो और क्रीडाशैली का श्रु गारमय ही वर्णन किया गया है, लेकिन काव्य के अन्त में श्रु गार रस एकदम शान्त रस में बदल

जाता है। श्री नेमिनाथजी राजीमती को स्वीकार तो कर लेते हैं, सासारिक सुख भोग के लिए नहीं, प्रत्युत उसे भी मोक्ष मार्ग का अधिक बनाने के लिए—

तत्सख्योक्तं वचसि सदयस्ता सतीमेक चिन्ता
सरोध्येश स भवविरतो रम्यधर्मोपदेशै
चक्रं योगान्निजसहचरिं मोक्षसौख्यासिद्धेते
केवा न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥१२४॥

तामानन्द शिवपुरि परित्पाज्य ससार-भाजा
भोगानिष्ठानभिमतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥१२५॥

इस तरह शृगार रस का शान्त रस में पर्यवसान कर कवि ने मानव व्यवहार में एक उदात्त आदर्श की प्रतिष्ठा की है।

शान्त रस में पर्यवसान होने पर भी काव्य में शृगाररसपूर्ण अनेक भावचित्र पाए जाते हैं। रैवतक पर्वत से द्वारिका के निकट क्रीडाशील पर पहुचने के समय श्री नेमिनाथजी को देखकर यहा की सुन्दरियों की चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

तस्मिन्नुद्यन्मनसिजरसा प्राशुशाल्वाननाम
ध्याजादायिष्ठत कुचयलीनाभिकाचीकलापा ।
संधास्यन्ते त्वयि मृगदृशस्ता विचित्रान् विलासान्
स्त्रीणामार्घं प्रणयवचन विभ्रमो द्वि प्रियेषु ॥३०॥

द्वारिका नगरी का घेसा ही सरस और शृगार रसयुक्त वर्णन किया गया है, जैसा कि मेघदूत में अलका नगरी का पाया जाता है। द्वारिका नगरी की रमणिया भी अलका की रमणियों की ही तरह बड़ी मुग्ध हैं। कवि कहता है—

राश्री यस्यामुपसति भृश गात्रसंकोचभाजा
रागेणान्धै शयनभवनेपूल्लसर्दीपयत्सु ।
प्रंश्ला कान्तैरभिषुचयुगं हृषगन्धिवधूना
हांमूदाना भयति विफल प्रेरितश्चूर्णमुष्टि ॥३४॥

द्वारिका नगरी में भी अलका नगरी की तरह राश्री में रमणिया स्वच्छन्द अभिसार करती रहती हैं.—

पणांकाशमायनिषु शिशिरे बु बुमाद्रं पदाके
शीतोत्कंपाद्गतिपिगलितै धालकै केऋपाशान् ।
अष्टै पीनस्वनपरिसराद्रोधमाल्यैरच यस्या
नैपो मार्गं सवितुददये सूच्यते कामिर्नानाम् ॥३०॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि ने अपनी रचना में कहीं पर भी कृत्रिमता नहीं आने दी है। हर चतुर्थ पक्ति ऐसी ही प्रतीत होती है मानों पद्य का स्वाभाविक अंग हो। काव्य की भाषा प्रसाद-गुणयुक्त है और काव्य में सर्वत्र प्रसाद दीख पड़ता है। लम्बे २ क्लिष्ट समास बहुत कम काव्य में आए हैं। काव्य की शैली का निम्नांकित कुछ छन्दों से पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।-

श्री नेमिनाथजी को द्वारिका लौट चलने का परामर्श देती हुई राजीमती कहती है -

रम्या हर्म्ये क्व तव नगरी दुर्गशृंग क्व चाद्रि
 क्वैतत्काम्यं तव मृदु वपु क्व वन दुःखवर्मम् ।
 चित्तग्राह्य हितमिति वचो मन्यसे वेन्ममाल
 किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥१६॥

एक अन्य प्रसंग में द्वारिका नगरी का बड़ा ही आदर्श वर्णन किया गया है -

व्याधिदेहान्पृशति न भयाद् रक्षितु शागपाणे
 मृत्यो वीक्षां शयणपथगा कुत्रचिद् धामभाजाम् ।
 कामक्रीडारससुखजुषा यद्वृत्तामधिकामान्
 रिक्तेशाना न च खलु वयो, यौवनादन्यदस्ति ॥३०॥

तु गे शृंग परिहर निर्देहि यात्र पुरी संग
 रत्नश्रेणीरचितमयनद्योतिताशतरालाम् ।
 शोभासाध्य कलयति प्रनाग नालका नाथ यस्या
 वाह्योद्यान स्थित हर-शिरश्चन्द्रिका धीतद्वर्षा ॥३॥

समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी कवि की कल्पना कहीं २ मेघदूत से टकरा लेती है। मेघदूत में यद्यपि अपनी प्रेयसी के लिये कहता है -

श्यामास्यग वकित-हरिणी प्रेक्षणे दृष्टि पार्श्व
 वक्त्र-च्छाया शशिनि शिखिना ध्रुवं मारेषु केशान् ॥१४२॥ इत्यादि

इसी प्रकार नेमिदूत में भी श्री नेमिनाथजी के सम्यन्ध में कहा गया है -

दुर्लभ्यत्व शिररिणि पयोधो च गाम्भीर्यमुज्या
 स्थैर्यं तेज शिगिनि मद्ने रूप सौन्दर्यलक्ष्मीम् ।
 बुद्धे शान्ति नृप र कलयामाति मृन्द गुणानां
 हन्तकथ क्वचिदपि न ते भूमि साहस्यमस्ति ॥१११॥

जिस प्रकार मेघदूत का यज्ञ हिमालय से आती हुई वायु के सस्पर्श में प्रेयसी के स्पर्श सुर का अनुभव करता है, उसी प्रकार काम-सतत राजीमती भी श्री नेमि-पञ्जी के पास से आने वाली वायु के सस्पर्श से आनन्द का अनुभव करती है -

अस्मिन्नेते शिखरिणि मया यादवेशान्तिरुक्ते
जीमूताम्भ कण्ठयमुच्च सचरन्त पुरस्तत् ।
संसेज्यन्ते प्रियमविशिषोत्ततया नीपनाता
पुव स्पृष्टं यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥११५॥

मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुये, शिखा नदी से उठते हुये पवन के सम्वन्ध में कालिदास ने लिखा है -

दीर्घाकुर्वन्पटु मदकल कृजित सारसाना
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्री कपाय ॥११६॥ इत्यादि

नेमिदूत में कवि ने अपनी कल्पना को और भी प्रौढता प्रदान की है। यहाँ पर शिखा पवन को प्रियतम के रूप में और भी अधिक साकार रूप दे दिया गया है:-

यस्या सान्द्रानुपयनलतावेशमसु स्वेद विन्दून्
मुष्णन्नगात्सुरतजनितानुज्जयन्तां प्रिगाह्य ।
कुर्वन्तीरे प्रिगलितपटा' सेवते धारनारी,
शिखावत प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारी ॥३३॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कवि ने समस्यापूर्ति के साथ साथ अपनी रचना में मूल भावों की भी रक्षा की है। मेघदूत के पदों की चतुर्थ पक्तिया प्रसंगान्तर में कदाचित् ही प्रयुक्त की गई हैं। क्या भाव और क्या भावा, दोनों ही दृष्टि से काव्य सरस और सुन्दर है। अन्त में शान्त रस की प्रधानता होते हुये भी काव्य को विरह काव्य ही कहा जायगा। मेघदूत की समस्यापूर्ति के रूप में लिखे गये अन्य काव्यों की अपेक्षा यह काव्य कहीं अधिक प्रसाद गुण-युक्त है और श्लोक की सहृदयता का परिचय देता है।

मेरुतुंग का जैन मेघदूत (वि० पचदश शतक)

जैन समाज में मेरुतुंग नाम के दो तीन विद्वान् हुये हैं। उनमें ग्रन्थकार के रूप में केवल दो ही प्रसिद्ध हैं। एक मेरुतुंग तो अन्धप्रमसूरिका शिष्य है और विक्रमीय चतुर्दश शतक उसकी समयमर्यादा है। इस विद्वान् ने महापुरुष-चरित्र अथवा उपदेशशत, प्रबन्ध चिन्तामणि, विचार श्रेणी, धर्मापदेश, घेरावली, पद् दर्शन विचार आदि ग्रन्थ लिखे हैं। जैन साहित्य में यह विद्वान् आचार्य मेरुतुंग के नाम से विख्यात है। द्वितीय मेरुतुंग अञ्चल-गच्छीय महेन्द्र प्रमसूरि का शिष्य है। यह द्वितीय मेरुतुंग ही जैन मेघदूत काव्य का रचयिता है और विक्रमीय पचदश शतक इसका कार्यकाल है।

मारवाड़ में स्थित नाणी ग्राम में पोरवाल वंशीय बहोरा वैरसिंह का एक प्रसिद्ध परिवार था। बहोरा वैरसिंह की पत्नी का नाम नालदेवी था। उसके गर्भ से वि० स० १४०३ में हमारे काव्यकार का जन्म हुआ। बचपन का इसका नाम 'वस्तिक', 'वस्तो' या 'वस्तपाल' था। अञ्चल-गच्छ के प्रसिद्ध आचार्य श्री महेन्द्रप्रमसूरि विहार करते करते इस ग्राम में आये। बहोरा वस्तिक ने उनसे दीक्षा ली। उस समय इस बालक का नाम मेरुतुंग रच दिया गया। यात्रावस्था के साथ ब्रह्मचर्य का भी संयोग होने से इस बालक का विद्याध्ययन सुचारु रूप से चलता रहा। अपने समय की शिक्षा प्रणाली के अनुसार इस शिष्य ने संस्कृत, प्राकृत तथा इनसे सम्बन्ध विविध विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। कालक्रम से उसका चरित्र, ज्ञान और क्रियाओं का ज्य सम्पूर्ण विकास हो चुका, तब उसके गुरु ने उसे वि० स० १४०६ में पाटन में सूरिपद प्रदान किया। इसके बाद वि० स० १४४५ फाल्गुन वदि एकादशी को उसे गच्छ नायक की पदवी दी गई। गच्छ और अपने सघ पर उसका अच्छा प्रभाव था। यह बात उसके बाद की कुछ टिप्पणियों से भी ज्ञात होती है। वि० स० १४७१ में मार्गशीर्ष सुदि पूर्णिमा के दिन पाटन में हम विद्वान् का स्वर्गवास हो गया। अपने ६८ वर्ष के दीर्घ जीवन काल में यह विद्वान् सर्वदा अपने और समाज के विकास में लगा रहा। अञ्चल-गच्छ की पट्टायली तथा उसके रास इत्यादि से लेखक के समय के सम्बन्ध में उपरिष्ठत निर्णय हो सका है।

इस कवि ने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है —

- १ जन मेघदूत
- २ सप्ततिका भाष्य टीका
- ३ लघुशतपदी
- ४ धातुपारायण
- ५ पद्दर्शन समुच्चय
- ६ बाल बोध-व्याकरण

७ इस व्याकरण की वृत्ति तथा
= सूत्रिमप्रकृतपसारोद्धार इत्यादि ।

लेखक ने प्रायः प्रत्येक ग्रन्थ के अन्त में प्रशस्ति तो दी है परन्तु वह रचना काल का विश्वरूप नहीं है । इसलिये प्रत्येक ग्रन्थ का समय निर्णय करना कष्टसाध्य है । केवल सप्ततिका भाष्य टीका की प्रशस्ति में लेखक ने ग्रन्थ रचना का समय दिया है -

स्यस्य प्रशस्यस्मरणार्थमेतैर्धिनैयवात्सल्यरसाभ्युपेतै ।
व्यतानि नन्दाम्युधि वेद सोम स्यत्सरे (१४४६) सप्ततिकाभाष्य टीका ॥

इसके अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों के रचनाकाल का निर्णय करना सम्भव नहीं है । लेखक ने इस मेघदूत के अन्त में ग्रन्थकार के रूप से अपना नाम नहीं दिया है, लेकिन सप्ततिकाभाष्य की वृत्ति की प्रशस्ति में अपने रचित ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए कवि ने मेघदूत का भी नाम लिया है -

काव्य धी मेघदूताख्यं पद्दर्शन समुच्चयं ।
वृत्त र्यालापयोधाख्या धातुपारायणं तथा ॥
एवमादि-महाग्रन्थनिर्माण-परायणम् ।
चतुर्गणा चिर चेतश्चमकाराय येऽन्वहम् ॥

इसके अतिरिक्त इस मेघदूत के टीकाकार धी शील रत्न-सुरि ने अपनी टीका की भूमिका में ग्रन्थकार के रूप से धी मेरुतुंग का स्पष्ट उल्लेख किया है । टीकाकार ने लिखा है -

माधुर्येण मनोहरा परिणतौ सौख्यैकसंपादिका
काम्या कृतपतरो फलायलिरिय स्फारा यदीया मुदम् ।
धाग्दत्त विबुधप्रजाय स नयं धीमेघदूतं महा
काव्यं धी गुरुमेरुतु गगण भृन्चूडामणि निममे ॥

प्रबन्ध चिन्तामणि का रचयिता मेरुतुंग इस मेघदूत का रचयिता से भिन्न है और प्रथम मेरुतुंग उसे ही समझा जाना चाहिये । महापुण्यचरित इत्यादि ग्रन्थों का लेखक भी यही है ।

काव्य की कथा:—

पट्टकुल शिरोमणि प्रभु नेमिनाथजी बाल्यायस्था से ही इन्द्रिय सुखों से उदासीन रहते थे । कुटुम्बी जनों के आप्रद से वे विवाह करने का लिये उद्यत हो जाते हैं । विवाह के अवसर पर सहस्रों पशुओं के बलि किये जान का समाचार पाकर

घरबार, सहोदर और पत्नी आदि को त्याग कर मोक्षप्राप्ति के निमित्त तपस्या करने के लिये घे रैवतक (गिरनार) पर्वत पर चले जाते हैं । अपने पति का सर्वादा के लिये गृह छोड़कर चले जाने का वज्रपात सम समाचार सुन कर प्रभुनेमिनाथजी की पत्नी राजीमती एकदम मूर्च्छित हो जाती है । उसकी सखिया चन्दन और भीगे वस्त्र इत्यादि के शीतोपचार से जब उसे होश में ले आती हैं तब वह नवीन मेघों को देखकर एकदम पुकार उठती है—

एक तावद्विरहिहृदयद्रोहरन्मेयकालो
 द्वैतीयीक प्रकृतिगहनो योवनारम्भ एष ।
 तार्तीयिक हृदयदयित सैष भोगाद्भ्रमराक्षी-
 सुय न्याव्यान्त चलति पथो मानसं भाषि हा किम् ॥४॥

इस प्रकार प्रिय वियोग में व्यथित राजीमती मेघ के द्वारा प्राणनाथ के पास अपना सन्देश पहुँचाने के विचार से सर्वप्रथम उसका स्वागत सत्कार करती है और फिर उसे अपने पति का परिचय देती है । इस प्रसंग में श्री नेमिनाथजी की बाल क्रीडा, उनके पराक्रम पूर्ण चरित, विविध वसन्त क्रीडाएँ, त्रिराह महोत्सव और गृह त्याग का वर्णन किया गया है । तदनन्तर राजीमती अपनी त्रिराहस्था का वर्णन करती है और फिर प्राणनाथ के लिये दिये जाने वाले अपने सन्देश को मेघ के लिये सुनाती है । मेघ द्वारा प्रभु नेमिनाथजी को सुनाये जाने वाले राजीमती के सन्देश को सुनकर उसकी सखिया उससे कहती हैं—हे सखि, तू कहा और प्रभु नेमिनाथ कहा ? मेघ कहा और तेरा यह सन्देश कहा ? तेरा और उनका सम्बन्ध श्रम असम्भव है । तू चाहे जितना प्रयत्न करे, वीतरागी प्रभु श्रम तुझ से अनुपगत नहीं कर सकते । तू उनकी आशा छोड़ दे । इस महामोह का प्रतिबोध रूपी शस्त्र से नाश कर । राजीमती सखियों के धचनों को सुनकर शोक का परित्याग कर देती है और वीतराग प्रभु नेमिनाथजी के पास जाकर व्रत ग्रहण कर लेती है । स्वामी के ध्यान से उसे तन्मयत्व (म्यामिमयत्व) प्राप्त हो जाता है । श्री नेमिनाथजी के ही समान यह भी रागद्वेष से रहित होकर मुक्ति पद प्राप्त करती है ।

यस यहाँ पर ही काव्य समाप्त हो जाता है ।

काव्य समीक्षा

कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य कालिदास के मेघदूत से सर्वथा भिन्न है । जैनपरम्परा में उल्लेख अन्य दूत-काव्यों की तरह इसमें समस्यापूर्ति भी नहीं है । हा, मन्दाप्रान्ता छन्द जरूर अपनाया गया है । काव्य (सम्पूर्ण) चार सर्गों में विभाजित किया गया है और कुल १६६ श्लोक इस काव्य में हैं । काव्य की नायिका राजीमती अपने पति के पास मेघ को दूत बनाकर भेजती है । इसलिये इस काव्य का नाम मेघदूत है और जैनियों के २० वें तीर्थंकर

श्री नेमिनाथ के जीवन चरित पर आधारित होने तथा एक जैन विद्वान् की कृति होने के कारण इसे जैन मेघदूत कहा जाता है । लेकिन भाषा, शैली, विचार तारतम्य और रस की दृष्टि से यह काव्य एक स्वतन्त्र रचना है ।

यत्रि का भाषा पर पर्याप्त अधिकार है, लेकिन जानबूझ कर काव्य को जटिल बनाया गया है । एक पद्य में एक साथ चार चार या पांच पांच अलंकार भी पाये जाते हैं । देखिये, निम्नलिखित श्लोक में कामदेव की युद्ध-सज्जता का वर्णन करते हुये कवि क्या कहता है—

यानस्पत्या कलकिशलयैः कोशिकाभिः प्रयालैः
तस्या राजन्नित्र तनुभृतो रागलक्ष्मीनिवासम् ।
उद्यन्मोह प्रसवरजसा चाम्बुर पूर्यन्तोऽ
भीकामीष्टा मलयमरुत कामवादा प्रसञ्चु ॥२॥२॥

सुन्दर पत्रों और नयीन पल्लवों द्वारा कामदेव की राग रूपी लक्ष्मी के साक्षात् निवास स्थान की तरह वृक्ष शोभायमान थे । मन में राग उत्पन्न करने वाले पुष्पों की रज से आकाश को भरती हुई, कामियों के लिये प्रिय और स्वेच्छा से प्रेरित मलयाचल की हवायें चल रही थीं ।

इस श्लोक के पूर्वार्ध में अपहृति और रूपक अलंकार हैं । जिस तरह किसी और राजा की सेवा में लक्ष्मी-युक्त निवास होते हैं, उसी तरह कामदेव की सेवा में भी राग रूपी लक्ष्मी से युक्त निवास यथाये गये हैं । इस तरह रूपक और साथ में अपहृति है । उत्तरार्ध में उत्प्रेक्षा तो है ही । साथ में 'कामवादा' में वाह शब्द अश्रु का पर्यायवाची है । अश्रुओं के सम्यन्ध में 'उद्यन्मोह प्रसवरजसा' का अर्थ है—अज्ञान को प्रयत्नता से उत्पन्न करने वाली धूल के द्वारा । इसी तरह 'अमीकामीष्टा' में भीश्लेष है । मलयमरुत के सम्यन्ध में अमीक शब्द का अर्थ है कामी पुरुष और अश्रुओं के प्रसंग में अमीक शब्द का अर्थ है—अभय । निर्भय लोग ही घोड़ों पर चढ़ सकते हैं । इस तरह इस पद्य में चार अलंकारों का प्रयोग है । यह तो केवल एक उदाहरण है । प्रायः काव्य का प्रत्येक पद श्लिष्ट है और श्लिष्ट कल्पना से भरा हुआ है । काव्य प्रकाश में—

श्रुतिमात्रेण शब्दाना यनार्थप्रत्ययो भवेन् ।
साधारण समप्राणा स प्रसादो गुण स्मृत ॥

इस रूप से निर्दिष्ट प्रसाद-गुण तो इस काव्य में बहुत ही कम है ।

कालिदास के मेघदूत की तरह इसमें भी मेघ को दूत बनाते समय उसकी बुरल-शान्ति पृथ्वी गई है, उसका स्वागत किया गया है और उसका चरित्र की प्रशंसा की गई है । फिर नेमिनाथ के चरित्र का वर्णन किया गया है । लेकिन मार्ग

वर्णन थलकुल नहीं है। अतः भौगोलिक ज्ञान की कोई बात इस काव्य में देखने में नहीं आती है।

काव्य का प्रारम्भ तो विप्रलम्भ शृंगार से ही है। अपने प्रिय के वियोग में राजीमती अत्यन्त व्याकुल है और मेघ को देखकर सहसा उसका हृदय और भी विचलित हो उठता है। यह कहती है—

हेतो कश्मादहिरिउ तदाऽऽसञ्जिनीमप्यमु ख
न्मा निर्मोक्यचमिव लघु ऋऽप्यसौ तन्न जाने ।
यद्वा दैवे दधति विमुक्तीभायमातोऽप्यमिन्ने
सर्णस्य स्यात्किमु नियमने माहजया न कील ॥७॥

तस्यश्मेध स्फुटति हि हिरुक् प्रेयसो हृन्ममैत
सत्काहणायानमुपतद् प्रेययाम्यद्भमेतम् ॥८॥

अत्रासार पुरु विसृजती धारि कादम्बिनीध-
रीना दुःखादथ दकमुचमुग्धयाचेत्युवाच ॥९॥

नेमिनाथ क चरित्र वर्णन के बाद अन्त में राजीमती फिर अपनी दीनारस्था का वर्णन करती हुई कहती है—

प्रग्निरदग्ध दिनदिननयस्तीव्रघर्षेजशुष्म-
प्रख्यासोख्यै र्जगदिनजगज्जीयनापानपीनम् ।
सम्प्रत्युष्णोच्छ्वसितयशतो वाष्पधूमयमान
स्फोटं स्फोटं हृदयमिदक चूर्णस्वएडीयते म् ॥४॥७॥

कोकी शोकाद्द्वसतिविगमे वासरान्ते चकोरी
शीतोष्णतु प्रशमसमये मुच्यते नीलकण्ठी ।
त्यक्ता पत्या तरुणिममरे कञ्चुकश्चक्रिणेषा
ऽमत्र यागहृद इय शुचामामर्ष त्वामर्ष मी ॥८॥९॥

फिर अन्त में श्री नेमिनाथ के प्रति अपना संदेश बताते हुये यह कहती है—

हे नाथ ! रियाह के अरसर पर अत्यन्त शान्त, (शीतल) नवीन शृंगार (माधुर्य) युक्त तथा उत्कृष्ट प्रेम (घृत) से, पूर्ण मुझ को आपने शैरों की तरह अपने हाथ से हुआ तक नहीं। आज मैं कामानल से अत्यन्त तप्त हूँ। किसी और से मेरा सम्पर्क भी नहीं हुआ। आप मुझे स्वीकार क्यों नहीं कर लेते ?

हे नाथ ! यदि आपको मुनि बनकर मुझे छोड़ना ही था, तो प्रथम मुझे स्वीकार

ही क्यों किया। आप पशु पक्षियों पर तो दया करते हो, लेकिन अपने इस भक्त को अपनी वाणी तक से सतुष्ट नहीं करते ?

हे नाथ ! अपने सप्रथियों के आप्रद से प्रथम तो आपने विवाह म्यीकार किया। फिर अपने श्यसुर के द्वार तक से लौट गये। इस तरह तो चार वर्ष के बच्चे तक को घोसा नहीं दिया जाता है।

हे नाथ ! यदि बाल-कीड़ाये तथा अन्य पराक्रम लीलाये आपने केवल अपने गुरुजनों के मन को प्रसन्न करने के लिये ही कीं, तो मेरी-प्रसन्नता के लिये आप विवाह क्यों नहीं कर लेते। फिर वृद्धावस्था के निकट आने पर तपस्या कर लेना।

हे नाथ ! यह कामदेव अपने विषम वाणों से मुझे बहुत सता रहा है। अपने तिरस्कार की ज्वाला मुझे व्याकुल कर रही है। अपनी इस अचेतनावस्था में यदि मैं किसी खार्द में कूद पड़ू तो क्या होगा ? हे नाथ ! मुझ में किसी दोष का आरोप करके यदि मुझे छोड़ा होता तो उचित भी था। इस तरह तो आप पर एक निर्दोष स्त्री के परित्याग का कलक लगेगा। बिना किसी बहाने क यम-राज भी प्राणियों को नहीं मारता है।

हे नाथ ! तुम्हारे वियोग में मुझे शीतल नदी अगारपरिखा की तरह, मेग्नी बस्त्र तुपाग्नि की तरह, चन्द्रमा दायाग्नि की तरह, कमल वृश्चिक की तरह और सारे आभूषण विकट्ट की ओषधि की तरह अभिय लगते हैं। पुण्य, ताम्बूल और मधुर भोजन विष के समान लगता है।

हे नाथ ! मुझे तुमने तरह तरह की आशयें थीं लेकिन प्रव्रज्या व बहाने तुमने मग परित्याग कर दिया। फिर भी प्रव्रज्या के बाद अमृत (मोक्ष) को प्राप्त करने वाल ! तुमको मेरा नमस्कार है।

उपर्युक्त सदेश में कवि ने राजीवर्ती के विरह की बड़े अच्छे ढंग से व्यञ्जना की है। इसके अतिरिक्त बसन्त वर्णन इत्यादि व प्रसंग में शुभारम्भ वर्णन भी पा जाते हैं। धीकृष्ण की रानियों की नेमिनाथ के साथ विविध कीडाओं का वर्णन यह सरस ढंग से किया गया है। यथा —

अन्या लोकोत्तर । तनुमता गगपाशेन बद्धो
मोक्ष गासे कथमिति मित सस्मिन् मापमाणा ।
व्यक्त रक्तोत्पल विरचितेनैव दाग्ना वट्टीर
काचीव्याजा प्रवृत्तिरिय तं खेतनेश वयन्धे ॥२॥२॥

कानिद्दामा जलद पिदध चन्दनस्यन्दसिक्तं
पत्तिन्वर्म्मे सरसधुनुमे दंनमुण्यन्य यक्ष ॥२॥२॥

पूरं पूर सुरभि सलिलै स्वर्णं शृ गाणि रगात् ।
सारगाद्य स्मितकृतममु सर्वतोऽप्यभ्यर्षिचन् ।
धारा धाराधर ! सरलगास्ताश्च वारामपारा
स्मारादोऽंगप्रसृमरशरासारसारा विरेजु ॥२॥४५॥

नित्योन्निद्र पुरपरिमल राजतेजोविराजि
स्पष्टश्रीक वदनकमल देव ते सेवतेऽद् ।
स्थानभ्रष्टं जिनमिति यदन्त्येय कर्णवितसी
चक्रं काचिद्दशशतदल लीलयोत्तुय तस्य ॥२॥४६॥

इस तरह कवि ने कृष्ण की पत्नियों की श्री नेमिनाथ के साथ सरस क्रीडाओं का बड़ा ललित वर्णन किया है। राजीमती के विरह वर्णन में उसकी सासारिक सुखों के प्रति उत्कट उरसुकता छिपी हुई है। कृष्ण पत्नियों की नेमिनाथ के साथ तरह तरह की विलासभय क्रीडाये भी शृ गार रस को ही पुष्ट करती हैं। पर अन्त में कवि ने काव्य का पर्य रसान शान्त रस में किया है। राजीमती की विरहवेदना देख कर तथा उसके सन्देश कथन पर उसकी सखिया उससे कहती हैं—

क्यासौ नेमिर्विषयविमुखस्तत्सुखेषु क्व वा त्वम्
क्यासजोऽब्द, क्व पट्टयचनैर्गचिकं वाचनीयम् ।
किं कस्याग्रे कथयसि सखि ! प्राह चूडामणोर्षा
नो दोषस्ते प्रकृतिविकृते मोह एवात्र मूलम् ॥४॥३२॥

फिर वे महामोह को बोध रूपी शस्त्र से नष्ट करने का परामर्श देती हैं—

श्रीमान्नेमि व्यजयत महामोहमरुत तदेव
त्यातत्पत्नीं सखि ! मनुमहे बोधते यद्वयैर ।
किं त्वेव ते यदुकुलमणैर्वीरपत्न्या विसोदु
नैतन्न्याप्यं तदिममधुना बोधशस्त्रेण हिन्दिध ॥४॥३६॥

इसके बाद श्री नेमिनाथ की विशेषता बतलाते हुये व कहती हैं—

रागाम्भोधी ललित-ललना-चाट्ट वाम्गिभिर्षं
संस्लाघ्येत प्रतनुगारिमा स क्षमाभृद्गणोऽन्य ।
ओन्नत्यं तत्सदचलशुद्धश्चैव प्राध्यस्थ्यमिश्रो
धत्ते येन स्फुटवसुममु स्पष्टमप्यहमास्ता ॥४॥४०॥

अन्त में सखिया राजीमती से कहती हैं—

हे बुद्धिशालिनि ! जिस तरह कोई असली हीरा कृत्रिम रंगों से नहीं रंगा जा सकता है, उसी तरह श्री नेमिनाथजी को भी तुम अपने हाथ भाव और मधुर वचन इत्यादि से अपने में अनुरक्त नहीं कर सकती।

सखियों के इन वचनों को सुनकर राजीमती का मन शान्त हो जाता है और यह अपने स्वामी की तरह ही रागद्वेष से रहित हो जाती है। अन्त में कुछ ही दिनों में मुक्तिपद प्राप्त कर शाश्वत सुख का उपभोग करती है। इस प्रकार अन्त में काव्य का शान्त रस में पर्यवसान हो जाता है।

त्रिभार तारतम्य और रस की दृष्टि से काव्य यही उच्च कोटि का है। कवि न पदे २ श्लिष्ट वाक्य रचना और अलंकारों की भरमार से काव्य को दुरुद्ध अरुण बना दिया है। अलंकारों के बाहुल्य से भाषा और भाव दूधे हुए से हैं। प्रसाद गुण की रचना में कमी है। लेखक ने अपने व्याकरण ज्ञान का परिचय देने की पदे २ प्रयत्न चेष्टा की है। पदलालित्य और प्रसाद गुण की दृष्टि से विक्रम रवि का नेमिदूत और चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत वहाँ उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। फिर भी जैन सङ्कृत साहित्य में यह रचना एक विशिष्ट स्थान रखती है।^१

चारित्रसुन्दरगणि का शीलदूत (वि० सं० १४-७)

शेखरदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्यापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। श्री चारित्रसुन्दरगणि के सयध में शीलदूत के अन्त में आया हुआ -

द्रुगे रमैरतिवजतर स्तम्भर्ता धामिधाने
 धये हर्षाञ्जलिभुजगाम्भोधि चन्द्रप्रमाणे ।
 चक्रं काव्य धरमिह मया स्तम्भनेशप्रसादात्
 सदृभि शोध्य परहितपरैस्तदोपरसादात् ॥१३१॥

यह श्लोक सिद्ध करता है कि लेखक ने वि० सं० १४-७ में गुजरात प्रान्त के अन्नर्गत स्तम्भन तीर्थ (खभात) में इस ग्रन्थ की रचना की। श्री चारित्रसुन्दरगणि सत्तपोगच्छक नेता श्री रत्नमिह सूरि के शिष्य थे। लेखक ने स्वयं इस बात को माना है जैसा कि काव्य की निम्न पक्तियों से स्पष्ट है -

सोऽयं श्रीमानपनिश्चिदितो रत्नासिंहारम्यसूरि
 जीयाद् नित्य नृपतिमदित सत्तपोगच्छनेता ॥१०६॥

१ श्री जैन आत्मानन्द सभा भावनगर से प्रकाशित।

शिष्योऽमुष्याऽपिलयुधमुदे दत्तमुख्यस्य सूरे-
श्चारिभदि धरणिःखले सुन्दराख्याप्रसिद्ध ।
चक्रो काव्य सुललितमहो शीलदृताभिधानम् ॥१३०॥

इस काव्य के अतिरिक्त लेखक ने श्री कुमारपाल महाकाव्य, श्री महीपालचरित और आचारोपदेश आदि अनेक ग्रन्थ लिखे हैं ।

काव्य की कथा

स्थूलभद्र नाम का एक जैन राजकुमार अपने पिता की मृत्यु का समाचार सुन कर सगर से विरक्त हो जाता है और एक पर्वत पर अपना आश्रम बना कर रहने लगता है । एक बार श्री भद्र बाहु स्वामी से उसका साक्षात्कार होता है । वह उनसे जैन धर्म की दीक्षा लेता है तथा उनके आदेश के अनुसार अपनी नगरी में वापिस लौट आता है । वहा पर उसकी रानी क्रोधा उसको पुन गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है । इस प्रसंग में वह अपनी दीनावस्था का वर्णन करती है, सयम के अतिरिक्त दानधर्म का भी महत्व बताती है और स्थूलभद्र से कहती है कि यदि तुम्हें पुण्य ही प्राप्त करना है तो कूप, वापी और तडाग इत्यादि के निर्माण से भी प्राप्त कर सकते हो । तुम्हें अपने वन्धुओं की उन्नति करनी चाहिये । पुन गंगा में की हुई अपनी जल क्रीडाओं का भी वह स्थूलभद्र को स्मरण कराती है । दयाभाज को मुख्य धर्म बताकर परिजनों पर दया करने का भी स्थूलभद्र को परामर्श देती है । नगर छोडकर वन जाने की अपेक्षा प्रासाद के बाहर राज्य में ही स्थित क्रीडाशैल पर विहार कर पुन राजधानी लौट आने का वह अपने पति से अनुरोध करती है । इस प्रसंग में राजधानी का वहा उदात्त और शृ गारमय वर्णन करती है ।

अपनी रानी के अशुभदृग्द वचनों को सुनकर स्थूलभद्र कहता है— हे भद्रे ! मैंने पवित्र जैनधर्म स्वीकार कर लिया है । गुरु का उपदेश मेरे मन से नहीं हट सकता । तत्त्वस्वरूप को जान जानकर मेरा मन विरक्त हो गया है । मुझे अथ विषयों से कोई राग नहीं रहा है । चित्रशाला भी वन के तुल्य दीघ पडती है । युवावस्था में शरीर का जो सौन्दर्य रहता है, वह घृद्धावस्था में नहीं रहता । ससार को अनित्य मानकर मेरा मन धर्म में ही कल्याण समभता है । मैं अथ स्त्री को विष तुल्य समभता हूँ । मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है, मोह मूर्च्छा भी समाप्त होगई है । मेरा चित्त निर्विकार है । मैं अपने शरीर को मृत्यु की बहिन घृद्धावस्था के द्वाग प्रस्त समभता हूँ ।

स्थूलभद्र के पराम्य पूर्ण इन वचनों को सुनकर उसकी रानी की चतुरा नाम की सती फिर उससे कहती है —

हे सुभग ! क्या तुम्हारा हृदय वस्तुत इतना कठोर हो गया है । तनिक अपनी प्रेयसी के मुख की ओर तो देखो । इसने फटपतुल्य इतने दिनों को रोते-रोत पितापा

है। प्रायः यह मूर्च्छित हो जाया करती है और प्रातः सायं तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछती रहती है। ज्योतिषियों से तुम्हारे आने के सम्बन्ध में पूछ पूछ कर उगलियों पर दिन गिनती रही है। कभी घर में और कभी द्वार पर जाकर यह दिन काटती रही है। इसने अपना गृह गार तो अगार की तरह छोड़ दिया है। सारी रात इसे रोते-रोते बीतती है। आँखों से आसुओं को पोंछकर अपने मन में यह संसार को शून्य ही समझती है। तुम्हारे गुणों को याद कर-कर भूमि पर लोटती रहती है। यदि तुम मेरा कथन न मानोगे तो यह शीघ्र ही प्राण छोड़ देगी। त्रिभिध पार्वत्याप में व्यग्र रहने के कारण दिन तो इसका किसी तरह बट जाता है लेकिन रात में तुम्हारा त्रियोग इसे बहुत दुःख देता है।

हे देव ! मेरी प्रार्थना पूर्ण करो। मेरी सखी के साथ त्रिभिध भोगों को भोगते हुए अपना मन प्रसन्न करो। घर आकर भी तुम कठोरता को क्यों धारण किए हुए हो ? अपनी प्रेयसी की ओर तनिक प्रेम से देखते भी नहीं, उसकी कुशल तक नहीं पूछते और घर के भीतर तक नहीं जाते। अपने प्रासादमें ही पराए आदमी की तरह रहते हो। हे देव ! कोशा रानी के तुम ही रक्षक हो, तुम उसके प्राण हो और उसके हृदय हो।

अपनी रानी की सखी के वचनों को सुनकर स्यूलभद्र फिर अपनी रानी से कहता है—आयें ! तुम भी जैन धर्म स्वीकार कर लो। मेरे लिए छी और वृण दोनों समान हैं। मैं अब अपने गुरु के चरणों की वन्दना करने के लिए वापिस जाता हूँ। जैन धर्म स्वीकार कर लेने पर तुम्हारे लिए भी कोई दुःख न रहेगा। तुम्हारे त्रियोग में भी जैन धर्म की शिक्षाओं के कारण मेरा मन कभी दुःखी नहीं होता है। तुम भी जैन धर्म को स्वीकार कर लो, शील को अपनाओ, गुणी पुरुषों के लिए दान दो और तप द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करो।

पति के उपदेश को सुनकर कोशा की भोग वृष्णा नष्ट हो जाती है। यह पति से ऐसी दिव्योपधि मागती है जिससे कि उसके मन की कामयासनायें नष्ट हो जायें और फिर भक्ति पूर्वक अपने पति के चरणों में गिर पड़ती है। स्यूलभद्र उसे जैन धर्म की शिक्षा देता है और स्वयं अपने गुरु के चरणों में श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिये वापिस लौट जाता है। इस बीच जैन धर्म का पालन करती हुई कोशा अपने घर पर ही रहती है। स्यूलभद्र भी शनैः शनैः सूर्यश पद को प्राप्त कर लेता है और अपनी शीलशक्ति से सारे भू-मण्डल में जैन धर्म का प्रसार करता है। अन्त में समग्र दुःखों से रहित होकर स्वर्ग चला जाता है। कोशा भी जैन धर्म को पालन करती हुई तथा शील की साधना करती हुई पति प्रेम के प्रभाव से स्वर्ग के लिए सिधार जाती है।

समीक्षा

मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्वापूर्ति के रूप में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं तथा पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा

काव्य का कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य का नायक स्थूलभद्र अपनी प्रेयसी कोश को अपने शील के प्रभाव से जैन धर्म में दीक्षित कर लेता है। इसी आधार पर इस काव्य का नाम शीलदूत रख दिया गया है। यों तो इसमें किसी ने भी किसी के पास किसी को दूत बना कर नहीं भेजा है। एक स्थल पर कोशाकी सखी चतुरा अग्रथ कोशा की तरफ से स्थूलभद्र को पुनः गृहस्थाश्रम में आने के लिये प्रेरित करती है। मेघदूत के प्रत्येक पद्य के अन्तिम चरण को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिखे जाने के कारण ही इस काव्य को भी दूत काव्य का रूप देकर तथा शील की प्रधानता होने से इसका नाम भी शीलदूत रख दिया गया है।

दूत काव्यों में प्रायः विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता होती है। नायक या नायिका अपनी विरहावस्था में अपनी प्रेयसी अथवा प्रिय के पास किसी को दूत बनाकर अपने सन्देश भेजता है और प्रसंगानुसार आश्रयस्थान तथा सान्त्वना देता है। शीलदूत में काव्य का नायक स्थूलभद्र जैन धर्म में दीक्षित होकर अपने गुरु के आदेश से अपने नगर में वापिस आता है। यद्वा पर उसकी स्त्री कोशा उसे अपनी दीन द्वाँन अवस्था बताती है और पुनः गृहस्थाश्रम में आ जाने के लिये उससे अनुरोध करती है। यद्वा तक तो विप्रलम्भ शृंगार की प्रधानता है लेकिन स्थूलभद्र के यत्नोर्मि शान्तरस भरा हुआ है। वह वैराग्य की ओर मुका हुआ है तथा जैन धर्म में दीक्षित हो जाने की अपनी पत्नी को भी सम्मति देता है। उसकी पत्नी भी अन्त में जैन धर्म में दीक्षित हो जाती है और संसार के सुखों से विरक्त हो जाती है। अतः हम शीलदूत को शान्त रस प्रधान ही मानेंगे। कोशा स्वयं कहती है -

स्वामिन ! धर्मावृत्तरसमय देहि दिव्यीपथ तद्
यनाय मे तुदति न मनो मन्मथाख्यो विकार ॥११६॥

इसमें उच्चर में स्थूलभद्र कहता है—

तामूचेऽसौ मनसि सतत मन्त्रमेव स्मर त्व
नित्यमकृत्या विभुवनगुरो जंम साथं रुज्ज म्मम् ।
शीलेनाऽल विमलममले जैनधर्मं भजेथा ॥११७॥

काव्य की भाषा उड़ी सरस तथा ललित है। लम्बे-२ समास तो प्रायः नहीं हैं। कहीं कहीं पर यद्वा सुन्दर उपेक्षाएँ प्रयोग में लाई गई हैं। स्थूलभद्र को यद्वा पर रहने के लिये समझाती हुई कोशा कहती है—

सोलच्छात्राश्रयविलसितै स्वामिवाकारयन्ती
भृ गालापिरेव तत्र तप साम्प्रतं वाग्यन्ती ।
पृच्छार्त्तयं कुसुमपुलकं दर्शयन्तीथ पश्य
स्वीणामाद्यं प्रणययचनं विभ्रमो हि मियेपु ॥३०॥

' वृक्षपक्ति में विश्रमजती नायिका का व्यग्रहार कवि ने बड़े सुन्दर ढंग से आरोपित किया है ।

गंगा की उठनी हुई तरंगों को लेकर भी बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की गई है -

दीक्षामेवा तत्र सुरनदी धारयत्यूर्मिगर्भं
पश्य स्वामिन् गृहपरिचिता प्रेयसीवियमुच्चै ॥२४॥

अपने ऊपर दया भाग दिखलाने के लिये कोशा ने अपने पति से बड़ा ही उपयुक्त तर्क किया है -

धर्मंगाद्यामिह खलु दयाभादिदेवो जगद्
प्रोज्झन्नेता निजपरिजने वेत्ति धम न सम्यक् ।
स्मीदन्तं तन्निजजनमसु पालय म्यार्जितै स्वै-
रापन्नातिप्रशमनफला सपदो ह्युत्तमानाम् ॥२७॥

कवि ने राजधानी का भी बड़ा उदात्त और श्रु गारमय वर्णन प्रस्तुत किया है -

गंगागोरा सितधरहृषाकारचीगस्तुरगा
श्रु गोक्षु गा ललितगतयो दानवन्तो गजेन्द्रा ।
लीलावत्योऽग्निलयुयतयो यत्र धीरावतसा
प्रत्यादिष्टाभरणेष्वचयश्चन्द्रहासप्रणालै ॥३०॥

स्नेहादन्यत् न भयति पर वन्धन यत्र किञ्चि-
त्त्विन्ता काचिन्त भयति परा यत्र धर्मं विहाय ।
पश्चिद् यस्मिन् न भयति परो राजद्वंसात् सरोगो
वित्तेशाना न च खलु धयो यौवनादन्य दस्ति ॥३१॥

इस श्लोक की तृतीय पक्ति में 'सरोग' पद में बड़ी सूक्ष्मता से श्लेष का प्रयोग किया गया है ।

परम्पराभुक्त होत हुये भी रित्रयों का बड़ा ही सरस चित्र वाक्य में अंकित किया गया है -

वेलीदृष्टो जयति भुजगान् मध्यदेशो मृगेन्द्रान्
यासाम्नाम्यं धिय । परिभयन्मुच्चकैश्चन्द्रधिम्भम् ।
संत्रे नृत्यन्यनुलमसट्टु यत्र धारागनाम्ना
स्तपद्गगर्मारुध्यनिषु शतर्षं पुष्करेत्याहतेषु ॥३२॥

समस्यावृत्तिय होत हुये भी वाक्य में कवि ने अपनी मौलिक कल्पना शक्ति का

यथास्थान परिचय दिया है। मेघदूत में उत्तरभाग में कल्पवृक्ष के सम्बन्ध में कहा गया है—

वासश्चित्र मधु नयनयोर्विभ्रमावेशदक्ष
पुष्पोद्भेद सह किसलयैर्मूर्षणानां विकल्पान् ।
लाक्षाराम चरणकमलन्यासयोग्य च यस्याम्
एकं सूते सकलमबलामण्डन कल्पवृक्षं ॥१३॥

इस श्लोक की अन्तिम पंक्ति को लेकर —

त्यागो यस्या भनिभिरनिश दीपमानोऽर्घिना द्रा-
गेकं सूते सकलप्रबलामण्डन कल्पवृक्षं ॥२०॥

में त्याग के सम्बन्ध में किस प्रकार बिठा दिया गया है।

(अथलानाम् = नि स्थानाम्, प्रासमन्ताद् मण्डनम् अथलामण्डनम्)

मेघ के सम्बन्ध में कही हुई—

खद्योतालीविलसितनिभा विधुदुन्मेषदष्टिम् ॥२॥२०॥

को कोशा के साथ सम्बद्ध कर दिया गया है—

मुग्धे स्निग्धा रचयसि मुग्धा मामुदीक्ष्य स्वकीया
खद्योतालीविलसितनिभा विधुदुन्मेषदष्टिम् ॥२०॥

स्यूलभद्र को घर पर रहने के लिये प्रोत्साहित करती हुई कोशा कहती है—

ताते वाते त्रिदशमयन युष्मदाशानिबद्धा
ये जीवन्ति प्रिय परिहरस्तान् किं लज्जसे त्वम् ।
आपामाजात् त्वयि सति गते घान्ध्यास्तेऽस्तविष्ठा
सपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्यापिहंसा दशार्णां ॥२५॥

अंतिम पंक्ति मेघदूत में दशार्णं नामक जनपद के लिये प्रयुक्त की गई है। यहाँ पर दशार्ण' को घान्धियों का विशेषण बनाकर 'हंस' शब्द प्राणों के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। इस प्रकार अनेक स्थलों पर कवि ने अपनी काव्यशक्ति का परिचय दिया है।

ऋगार रस के प्रसंग में कही गई उक्तियों को वदे सुन्दर दग से शान्तरस परक बनाया गया है। स्युलभद्र अपने वैराग्य का वर्णन करते हुए कहता है—

नारी यस्मिन्नमृतसदृशी मे वभूनाथ थायद्
रागप्रस्ते मनसि मदनज्यालविध्यस्तससे ।
ध्वस्ते रागे गुरुभिरभवत्^१ ह्येडयत् साऽप्यनिष्ठा
या तत्र स्याद् युवतिविषये खष्टिराद्यैव धातु^२ ॥६॥

जैन धर्म में दीक्षित हो जाने का परामर्श देते हुए स्युलभद्र अपनी प्रियसी से कहता है—

तुर्य स्त्रैण लृणमपि च मे शुद्धशीलप्रभावात्
प्रागासीना भवति भवती येषु येष्यासनेषु ।
नेहे ब्रह्मवतकृत रति स्तत्रि तत्रासितु तत्
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तमेति ॥११२॥

इस पद्य की अन्तिम पंक्ति यहाँ मेघदूत से नितान्त विपरीत अर्थ में प्रयुक्त की गई है। ऋगाररस की उक्तियों को इस प्रकार कई स्थानों पर शान्तरस में प्रयुक्त किया गया है।

विरह वर्णन में भी कवि ने अनुभूति की तीव्रता और विरह व्याकुलता का बड़ा मार्मिक चित्रण किया है। कोशा की सखी चतुर्ग कोशा की विरहद्वेष्या का वर्णन करते हुए कहती है।

एषाऽ नैवीत् सुमग । दिवसान् कटफनुल्यानियन्त
काल बाला बहुल सलिलं लोचनाम्या स्रवन्ती ।
अस्थाद् दुःस्या तय हि विरहे माम्निषं पार्त्तय ती
कच्चिद् भवतु^३ स्मरसि रसिके त्वहि तस्य प्रियेति ॥२०॥

पृष्ट्वा पृष्ट्वा गणकनिचयं जीवित धारयन्ती
नीत्या नीत्या कथमपि दिनान्यंगुलीभिर्लिखन्ती ।
गत्या गत्या पुनरपि पुद्गरि तस्यो च गेहे
प्रादेश्णे रमणविरहेष्वगनाना विनोश् ॥६४॥

विरहिणी कोशा की उत्सुकता, स्मृति और उत्कण्ठा का कवि ने कैसे सजीव चित्रण वहाँ उपस्थित किया है।

काव्य के आद्योपान्त पढ़ने से प्रतीत होता है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। कवि का यह कथन —

चक्रं काव्य सुललितमद्दो शीलदूताभिधानम्।

अक्षरश सत्य है। इसमें कोई गर्वोक्ति नहीं है। मेघदूत की समस्या पूर्ति स्वरूप लिखे गए कार्यों में तथा जैन साहित्य में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। काव्य का नाम भी कवि ने बड़ा सुन्दर रखा है। शील जैसे भाव को दूत का रूप देकर कवि अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है^१।

वादिचन्द्रसूरि का पवनदूत (वि० सप्तदश शतक के लगभग)

यह पवनदूत एक स्वतन्त्र रचना है। ग्रन्थकर्ता ने काव्य के अंतिम श्लोक में ही अपना परिचय दिया है। वह श्लोक इस प्रकार है —

पादौ नत्वा जगदुपप्लुतो वर्धसामर्थ्यमन्तो
विघ्नध्वान्तप्रसरतरणे शान्तिनाथस्य भक्त्या ।
श्रोतु चैतत्सदसि गुणिता वायुदूताभिधानम्
काव्यं चक्रे विगतमसन स्वरपधीर्वादिचन्द्र ॥१०१॥

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि लेखक थी शान्तिनाथजी का भक्त है। विगतमसन विशेषण यह भी बताता है कि लम्बक दिगम्बर जैन है। लम्बक के काल के सम्यन्ध में कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। इस सप्तदश काव्य के अतिरिक्त लेखक ने 'ज्ञानसूर्योदय' नामक एक नाटक भी लिखा है। इस नाटक में जैनियों के दिगम्बर सम्प्रदाय के धार्मिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। ओफ्रैट के कैंटालोगस लोगो प्रथम भाग, पृष्ठ २१० पर इस नाटक का उल्लेख किया गया है। ओफ्रैट महाशय इस नाटक को ई० १५८० का लिखा हुआ मानते हैं।

१ यशोधियजय ग्रन्थमाला, बनारस, से प्रकाशित ।

२ जैन ग्रन्थापत्ती, बम्बई में प्रकाशित ।

तदनुसार पयनदूत भी इसी के आसपास का लिया होना चाहिए। श्री एस० के० दे० के अनुसार ई० सत्रहवीं शताब्दी लेखक का कार्यकाल है।

काव्य की कथा

विजयनरेश नामक उज्जयिनी का एक राजा था। उसकी रानी का नाम तारा था। राजा अपनी रानी तारा से बहुत प्रेम करता था। एक दिन अशनिवेग नामक एक विद्याधर तारा को हर कर ले गया। रानी के प्रियोग में राजा बड़ा दुःखी रहने लगा। अपनी विरहावस्था में वह पयन को दूत बनाकर रानी के पास भेजने का प्रयत्न करता है। अपने विरह वर्णन के बाद वह पयन को प्रिया के पास पहुँचने का मार्ग बताता है। इस प्रसंग में विभिन्न घन, नदी, पर्वत, नगर और नगरों में रहने वाली स्त्रियों तथा उनकी विलासमय चेष्टाओं का बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है। राजा के सदेश को लेकर पयन अशनिवेग के नगर में पहुँचता है। फिर अशनिवेग के महल में जाकर तारा को उसके प्रिय का सदेश सुनाता है। तदनन्तर अशनिवेग की सभा में जाकर उसे तारा के वापिस दे देने का परामर्श देता है। अशनिवेग विजय नरेश को युद्ध की धमकी देता है लेकिन उसकी माता उसे युद्ध न करने का परामर्श देती है और तारा को पयन के हाथ सौंप देती है। पयन तारा को लेकर वापिस लौट आता है और विजयनरेश को सौंप देता है।

साहित्यिक समीक्षा

समस्यापूर्तिमय न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। इस काव्य की कथा कारपनिक ही है। काव्य में कुल १०१ श्लोक हैं। सब मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखे गए हैं। भाषा सरस और प्रसाद गुण-युक्त है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः नहीं ही हैं। कथा का पूर्ण भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन नहीं है। कविता में सर्वत्र प्रवाह विद्यमान है। विजय नरेश पयन से प्रार्थना करते हुए कहता है—

दुःखानि त्वं मम गत यधोमित्र जानासि सम्य
विष्यकप्राणं धिततनुमता वृद्धकायवयमाय ।
तस्मात्तेऽहं पदमुपगत सर्वलोकानपेक्षं
एतत्वं ते यद्भवति सद्यं तस्ययाऽपादनीयम् ॥२६॥

भाषा के प्रवाह और सारल्य का अनुमान कराने के लिए यह एक श्लोक ही पर्याप्त है।

१ दे० एस० एन० दास गुप्त का 'संस्कृत साहित्य का इतिहास,' कर्नामिकल पीरियड, प्रथम भाग, पृष्ठ ३७३, पादटिप्पणी।

जिस तरह धोयि कवि ने अपने पवनदूत में पवन को कुवलयरती का दूत बनाते हुए —

वीक्ष्यामस्थां विरहविधुरा रामचन्द्रस्य हेतो
यात पार पवन सरिता पत्युरप्याजनेय
तत्तातस्याप्रतिहतगतेर्यास्यतस्ते मदर्थं
गौडी क्षोणी कति नु मलयदमाधराद् योजनानि ॥१॥

लिखा है, उसी तरह इस पवनदूत में भी पवन को दूत बनाते, समय कवि कहता है, —

पुत्र सीता दशमुपहृता तावको दूरनाया
तत्सन्देशैर्हपित कुशलै जीयामास वेगात् ।
तत्कि चित्र त्यकमिह पदे सस्थितस्ता च पैत्र्ये
प्राय काय लघुजनकृत नाधिके चित्रकारी ॥१३॥

विजयनरेश का अपनी रानी तारा के प्रति बड़ा गम्भीर और सच्चा प्रेम है। वह तारा को ससार की सब स्थितियों में धेष्ट समझता है। तारा के सम्बन्ध में विजय नरेश के बड़े उच्च भाव कवि ने दिखलाए हैं। राजा कहता है —

नार्यस्तारामनु च भुवने भाग्यसौभाग्यवत्यो
नार्यस्तारामनु च भुवने शीलसम्पन्निरासा ।
नार्यस्तारामनु च भुवने भर्तृ मन्त्येकरागा
नार्यस्तारामनु च भुवने दीनदानप्रदान्य ॥३३॥

तारा के सौभाग्य, शील, पतिभक्ति और दयालुता आदि गुणों का विजयनरेश ने वहाँ ही उत्कृष्ट चित्र अंकित किया है।

आगे चलकर फिर भी विजयनरेश तारा के गुणों की प्रशंसा करता है —

सा मे सेना मदत विजये सारसर्वांगयुक्ता
सा मे मित्र परमद्वित कृतसर्ग लोकेऽप्यनूनम् ।
सन्तापाना सहजहरणात्सा च दृष्टि प्रवृत्ते
सा मे भूषा तनुवचिकरा सा च केल्यास्तडाग ॥५०॥

सा निधेयि परपदगतौ सार्गला दुरारोधा
त्सा मे मत्रो नगरधनिता-दृष्टि दीप सिद्धनतुम् ।
सा मे वल्लि विपुल फलदा सा सरित्तृड्धिनाशा
त्सा मे लक्ष्मी त्रिभिधविभयानन्दसंसाधनाच्च ॥५३॥

तारा क प्रति अपने अनन्य प्रेम का परिचय दते हुए राजा कहता है—

भृगु पुष्प जलधरजल चातको गा प्रवत्स
आम्र पत्र पिक इष घने राजहस्तडागम् ।
चक्रश्चर्यां तद्विस्तलयं नागराजस्तटिन्या
स्तद्वत्कान्ता कलितकमला चिन्तयेद्यत्र शून्य ॥६४॥

राजा का तारा से अनन्य प्रेम है, इसीलिए तो उसके प्रियोग में राजा का मन और बुद्धि विलकुल काम नहीं करते हैं —

तच्चिन्तात सकलविषये शून्यमासीन्मनो मे
तस्माज्जाने न हितमहितं किं प्रकुर्वे ह्युपायम् ।
नो वा बुद्धिं प्रसरति परा किं प्रजल्पामि वाच
प्रैष्यं पत्रं मम कथमयो सप्रभापे हाभिशाम् ॥६५॥

अपनी रानी की विरहावस्था का भी राजा ने वहा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है । राजा पयन से कहता है—

उष्णोच्छ्वासे श्रुतितदना शीलरत्नार्त्तचित्ता
त्यक्तमनामसितदना नेत्रमुक्ताधुपाते
स्यं ता दृना रगपरिचिते मंदपु क्षेमवाचा
सतोप्यारं व्यपगतशुच्यं सर्यथा सप्रकुर्या ॥६६॥

इस प्रकार कवि ने इस काव्य में अनन्य प्रेम तथा विरह के सुन्दर भाव वर्णित किये हैं ।

मेघदूत के समान इस काव्य में भौगोलिक वर्णन विलकुल नहीं है । म्याग स्थान पर मेघदूत की छाया काव्य में स्पष्ट देग पढती है । मेघदूत में मेघ को दूत बनाते समय कालिदास ने लिखा है—

कामार्तां हि प्रवृत्ति-रूपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥

इसी प्रकार पयन के दूत कार्य के सम्यन्ध में कवि कहता है—

दूतं मोक्षात्पयनमहद् प्रादिणोद्धुनेत्र
प्रापो मोक्षो भवति भविना बोधशून्ययहेतु ॥११॥

मेघदूत में यक्ष सूर्यदर्शन के बाद शीघ्र ही यात्रा पर चलने का मेघ से आग्रह करता है—

दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान् पाद्वयेदध्यशेषं
मन्दायते न गन्तु सुहृदामभ्युपेतार्थशया ॥३६॥

इसी तरह विजयनरेश पवन से कहता है -

(वध्वो विद्याधर कुलभरा)

तास्त्वं पश्यन्निधरतरयाति मां स्म भूर्मित्र मार्गो
धीरा श्यातास्त इह भुवने येऽन्तराये न मन्दा ॥१८॥

अपनी प्रेयसी के सम्यन्ध में राजा के द्वारा कहा गया पवनदूत का यह पद्य -

पादौ दृष्ट्वा धनमुधि तवानन्ददौ प्रेमरंधा
दात्मानं स्रप्रणतमभितो यावदीहे प्रकर्तुम् ।
तावत्पुष्पै स्तरकपिगते सच्युतैश्छादितौ तौ
पापं तस्मिन्नपि न सहते सगम सौख्यहेतुम् ॥३८॥

मेघदूत के 'त्वामालिख्य प्रणयकुपिताम्' इत्यादि श्लोक की ही प्रतिच्छाया है ।

चन्द्रमा को लक्ष्य करते हुये विजय नरेश ने कहा है -

चन्द्रश्चायं दहति विरहे योपितोऽयं क्षपाया
त्वचान तत्प्रकृतिपुरुषस्तेन सरोधयाब्जम् ।
ससारे भो मम विचरत केवल नैव दु खं
सर्वेषा स्यात्कृततनुमतां चक्रनेमिक्रमेण ॥१४॥

इस पद्य में मेघदूत के -

कस्यात्यन्त सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीर्वागच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

इन पदों की छाया विद्यमान है ।

पवनदूत की यह पंक्ति -

त्यक्तुं को वा प्रभुरिह हृदो वस्तुतो वामनेत्राम् ॥७२॥
मेघदूत की 'शतास्यादो विवृतजघना को विहातु' समर्थ ' ॥१॥४८॥

इस पंक्ति की ही प्रतिध्वनि है ।

यों तो पवनदूत एक विरह-काव्य ही है । त्रियोग शृ गार का चित्रण ही काव्यका प्रमुख उद्देश्य है । फिर भी काव्य में मनोरञ्जन के अतिरिक्त शिक्षा की भी बहुत सी सामग्री विद्यमान है । लेखक का नैतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण यहाँ उँचा है ।

उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण पाठकों के समक्ष रखे जा रहे हैं —

- १ प्रायः सन्त सकलसमये रगमगे न शरा ॥ ४॥
- २ कार्यं कार्यं परमत्रिदुषाऽहिंसर्यैशात्र लोके ॥१५॥
- ३ प्रायः सन्त शिशुतरुणिषु द्यार्द्रचित्ता भवन्ति ॥१६॥
- ४ (भूया) सन्तो नहि परकृतं चोपकारं सहन्ते ॥१७॥
- ५ म्यान्निधान्तर्विपुलकरुण सत्यरक्षानपेक्ष ॥३॥
- ६ प्रायो भवति महता संगते पाप-हानि ॥५॥

स्थान स्थान पर काव्य में सुभाषित भी पाये जाते हैं—

- १ केषा स्थानं भवति पुरतः स्थायिना सदुपलानाम् ॥८॥
- २ प्रायः कार्यं लघुजनकृतं नात्रिके त्त्रिभारि ॥१३॥
- ३ प्रायः कार्ये क्वचिदपि पुनर्यागिनोऽपि प्रमोहा ॥५६॥
- ४ धीर्यं तस्माच्चतुरमतिना नैव सर्वत्र योज्यम् ॥६॥

इस प्रकार एक जैन विद्वान् की रचना होने के कारण शृंगार रस के साथ साथ काव्य में परोपकार, दया, अहिंसा और दान आदि सदुभावों की भी प्रशंसा पाई जाती है। रचना प्रसादगुणयुक्त है। भाषा प्रवाहपूर्ण है। लेखक को इस सन्देश काव्य के लिखने में पर्याप्त सफलता मिली है। उच्च कोटि की कविता के साथ साथ काव्य में उच्च नैतिक भाव भी पाये जाते हैं^१।

१ पवनभूत वादिचन्द्रसूरि दिग्दर्शी अनुपादक-उदयलाल कारणीयाल प्रकाशक दिग्दर्शी जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय, बम्बई, चन्द्रापाड़ी, गिरगाव ।

अज्ञात कवि का चेतोदूत (सम्यग्निश्चित)

यह सदेश काव्य मेघदूत के पद्यों के अन्तिम चरणों को लेकर समस्या पूर्ति के रूप में लिया गया है। इसके लेखक के सम्यग्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं है। ग्रन्थ में कोई अन्तरंग साक्ष्य भी ऐसा उपलब्ध नहीं जिससे लेखक के सम्यग्ध में कुछ ज्ञान हो सके।

काव्य की कथा

काव्य में कोई विशेष कथा नहीं है। एक शिष्य अपने गुरु के श्री चरणों की प्रसत्ति (कृपादृष्टि) को प्रियसी के रूप में मान कर उसके पास अपने चित्त को दूत बनाकर भेजता है। सर्व प्रथम गुरु की घन्दना की गई है। फिर गुरु की प्रसत्ति का इच्छुक शिष्य अपने चित्त को गुरु की नगरी जाने का आदेश देता है। गुरु के यश, त्रिवेक और वैराग्य का यथास्थान वर्णन किया गया है। गुरु की नगरी में पहुँचकर चित्त ने गुरु की स्तुति करने तदनन्तर उन्नी प्रसत्ति (कृपादृष्टि) को अपना सन्देश सुनाने के लिये शिष्य ने प्रार्थना की है। अन्त में गुरु की प्रसन्नता के वर्णन के साथ शिष्य की सफलता बतलाते हुये काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीक्षा

मेघदूत की समस्या पूर्ति होने के कारण काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। कुल १०६ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा काव्य का कोई विभाजन भी नहीं है। जैसाकि कथासार से विदित है, काव्य का प्रिय शृंगारिक न होकर धार्मिक है। चूँकि चित्त को दूत बनाया गया है, इसलिये काव्य का नाम चेतोदूत रखा गया है। नगरी इत्यादि के वर्णन में मेघदूत जैसा ही तारतम्य है। काव्य का दृष्टिकोण धार्मिक और ज्ञानपरक होते हुये भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि यह काव्य जैन धर्म से ही संबद्ध है। शिष्य ने अपने गुरु के लिये 'श्री सूरिन्द्रा' और 'श्री सूरेश्वर' जैसे विशेषणों का प्रयोग किया है तथा श्लोक सं० ६८^१ और ७१^२ में जैनधर्म का उल्लेख किया है, अतः यह कहा जा सकता है कि यह किसी जैन कवि की ही अभिन्न रचना है।

१ श्रीमान् श्रेय प्रतति सुमग सत्फल प्राप्तिहेतु
स्फारोदारामपरिणतो जैनधर्म क्षमाभृत् ॥६८॥

२ सम्यग्धर्माधिगमसजुषा शासन जैनचन्द्र
सिम्नन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीप दधुग्म् ॥७१॥

मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में कही गईं उक्तियों को बड़े कुशल ढंग से शान्ति और भक्ति के वातावरण में प्रयुक्त किया गया है। मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है -

भित्तुऽसद्यः विशलपपुटान् देवदारुद्रुमाणा
ये तत्क्षीरं स्रुतिसुग्भयो दक्षिणेन प्रवृत्ता ।
आलिङ्ग्यन्ते गुण्यति मया ते तुषाराट्टियाता
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमैभिस्तवेति ॥२०६॥

इस कथन को लेकर चेतोदूत में साधु महात्माओं के सपर्क की परिश्रमा बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त की गई है -

धन्या मान्या विनयनिग्ता ज्ञानसम्पत्समृद्धा
पुरयामानं नुगुणनिधय साधवो ये मिलन्ति ।
आलिङ्ग्यन्ते प्रणयसुभ्रमं ते मयाऽति प्रमोदात्
पूर्वं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमैभिस्तवेति ॥२०६॥

यक्ष अपनी प्रेयसी की अद्वितीयता बतलाते हुए कहता है -

श्यामाम्बुग चकित हरिणी प्रेक्षणे दृष्टिपान
यक्षप्रच्छाया शशिनि शिपिना बर्हभारेषु यशान्
उपश्यामि प्रतनुषु नदीर्षाचिषु भ्रूजिलामान्
दन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते चगिडं सादृश्यमस्ति ॥२०७॥

चेतोदूत में गुरु की प्रसन्नि के सम्बन्ध में भी ऐसे ही समानांतर भाव व्यक्त किये गये हैं। शिष्य कहता है -

श्रीदार्यं स्वस्तरुद्रं गमना मेऽशौभे गुणितं
सौन्दर्यं वा शरदिजयिषी शीतलं नुधापाम् ।
वप्रेक्षेऽनं जगदनुषमं द्रष्टुकामं स्वरूपम्
दन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते श्री सादृश्यामि ॥ २०८ ॥

यक्ष ने अपनी प्रेयसी के लिये कहा ही है -

श्यामालिख्य प्रणयसुपिना धानुरागी शिलापाम्
वप्रेक्षेऽनं जगदनुषमं द्रष्टुकामं स्वरूपम्
दन्तैकस्थं क्वचिदपि न ते श्री सादृश्यामि ॥ २०९ ॥

इसी प्रकार शिष्य भी प्रसन्नि के सम्बन्ध में कहता है -

वृत्तोदारो हृदयसदने कल्पनातल्पगा त्वा
 कृत्वा यात्रभस विवश किञ्चिदिच्छामि षकम् ।
 तावद्द्वेषाद्द्रुतमुपनता मूढता वाघते मां
 क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगम नो कृतान्त ॥११७॥

इस श्लोक में भी कालिदास की कल्पना के समान ही बड़ी कोमल कल्पना की गई है।

गुरु की प्रसक्ति के विरह में शिष्य भी इतना व्याकुल है जितना कि कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के विरह में व्याकुल हो सकता है। शिष्य प्रसक्ति से कहता है -

प्राणाधारस्त्वमसि द्युते तद्विना संगम ते
 प्रत्यर्थाव व्यथयति भृश मेऽघपूरं कृश माम् ॥११०॥
 यत्रो यद्दुर्भवति विरहाच्चक्रवाकोऽतिशोका
 क्रातस्यान्तोऽहकमपि तथा सर्वथाऽप्यस्मि दुःखी ।
 कान्ते । तन्मे न खलु हृदये सौख्यलेश कदाचित्
 सकल्पे स्नैरिंशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गं ॥११२॥

तिष्ठन् गच्छन् स्वयमुपविशन् वाऽपि जाप्रत्यपन्ना
 गाढ दुःखी सप्रियशमना ध्यायति त्वत्प्रसत्तिम् ॥१०४॥

मेघदूत में प्रसगान्तर में आई हुई पत्निया यही कुशलता से दूसरे प्रसग में इस काव्य में विनियुक्त कर दी गई हैं। यक्ष ने अपने घर के पास बालमन्दार वृक्ष के होने का उल्लेख किया है। चेतोदूत में गुरु का वर्णन करते हुये शिष्य कहता है -

स्निग्धच्छाय सुपरिकरित साधुपात्रैरमात्रै
 मंगल्यधीरभिमतफलश्लाघनीयस्त्वमेव ।
 विश्रामार्थं जगति विधिना निर्मित शर्महेतु
 हस्तप्राप्यस्तयकनमितो बालमन्दार वृक्ष ॥२५॥

गुरु को बाल मन्दार वृक्ष का रूपक देकर कवि ने उनकी उदारता की बड़ी सुन्दर व्यंजना की है।

मेघदूत में यक्ष अपनी विरहिणी प्रेयसी के लिये -

'साध्रं ऽक्षीय स्थलकमलिनीं न प्रयुजा नसुताम्' कहता है। चेतोदूत में कवि ने यही पंक्ति मत्त की बुद्धि के लिये प्रयुक्त की है -

गाढोद्वेगप्रभयअडतायोगतो मुद्रितत्यम्
 तत्प्राप्त्याशाजनितपरमानन्दत स्मेरमायम् ।

आविभ्राणा स्फुरति नियत साम्प्रतं तस्य युद्धिः
साऽभ्रे ऽह्नीय स्थलकमलिनी न प्रमुखा न सुप्ता ॥१०६॥

मेघदूत में अपनी विरहिणी प्रेयसी के नेत्र को लेकर यक्ष कहता है—

रुद्धापागप्रसरमलकैरजनस्नेह शून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूयिलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शके मृगाद्या
ग्नीनक्षोभाच्चलकुचलयध्रीतुलामेप्यतीति ॥

चेतोदूत में यही उपमा बड़े कौशल के साथ शिष्य से सज्ज कर दी गई है—

आशाबद्धो गमयति दिनान् दैन्यवानेव साक्षा-
त्तस्य स्यामिन् ! यदि न भविता सगमस्त्वत्प्रसक्ते ।
स स्तोकाग्भ स्थितशफरिबेयातिदु खानिरेका-
ग्नीनक्षोभाच्चलकुचलयध्रीतुलामेप्यतीति ॥

इस प्रकार विभिन्न उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि कवि को समस्यापूर्ति में पर्याप्त सफलता मिली है। लेखन शैली तथा विचार-तारतम्य इत्यादि में मेघदूत की छाया होन पर भी विषय की नवीनता तथा पुराने धातावरण में नये भावों का समा-यश करने के कारण हम इस काव्य को मौलिक माने बिना नहीं रह सकते। काव्य में परोपकार, कठणा और अहिंसा आदि पूत भावनाओं पर कवि ने बड़ा जोर दिया है। इस प्रकार काव्य-गुणों के साथ-साथ एक धार्मिक ग्रन्थ की भी विशेषतायें इस काव्य में पाई जाती हैं। अप्रत्यक्ष रूप से यह काव्य यह शिक्षा भी देता है कि भक्ति के क्षेत्र में मनुष्य तभी सफल हो सकता है जब यह सासारिक प्रेम की तरह भग-वान् व प्रेम में वैसा हो व्याकुल हो जाये। लौकिक प्रेम की तीव्रता के समान भगवत्प्रेम में भी तीव्रता होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त गुण की एपादष्टि का होना भी अत्यन्त आवश्यक है। गुण की एपादष्टि का प्रभाव बतलाते हुये कवि ने कहा ही है—

चिन्तार्ताखिलसुमकरां त्यज्यसति दुरापा
प्राप्य स्वयं परिमितसुखं च सर्माहेत विद्वान् ॥२१॥

लेखक अपने काव्य की रचना में गुण की एपादष्टि को ही प्रमुख कारण मानता है। इसने काव्य के अन्त में कहा है—

सन्धि धीमत्परमगुरव्यं सर्पदाऽपि प्रसन्ना
स्तोषा शिष्यं पुनरनुपमान्यन्तमक्तिप्रणुन ।
तमादात्न्यादपि जडमति मेंघदूतान्यपाद
चेतोदूतामिधमभिनव काव्यमेतद् व्यद्यत् ॥११॥

काव्य के अनुशीलन से यह प्रत्यक्ष ही है कि मेघदूत के शृंगार-रस पूर्ण वातावरण से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा से शान्त रस के एक सुन्दर सदेश काव्य की सृष्टि कर दी है। समस्यापूर्ति होते हुये भी काव्य में प्रसादगुण है। भाषा प्रवाहमय है। भाव भी बड़े सुन्दर हैं। मनोरजन के साथ साथ यह काव्य पाठकों में धार्मिक अभिरुचि भी उत्पन्न करता है^१।

विनय-विजय गणि का इन्दुदूत (वि० अष्टादश शतक का पूर्वार्ध),

श्री विनय विजय गणि का सत्ता समय वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध तथा अष्टादश शतक का पूर्वार्ध है। यह वैश्य वंश के थे।^२ इनके पिता का नाम श्रेष्ठिंज पाल था। इनके जीवन के सम्बन्ध में व्यवस्थित रूप से कहीं भी कुछ नहीं लिखा है। फिर भी संस्कृत, प्राकृत और गुजराती भाषाओं में लिखे गए इनके अनेक ग्रन्थों की प्रशस्ति से इनके सम्बन्ध में बहुत कुछ जानकारी प्राप्त होती है।

जिस समय इन्होंने दीक्षा ली थी, उस समय तपोगच्छ में महारकाचार्य श्री विजयदेवसूरि का शासन चल रहा था। उसके बाद श्री विजयसिंह मूरि का शासन चला। तदनन्तर श्री विजयप्रभसूरि का शासन प्रारम्भ हुआ। इन विजयप्रभसूरि से ही श्री विनय विजय गणि ने दीक्षा ली थी। लगभग ५० वर्ष तक यह विविध ग्रन्थों की रचना करते रहे। इनका सम्पूर्ण जीवनकाल ७५ वर्ष के लगभग रहा होगा। यह प्रायः गुजरात में ही च्यतुर्मान्य बिताते थे। कभी कभी मारवाड़ और मालवा में भी रह जाते थे। इन्होंने वि० स० १७३८ के आस पास श्रीपालरास नामक काव्य लिखना प्रारम्भ किया। इस काव्य को लिखते लिखते इनका स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर उस समय के महान् तार्किक और इन के विश्वासपात्र हार्दिक मित्र श्री यशोविजयजी महाराज ने इस ग्रन्थ को पूर्ण किया। श्री विनय विजय गणिजी हस्त लेख की कला में भी बड़े प्रवीण थे। अपने गुरु के लिखे हुये विचार-रत्नाकर नामक ग्रन्थ को इन्होंने बड़े सुन्दर अक्षरों में लिखा है। ग्रह प्रतिलिपि वि० स० १६६० की लिखी हुई मानी जाती है। इनके गुरुमार्ह श्रीकान्तिविजयजी ने यहीदा के महार में इसकी स्थापना कराई थी।

^१ जैन आत्मानन्द सभा, भायनगर से वि० स० १९७० में प्रकाशित।

^२ क्योंकि इनके पिता के नाम के साथ श्रेष्ठि शब्द लगा हुआ मिलता है।

इन्दुदूत काव्य भी श्री विनय विजय गण्डि का ही लिखा हुआ है। काव्य के प्रथम श्लोक -

श्री पूज्याना गुरुगुणरतामिन्दुदूत प्रभूतो
दन्त लेख लिखति विनयो लेखलेखानतानाम् ॥१॥

से पता चलता है कि लेखक का नाम विनय है तथा निम्न श्लोक -

शिष्योऽणीयान् विनयविजयो द्वादशवर्तभाजा
विशतिं व्याहरति महता बन्दनेनाभिरन्ध ॥२६॥

से प्रतीत होता है कि लेखक का नाम विनय विजय है। हैम-लघु प्रक्रिया, लोकप्रकाश, कल्पसूत्रसुयोधिका तथा श्रीबाल चरित इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता, उपरश षष्ठ के तेजपाल के पुत्र और तपोगच्छ के विजय प्रभु सूत्रि के शिष्य विनय विजय तथा इन्दुदूत काव्य के लेखक विनयविजय दोनों एक ही व्यक्ति हैं। अतः इन्दुदूत काव्य का रचनाकाल वि० सं० १७३४ अथवा इससे कुछ पूर्व हो सकता है। इस काव्य में वस्तुपाल के चैत्य और प्रासादों का उल्लेख पाया जाता है -

(अर्घुदाचले)

तत्र श्रीमान् विमलयसती भाति नाभेयदेव'
सेवायत्तप्रिदशनिकर' पूर्णपादोपकण्ठ' ।
नेमिन्शर्मा दिशति च शिवान्यानताना निधिष्ट'
साक्षादिन्द्रालय इव धरे वस्तुपालस्य चैत्ये ॥१३॥

रूप्यस्त्रच्छोपलदलमयी चित्रदोत्कीर्णचित्रो
चचच्चन्द्रोदय चयचिती करिपतानरूपशिल्पी ।
जीयास्ता ती विमलनूपते धस्तु पालस्य चोच्चो
प्रासादो ती स्थिरतरप्यशोरूपदेहायिष्य द्वौ ॥१४॥

यद् वस्तु पाल ढोलका (गुजरात) के राजा वीर धवल का मन्त्री ही है। अतः किसी भी ग्रन्थ में ई० प्रयोदश शतक से पूर्व की तो यह रचना हो ही नहीं सकती।

सगर्व ने अपने गुरु को श्री तप-गणपति कहा है। चन्द्रमा को संबोधन करते हुए यह कहता है -

बन्देया' श्री तप-गणपति सार्वभैरवगुणीनं
पीन पुण्यप्रमथमुद्धर्तनन्दन ! त्वं लभेया ।

प्राच्यै पुरायै फलितेमतुलैस्तोत्रयकीनै सुलब्ध
जन्मैतत्ते नभसि च गतिर्भाषिनी ते कृतार्था ॥१२१॥

अतः यह स्पष्ट ही है कि लोक प्रकाश इत्यादि ग्रन्थों के रचयिता की तरह इन्दुदूत का रचयिता भी तपगण का अनुयायी है तथा यह दोनों लेखक एक ही व्यक्ति हैं और इन्दुदूत काव्य वि० स० १७३४ या स० १६७८ ई० का लिखा हुआ है। इन्दुदूत काव्य के अतिरिक्त लगभग ३५ अन्य रचनायें भी संस्कृत, प्राकृत तथा गुजराती भाषा में इनकी लिखी हुई पाई जाती हैं। संक्षेप में उनका परिचय इस प्रकार है -

अंक	नाम	भाषा	काल	स्थान
१	आनन्द लेख	संस्कृत	१६६४ धनतेरस	—
२	श्री कल्पसूत्र सुयोधिका	संस्कृत	१६६६ जे० शु० २	—
३	श्री विजयदेवसूत्र विज्ञप्ति	संस्कृत प्राकृत	१७०५ धनतेरस	देवपत्तन । प्रभासपाटन
४	लोक प्रकाश	संस्कृत	१७०८ वै० शु० ५	—
५	हैमलघुप्रक्रिया	संस्कृत	१७१० विजयदशमी	राधनपुर
६	शान्त सुधारस	संस्कृत	१७२३	गाधार ।
७	जिन सहस्र नाम स्तोत्र	संस्कृत	१७३१	—
८	हैम प्रकाश	संस्कृत	१७३७ विजयादशमी	रतलाम
९	नयकणिका	संस्कृत	—	दीनयदर
१०	पद्म त्रिशत्-जटपसप्रह	संस्कृत	—	—
११	अहैन्मस्कार स्तोत्र	संस्कृत	—	—
१२	श्री आदि जिन-स्तवन	संस्कृत	—	—

इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य रचनायें गुजराती भाषा में लिपी हुई हैं। उनमें श्रीपाल रास (१७३८) ही विशेष रूप से उल्लेखनीय है। समग्र ही कि संस्कृत प्राकृत के उपर्युक्त ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी इन्होंने लिखे हैं।

काव्य की कथा

श्री विजय प्रभू श्रीशंकर महाराज सूर्यपुर (सूरत) में चानुर्मास बिताने हैं। उनकी आज्ञा से उनके शिष्य श्री विनय विजयगणेशी मारवाड़ में जोधपुर नगर में चानुर्मास बिताने के लिये आ जाते हैं। चानुर्मास के अन्त में माद्रपद पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा को देखकर उनका विचार होता है कि उसके द्वारा अपने गुरु के पास वे अपना सावत्सरिक द्वापण सन्देश और अभिषन्दन भेजें। चन्द्रमा को दूत कार्य में नियुक्त करने से पूर्व वे उसका स्वागत करते हैं, उसकी कुशलवार्ता पृष्ठत हैं

और फिर उसकी तथा उसके सवधियों समुद्र, पारिजात, लक्ष्मी और रात्रि इत्यादि की भी प्रशंसा करते हैं। अन्त में वे उससे सूर्यपुर (सूरत) जाने और वहाँ पहुँचकर अपने गुरु धीतपगणपति को अपनी विद्वति सुनाने के लिये कहते हैं।

इस प्रसंग में जोधपुर से सूरत नगर तक का मार्ग काञ्च में वर्णित किया गया है। चूँकि जोधपुर से सूरत दक्षिण की ओर है, इसलिये चन्द्रमा को दक्षिण की ओर जाने का परामर्श दिया गया है। जोधपुर से चलकर सुयर्णाचल पर्यंत पर कुछ विभ्राम करने और वहाँ श्री महादेवजी तथा श्री पार्श्वनाथजी के मन्दिरों में उनकी पूजा करने के बाद जालन्धर नगर (जालोर), धीरोहिणी नगरी (सिरोही) और वहाँ के जैन मन्दिरों को देखते-देखते अर्जुदाचल (आषू पर्यंत) पहुँचने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

अर्जुदाचल पर्यंत पर स्थित श्री ऋषभदेव और श्री नेमि स्वामी के मन्दिरों तथा विमल रूपनि और वस्तुपाल के प्रासादों को देखने के बाद निकट में ही स्थित अचल दुर्ग (पर्यंत) जाने तथा इसके कुछ नीचे श्री कुमारपाल राजा के द्वारा निर्मित जिनगुह में पूजा करने और अर्जुद पर्यंत की सैर करने का चन्द्रमा को परामर्श दिया गया है।

इसके बाद सरस्वती नदी के तट पर बसे हुए सिद्ध द्रग (सिद्धपुर) में कुछ समय विभ्राम कर साधर्मती (साधरमती) नदी के तट पर स्थित राजद्रग (ब्रह्मदा) बाद) जाने के लिये चन्द्रमा से कहा गया है।

तदनन्तर फिर दक्षिण की ही ओर आगे बढ़ने पर पटपद्र पुर (बड़ौदा), भृगुपुर (भरौच), नर्मदा नदी और तापी नदी होते हुए चन्द्रमा के सूर्यद्रग (सूरत) पहुँच जाने का उल्लेख किया गया है। सूरत नगर के समय का वर्णन करने के बाद कवि ने वहाँ के गोपीपुर नामक स्थान, धायकों के विद्यामलय तथा वहाँ के व्याख्यान मण्डप और ध्याख्यान-पीठ का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसके बाद इन्द्रामन के समान अनुपम सिंहासन पर विराजमान श्री तप-गणपति महाराज श्री विजय-प्रममुरि की प्रशंसा करते हुए कवि ने चन्द्रमा से उनकी पन्ना करने का अनुरोध किया है। गुरु घरणों के दर्शन से चन्द्रमा के सारे दोषों और कष्टों के नष्ट हो जाने की आशंसा कर फिर कवि ने एकान्त में अभियन्दन-पूर्वक गुरु को अपनी विद्वति सुनाने के लिए चन्द्रमा से प्रार्थना की है। अपनी विद्वति में कवि कहता है—हे गुरुवर्य! इलादुर्ग (इहनाद) में आपके श्री घरणों के दर्शन के लिए मैं गया था। अर्थसक के लिए भी मैं आपका उपकार नहीं भूल सकता। आपने वही कृपा करके मुझे जो उपदेश दिया था, वह अब भी मुझे बड़ी प्रसन्नता दे रहा है और मेरी इन्द्रियों को संतुष्ट कर रहा है। मेरा विश्व आपके घरणों में आने के लिए अभ्यन्त उत्कण्ठित रहता है। संसार में निष्ठा को श्रेय माना जाता है और जागने को श्रेय गुण समझते हैं, लेकिन मुझे तो इसके विपर्यय निष्ठा ही बरही लगती है, क्योंकि

इसके द्वारा स्वप्न में आपके दर्शन तर भी हो जाते हैं। जब मैं जागता रहता हूँ तो आपका ही नाम जपता रहता हूँ। सोते समय भी मेरा मन आप में ही लगा रहता है। इस तरह दिन रात मैं आपका ध्यान करता रहता हूँ। आप अपनी प्रेम दृष्टि से मुझे अनुगृहीत करें ताकि मेरी समस्त प्रार्थनाएँ पूर्ण हो जाय।

साहित्यिक समीक्षा

इस सवेश काव्य में केवल १३१ श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा गया है। काव्य का पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी नहीं किया गया है। काव्य के अन्त में “इति श्री मेघदूतच्छाया काव्यमिन्दु-दूताभिध काव्यं समाप्तम्” ऐसा लक्षण मिलता है। इससे यह तो स्पष्ट ही है कि काव्य मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। लेकिन प्रक्रिया और छन्द में ही इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण पाया जाता है। काव्य का विषय बिलकुल नवीन है। मेघदूत में ऋगार रस की प्रधानता है। इस काव्य में शान्त रस प्रधान है। काव्य का नैतिक और धार्मिक दृष्टिकोण भी बहुत उच्च है। जालधर नगर (जालोर) में बेर्याओं की स्थिति बतलाते हुए कवि चन्द्रमा को उनसे दूर रहने का ही परामर्श देता है —

तस्मादासा युवजनपृषदुवागुराणामजश्य
दूरात्त्यागो भवति हि नृणा श्रेयसेऽमुत्र चात्र ।
तत्राप्यगीकृत निज सुहृद् व्याहते स्थादृशस्य
व्यासगो नोचित इति हित द्विस्त्रिरेतद् वदामि ॥४६॥

गुरु की महिमा और उदारता का भी कवि ने बड़ा उदात्त चित्र अंकित किया है। गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

स्फूर्जद् भाग्यान्कतिचन दृशा स्निग्धया लोकयन्तं
काश्चिच्चेषत्स्मित-कलनया स्वायतीन् प्रीणयन्त ।
पूर्वोपात्तास्खलितसुकृतध्रं णिसौभाग्यभाजं
काश्चिन्मौली करघटनया लब्धसिद्धीन् सृजन्तम् ॥११४॥

अर्हद्धम तनुभृमिमास्तोक-लोकोपकृत्यै
कौटल्य या विदितभुवन पु स्त्यरूपोपपन्नम् ।
प्रत्यक्षं या सुकृतनिचयं शासनस्यार्हतस्य
मूल नि श्रेयसपदतरोर्जगमं कल्पवृक्षम् ॥११६॥

इस प्रकार गुरु की प्रशंसा में कवि ने अनेक पद्य लिखे हैं।

चन्द्रमा के सयधियों की प्रशंसा में कवि ने बड़े सुन्दर विचार प्रस्तुत किए हैं। लक्ष्मी की प्रशंसा करते हुए कवि ने क्या ही सच्चे भाव व्यक्त किए हैं—

मूर्ध्नि प्राशीयति च कुत्तु कामरूपीयति द्रा
 म्दीन शूरीयति च कुटिल प्राजलीयत्यशयम् ।
 क्रूर शान्तीयति गतकल सत्कर्त्तव्यत्यजधम् ।
 लोकं सोऽयं जयति निखिलस्त्रदुभगिन्या प्रभाय ॥२३॥

रात्रि का भी कवि ने यदा सच्चा स्वरूप पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है ।

या ते (चन्द्रस्य) श्यामा सुभग ! दयिता वर्धयत्युग्र-लन्मी
 पक्वं पर्णं तुलयसि यया त्रिप्रयुक्तस्त्रमिन्दो ।
 साऽपि ध्रान्तं भुवनमखिल स्वम्पकर्मधमेण
 निद्रादानात् सुगपति सदाभीष्टविशयोपकारा ॥२४॥

रात्रि को चन्द्रमा की पत्नी माना जाता है । उसके विरह में चन्द्रमा को पके हुए पत्ते की तरह पीला बटा कर कवि ने उनके अनन्य प्रेम की व्यञ्जना की है ।

काव्य में स्थान-स्थान पर नदियों और नगरों का यदा सरस और समृद्ध चित्र प्रस्तुत किया गया है । सिद्धपुर के निकट बहती हुई मारम्यती नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

यथा कथापि प्रचुरतरले धानने कञ्चपूला
 कथापि क्रीडयुवनिनिकरैरप्सरसेधितेय ।
 सङ्घेपेय कथचन यिततैरम्परैर्धौतमुक्तै
 मुस्ताशुकन्यायलि रुचितरै कथाप्यलकारितेय ॥६६॥

प्रीणात्येवाऽखिलपुरजनान् सपयधानदाना
 दुत्संगमधान्यमपति च तान्केलि लीला विलोलान् ।
 दूरादालिगति च वितने-र्थाच्चि-दम्नै पुर्निते

॥६७॥

इसी प्रकार सूर्यद्वय (मूरत) नगर का भी कवि ने यदा भव्य वर्णन किया है—

¹ नीलचन्द्राय कथचिद्विरलै मांगपरली-लौघै
 शुभ्रचन्द्राय कथचन पुत्रुमेर्विम्लुनै विमयाय ।
 पिंगं चंगैरतिपरिलुनै कुत्र चिच्छुदुदुदु
 नानावर्णं पुरमिदमिति घोतते मर्षदाऽपि ॥६९॥

मूरत के जैन मन्दिरों को देखकर तो देवता भी चकित हो जात है—

पिलिपप्रच्छै रजितरिचि-प्रानेरविशा-रहयम्
 द्विगुत्तशयै धनकथचिने-रुग्णै-रैर्गर्नाथम् ।

दत्ताऽनन्द सहदयहृदा वृन्दमर्द्धदृग्दृहाणाम्
चित्रैश्चित्र क इह न जतो वीक्ष्य चित्रीपतेऽन्त ॥१०॥

यद्यपि काव्य का शान्त रस में पर्यवसान है, फिर भी यत्र तत्र शृंगारिक वर्णन भी पाये जाते हैं। राजद्रग (अहमदाबाद) की रमणियों का वर्णन करते हुए कवि चन्द्रमा से कहता है —

क्रीडाहम्य प्रियं सहं चरी प्रेरणाभिं प्रविष्टा ।
शय्योत्सग प्रणयचटुभिं प्रेयसा प्रापिताश्च ।
घ्रीडोद्ग्रेकाद् गृहमणिमुपाहृत्य कर्णोत्पलेन ।
कान्तोपान्ते तमसि कथमप्यासने या विमुग्धा ॥७०॥

राजद्रग की रमणिया घड़ी मुग्ध हैं। इसलिये कवि फिर चन्द्रमा को परामर्श देता है कि वह जाल मार्ग के द्वारा महलों में प्रकाश न करे —

मा कार्पास्त्विं तरुणकिरौजालमार्गप्रविष्टे-
स्तासा कान्तप्रसभ हृतसचचीयराणा प्रकाशम् ।
किं कुर्युं सरित्तुमनलभूषणवस्तास्त्रदशन
मोग्यादेयानवगतधवाक्ष्यजसवृत्युपाया ॥७१॥

इन पद्यों में राजद्रग की मुग्धा नायिकाओं का कैसा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

जैन विद्वान् की कृति होने के कारण काव्य में यत्र तत्र जैन धर्म का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। काव्य के आरम्भ में ही —

स्वस्तिश्रीणा मयनमयनीकान्त पक्ति प्रणम्यम्
प्रौढप्रीत्या परमपुरुष पार्श्वनाथ प्रणम्य ।

इस प्रकार श्री पार्श्वनाथजी की वन्दना की गई है। स्थान-स्थान पर जैन मन्दिरों का वर्णन किया गया है। काव्य के आकार को देखते हुए शिष्य का स्नेह तो बहुत थोड़ा ही है। परोपकार, सदाचार, धृष्टा और गुरुभक्ति इत्यादि सद्भावों पर यथा स्थान कवि ने बड़ा जोर दिया है। जीवन सम्बन्धी अपनी अनुभूतियों को भी कवि ने अर्थान्तरन्यास के रूप में पाठकों के समक्ष रक्खा है —

’ अलका की रमणियों भी कुछ ऐसी ही हैं।

- १ न श्रान्ताना सुखयति कथा स्नि धवमोदिताऽपि ।
स्वस्थे चित्ते प्रणयमधुरा युद्धयो द्युद्धभवन्ति ॥१७॥
- २ विश्व दोषान् गणयति जनो को हि रात्रो भगिन्या ॥३०॥
- ३ प्रोक्तु गाना भवति महतैरापनेयो विरोध ॥३५॥
- ४ पश्चात्तापस्तुदति हृदयं दर्शनीये ह्यदृष्टे ॥३६॥
- ५ कण्टप्राणा नहि विरहिण कृच्छ्रमीपत्सहन्ते ॥६८॥
- ६ स्वाधीय स्यात् कदशनमपि स्नेहधारोपसिक्तम् ॥१२॥

सम्पूर्ण काव्य के अनुशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि मेघदूत से वर्णन शैली और प्रक्रिया का सहारा लेकर कवि ने नितान्त नयीन विषय पर यह सन्देश नाव्य लिखा है। भाषा भी प्रसाद गुण से पूर्ण है। काव्य में सर्वत्र प्रसाद पाया जाता है। कवि की वर्णन शक्ति और उच्च विचारों से सन्देश काव्यों की परम्परा में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। जोधपुर, जालोर, सिरौही, आवू पर्यंत, सिद्धपुर, अहमदाबाद, वडोदा, भडोच और सूत जैसे विरपांत नगरों के मध्यकालीन वैभव पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। भारतवर्ष के इस भूभाग के भौगोलिक तथा सामाजिक अध्ययन के लिए इस काव्य की उपयोगिता को अस्वीकृत नहीं किया जा सकता।^१

श्री मेघ-विजय का मेघदूत-समस्या-लेख (वि० सं० १७७७)

श्री मेघ विजयजी जैन मुनि थे। यह अकबर बादशाह से जगद्गुरु की उपाधि प्राप्त करने वाले तथा वृहत्तपोगच्छ के नायक श्री कृपा विजयजी के शिष्य थे और श्री हरि-विजय-सूरेश्वर की शिष्य परम्परा में इनका पाचवा स्थान था। व्याकरण ज्योतिष, न्याय, धर्मशास्त्र और अध्यात्म इत्यादि के यह प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन विषयों पर लिखे हुए इनके ग्रन्थ विद्वत्समाज में बड़े आदर के साथ देखे जाते हैं।

१ श्री जैन साहित्यसंघके सभों, शिरपुरे (पश्चिमभारतदेश) से प्रकाशित।

सप्तसन्धान नामक काव्य से इनकी त्रिशष्ट कवि प्रतिभा का परिचय मिलता है। इस काव्य में एक साथ सात कथानक सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में वर्णित किए गए हैं। देवतन्दाभ्युदय नामक सात सर्गों के काव्य में त्रिजय देव-सूरि का जीवन वृत्त का इन्होंने वर्णन किया है। वि० स० १७२७ (ई० स० १६२१) में इस काव्य की रचना की गई।^१ शान्तिनाथ चरित में इन्होंने शान्तिनाथ का जीवनचरित वर्णित किया है। इन दोनों काव्यों में शिशुपाल वध और नैपथीय से पक्तियों लेकर समस्या-पूर्ति की गई है। उदाहरणार्थ निम्न श्लोकों को देखिए —

श्रियामभिव्यक्तमनोऽनुरक्तता विशालसालत्रितया श्रिया स्फुटा ।
तया यभासे स जगत्त्रयीभिर्भुज्जलत्प्रतापावलि कीर्तिमण्डल ॥

। नैपथ) निपीय यस्य क्षितिरक्षिण कथा सुग सुराज्यादिमुख यहिर्मुक्षम् ।
प्रपेदिरेऽन्त स्थिरतन्मयाशया सदा सदानन्दभृत प्रशसया ॥
यथा श्रुतस्येह निपीततत्त्रयास्तथाद्रियन्ते न बुधा सुधामपि ।
सुधाभुजा जन्म न तन्मन प्रिय भवेद्भवे यत्र न तत्कथाप्रथा ॥

सप्त-सन्धान महाकाव्य में श्री मेघविजयजी ने प्रत्येक पद्य में वृषभनाथ, शान्तिनाथ, पार्श्वनाथ, नेमिनाथ, महावीर-स्वामी, कृष्ण और बलराम इन सात महापुरुषों का जीवन-वृत्त एक साथ ही वर्णित किया है। प्रथम पांच महापुरुष तो जैनियों के तीर्थंकर हैं। इस काव्य में सरल और प्रवाहपूर्ण भाषा में अनेक कथानक वर्णित किए गए हैं। कवि ने इस काव्य द्वारा संस्कृत भाषा की महान् वर्णन शक्ति का पाठकों को परिचय दिया है। उदाहरणार्थ—

अवनिपतिरहासीद्विश्रसेनाश्रसेनाभिधदशरथनाम्ना य सनाभि सुरेश ।
बलि त्रिजयिसमुद्र प्रौढसिद्धार्थसङ्घ प्रसृतमरणतेजस्तस्य भूकच्छपस्य ।।१४४।

आचार्य हेमचन्द्रजी के संरंध में कहा जाता था कि उन्होंने सप्त सन्धान नामक एक काव्य लिखा था, लेकिन चू कि यह खो गया था, इसलिए मेघ विजयजी ने इस ग्रन्थ की रचना की। मेघविजयजी ने स्वयं लिखा है—

श्री हेमचन्द्र सूरीशै सप्तसन्धानमादिमम् ।
रचित तदलाभे तु स्याद्विद तुष्टये सताम् ॥

द्विजय महाकाव्य में भी तेरह सर्गों में त्रिजयप्रभसूरि का जीवन वृत्त इन्होंने वर्णित किया है। युक्ति प्रबोध नामक एक Allegorical नाटक भी इन्होंने लिखा है। इसमें अपने समकालीन कुछ विरोधी दार्शनिक सिद्धान्तों का इन्होंने खण्डन किया है।

१ यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस से इसका कुछ अंश प्रकाशित हुआ है।

मेघदूत समस्या लेख भी इन्हीं का लिखा हुआ है। मेघदूत के पदों की अतिम पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है। यद्यपि इस काव्य में कहीं भी लेखक के गुरु का नाम तथा उसका रचना काल नहीं उल्लिखित है, फिर भी काव्य के अतिम श्लोक से कवि के सवध में हमें कुछ ज्ञान अग्रश्य प्राप्त होता है। वह श्लोक इस प्रकार है —

मात्रकाव्य देवगुरोर्मैदूत प्रभप्रभो
समस्यार्थ समस्यार्थ निर्ममे मेघपरिडत ॥१३१॥

इस श्लोक के प्रथम और द्वितीय चरणों से यह सिद्ध होता है कि विजयदेव-सूरि के जीवन वृत्त को लेकर लिखा गया समस्यापूर्तिपरक माघकाव्य तथा विजय-प्रभसूरि के लिए विज्ञप्ति स्वरूप लिखा गया मेघदूत समस्यालेख दोनों ही एक कवि की रचना हैं। तदनन्तर जब हम मात्रकाव्यसमस्यापूर्ति काव्य की प्रशस्ति में आप हुए निम्न श्लोकों को देखते हैं —

तत्सेवासक्तचेता अनन्तरतया प्राप्त लक्ष्मीर्षिषिष्य
शिष्य श्रीमन्कृपादेर्विजयपदभूत सत्सर्वैर्वाचकश्री ।
मेघ पद्मप्रसादाद्विशदमनिजुषा धाव्यकाव्य चकार
देवानन्द मदैन्द्रोज्ज्वलत्रिपुलधिया शोध्यता शोध्यमत्र ॥
मुनिनयनाश्वेन्दुमिते १७२७ वर्षे हपेण सादडीनगरे ।
ग्रन्थ पूर्ण समजनि विजयदशम्यामिति श्रेय ॥

तत्र ज्ञात होता है कि श्री मेघविजयजी श्री कृपाविजय मुनि के शिष्य थे तथा वि० अष्टादश शतक में विद्यमान थे। यों तो जैन मुनियों का कोई निवास स्थान नहीं, पर उपर्युक्त श्लोक से यह प्रतीत होता है कि यह मारवाड़ में सादडी नामक नगर में रहा करते थे। इनके प्रगाढ पारिडत्य के कारण ही इन्हें महामहोपाध्याय कहा जाता रहा है।

काव्य की कथा

इस काव्य में कवि ने देवपत्तन में स्थित अपने गुरु तपगणपति श्रीमान् विजय प्रभसूरि के पास मेघद्वारा कुशलवार्ता इत्यादि का सन्देश भेजा है। काव्य की कथा इस प्रकार है। श्री मेघविजयजी अपने गुरु श्री विजयप्रभुजी के आदेश से नन्परग पुरी (औरंगाबाद) में ज्येष्ठ मास में अपना चतुर्मास्य प्रारम्भ करते हैं। भाद्रपद मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी आते २ गुरु के चिरविद्योग से उनका हृदय व्यथित हो उठता है। इसी अवसर पर आकाश में उड़ते हुये मेघ को देखकर उन्हे वे अपना सन्देश लेकर देवपत्तनस्थित अपने गुरु के पास भेजते हैं। इस प्रसंग में औरंगाबाद से देवपत्तन [गुजरात] तक का मार्ग यही सरस रीति से वर्णित किया गया है। सर्व प्रथम मार्ग

मैं आने वाले श्री शान्तिनाथ के मंदिर में पूजा करने का मंत्र को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर औरंगाबाद नगर का बड़ा समृद्ध वर्णन काय में पाया जाता है। औरंगाबाद में पूर्व की ओर देवगिरि नामक पर्वत पर पहुँचने के बाद देवगिरि नामक नगरी की शोभा देखने के उपरान्त पल्लोर पर्वत पर जाने का मेघ को आदेश दिया गया है। पल्लोर पर्वत पर श्री पार्श्वनाथजी की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर मार्ग में तु गिआ नामक पर्वत के मिलने का उल्लेख किया गया है। यहाँ पर मेघ को किसी भ्रमणवृत्त को प्रणाम करने का आदेश दिया गया है। आगे बढ़ने पर मार्ग में श्रीसूर्याख्य किसी मन्दिर का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर तापी नदी, भृगुपुर, नर्मदा नदी और मही-नदी को क्रमशः पार करने के बाद हगिगृ नामक नगर में मेघ के पहुँचने का वर्णन है। यहाँ से समुद्र तटवर्ती पर्वतशिखरों में कुछ विश्राम करने के बाद पश्चिम दिशा की ओर सिद्धशैल (शत्रु जय नामक जैनतीर्थ) नामक पर्वत पर पहुँचने का मेघ को आदेश दिया गया है। यहाँ पर श्री शत्रुजय तथा भगवान् वृषभदेव की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर मेघ के द्वीपपुरी (द्वीपपत्तन) पहुँच जाने का उल्लेख किया गया है। इस द्वीपपुरी में ही कवि ने अपने गुरु का आश्रम बताया है। इस अवसर पर गुरु के प्रताप, सयम और ब्रह्मचर्य व्रत का बड़ा प्रभावपूर्ण वर्णन किया गया है। 'प्रसंगश' गुरु के जीवन वृत्त पर भी कवि ने कुछ प्रकाश डाला है। कवि ने लिखा है कि भारतवर्ष में कच्छ देश बड़ा ही रमणीय प्रदेश है। यहाँ पर श्रीमनोरम्य नामक एक बहुत ही सुन्दर नगर है। वहाँ पर शिरगुण नामक एक मेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम भाणी था। कालान्तर में उनके एक समग्र गुणयुक्त तथा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुआ। उमरा नाम उन्होंने वैरिसिद्ध रंग लोहा था। बड़े होने पर श्री विजयदेवसुरि के उपदेश को सुनकर उसे विगम्य हो गया। उसने मातासे व्रत में दीक्षित होने की आज्ञा मागी। माता अपने पुत्र के इस आश्रमिक विचार को देखकर बड़ी व्यथित हुई। माता की असह्य वेदना को देखकर पुत्र ने अपना विचार स्वगित कर दिया। तदनन्तर माता पिता के स्वर्गवास हो जाने पर उसने स्वयं दीक्षा ग्रहण कर ली। तदर्थ उनके गुरु ने वि० सं० १७१० वैशाख शुक्ल दशमी को गन्धपुरी में उन्हें गच्छ का नायक बना दिया। यही श्री विजयप्रभुस्वामी हैं। इनके आश्रम में निरन्तर श्राध्याय, व्रतचर्या और करपाठ इत्यादि चलता ही रहता था। श्रावक सद्यः निरन्तर धर्मचर्या में इनके आश्रम में लीन रहता था। इस प्रकार गुरु के जीवन वृत्त, महिमा और आश्रम का वर्णन करने के बाद मेघ से कवि ने गुरु को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है।

सन्देश में कवि ने सर्व प्रथम गुरु के प्रताप का वर्णन किया है। तदनन्तर गुरु के वियोग में अपनी व्याकुलता और असहायवस्था का वर्णन किया है। अन्त में गुरु से प्रार्थना की गई है कि वह अथवा कब आया जाय ध्यान मुद्रा के साथ वह गुरु की साक्षात् स्तुति कर सकेगा। फिर कहा गया है कि बचपन से ही गुरु की

सेवा करने वाले शिष्य की केवल इतनी ही विनती है कि उसे गुरु के हृदय में कुछ आश्रय मिल जाय ।

गुरु को सन्देश सुनाने के बाद गुरु से कुछ प्रत्युत्तर लाने का भी मेघ को पगमर्श दिया गया है ।

कवि की प्रार्थना सुनने के बाद मेघ उसके गुरु के पास जाता है और कवि का सन्देश सुनाता है । तदनन्तर गुरु के प्रतिसन्देश को लेकर वह लौट आता है और कवि को उसके गुरु का प्रतिसन्देश सुनाता है । गुरु की कुशलवार्ता तथा कृपादृष्टि का समाचार पाकर कवि की बड़ी प्रसन्नता होती है ।

यस यहाँ पर ही काव्य समाप्त हो जाता है ।

काव्य समीक्षा

जैसाकि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मेघदूत की समस्यापूर्ति की गई है । मेघदूत के पद की चतुर्थ पंक्ति को समस्या मानकर यह काव्य लिखा गया है तथा साथ में मेघ को दूत भी बनाया गया है । अतः दूतकार्य तथा समस्या पूर्ति इन दोनों दृष्टिकोणों से यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है । काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं । अंतिम श्लोक अनुष्टुप् छन्द में है । इसमें कवि ने लेखक के रूप में अपना उल्लेख किया है । अवशिष्ट १२० श्लोकों में काव्य की कथा उपनिबद्ध है । पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गया है । यों तो भाषा तथा शैली की दृष्टि से यह मेघदूत का ही अनुकरण है, लेकिन विषय तथा भाव की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से नितान्त भिन्न है । किसी प्रिय का अपनी प्रेयसी के लिए सन्देश न होकर इस काव्य में एक भक्त शिष्य द्वारा अपने श्रेय गुरु के पास सन्देश भेजा गया है । काव्य का मुख्य रस अथवा भाव भक्ति ही है ।

जिस तरह मेघदूत में मेघदर्शन, मेघ स्वागत, सन्देश ले जाने की प्रार्थना और मार्ग प्रर्णन इत्यादि पाया जाता है, ठीक उसी तरह इस काव्य में भी यही वर्णक्रम कवि ने रक्खा है । मेघदूत में मेघ के सम्बन्ध में कहा गया है —

धूमज्योति सलिल मरुता सन्निपात क्व मेघ
सन्देशार्था क्व पटुकर्णै प्राणिभिः प्रापणीया ॥

इसी तरह इस काव्य में भी मेघ को दूत बनाते समय कवि कहता है—

कथाय प्राय पथनसलिलज्योतिषा सन्निपात
कथार्थश्चायं प्रवणकण्ठै यो विधेय स. यं ॥५४॥

बड़ा भाव तथा भाषा दोनों में ही बड़ी समानता है। जिन प्रकार उज्जयिनी नगरी का मेघदूत में बड़ा उदात्त वर्णन किया गया है, उसी तरह श्रीरगावाद् का भी कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया है। कवि मेघ से कहता है —

धन्योऽसि त्व जलद पटले ! दक्षिणस्या प्रविश्य
दृष्ट येन प्रवरनगर सारमेतज्जगत्या ।
मुन्ते भाग्ये भुवि नु मरता देवशैलादुद्विधाऽपि
शेषे पुण्यैर्ह तमित्र दिव कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥३२॥

अगो चलकर श्रीरगावाद् की समृद्धि का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अस्या मुकामरकतपविश्रीप्रसूनेन्दुरत्न
पूगान् दृष्ट्वा तरणिशरितो श्रान्तकान्तिस्वरूपान् ॥
पण्यथ्रेणीविपणिगणितान् विद्रु मच्छेदराशीन्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्राशेषा ॥३४॥

देवकपत्तन नगर के वर्णन में भी अलका के वर्णन की छाया दिखालाई पड़ती है। कवि नगर का वर्णन करते हुए कहता है—

दण्डश्चेत्ये कुसुमनिचये बन्धन त्रिप्रयोगो
दातुर्द्वारे चलकुटिलता सुभ्रु धोर्नान्य लोके ।
कोशासक्त्या ह्यगुरुदहनो द्यूतधूमस्य मन्ये
विच्छेशाना न खलु च वयो यौवनादन्यदस्ति ॥३३॥

अलका नगरी का जिस तरह शृ गाररसपूर्ण वर्णन किया गया है, उसी तरह इस नगर का भी शृ गार रस-युक्त चित्र अंकित किया गया है—

राश्री यस्या कथमपि सम्रातीय संचारिकाभि
यासावास प्रणयिसत्रिधे स्थापिता या नशोदा ।
तासा भोगादरिणि (१) रमणे दीपमुद्दिश्य मुक्तो
ह्रीमूढाना भवति विफलप्रेरणश्चूर्णमुष्टि ॥३४॥

अलका नगरी की तरह देवकपत्तन नगर में भी रात्रि में अभिसारिकाय अपने प्रियतमों के पास जाती हैं —

कामादेशाद्गमनसमयऽलक कथकपाद
न्यासैर्वासैर्मृणुसुखणालेपनै धंत्र भित्ती ।
मुक्ताक्षरम्यो विलुलितकणै कंकणै शीर्णैरन्यै
नरो मार्गं सयितुददये सूच्यते कामिनीनाम् ॥३६॥

जिस प्रकार मेघदूत में यज्ञ के यहा वापी इत्यादि का वर्णन किया गया है, इसी प्रकार देवपत्तन नगर में भी तडाग और वापिया वर्णित की गई हैं—

सिन्धोस्तत्रानुज इव लसद्दीचिगामास्तडाग
उद्यानान्तस्तरणयसो दीर्घिकास्तस्य कान्ता ।
सासा चचन्नयननलिनैर्माहिता मानसाम्भो
न ध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्यामपि प्रेक्ष्य हसा ॥२१॥

इस प्रकार विश पाठक देख सकते हैं कि समस्या पूर्ति के साथ २ कवि ने मेघदूत के मूल भाग को भी स्थान २ पर सुगन्धित रक्खा है ।

कहीं २ कवि ने शृ गार रस के वातावरण की पक्ति को प्रसगान्तर में रही कुशलता से व्यवहृत कर दिया है । मेघदूत में यज्ञ अपने वियोग में अपनी प्रेयसी को सभाजना करते हुए कहता है—

जाता मन्ये तुहिनमधिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥

इस काव्य में लेखक ने अपने गुरु के आश्रम में मोह इत्यादि की परिपट्ट^१ का वर्णन करते हुए लिखा है—

प्राप्तक्षोभा विजयिनि गुरो देवनाम्नीद पूर्वम्
मोहादीनाम समपरिप च्छुकया शुकुकरपा ।
साम्राज्येऽस्य प्रथमपवनेवैपमाना भयात्ता
जाता मन्ये तुहिनमधितापद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२३॥

मेघदूत में यज्ञ की पत्नी के सम्बन्ध में कहा गया है—

पृच्छन्ती वा मधुर-चचना सारिका पजरस्थाम्
कञ्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२०॥

इस काव्य^१ में कञ्चु देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

। ११ अम्बु द्वीपे भरतजसुधामण्डनं कञ्चुदेशो
यत्राम्भोधिभुंघमनुकल पूज्यत्येव रत्नै ।
पृच्छन्^१ पृता जननललनै सुरिणा यैरमूनि
कञ्चिद्भर्तु^१ स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥६१॥

१ हे रसिके ! सुरिणा ये जनन-ललनै त्वं पृता, भर्तुं अमूनि जनन-ललनानि त्वं कञ्चिद् स्मरसि^१, हि त्व, तस्य प्रिया इति पृच्छन् अम्भोधि यत्र भुज पूज्यती स्पर्धयोमना ।

कवि ने कितने कौशल से प्रसंगान्तर में मूल पंक्ति को प्रयुक्त किया है।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहता है—

साध्रेऽह्वीर स्थल कमलिनी न प्रमुखा न मुक्ता ॥२॥२६॥

इस काव्य में वैरिसिंह जय व्रतचर्या के लिए माता की आज्ञा मांगता है, तब माता की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—

जाता माताऽपचनेत्रिययाऽसह्यदुःखाभिघातात्
साध्रेऽह्वीर स्थलकमलिनी न प्रमुखा न मुक्ता ॥१०३॥

विरहावस्था के प्रसंग में आई हुई पंक्ति को वात्सल्य भाव के प्रसंग में कवि ने कितनी कुशलता से व्यवहृत किया है। —

कहीं कहीं कवि ने शृंगार रस की पंक्ति को शान्त रस के अनुकूल बना दिया है—

मेघदूत में यक्ष अपना सन्देश सुनाते हुए कहता है कि यह—

अगेनाग प्रतनु तनुना गाढेत्पेने तसम्
साध्रेणांघ्रद्रतेमविरतोत्करठमुत्कण्डितेन ।
उप्योच्छंभास समधिकतरोच्छ्वासिमा दूरवर्ती
सकरपै स्तैरिशति विधिना वैरिणा रद्धमार्गं ॥२॥४१॥

उपर्युक्त पद्य की चतुर्थ पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुए कवि ने इस काव्य में लिखा है—

कर्तुं कश्चित्स्पृहयेति पुन स्तीर्थं यात्रा ससंगम्
कश्चिद्बोद्धुं व्रतपिधिभरं बोधानानि कश्चित् ।
इत्थ संघो गुरुगुरलसद्भक्तिरद्यापि धर्म
सकरपैस्तै रिशति विधिनाऽवैरिणाऽरुद्धमार्गं ॥११४॥

श्री विजय प्रभु स्वामी के आश्रम का यह वर्णन है। यहाँ प्रत्येक व्यक्ति अनुकूल दैव से स्वतन्त्र मार्ग पाकर विभिन्न सकल्पों के द्वारा धर्म में प्रवेश कर रहा है। भाव की विपरीत करने में कवि को कुछ सधि-बलेश भी उठाना पड़ा है लेकिन फिर उसका प्रयास सफल है।

इसी तरह विरहिली यक्षियों की स्मृति में यक्ष कहता है कि उसका सौन्दर्य अनुपम है। कहीं भी उसका सादृश्य नहीं मिलता है.—

दृन्तैरुस्य कश्चिदपि न ते भीरु सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

इस काव्य में गुरु क तेज, शान्ति, धीरता और परोपकार का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

पूर्णाचन्द्र स्तम्भप्रिभा भाज्यत्येष पूर्णाम्
तेजस्वित्त्व स्पृशति तरणिर्गौरता मेरुद्वि ।
अम्भोवाह प्रवहति तथाऽन्योपकारप्रकारम्
दृन्तैरुस्य कश्चिदपि न तेऽभीरुसादृश्यमस्ति ॥

जहाँ २ कवि ने समस्या पूर्ति में भाव परिवर्तन किया है, वहाँ उसे मूल पक्ति में भी कुछ झिल्ल कटपना करनी पड़ी है। मेघदूत में यत्तिणी का विविध चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है —

प्रायेणैते रमण्यिरहेष्यगनाना विनोदा ॥२॥२६॥

इस पक्ति की समस्या पूर्ति में श्री विजय प्रभु-स्वामी के उत्पन्न होने पर भी उनकी माना के दर्प का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है —

गायत्युच्चैर्हंसति रमते मोदते स्मालियर्गं
प्रायेणैतेऽरमण्यिरहेष्यगनाना विनोदा ॥२००॥

प्रिय विरह में गाना, हसना और मखियों के साथ खेलना ही ही कैसे सकता है। अतः कवि को सधि-स्लेश उठाना अनिवार्य सा ही हो गया है।

कहीं कहीं समस्या पूर्ति के लिए कवि को वहाँ मानसिक परिश्रम करना पड़ा है। मेघदूत में उज्जयिनी नगरी का वर्णन करते हुए कहा गया है —

यद्य स्त्रीणां द्रवति सुरत ग्लानिमगानुकूल
(सि शिप्रायात् प्रियतम इय प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३०॥

इस पक्ति की समस्या पूर्ति करते समय कवि और गागद का वर्णन कर रहा है। मेघ को सम्बोधन करते हुए कवि कहता है —

प्राश्लेष्यु कमल रदना वीचिहस्तै सरस्य
प्रोक्ता वान्ता इय सुजयसा त्वा विजानन्ति गन्धे ।
मुक्त्वा नस्त्य विरहप्रिभुग कुत्र गन्तासि भोग्योऽ
सि प्रायात् प्रियतम इय प्रार्थना चाटुकार, ॥३३॥

‘अभि, प्राय + (प्र + अय = रक्ष) अतः ऐसा पदच्छेद मानकर त्व भोग्य असि, अतः प्राय = रक्ष’ यह अर्थ शिप्रायात् पद का निष्कालना पड़ता है। समस्यापूर्ति

के कारण 'सिप्राजात' पद का जो अग भग हुआ है, उमसे उसका मूल अर्थ तो लुप्तप्राय ही हो गया है। साथ में बड़ी निलिप्त कल्पना भी करनी पड़ी है।

यद्यपि कई स्थानों में समस्या पूर्ति के कारण कवि को मूल पक्ति के भाग को उल्टा करना पड़ा है अथवा भागान्तर में बदलना पड़ा है, फिर भी समस्या पूर्ति में कवि प्रायः सफल ही है। उपर्युक्त स्थल काव्य में थोड़े ही हैं। कदा^२ तो काव्य में मेघदूत के समान ही भाव और भाषा दृष्टिगोचर होती है। औरंगाबाद का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

गीर्वाण स्त्री सदृश सुदृशा तस्य सौधीर्ध्वजगामी
लोलापागै र्यदि न रमसे लोचनै वचितोऽसि ॥२६॥

इसी प्रकार दमगिरि नगरी का वर्णन करते हुए मंत्र को परामर्श दिया गया है।

तारुणेन स्मरपरधशा शिक्षितानाप्रवृत्तिम्
रात्रौ स्त्रीणामुपपतिगतौ श्रेणिभारालसानाम् ।
देहालम्य रिमलतडिता दर्शयस्तत्र माग
तोयोत्सर्गं स्तनित मुखरो मा म्भ भू रिक्लमास्ता ॥४१॥

उपर्युक्त दोनों पद्य मेघदूत के पूर्व भाग के 'वक्र पन्था यदपि भरत' इत्यादि तथा गच्छन्तीना रमण वसति योविता तत्र नक्तम्' इत्यादि पद्यों से पूर्णतया मिलत जुलते हैं। इस प्रकार समस्यापूर्ति की दृष्टि से मेघदूत को समस्या मानकर लिखे गए हुए दूत काव्यों में यह काव्य सर्वोत्तम रचना है।

जैसाकि काव्य की कथा से स्पष्ट ही है, कवि ने अपने गुरु के लिए पिञ्जित स्वरूप यह काव्य लिखा है। अतः गुरु भक्ति तथा जैनधर्म का यत्र तत्र काव्य में स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। कवि की गुरुभक्ति श्लाघनीय है। गुरु के वियोग में अपनी अग्रस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

नित्यं चेत स्फुरति धरणाम्मोजयो सुरिराज^१
कायं सर्वं समयविषयै सनियद्धान्तराय ।
नो^२ चेदी दग्गुरु सुरतरु प्राप्य क स्याद्दुर्धीयान् ।^३
न स्यादन्योऽप्यहमिदं जनो य पराधीनवृत्ति ॥२॥

१ सुरिराजस्येत्यर्थः ।

२ कायस्य विषयवृत्तयिष्णु शून्यत्वे ।

३ अतिदूरयती ।

कवि ने अपनी गुरुभक्ति का कितनी सरल और भावपूर्ण शैली में वर्णन किया है।

आगे चलकर अपने गुरु का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्राम्माक विभुरभितरै पात्रवृद्दै परीत
स्फीनच्छायो वकुलममला सनिधत्ते प्रतीकै ।^१
त्रिस्त्रयचतुर्धो मनसि भगवाश्चारुनार्या त्रिलासै
काक्ष्यन्त्यो वदनमदिरा दोहदच्छदुमनाऽस्या ॥२८॥

गुरु के प्रभाव, सौन्दर्य और शील का कवि ने कैसा सुन्दर चित्र यहाँ पर अंकित किया है।

जैन-धर्म का कोई विवरण तो काव्य में नहीं पाया जाता है, लेकिन स्थान २ पर जैन प्रतिमाओं और तीर्थकरों का श्रद्धा के साथ उल्लेख किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मेघ को देवपत्तन नगर में जैन प्रतिमाओं की स्तुति करने तथा तज्जन्य अर्पण कान्ति प्राप्त करने का परामर्श देते हुए कवि कहता है—

नाना रत्नाभरण किरणै भूषिताद्यपितार्च्याम् ।^२
जैर्निभर्चा^३ तत्र त्रिनमत काऽपि कान्तिर्भवित्री ॥२७॥

प्रतिमा के माहात्म्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लोमा कुप्टाद्गलिन वपुषो निर्निरोका सशोका
अर्हस्नानामृतभरसर स्नातमात्रा क्षणेन ।
भूतम भाव्यललिततनयो दिव्यभोगै भञ्जन्ति
सो कण्डानि प्रिय सहचरी सध्रमालिगितानि ॥२९॥

इसी प्रकार पल्लोर पर्यत पर पार्श्वनाथ^४ और तु गिआ पर्यत पर शृपमनाथ^५ तथा सिद्ध शैल पर भी वृषभ भगवान्^६ की प्रतिमाओं का वर्णन किया गया है।

१ अर्गै ।

द्वित्रिस्त्रयै उषिता घूषिता देवा स्तैरर्च्या पूज्याम् ।

३ अर्चाम्=प्रतिमाम् ।

४ दे० श्लोक सं० ४२ ।

५ दे० श्लोक सं० ४८ ।

६ दे० श्लोक सं० ६३ ।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को काव्य के विषय, भाव, भाषा, और शैली का सम्यक् ज्ञान हो गया होगा। काव्य का मुख्य रस शान्त रस है। माधुर्य और प्रसाद गुण तथा वैदर्भी रीति ही इस काव्य में पाई जाती है। कवि ने समस्या पूर्ति करते हुए भी काव्य को क्लिष्ट नहीं होने दिया है। काव्य क पढ़ते समय मेघदूत जैसा ही आनन्द आता है। इसका एक कारण तो यह भी हो सकता है कि इसमें मेघ को ही दूत बनाया गया है अतः त्रिना किसी भाव विपर्यय के समस्या पूर्ति हो गई है। समीक्षा के प्रसंग में इस बात का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि इस काव्य का लेखक भी मेघ नाम का है, समस्या भी मेघदूत से ली गई है तथा दूत भी मेघ को ही बनाया गया है। दूत काव्यों तथा मेघदूत की समस्या पूर्ति परक काव्यों में यह काव्य अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है।



चतुर्थ अध्याय

जैनेतर सन्देश-काव्य

- १ धोषि कवि का पवन-दूत
- २ पूणसारस्वत का हम सन्देश
- ३ वेदान्त-देशिक का हस-सन्देश
- ४ अनिर्जात कवि का हम सन्देश
- ५ लक्ष्मीदास का शुरु मन्देश
- ६ वासुदेव कवि का भृगु मन्देश
- ७ उद्दण्ड कवि का कोकिलमन्देश
- ८ उदयकवि का मयूर मन्देश
- ९ वामन-भट्ट-वाण का हसदूत
- १० विष्णुद्राम का मनोदूत
- ११ विष्णुघात का कौकिलसन्देश
- १२ रूप-गोस्वामी का उद्धव-सन्देश
- १३ रूप-गोस्वामी का हस-दूत
- १४ माधवकवीन्द्र का उद्धव-दूत
- १५ शतावधानकवि का भृगु-दूत
- १६ रुद्रन्यायपचानन का अमर-दूत
- १७ रुद्रन्यायपचानन का पिक-दूत
- १८ कृष्ण-सार्वभौम का पटाकदूत
- १९ तैलग ब्रजनाथ का मनोदूत
- २० श्रीकृष्ण न्यायि पचानन का वात-दूत
- २१ भोलानाथ का पान्थ-दूत
- २२ नित्यानन्द-शास्त्री का हनुमद्दूत

धोयि कवि का पवनदूत (वि० द्वादश त्रयोदश शतक)

पवनदूत एक सुन्दर सदृश नायक है। यह कालिदास के मेघदूत के अनुकरण पर लिखा गया है। 'ध्रुयि' 'धोयी' 'धोई' अथवा 'धोयिक' नामक कवि इसका रचयिता है। यह कवि बंगाल के मन-वश के राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। कविगण इसकी उपाधि थी। पवनदूत के श्लोक स० १०१ तथा १०३ में कवि ने अपने लिए स्वयं 'कविन्माभूता चक्रवर्ती' और 'कविनरपति' कहा है। पवनदूत के अन्त में भी 'इति श्री धोयीकविराजविरचितम्' इत्यादि श्लोक मिलता है। लक्ष्मणसेन की सभा में करल पाच रत्नों का उल्लेख करने वाले—

गोवर्धनञ्च शरणो जयदेव उमापति ।

कविराजश्च रत्नानि समितौ लक्ष्मणस्य च ॥

श्लोक में कविराज पद धोयि कवि के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। किसी कवि को केवल उसकी उपाधि से ही उल्लिखित करना कोई नई बात नहीं है। वही २ राजाओं का भी केवल उपाधियों से ही कभी कभी उल्लेख होता है, यहाँ तक कि सम्राट् अशोक के लिए भी केवल प्रियदर्शी ही अधिक स्थलों पर लिखा हुआ पाया जाता है।

धोयी कवि राजा लक्ष्मणसेन की सभा में राज कवि था। राजा लक्ष्मणसेन का समय सर्वसम्मति से केवल इतना ही निश्चित है कि यह ई० धारद्वीं शताब्दी के प्रथम या द्वितीय भाग में राज्यसिंहासन पर बैठा था। अतः धोयि कवि का कार्यकाल भी ई० द्वादश शतक या वि० द्वादश शतक का उत्तरार्ध और त्रयोदश शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। श्रीधरदास के सदुत्तिकर्णामृत में जो कि शक स० ११७७ अथवा स० १२०६ ई० का लिखा हुआ है, धोयि के पद्य पाए जाते हैं। तेरहवीं शताब्दी के मध्य में जट्टण द्वारा लिखी हुई सुभाषितमुक्तावलि तथा चौदहवीं शताब्दी में लिखी गई शाङ्गधरपद्धति में भी धोयिरचित पद्यों का उल्लेख मिलता है। अतः तेरहवीं शताब्दी के मध्य या चौदहवीं शताब्दी से पूर्व का समय ही धोयि कवि का समय मानना चाहिए।

धोयि कवि के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञात है कि यह राजा लक्ष्मणसेन का सभापंडित था। उसके जन्मस्थान का कुछ भी पता नहीं है। उसकी जाति निश्चित करना और भी कठिन है। इस सम्बन्ध में दो अत्यन्त विरोधी विचार हमारे सामने आते हैं। प्रथम यह कि धोयिकवि ब्राह्मण था। द्वितीय यह कि यह बंगाल की वैद्य जाति का था। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने^१

लिखा है कि वशाजलियों के अध्ययन से धोयिकवि पालधि गणि और कश्यप गोत्र का राष्ट्रीय ब्राह्मण ठहरता है ।

धोयि कवि के वैद्यजातीय होने का बिचार वैद्यवशावलीग्रन्थों में आप हृष्य दुहिसेन या धृयिसेन नाम के धोयि नाम से तादान्य पर निर्भर है ।^१ इस प्रकार धोयि कवि की जाति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं है । कविराज उपाधि केवल वैद्य जाति के लोगों की ही हो, ऐसा भी कुछ निश्चित नहीं है । ब्राह्मण जाति के जयदेव कवि को भी कविराज कहा ही जाता है ।

धोयि कवि की केवल एक रचना पञ्चदूत ही हमें प्राप्त है । यह कुछ निश्चित नहीं कि इसने और भी ग्रन्थ लिखे या केवल इसी एक काव्य के आधार पर उसे कविराज कहा जाता है । कुछ कुटुम्ब पद्य जो पञ्चदूत में नहीं हैं, सुभाषित ग्रन्थों में धोयि कवि के नाम से पाए जाते हैं । लेकिन धोयि के किसी और ग्रन्थ का इन ग्रन्थों में उल्लेख नहीं है । पञ्चदूत के श्लोक सं० १०० में 'वानसन्दर्भा कतिचिद् मृतस्यन्दिनो निर्मिताश्च' इन शब्दों से ऐसा प्रतीत होता है कि धोयि कवि ने और भी ग्रन्थ लिखे होंगे । कवि के कथन से, सुभाषित ग्रन्थों में उसके नाम से दिए गये पद्यों से तथा कविराज उपाधि से यह सिद्ध होता है कि उसने अन्य भी कई ग्रन्थ लिखे होंगे । लेकिन इस समय केवल पञ्चदूत ही हमें उपलब्ध है ।

धोयि कवि अपने समय का एक प्रसिद्ध कवि था । उसके आश्रयदाता राजा लक्ष्मणसेन की सभा में सभी प्रकार के विद्वान् थे । जयदेव कवि ने उमापतिधर, शरण, गोवर्धन और धोयि तथा स्वयं का उल्लेख किया है ।^२ यह पांच उसकी सभा के रत्न थे । कहीं २ इसको श्रुतिधर नाम से भी निर्दिष्ट किया गया है । सद्गुण-कर्णामृत में एक श्लोक आता है । उसका पूर्व भाग तो पञ्चदूत के श्लोक सं० १०१ के पूर्व भाग से विरकूल मिलता है । यथा—

दन्तिव्यूह कनककलित चामर हेमदण्डम्
यो गौडेन्द्रादलभत कविचामभूता चक्रवर्ती ।

और उत्तरार्ध इस प्रकार है—

रवातोपश्च श्रुतिधरतया विक्रमादित्यगोष्ठी
विद्याभर्तुं यलु धरद्वेराससाद् प्रतिष्ठान् ॥

१ पुण्डरीकाक्षसेनस्य दुहिसेन सुतोऽभवत् ।

धरस्य त्रिपुरारवस्य तनयागर्भं सम्भ्रज ॥ कविकण्ठहार ।

सुधाशोरत्रैविष्य पुण्डरीकसेनात्तनूजोऽजनि धूयिसेन ॥ चन्द्रप्रभा पृ० २१३

२ २० गीत गोविन्द । १।४।

जयदेव ने भी धोयि करि के लिए श्रुतिधर विशेषण का प्रयोग किया है। अतः धोयि और श्रुति धर को एक ही व्यक्ति मानना चाहिये।

पवनदूत की कथा

गौड देश के राजा लक्ष्मण सेन की दक्षिण दिग्विजय में मलयपर्यंत पर कनक नगरी में रहने वाली कुबलयवती नाम की एक गन्धर्व कन्या राजा को देखकर उससे प्रेम करने लगती है। राजा लक्ष्मणसेन यगल में जब अपनी राजधानी में लौट आता है, तो कुबलयवती उसके विरह में बड़ी व्याकुल रहने लगती है। वसन्त ऋतु के आने पर वसन्त की वायु को अपना सदेशवाहक बना कर वह राजा के पास अपनी विरह व्यथा सुनाने के लिए भेजती है। कार्य की मूल कथा वस इतनी ही है। मलयपर्यंत से यगल तक के मार्ग का कवि ने बड़ा ही कवित्वमय वर्णन किया है। राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर के वर्णन के बाद कुबलयवती की प्रियोगा यस्था का बड़ा कवण वर्णन किया गया है। अन्त में फिर कुबलयवती का सन्देश दिया गया है।

पवनदूत का ऐतिहासिक आधार

पवनदूत क श्लोक सं० २ में 'दृष्ट्वा देव भुवनविजये लक्ष्मण क्षीणिपालम्' ऐसा उल्लेख है। इससे प्रतीत होता है कि राजा लक्ष्मणसेन दिग्विजय के लिए अग्रय निम्ना था और दक्षिण में मलयपर्यंत तक गया था। अब प्रश्न यह उठता है कि यह कथन ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य है या कवि ने अपने आश्रय दाता की प्रशंसा करने के लिए अपनी कल्पना से ही ऐसा लिखा है।

सेन राजाओं के अब तक प्राप्त हुए शिलालेखों से राजा लक्ष्मणसेन की दिग्विजय यात्रा का कोई घुत्तान्त उपलब्ध नहीं होता है, लेकिन विभिन्न ताम्रपत्रों में पाये गये फुटकर उद्धरणों से हम उसकी विजय-यात्रा के सम्बन्ध में कुछ निष्कर्ष अग्रय निम्नाल सकेते हैं। राजा लक्ष्मण सेन के मध्याई नगर यगल ताम्रपत्र में ऐसा उल्लेख है—

यस्य कौमारवेलि कलिगागनाभि ।

यह यनि राजा लक्ष्मणसेन के कलिग देश पर किय गये आक्रमण की ओर ही संकेत करती है। इसी ताम्रपत्र में 'देनामी काशिराज सम्रगभुवि जित' ऐसा आया है। इससे लक्ष्मण के काशीविजय की भी पुष्टि होती है। लक्ष्मणसेन के पुत्र विश्व

रूप सेन के एक ताम्रपत्र में लक्ष्मणसेन की विजयों का और भी विस्तृत वर्णन मिलता है—?

वेलाया दक्षिणाधोर्मुसलधरगद्रापाणिसत्रासवेद्या
क्षेत्रे विश्वेश्वरस्य स्फुरदसिखरणाश्लेषगोर्मिभाजि ।
तीरोत्सग त्रिवण्या कमलभवमपारम्भनिर्व्याजपूते
येनोच्चैर्यज्ञयूपै सह समरजयस्तम्भमाला न्यधायि ॥

इस श्लोक से राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण में तामिलविजय तथा उत्तरपश्चिम में काशी और प्रयाग तक की विजय का प्रमाण मिलता है ।

मध्याई नगर के ताम्रपत्र में 'विक्रम यशीकृत कामरूप' विशेषण से लक्ष्मणसेन की पूर्व में आसाम विजय तक का प्रमाण मिलता है ।

यद्यपि किसी भी शिलालेख से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे राजा लक्ष्मणसेन की दक्षिण-पश्चिम, काशी तथा प्रयाग और आसाम की विजय का प्रमाण नहीं मिलता है, फिर भी विभिन्न ताम्रपत्रों द्वारा और उसके समकालीन धोयि कवि के वर्णन से हमें यह मानने में कोई आपत्ति नहीं दीखती कि राजा लक्ष्मणसेन ने भी दूसरे भारतीय शक्तिशाली राजाओं की तरह दिग्विजय के लिये यात्रा की थी। इतना सत्य निश्चित होने पर भी धोयि कवि का यह कथन कि राजा लक्ष्मणसेन अपनी दिग्विजययात्रा में मलयपर्यंत माला तक पहुंचा था, ऐतिहासिक दृष्टि से प्रामाणिक नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि मलय प्रदेश की विजय का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है । सभ्य है कि कवि ने केवल अपने अत्युत्ति प्रेम के कारण तथा अपने काव्य की नायिका को उपयुक्त स्थान प्राप्त कराने के लिये राजा लक्ष्मणसेन की मलयपर्यंतमाला तक की यात्रा का वर्णन कर दिया है । अथवा यों भी कहा जा सकता है कि चूंकि उसकी माता चालुक्य वंश की थी, इसलिये चालुक्य वंश के किसी राजकुमार के साथ या स्वतंत्र रूप से राजा लक्ष्मणसेन घूमने के लिये कभी मलयपर्यंत पर गया होगा और उसी यात्रा का इस काव्य में कवि ने उल्लेख किया है ।

पवनदूत में भौगोलिक चित्रण

मलयपर्यंतमाला से बंगाल में राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर तकके मार्ग के वर्णन से भौगोलिक महत्त्व की बहुत सी बातें हमें इस काव्य में मालूम होती हैं । कवि ने समय में दक्षिण भारत और बंगाल के मध्य में आने जाने के सही मार्ग का तो कवि के वर्णनों से हमें वास्तविक ज्ञान नहीं हो सकता, क्योंकि कवि ने उसी मार्ग का अनुसरण नहीं किया है । प्रत्युत दक्षिणभारत के बहुत से महत्त्वपूर्ण स्थानों

और प्राकृतिक दृश्यों का अध्ययन रचना में ध्यान कर दिया है, यद्यपि वे सब स्थान साधारणतया काम में आने वाले मार्ग में नहीं पड़ते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्व में स्थित काचीनगरी से वायु को केरलदेश ल जाया गया है, ताकि मात्स्यशान् पर्यंत और पचास सरोवर वर्णन करने का करि को अरसर मिल सके। वास्तव में इनमें से कोई भी स्वायत्त दक्षिण से उगल तरु क सीपे मार्ग में नहीं पड़ता है।

वायु की कथा मलयपर्यंतमाला (पश्चिमी घाट के दक्षिण भाग) पर स्थित एक प्राकृतिक गन्धर्वनगरी कनकनगरी के वर्णन से प्रारम्भ होती है। वायु से मलयपर्यंतमाला से चल कर पाण्ड्य देश जाने के लिये कहा गया है। यह देश मलयपर्यंत श्रेणी से केवल दो कोस के अन्तर पर बताया गया है। यह अन्तर केवल आनुमानिक ही प्रतीत होता है और यह सूचित करता है कि मलयपर्यंत पाण्ड्य देश के सीमा प्रदेश पर स्थित या तथा पाण्ड्य देश में सम्मिलित नहीं था। ताम्रपर्णी नदी के तट पर स्थित उरगपुर नाम के नगर को पाण्ड्य देश की राजधानी बताया गया है। इस उरगपुर का कालिदास ने भी रघुवश के षष्ठ सर्ग में श्लोक सं० ५६-६० में वर्णन किया है। वर्तमान उरगुर जिससे कि उरगपुर मिलता जुलता है, न तो ताम्रपर्णी नदी के तट पर है और न कभी इसके पाण्ड्य देश की राजधानी रहने का कोई प्रमाण मिलता है। चोल राजाओं की राजधानी तो वह बहुत दिनों तक रहा है। मदुरा और कोरकई में से जिनका कि इतिहास में पाण्ड्य राजाओं की राजधानी होना सिद्ध है, कोरकई ताम्रपर्णी नदी के मुहाने पर अवश्य स्थित थी। मभव है कि कवि ने भूल से इस कोरकई को ही उरगपुर समझ लिया हो।

उरगपुर के बाद वायु से सेतुगुर-रामेश्वर जाने के लिये कहा गया है। इसके बाद काचीपुर (आधुनिक काजीवरम्) जाने का वायु को परामर्श दिया गया है। काचीपुर की 'दक्षिणस्या दिशोभूषणम्' कहा गया है। श्लोक सं० १३ से पता चलता है कि काचीनगरी सुजला नाम की नदी के तट पर स्थित थी। लेकिन आज कल काजीवरम् के आस पास इस नदी का कोई चिह्न उपलब्ध नहीं होता है। पालार नाम का एक नदी काजीवरम् के आस पास जरूर बहती है। लेकिन पालार और सुजला नाम में धनिशाम्बर के आधार पर कोई सम्बन्ध स्थिर नहीं किया जा सकता। वर्तमान काजीवरम् के पास बहने वाली वेगवती नाम की नदी को हम जरूर सुजला नदी का ही दूसरा नाम समझ सकते हैं, क्योंकि सुजला और वेगवती का अर्थ एक ही है।

काचीनगरी के बाद वायु से कावेरी नदी की ओर जाने के लिये कहा गया है। पेमा प्रतीत होता है कि मलयपर्यंत से काची तक के मार्ग में इस नदी का वर्णन करना कवि भूल गया और फिर इस नदी के महत्त्व को देखकर किसी तरह इसका वर्णन कर दिया गया है। कावेरी नदी के बाद पूर्व की ओर मात्स्यशान् पर्यंत पर जाने

का फिर वायु को परामर्श दिया गया है। बिलारी (Bellary) के पास कुपल, मुद्गल और रायचूर के पडोस में पाई जाने वाली पहाडिया ही माटयमान् पर्वत हैं^१। माटयमान् पर्वत के पूर्व में पचाप्सर भील की स्थिति कुछ निश्चित नहीं है। केरल इतना ही निश्चित है कि यह विदर्भ या बरार के पूर्व में थी^२।

इस प्रसंग में यह बात ध्यान देने योग्य है कि रामचन्द्रजी के वनवास में सत्रह स्थानों में से कवि ने केवल दो स्थानों माटयमान् पर्वत और पचाप्सर भील का ही उल्लेख किया है स्थान, जन दण्डकारण्य, किष्किन्धा और ऋष्यमूक पर्वत न्यादि का कोई उल्लेख नहीं किया है।

इसके बाद आन्ध्र देश में से होते हुए कलिंग देश की राजधानी कलिंग नगरी जाने को वायु से कहा गया है। श्लोक सं० २२ से ऐसा प्रतीत होता है कि यह नगरी समुद्र से बहुत दूर नहीं थी। गजम् जिल के मुखलिंगम् स्थान से जो कि समुद्र तट से बहुत दूर नहीं है, कलिंग नगरी का तादात्म्य निश्चित हो चुका है। कलिंग देश के गग राजाओं की यह राजधानी थी।

कलिंग नगरी के बाद वायु से सीधा उत्तर की ओर बढ़ने और विन्ध्यप्रदेश पहुँचने के लिये कहा गया है। विन्ध्य प्रदेश से अमरकंटक पहाड़ी के पास पास का प्रदेश ही समझा जाना चाहिये, क्योंकि विन्ध्य पर्वत श्रेणी पर पहुँचने के बाद ही नर्मदा नदी के तटपर जाने का वायु को परामर्श दिया गया है। विन्ध्य प्रदेश में रहने वाली भिरल जाति का भी इस अपसर पर उल्लेख किया गया है। कथा सत्त् सागर (१३, ३०-४०) में भी विन्ध्यप्रदेश का भिरल जाति से सम्बन्ध बताया गया है।

नर्मदा के बाद वायु से ययाति नगरी जाने के लिये कहा गया है। ऐतिहासिक प्रमाणों से यह नगरी महानदी नदी के तट पर स्थित प्रतीत होती है। मध्यप्रदेश में सोनपुर राज्य में स्थित विनीतपुर (आधुनिक बिनका या रीना) नामक नगर को ही ययाति नगर समझना चाहिये। ययाति के जिसको कि महाशिवगुप्त भी कहा जाता है, शासन काल में विनीतपुर को ही ययातिनगर कहा जाने लगा था।

ययातिनगरी के बाद वायु से सुह्य देश (दक्षिण पश्चिम बंगाल) पहुँचने को कहा गया है। सुह्य देश बंगाल का ही एक भाग है। दूसरे भागों को पुण्ड्र, वग और उत्तरराठ कहते हैं। इसके बाद हुगली जिले में स्थित त्रिशूली नामक स्थान

१ जर्नल रायल एशियाटिक सोसायटी १८६८ पृ० २५६-७

२ " " " " " " पृ० २६६

३ द० एपिग्रेफिका इंडिका, भाग ११ पृ० १८६

पर जाने का वायु को आदेश दिया गया है। तदनन्तर राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर का उल्लेख किया है। विजयपुर को स्कन्धासार और राजधानी दोनों ही बताया गया है। इस राजधानी की स्थिति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ तो राजशाही जिले में स्थित विजयनगर^१ को और कुछ नदिया^२ को विजयपुर समझते हैं।

पवनदूत में पाये जाने वाले राजधानी के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि यह राजधानी सुल्लदेश में सम्मिलित थी और गया क तट पर स्थित थी तथा त्रिवेणी पार कर लोग यहाँ पहुँचते थे। इन सब बातों से यह निर्णय निश्चलता है कि नदिया प्रदेश में ही विजयपुर राजधानी सम्मिलित थी। मुस्लिम इतिहासकारों ने भी लक्ष्मणसेन नामक किसी राजा की राजधानी नदिया में बताई है^३।

साहित्यिक ममीक्षा

यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। केवल भेद यह है कि इसमें प्रियसी की ओर से प्रिय के पास सन्देश भेजा गया है। समस्त काव्य में मन्दा क्रान्ता छन्द का ही प्रयोग हुआ है। काव्य में कुल १०४ श्लोक हैं। अन्तिम चार श्लोकों में कवि ने अपना कुछ परिचय तथा तत्परिचय की स्पष्टा व्यक्त की है। काव्य में पूर्वभाग और उत्तर भाग जैसा विषय विभाग भी नहीं किया गया है। माधुर्यव्यञ्जन वर्णों के साथ ललित भाषा में मिलिए समासों का परिहार करते हुए वैदर्भी रीति में यह काव्य लिखा गया है। मेघदूत का अनुकरण होत हुए भी इसमें यत्र तत्र मनीष उद्भासना के साथ सुन्दर कविता पाई जाती है। निम्न लिखित उदाहरणों से कवि की कल्पना शक्ति का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। मातृयान् पर्वत का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तत्राद्यापि प्रतिभरजलैर्जर्जरा प्रस्थभागा

सीताभर्तु पृथुतगशुच स्वयन्वथुपातान् ॥१०॥

मातृयान् पर्वत से बहने वाले झरनों में रामचन्द्रजी के अश्रुपात की कथा ही सुन्दर कल्पना की गई है।

विजयपुर राजधानी के वर्णन में भी कवि ने वहाँ ही प्रगतम कल्पना की है। कवि कहता है—

१ ३० गौडराजमाला पृ० ७४

२ ६० जर्नल एशियाटिक सोसायटी बंगाल १९०५ पृ० ४५

३ ६० तथाकृत-ए नासिरी (रैवर्टी द्वारा अनूदित) पृ० ५५४

मूकीभूता मरुन्तमयीं हाग्यष्टि दधाना
 यस्मिन् बाला मृगमदमर्सापिच्छित्तु स्तनपु ।
 चेतोर्तिस्मरहृतगह दीपित स्नेहपरै
 कृत्या यान्ति प्रियतमगृहानन्धकारे घनेऽपि ॥४५॥

प्रासादाना दिनपरिणतौ गर्भदग्धागुरूणा
 जालोदुगीर्ण सजलजलदश्यामलो यत्रधूम ।
 सद्य क्रीडाकुतुकरभसारूढपोरीमुखेन्दु-
 ज्योत्स्नासगप्रसृमरतम श्रेणिका तनोति ॥४६॥

विजयपुर राजधानी की समृद्धि निम्न श्लोक में कितने प्रगल्भ रूप से व्यक्त की गई है—

स्निग्धश्यामारमणमणिभिर्दुग्धमुग्धालजाला
 पौरस्त्रामि क्रमुन्तरघो रोपिता प्रागणेषु ।
 यत्रायत्नोपगतसलिलैर्नक्तमासितमूला
 नापेक्षन्ते परिजनवधू पाणि विश्राणिताम्भ ॥३८॥

राजधानी की स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

वाच श्रोत्रामृतमनुगतभ्रूत्रिलासा कटाक्षा
 रूप हस्तोच्चयसमुचित स्निग्धमुग्धाश्च हारा ।
 यात ललाचितमकृतक यत्र नेपथ्यमेतत्
 पौरस्त्रीणा द्रविणसुलभा प्रक्रिया भूषण च ॥५२॥

बहा की स्त्रियों का सौन्दर्य स्वाभाविक ही है। उन्हें किसी बाह्य प्रसाधन की आवश्यकता ही नहीं पड़ती है।

धोयि कवि ने कुजलयरती के विरह वर्णन में काव्यगत परम्पराओं का ही अनुसरण किया है। कमलवृन्त, चन्दन और कर्पूर इत्यादि शीतोपचार सामग्री यथास्थान वर्णित की गई है। फिर भी कवि ने कुछ सुन्दर और नयी परिस्थितियों का चित्रण किया है। कुजलयरती के विरह वर्णन में ३० श्लोक लिखे गए हैं। संस्कृत साहित्य में यह पद्य सर्वोत्तम कविता माने जाने योग्य हैं। यह विरह वर्णन बड़ा ही विशद, सजीव और करुणापूर्ण है। केवल परम्पराभुक्त वर्णन की ही भरमार नहीं है।

कुजलयरती की उत्सुकता का वर्णन करते हुए कवि ने उसका कैसा भावपूर्ण चित्र अंकित किया है—

विन्वस्याग्र भुवि चरणयो कौतुभोत्तम्भिनाक्षी
त्वत्सम्पर्कं प्रकृति सुभगामुन्नत ग्रीवमाशाम् ।
उत्पश्यन्ती किमपि सुतनुर्लक्ष्यते सौधशृगात
उद्दिभन्नाश्रुस्थगितमसकृत् त्वत्समीपं यियासु ॥१२॥

चिरहृदयथा में कुञ्जलयती के शरीर की कृशता का रक्षण करते हुए कवि कहता है—

मुष्टिं ग्राह्य किमपि विधिना कुर्वता मध्वभाग
मन्ये वाक्ता कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुजाय ॥१६॥

आगे चलकर नायिका की चिरहाथस्या का कवि ने और भी भावपूर्ण वर्णन किया है—

विन्वस्यन्ती शशिनि नयने दुर्गैरश्रुतारा
धाराश्यासैर्बहुलकुसुमामोद्घातुशामा ।
शुश्रुषुश्च भ्रमरविस्तन मूर्च्छया रक्षितासौ
वीच्यायस्या क इय कृष्णानार स्यान्तस्या ॥७॥

कोकिल के पंचम स्वर से जब वन उपवन गूँज रहे हों, तब कौन चिरहियाँ ऐसी होगी जो अपने की मियर रख सके। कुञ्जलयती की इसी दशा का रक्षण करते हुए कवि कहता है—

यात कृच्छ्रात्तुहिन समय सम्प्रति त्वत्सकाशा
दागच्छन्ती पवन लहरीमप्यनासादयन्त्या ।
क सन्नदधे परभृत्यं प्रलियाचाल लोल
चैत्रे तस्या कथय सुभग प्राणरक्षाभुषाय ॥८॥

लीलोद्याने परभृत्यधूपचमै र्थाड्यमान
ताम्यन्मूर्तिर्मलयमस्ता कलिशतापतेषु ।
सा नैकत्र कश्चिदपि पदं कातराक्षी विधत्ते
यत् स्वयं त्रिभुवनमपि प्रीतये तु गितानाम् ॥९॥

कुञ्जलयती के शील और उसके प्रेम की परिभ्रता का दशा ही दिशद स्वरूप कवि ने प्रस्तुत किया है। कुञ्जलयती राजा से कहती है कि यदि उसे भावों रूप में न माना जाए तो दासी ही मान लिया जाए—

गजवन्तु प्रणयचतुरो दूरत प्रेमशब्ध
पुण्येन स्या तत्र चरणयो केन सवाह्येऽपि ॥१०॥

मेघदूत की तरह इस काव्य में भी विप्रलम्भ शृंगार प्रधान है। विचारतास्त्वम् त ग शैली भी मेघदूत जैसी ही है। कहीं ० तो भावसाम्य के साथ साथ शब्दसाम्य भी। या जाता है। नीचे कुछ ऐसे स्थल उदाहरणार्थ प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

१ तेनार्यित्य न्ययि त्रिधियशाद् दूरवन्धुर्गतोऽह
याच्ञा मो ग प्रमधिगुरो नाधमे ल धकामा ॥मेघ १ ६॥

१ तस्मादेव न्ययि तनु मया सप्रणीतोऽर्यिभाज
प्रायो भिच्चा भवति त्रिफला नैव युष्मद्विप्रेषु । पवन । ८।

२ अलका नगरी क लिए मेघदूत में
“शह्योदयानन्वित हर शिरश्चन्द्रिकाधौत हर्म्या” । कहा गया है।
पवनदूत में गौडदेश के लिए

२ “सान्द्रोदयान न्यगित गगन प्रागखो गौडदेश ” कहा गया है।

३ मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी से कहता है—

भिच्चा मृद्य त्रिशलयपुटान् देवशस्त्रुमाणा
ये तत्क्षीरक्षुति सुरभयो दक्षिणोत्त प्रवृत्ता । २॥४६॥ इत्यादि ।

इसी प्रकार पवनदूत में भी कुपलवती राजा से कहती है—

३ यात रुच्छ्रात्तुहिनसमय सम्प्रति त्वत्सकाशा
दागच्छन्ती पवनलहरीमप्यनासाद्यन्त्या ॥२॥

४ मेघदूत में—

त्रिधृद्गर्भ स्तिमितनयना त्रत्सनाथे गजाने
वन्तु धीर स्तनितमचनैर्मानिनी प्रक्रमेथा ॥२॥३७॥

४ पवनदूत में—

आसादुयात कमपि समय सौम्य वन्तु विरिन्ते
देवं नीचैर्त्रिनयचतुर कामिन प्रक्रमेथा ॥६१॥

५ मेघदूत में उज्जयिनी की शिप्रागत के लिए—

यत्र स्त्रीणा हरति सुरतग्लानिमगानुकूल
शिप्रागत प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥१॥३२॥

कहा गया है

५ पवनदूत में विजयपुर की गगायात के लिए ऐसे ही भाव व्यक्त किए गए हैं—

गगायातम्व्यभिन्न चतुर्गे यत्र पीगगनाना
सभोगान्ते सपदि यितनोत्यगसत्राहनानि ॥३६॥

यद्यपि धोयि कवि ने कालिदास का पर्याप्त अनुकरण किया है, फिर भी बसन्ती रचना में मौलिक कल्पनाएँ यत्र तत्र पाई जाती हैं और अनुकरण स्थलों में भी नवीन उद्भावना दृष्टिगोचर होती है। कतिपय उदाहरणों से करि की प्रतिभा का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

१ श्रोप्यत्यस्मान् पद्मघडिता सौम्य सीमन्तिनीनाम्
कान्तोदन्त सुदृढुपगत सगमात् किञ्चिदून (मे ० ३६।

२ त्वन्न श्रोप्यत्यरहितमना सोऽनुरक्तागनानाम्
जायन्ते हि प्रणयिनि सुधारीचयो वाचिकानि ॥ पवन ६६।

३ गत्युत्स्रम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दार पुष्पै
पत्रच्छदै कनकमलै कर्णविभ्र शिभिश्च ।

मुक्ता जालै स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै
(श्लक्वापाम्) नैशो मार्गं सरितुदये सूच्यते कामिनीनाम् । मे० ० ११

४ ध्राम्यन्तीनाम् तमसि निर्गडे वल्लभाकाशिलीनाम्
लाक्षारगाश्चरणगलिता पौरसीमन्तिनीनाम् ।

रक्ताशोकस्तत्रललितै र्यालभानोर्मयूगै
नालद्वयन्ते रजनिविगमे पौरमाणेषु यत्र (विजयपुर) पवन० ४३।

दोनों स्थलों में भाव साम्य होते हुए भी कल्पना में तो भेद है ही।

मेघदूत में मेघ के सन्ध में कहा गया है—

यो वृन्दानि त्वरयति पयि ध्राम्यता प्रोविताना
मन्द्रस्निग्धैर्घनिभिरलायेणिमोक्षोत्सुकानि ॥२॥३०॥

कालिदास का मेघ तो प्रवासी पतियों की घर आने के लिए प्रेरित ही करता है, लेकिन धोयि कवि का मलयपवन तो विरही प्रेमियों की मिला ही देता है—

दूतं तस्या कलय मलयोपत्यकामागत मा
कामिद्वन्द्व घटयति मिथो विप्रयुक्त य एक ॥६७॥

इस प्रकार अनुकरण स्थलों में भी कवि ने कुछ विशिष्ट चमत्कार दिखाया है।
स्थान स्थान पर काव्य में कुछ सूक्तियाँ और सुभाषित भी पाए जाते हैं—

- (१) कायोत्तमं मनसि लभते नायकाश विलास । ६० ।
- (२) कन्या लोके न खलु सुधियो द्रूपयित्वा त्यजन्ति । ६८ ।
- (३) पाराथ्यकप्रयत्नमनस वाष्पमिश्रान्
आपन्नाना न खलु बहुश काकुवादान् सहन्ते । १०० ।

मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी भाव, भाषा और शैली की दृष्टि से यह काव्य एक सफल सन्देशकाव्य है। बंगाल प्रान्त में उपलब्ध सस्कृत के सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य सर्वप्राचीन है। साहित्यिक महत्त्व के साथ साथ इस काव्य का ऐतिहासिक महत्त्व भी है, क्योंकि इस काव्य का नायक एक ऐतिहासिक व्यक्ति है। श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का कथन है कि समस्त भारत में मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए सन्देशकाव्यों में यह सन्देशकाव्य प्राचीनतम है।^१ लेकिन अथ वस्तु-स्थिति कुछ और ही है। कलकत्ते के डा० जे० पी० चौधरी ने किसी जम्बू कवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य भी प्रकाशित किया है। जैसलमेर के सभरनाथ मंदिर के पुस्तक भंडार में चन्द्रदूत की एक हस्त लिखित प्रति उपलब्ध हुई है^२। इस पर वि० स० १३४० (स० १२८६ ई०) लिखा हुआ है। अतः यह तो निश्चित ही है कि चन्द्रदूत ई० त्रयोदश शतक के मध्य से बाद का लिखा हुआ नहीं है। श्री शान्तिस्मृति ने जम्बूद्वि के चन्द्रदूत पर टीका भी लिखी है। उत्तराध्ययनसूत्र पर देवेन्द्रगणित की टीका^३ तथा शान्तिस्मृति के शिष्यहिता^४ नामक ग्रन्थ से यह तो स्पष्ट ही है कि शान्तिस्मृति ई० एकादश शतक में हुए। स० १०४० ई० के लगभग उनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार इन प्रमाणों के आधार पर निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि जम्बूद्वि ई० एकादशशतक से पूर्व ही हुए होंगे। जिनशतक^५ तथा मुनिपति

- १ दे० चक्रवर्ती द्वारा सम्पादित पद्मदूत की भूमिका, पृ० १ ।
- २ दे० भाण्डारकर, स० १६०४-१६०५ और १६०५-६ ई० में राजपूताना और सेन्ट्रल इण्डिया में उपलब्ध सस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की रिपोर्ट पृ० २५।
- ३ दे० कापेन्टियर, उत्तराध्ययन सूत्र, पृ० ५४ तथा इण्डियन एटिकेरी, भाग ११, पृ० २५३ और इण्डिये स्टडीज, भाग १७ पृ० ४४
- ४ हसविजय मुनि द्वारा सम्पादित जैन मंदिरों में उपलब्ध हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची।
- ५ काव्य माला के सप्तम गुच्छक में स० १६२६ ई० में प्रकाशित।

चरित' नामक ग्रन्थ भी किसी जम्बू कवि के ही लिखे हुए हैं। यद्यपि जिन शतक का रचनाकाल स्पष्ट रूप से कहीं नहीं दिया गया है, फिर भी शक सत्र १०२५ (स० ११०३४ ई०) में इस पर टीका करने वाले साम्प्र कवि के कथन से यह स्पष्ट है कि टीकाकार के समय में जम्बूकवि जीवित नहीं थे। टीकाकार ने जिस ढंग से जम्बूकवि का उल्लेख किया है, उससे भी यह तात्पर्य निकलता है कि जम्बू कवि टीकाकार से बहुत परस पहिले हुए। अतः ई० दशम अथवा एकादश शतक से पूर्व का ही समय इस जम्बू कवि का निश्चित होता है। इसके अतिरिक्त मुनिपति चरित या मणिपतिचरित नामक ग्रन्थ भी इस कवि का लिखा हुआ है। यह ग्रन्थ वि० स० १०१५ या स० ६५६ ई० का लिखा हुआ है। इस प्रकार जम्बू कवि का कार्यकाल ई० दशम शतक का पूर्वार्ध ही ठहरता है। यह जम्बू कवि तथा चन्द्रदूतकाव्य का रचयिता जम्बू कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं^१। अतः जम्बू कवि का कार्यकाल ई० नवमशतक के अन्त से ई० दशम शतक के मध्य तक निर्धारित होता है। इस प्रकार राजा लक्ष्मणसेन (ई० द्वादश शतक) के सभाकवि तथा पद्मदूत के रचयिता धीयिकवि से यह जम्बू कवि दो शताब्दी पूर्व का ठहरता है और इस जम्बू कवि द्वारा प्रणीत चन्द्रदूत काव्य ही मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गए अद्यायधि उपलब्ध सन्देश काव्यों में सर्व प्राचीन सन्देशकाव्य ठहरता है। अतः पद्मदूत को अथ मेघदूत का प्राचीनतम अनुकरण नहीं माना जाना चाहिये।

१ जैन श्वेताम्बर काफ़ेस, बम्बई (१६०६) के सयोजकों द्वारा सगृहीत जैनग्रन्थ माला पृ० २२६ देखिये।

२ शरदा सप्तचविंशे शतदशके १००५ स्वातिभे च रवियासरे ।
निवरणमिदं समाप्त वैशाखसितप्रयोदश्याम् ॥

इस प्रकार साम्प्र कवि ने अपनी टीका का समय दिया है। जम्बू कवि के सग्रन्थ में उन्होंने लिखा है—

जम्बूनाम गुरुशुंरुत्तमगुणोऽम्बूच्चन्द्रगच्छान्यये
विदुषन्ममदि क्षाधगौर्यपद साधुवित्यासघन ।
किं वा तस्य निगद्यते मतिगुणो यस्येदृशीनिर्गत
सुश्लेषा पदसधिभिः सुघटितैः स्पष्टाऽक्षराली मुग्धात् ॥

३ इस विषय के विशेष ज्ञान के लिये डा० जी० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा संपादित चन्द्रदूत काव्य की भूमिका देखिए।

पूर्णसारस्वत का हस-सन्देश (त्रि० त्रयोदश शतक का प्रारम्भ)

इस हस सन्देश के लेखक के सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है।
काव्य के अन्तिम श्लोक—

अथ्य त्रिष्णो पदमनुपतन् पक्षपातेन हस
पूर्णज्योति पदयुगजुप पूर्णसारस्वतस्य ।
क्रीडत्येव स्फुटमरुलुपे मानसे सज्जनानाम्
मेघेनोच्चैर्निजरसभर वर्षता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

से इतना अनुमान किया जा सकता है कि लेखक का नाम पूर्णसारस्वत रहा होगा।

लेखक का और कुछ इतिवृत्त उपलब्ध नहीं है। कुछ लोग कहते हैं कि लेखक काट्टमाट्टस (Kattumadat) वंश का केरलीय ब्राह्मण था। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि वह काचीपुर का त्रिष्णु धर्मागलम्बी ब्राह्मण भी हो सकता है। लेकिन लेखक के केरलीय ब्राह्मण होने का विचार कुछ अधिक समत माना जाता है। इसे त्रिचम्बूर (Trichambur) नामक स्थान का निवासी ही माना जाता है तथा इसका पूर्ण-सारस्वत नाम उचित ही है, क्योंकि कोचीन के पूर्णत्रयी नामक सुप्रसिद्ध मंदिर के देवता की रूपा से ही इसे कविप्रतिभा प्राप्त हुई थी। मार्ग में सुपरिचित तथा सुप्रसिद्ध स्थान पूर्णत्रयी को छोड़कर त्रिचम्बूर होते हुए हस से जाने की जो प्रार्थना की गई है, उससे कवि की देशभक्ति का परिचय मिलता है। निम्नलिखित पद्यों से कवि का त्रिवेन्द्रम् के प्रति उत्कट प्रेम तथा प्रशंसा प्रकट होती है—

(केरलाना) तेषा भूपामणिमनुपम सेधित योगिमुख्यै
प्राप्यानन्त पुरमद्विशयं ज्योतिरानम्य भक्त्या ।
अन्विष्येस्त जनमकरुण मन्मनश्चोरमाराद्
देशे तस्मिन् स खलु रमते देवकीपुरण्यराशि' ॥२६॥

तत्रत्याना तरुणवयसा सुन्दरीणा रिक्तसै
माभूत् क्षोभस्तत्र मतिमतो बन्धुकार्योद्यतस्य ।
पेशं सान्द्रैरसितकुटिलै केकिपिन्धोपमेयै
केपा न स्युर्भूतिविहृतये केरलीना मुखानि ॥२७॥

हम्यं हम्यं हरिमणिमये हेलया सञ्चरन्ती
हृष्ट्या तन्वी प्रसरदणस्वच्छलावण्यदीप्ता ।
मेघद्यूहस्फुरितवपुया विद्यता सत्यसिन्धो !
स्मार स्मार मनसि किमपि व्याकुलो मा च भूत्स्यम् ॥२७॥

श्रीनगरी में शङ्कोपाचार्य की स्तुति करने के बाद ताम्रपर्णी नदी में विहार करते हुए पाण्ड्य देश से आगे बढ़ने का हस को फिर परामर्श दिया गया है। इस प्रकार करल देश और अनन्तशयन नगर (त्रिवेन्द्रम्) पहुँच कर वहाँ फिर हस से कृष्ण के दूढ़ने का अनुरोध किया गया है। यदि अनन्तशयन नगर में भी कृष्ण न मिलें, तो फिर रक्तद्रुम (Cernmarum) नामक स्थान पर जाने का हस से आग्रह किया गया है। यदि वहाँ पर भी कृष्ण न मिलें तो उत्तर की ओर समुद्र के किनारे २ केरल देश से याद्वर चले जाने की हस को आशा दी गई है। इस प्रकार विभिन्न प्रदेशों को पार करते हुए मार्ग में यत्र तत्र विहार करते और कमल का पाठ्य करते हुए तथा कहीं २ निर्भय स्थान में रात्रि बिताते हुए अन्त में यमुना तट पर पहुँचने का हस को आदेश दिया गया है। तदनन्तर यमुना के किनारे २ चलते हुए घुन्दावन पहुँच कर नन्द क घोष में वृष्ण से हस के निश्चित रूपसे मिलने की सम्भावना की गई है।

इसके बाद कृष्ण के स्वरूप का वडा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। उनकी विविध-लीलाएँ भी वर्णित की गई हैं। तदनन्तर उचित अरसर तथा कृष्ण की प्रसन्न मुद्रा देखकर हस से सन्देश कथन की प्रार्थना की गई है।

सन्देश में नायिका ने सर्व प्रथम अपनी विरहावस्था का वर्णन किया है। तदनन्तर अपनी विरह चेष्टाएँ कृष्ण को बताई हैं। अन्त में कृष्ण के दैत्य-दमन, दीन-रक्षण, शरणागतपालन तथा द्रौपदी की रक्षा इत्यादि का उल्लेख किया गया है और फिर नायिका ने अपनी रक्षा के लिए कृष्ण से प्रार्थना की है।

सन्देश सुनाने के बाद कृष्ण के कण्ठ की तुलसीमाला लेकर लौट आने का हस को आदेश दिया गया है।

अन्त में कृष्ण के प्रसन्न होने की आशा के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस काव्य में नायिका ने नायक के पास हस द्वारा अपना सन्देश भेजा है, अतः काव्य का नाम हस-सन्देश उपयुक्त ही है। समग्र काव्य में कुल १०२ श्लोक हैं तथा मन्दाग्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथावस्तु का पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। इस काव्य के श्लोक ने मेघदूत पर विद्युत्प्रता नामक टीका भी लिगी है। अतः यह तो निश्चित ही है कि मेघदूत की प्रेरणा और अनुकरण पर यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मन्दाग्रान्ता छन्द का प्रयोग भी इसी बात को पुष्ट करता है। काव्य के अन्तिम पद्य में कवि ने स्वर्ब मेघदूत की उत्कृष्टता स्वीकार की है—

अप्य विष्णो पदमनुपतन् पक्षपातेन हसः
 पूर्णज्योति पदयुगजुष पूर्णसारस्वतस्य ।
 क्रीडत्येव स्फुटमकलुषे मानसे सज्जनानाम्
 मेनेनोच्चैर्निजरसभर वर्षता धर्षितेऽपि ॥१०२॥

लेकिन फिर भी कवि ने अपने काव्य में कुछ नमीनता रखी है। मेघदूत में नायक यक्ष की ओर से त्रिरहिणी यक्षिणी के लिए सन्देश दिया गया है। इसमें त्रिरहिणी कृष्ण भक्त नायिका की ओर से कृष्ण के लिए सन्देश भेजा गया है। विशुद्ध त्रिप्रलम्भ शृ गार के स्थान पर इस काव्य में दिव्य कृष्ण भक्ति का आलोक पाया जाता है। कवि ने प्रेम का दिव्य स्वरूप काव्य में चित्रित किया है।

जदा तक शिरपत्रिधान का प्रश्न है, कवि ने मेघदूत का ही अनुसरण किया है। इसदर्शन, उसका सत्कार तथा कुशलवार्ता इत्यादि पूछना सब मेघदूत के समान ही है। मार्गचर्चन में भी कवि ने मेघदूत से प्रेरणा ग्रहण की है। विभिन्न देशों, नगरों तथा नदियों का बड़ा सुन्दर और आकर्षक चित्र काव्य में प्रस्तुत किया गया है। चोल-देश का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

चोलान् देशानग्रितिलकान् याहि तानत् समृद्धान्
 पुत्रस्नेहात् प्रनुरपयसा पोषितान् सहापुत्र्या ॥११॥

सहापुत्री कावेरी नदी में चोल देश के मातृभाज की श्लेष द्वारा कवि ने कौसी सुन्दर व्यजना की है। जिस प्रकार उत्तरभारत में गंगाजी को श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाता है, उसी प्रकार दक्षिण भारत में कावेरी नदी को भी लोग बड़ा महत्त्व देते हैं।

आगे चलकर श्रीरगपुर का भी विविधभाजपूर्ण वर्णन कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। श्रीरगपुर का वर्णन प्रारम्भ करते हुए कवि कहता है—

कटपापायेऽप्यविगतलय कटपक भुक्तिमुक्तयो
 श्रीरङ्गारख्यं पुरमथ विशेषार्म भौम त्रिधाम्न ।
 पौरस्त्रीणा सह रतिकलाभटिगरङ्गैरपाङ्गै
 स्तिग्धा दृष्टिर्निपतति जने यत्र मुक्त्यङ्गनाया ॥१४॥

भुक्ति और मुक्ति दोनों के देने वाले नगर में पौरस्त्रियों के भाजपूर्ण कटाक्षपात्र के साथ मुक्त्यङ्गना की स्तिग्ध दृष्टि का लोगों पर पहना उपयुक्त ही है।

श्रीरगपुर की विविध सुगन्ध से न केवल बहाना की जनता का मन प्रसन्न होता है बल्कि सारा विश्व ही सुवासित बताया गया है—

नाभीपङ्केरुपरिमलो नागशय्यस्य त्रिष्णो
 पूगश्रेणिस्फुटितबुहलीसौरभश्च प्रसर्पन् ।
 पोशाणा च प्रथमत्रयसा स्फारतरुण्यगन्धो
 वार वार मद्रयति मनो वासयन् यत्र विश्वम् ॥१८॥

श्री रंगपुर की स्त्रियों के सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में कवि कहता है—

वामाक्षीणा वहनि महति स्त्रच्छलाग्रयपूरे
 सलक्ष्याणि स्मितविलसितान्यातनानि प्रपश्यन् ।
 माध्वीलुधं सर्गसिजवनीकौतुकादुत्पतिष्यन्
 मा गा भ्रान्ति पदमनतेनेन मौढ्य गुणाय ॥१९॥

सुन्दर रमणियों के हस्तों हुए मुखों को देखकर हस का उन्हें कमल समझ बैठना स्वाभाविक ही है। इस पद्य में कवि ने किस सुन्दर भाव भंगिमा के साथ स्त्रियों के सौन्दर्य का चित्र अंकित किया है।

केरल देश का जो प्रसंग आता है, तब एक ही पद्य में कवि ने वहाँ की धार्मिकता, सप नता और प्राकृतिक रमणीयता चित्रित करदी है।

धर्म साक्षात् कृतयुगसलो येषु सानन्दमास्ते
 मालिन्याढ्य कलिभिलसित मन्यमानस्तृणाय ।
 वेलास्थान कमलदुहितु वेगतास्तानुपेया
 शीतोत्सङ्गान्मरिचतिलकालिगिताट्गैर्लभ्ये ॥२५॥

केरल देश की मित्रया भी कम आश्चर्यजनक नहीं हैं। इसलिए हस को उन्हें देखकर दुःख तथा व्याकुल न होने का समुचित परामर्श भी दिया गया है।

तत्रत्याग तरुणत्रयसा सुन्दरीणा वित्तासै
 माभूत् ह्योभस्तत्र मतिमतो यन्धुकार्योद्यतस्य ।
 पेशै सान्द्रैरसितकुटिलै केकिपिच्छोपमेयै
 पेया न स्युर्धृतिविहतये केरलीना मुग्गानि ॥२७॥

यद्यपि पार्नापुर से वृन्दावन बहुत दूर है तथा मार्ग में अनेक रमणीय स्थान पड़ते हैं और उन स्थानों तथा वहाँ के दृश्यों का वर्णन कर कवि अपने पात्र को और भी अधिक सरस तथा आकर्षक बना सकता था, लेकिन नू कि नायिका की विरह व्यथा बर्धा तीव्र है, इसलिए केरल देश से एक दम यमुना और वृन्दावन पहुचन का वह हस को आदेश देती है—

कालक्षेप न यत्तु सदते कामवाण कठोर ॥३०॥

वन्या भानो श्रुतिमित्र यति कटपयन् याहि सीमाम् ॥३३॥

८ इस प्रकार हस के यमुना पहुँचते पहुँचते नायिका कहती है—

आदी नाद मधुमदफल क्रीडता सारसाना
पद्मामोदी तदनु पवन पात्रितस्तोयलेशै ।
भानो पुत्र्यास्ततमथ तट स्फीकमालैस्तमालै—
मूर्ति पश्चान्मरतकशिलामोहिनी ते मुदे स्यान् ॥३५॥

इस पद्य में कवि ने सारसों का मधुर निनाद, कमलों से सुवासित शीतल पवन, तमालवृक्षों से ढका हुआ यमुना का तट और तदनन्तर यमुना का कैसा सुन्दर प्रम प्रस्तुत किया है। इस तरह के रमणीय स्थल को देखकर हस का प्रसन्न होना स्वाभाविक ही है।

वृन्दावन में नन्द के घर का कवि ने बड़ा समृद्धिपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। नन्द ने घोप में याचकों को न केवल धन बटता है, बल्कि मोक्ष भी उही आसानी से लुटती हुई मताई गई है—

दीने प्राप्तेरि कसितमुखै निष्पतद्विभ कृतार्थ-
रधिवाते सह धनभरे लुंठयमानापजर्गम् ।
राजन्वन्त महिततपसा नन्दगोपेन पश्ये-
घोप घोपैर्दिशि दिशि गवा घोपित वत्सकानाम् ॥४०॥

इस प्रकार के घोप को देखकर हस के मन में अनेक प्रकार की शकाए अवश्य उत्पन्न हो सकती हैं। इसी बात को लेकर हस से कहा गया है—

दयाना किं भजनभवनी देत्यभीत्या निलीन
लक्ष्म्या किं वा निरिलभुवनभ्रान्तिप्रियामधाम ।
कोशागार किमिदमथया शेषधीनामिति ट्राक्
तस्मिन् दृष्टे तत्र गृहमुखी भाविनी तात चिन्ता ॥४१॥

नन्द के घोप के सम्बन्ध में हस की सम्भाषित चिन्ताओं ने घोप की अनुल सम्पत्ति का पाठक स्वयम् अनुमान कर सक्त हैं। कवि ने किस प्रकार व्यग्न रूप से घोप की समृद्धि का वर्णन किया है।

नन्द के घोप में गोपिकाए हमेशा ही वृष्ण की बाल लीलाए गाती रहती हैं। इसीलए तो हस से कहा गया है—

गायन्तीना कलिमलमुप बाललीला मुरारे-
गीर्णं नन्दन् गलितमनसा गद्गद गोपिकानाम् ॥४२॥

नन्द के घोप के निकट ही कृष्ण के मिलने की सभावना की गई है। इस प्रसंग में कवि ने कृष्ण के मधुर स्वरूप का जो चित्रण किया है, वह बड़ा भावपूर्ण और सर्जीव है। कृष्ण को किसी वृद्ध के नीचे वेदिका पर विराजमान हो अपने सुरभित हास तथा मधुर वशीरव से तीनों लोकों को मोहित करता हुआ बताया गया है—

तस्योदारा शशिमणिमयीं वेदिकामात्रसन्तम्
कमत्र पश्य कमपि सुभग कल्पक कटपकस्य ।
लीलाहासै सुरभिक्षुसुमै पाणिपादै प्रवालै-
धंशीनादैरपि मधुरसैमोहयन्त त्रिलोकीम् ॥११॥

इसके बाद उनके अग प्रत्यंग का कवि ने बड़ा उत्कृष्ट वर्णन प्रस्तुत किया है। कृष्ण की भक्त नायिका हस से कहती है—

घोणादण्ड खगकुलपते घोपनाथस्य पश्ये
सरक्ताभ्या सुभगमभित पीडित लोचनाभ्याम् ॥१५॥

तदनन्तर कानों का वर्णन करते हुए वह कहती है—

माणिन्याशुज्वलितमकरीकुण्डलाशिलप्रणण्डो
फणीं शोरे कलय सुकृतिन् शिल्पकरद्वारनालो ।
धर्मस्पश मृदुनि वदने कर्कशाकाशुजन्यम्
वालाशोकद्रुमकिसलपैर्वारयन्तावियोर्च्चै ॥१६॥

इसी प्रकार श्रोत्र और दन्तश्रेणि का भी बड़ा सुन्दर वर्णन किया गया है—

उर्ध्वीलक्ष्मयोर्दशनकदने निलप्रमोष्ठप्रवालं
दन्तश्रेणीं निजकृचिसुधावृष्टिभिस्तर्पयन्तीम् ।
स्तोकालक्ष्या स्मितनिकसिते पश्य वक्त्रे मुरारे-
रन्तर्लक्ष्मणाप्रमृतकण्ठिनापट्टकिमञ्जद्विपीय ॥१७॥

कवि ने अग प्रत्यंगों के उत्कृष्ट सौन्दर्य को हृदयङ्गम कराने के लिए कितनी सुन्दर उपमेक्षाएँ दी हैं। अन्त में उनके स्वरूप के सम्बन्ध में कहा गया है—

माधुर्याणा परममत्रधि मङ्गलं मङ्गलाग
मायायोग कमपि सुदृशा मण्डनं मण्डनानाम् ।
किं वा जल्पैरिह बहुविधै किञ्चिद्दृष्यं पदार्थम्
पापं पापं नयान्जुलकैरेधि पात्र स्पृहाया ॥६३॥

कृष्ण न केवल सुन्दर ही हैं, प्रत्युत धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज की साक्षात् मूर्ति' वताए गए हैं —

धर्मा मूर्त किमयमथवा ज्ञानराशिर्गुप्मान्-
आनन्दो वा निखिलजगतमात्तलीलाशरीर ।
किञ्चित् तेज स्फुरतु भवत किंशुकापाटलोष्ठ
वेणुऋणश्रमणविशरीरंष्टित वत्सयूयै ॥६४॥

इस प्रकार कृष्ण को न केवल सौन्दर्य और माधुर्य का बरिक्त धर्म, ज्ञान, आनन्द और तेज का भी चरमोत्कर्ष वताया गया है ।

श्रीकृष्णजी के प्रभाव और गौरव का तो अनुमान पाठक इसी से लगा सकते हैं कि इन्द्र इत्यादि देवता भी देवकार्य में परामर्श करने के लिए स्वयं उनके पास आते हैं—

मालावालव्यजनमुकुटच्छत्रमित्रा त्रिभूति
कृत्वा दूरे स्वयमुपगतै कुड्मलीकृत्य हस्तान् ।
दृष्यद्द्वैत्यप्रसन्नमितैर्दीनता दर्शयद्दिभ
शक्राद्यैर्वा रहसि त्रिदुर्धमन्प्रयन् देवकार्यम् ॥६५॥

इस प्रकार कृष्ण के स्वरूप तथा प्रभाव का वर्णन करने के बाद उचित अरसर देखकर भक्त नायिका कृष्ण को अपना सन्देश सुनाने की इस से प्रार्थना करती है । नायिका के सन्देश में कवि ने उसकी विरहावस्था का बड़ा करुण और भावपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है । कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही नायिका के हृदय में प्रेम का संचार वताया गया है—

राकाचन्द्र क्षितिमिव गत राजमार्गं व्रजन्त
लाजै साद्व पुरयुवतिभिः कीर्यमाणो मनोभि ।
पश्यन्ती त्वा त्रिभुवनपते वेपितस्विन्नगात्री
तस्थो तन्वी नयनसरणिं यावदुल्लङ्घ्य यासि । ७३ ॥

वक्त्रेन्दोस्ते मधुरिमसुधा गाढमास्त्राय भक्ता
राजीवस्य स्फुटमिव रस राजहसी समृष्णा ॥७४॥

कवि ने नायिका के पूर्णराग जन्य कम्पन, स्वेद और तृष्णा का कैसा सुन्दर वर्णन किया है । आगे चलकर कहा गया है—

साक घृत्या तनुतरतनो स्र सते कङ्कणाली
वक्ता + स्ते सह मधुपते वर्धते मोदमुद्रा ।

वाणहेपिन्निरतमहो बालसारङ्गनेत्रवा
वाण साध हृदि रतिपते वाष्पधारा पतन्ति ॥७७॥

कवि ने किस सुन्दर भावभंगिमा के साथ नायिका के विरहजन्य अधर्म, कृशता, मोह और निरन्तर रोते रहने का वर्णन किया है।

नायिका के कृश शरीर को देखकर किसने हृदय में कण्ठा उत्पन्न न होगी। वसन्त ऋतु तो उसका लिए मृत्यु की ही सूचना समझी--

फ सा कसान्तर १ सकरण नेत्र कुर्यात् कृशगी
काल काल कुसुमसुरभि कल्पयन्ती पुरस्तात् ॥७८॥

प्रिय प्रियोग में व्यथित नायिका तत्तद् वस्तुओं में कृष्ण के तत्तद् अंगों का सादृश्य खोजती है--

रक्ताम्भोजे नयनमरण राजहसे विलासान्
रत्ने शोणे ललितमधर कान्तिमिन्दीवरपु।
नीलम्भजे तत्र च भुजयोर्नातिमुत्प्रक्षमाणा
नीलापाङ्गी स्वगयति कुर्वी निर्मलेरश्रुलेशै ॥७९॥

इसी प्रकार नीलवर्ण तथा त्रिचुद्रूपी पीताम्बरयुक्त मेघ को देखकर नायिका की कृष्ण के नीलवर्ण शरीर का ध्यान आ जाता है और वह ऐसा रोती है कि पृथिवी और आकाश का भी हृदय द्रवित हो जाए--

बाला दृष्टि तरणजलदे न्यस्य वाष्पायमाणा
त्रिचुद्रुपीताम्बरपरिगते मेघक स्निग्धकान्ती।
रोदित्यन्तर्बिलसितगिरा रोदसी द्रावयन्ती
स्मार स्मार मन्दिनयना माननीय उपुस्त ॥८०॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहाग्स्था का बड़ा ही क्लेश चित्र अंकित किया है--

कृष्ण विरहिणी नायिका को सर्वात्मना कृष्ण में ही लीन रताया गया है--

१ इस पद्य में संशुद्ध व--

श्यामास्यग चकितहरिणीप्रंक्षणे दृष्टिपानं
पक्वन्दाया शशिति शिपिना यर्दभात्पु पशान्।

इत्यादि पद्य का भावानुकरण किया गया है।

कर्णौ पूर्णौ तत्र गुणगणौ कर्म्यमानौ सर्षीभि-
 मूर्त्या तान्त हृदयमनिश मुद्रित नामभिर्वा ।
 चित्ताह्लादप्रसभपुलकैदक्षिता गात्ररली
 घृत्तिस्तस्यास्त्वयि यदुपते योगिनामप्यभूमि ॥३॥

इसके अतिरिक्त आगे पीछे, जागते सोते, दिन रात तथा उठते बैठते हमेशा ही उसे कृष्ण की भावना करते हुए बताया गया है । और तो और, सारी सृष्टि ही उसके लिए कृष्णमय हो गई है—

अग्रे पश्चादुपरि च चितौ जागरे स्वप्नयोगे
 रात्रावह्निं स्थितिषु गतिषु त्वा सदा भाजयन्त्या ।
 उन्मादिन्या कुशल्यदृशो मुकृतसर्पप्रवृत्ते—
 स्तस्या स्वामिन् किमिह बहुना त्वन्मयो विश्वसृष्टि ॥२॥

उपर्युक्त पक्तियों में कवि ने नायिका के प्रेम की तीव्रता तथा अनन्यता का कितना उत्कृष्ट वर्णन किया है ।

विरहिणी नायिका का मन कृष्ण में इतना लीन है कि वह कृष्ण का चित्र भी एकान्त में बनाती है—

दिग्ध कान्त्या रहसि भयतो दिव्यमङ्ग लिरान्ती
 सद्य म्रियच्चलन्मरुता तृत्तिकामुद्बहन्ती ।
 मध्ये मध्ये वहति पिहिता भाजना मोहवेगे
 वाला नीलैरिय जलधरैश्चन्द्रिकामिन्दुरखा ॥७॥

नायिका की मोहवेग से ढकी हुई भावना के लिए कवि ने जैसी सुन्दर उपमा दी है । वाला, भाजना और मोहवेग के लिए क्रमशः इन्दुरखा, चन्द्रिका और जलधर जैसे सुन्दर उपमान दिए गए हैं । उपमेय और उपमान में धर्म की समानता का साथ लिंग और वचन की समानता भी दर्शनीय है ।

प्रियविरह में नायिका को नन्द तो आती ही नहीं है । एक एक रात्रि उसके लिए सौ रात्रियों के समान लगती है—

एकैवास्या शतमित्र समा शर्वरी याति यत्नात्
 कोकै साक विरह विधुरै कोक्किलामञ्जुनाच ॥८॥

१ इस पद्य में मेघदूत के—त्वामालिरय प्रस्यकुपिता धानुगणै शिलायाम्-
 इत्यादि श्लोक का प्रभाव पाया जाता है ।

यद्यपि उसकी सन्धिया उमे तरह तरह की आशाएँ बधाती हैं, फिर भी प्रिय मिलन की आशा से किसी तरह जीवन धारण करती हुई नायिका के लिए एक एक दिन कल्प के समान बीतता है—

चित्तासगैरपि च भवतो जीवन धारयन्त्या
घटास्तस्या कथमपि त्रिभो कल्पकटाश्चलन्ति ॥२६॥

गिरिहिणी नायिका के लिए चन्द्रमा कोकिल, हंस और सुरभित पवन सब एक साथ ही दुःख पहुँचा रहे हैं। अपना सन्देश सुनाती हुई वह कहती है—

चन्द्र, कान्त्या स्फुटमपि जित कोकिलो मञ्जुवर्ण
हँसा गत्या वकुलसुरभिर्मारत श्वासरति ।
एते सर्वे युगपदधुना हन्त निघ्नन्ति मुग्धा
प्राप्ते काले क इव सहते प्राप्त्रयुक्तापराधम् ॥२७॥

इस पद्य में कवि ने नायिका की विरहाग्स्था का वर्णन तो किया ही है, उसके उत्कृष्ट सौन्दर्य, मधुर वाणी, श्रलसगति तथा सुरभित निश्वास की भी प्रकाशान्तर से व्यञ्जना की है।

गिरिहिणी नायिका को कोक, कीर, मोर, भौरों, कोकिल और सारस पक्षी भी बड़ा दुःख पहुँचाते हैं। इस प्रसंग में कवि ने बड़ी सुन्दर उन्प्रेक्षा प्रस्तुत की है—

कृत पक्षी वक् इति पुरा कृष्णचन्द्र त्वयासी
न्मन्ये तेन लुभित हृदये बांधितु त्वामनीशे ।
बाढप्रैमा भवति बलवद् बाध्यते हन्त याला
कोके कीरे शिबिभिरलिभि कोकिलै सारसैश्च ॥२८॥

अपनी विरहव्यथा के घातों के बाद नायिका विभिन्न प्रकार से कृष्ण से अपनी रक्षा करने का अनुरोध करती है। फिर वह कहती है कि याणासुर जैसे भयंकर राक्षसों को ज़र तुमने मार डाला, तो अगहीन इस पंचपाण को, जो कि मुझ विचारी को पीड़ित कर रहा है, दण्ड क्यों नहीं दते—

भूते सार्धं समिति दमितो भूतपाल । त्वयासीद्
याणी विभ्रद् भुवनभयद् बाहुशाखासहस्रम् ।
अङ्गे न्य कुसुमविशिखैरर्दयस्ता घराक्री
दण्ड्यं कस्मान्न खनु स खलो दम्यते पञ्चपाण ॥२९॥

आगे चलकर नायिका कहती है कि ज़र समग्र गोकुल की रक्षा कर सकते हो, तो इस दान और असहाय जन की रक्षा करने में तुम्हें क्या भारी बोझ पड़ता है—

प्रातु दीन जनमशरण तात कस्तेऽनिभार ॥६४॥

अन्त में नायिका कृष्ण से निवेदन करती है—

त्वामायुष्मन् । विपदि पततामाहुरेक शरण्य
कादृश्याद्र तत्र किल मन काममेवविधोऽसि ।
तन्धीं बाला त्रयि परवता चेतसा वर्तमाना
कण्ठे लग्नैरसुभिरवला मन्यसे नानुकम्प्याम् ॥६७॥

नायिका के इन वचनों में कितनी कातरता छिपी हुई है । कवि ने उसको 'कण्ठ लग्नप्राणा' यता कर उसकी दयनीय दशा का बड़ा करण चित्र प्रस्तुत किया है ।

अपनी प्रार्थना का उपसहार करते हुए नायिका कहती है—

दीना दूना स्त्रियमशरणा त्वत्कृते त्यक्तसर्ग
मङ्गोदिव्यैरमृतसरसैर्गर्हसि । प्रातुमेनाम् ।
दाक्षिण्यान्धे तत्र सुरगुरो दारणे दु खसिन्धौ
मग्नान् जन्तून् ननु सुखयितु मर्त्यलोकावतार ॥६६॥

अपनी दीन हीन और असहाय अग्रस्था तथा प्रेम में सर्वत्याग का उल्लेख करते हुए नायिका ने कृष्ण भगवान् से कौसी नम्रता से अपनी रक्षा की प्रार्थना की है ।

इस प्रकार प्रेम और दैन्य से भरे हुए सन्देश के धाद हस से कृष्ण के पास जाने, सन्देश सुनाने और उनके कण्ठालिंगन की प्रतिनिधिस्वरूप तुलसीमाला लेकर शीघ्र ही वापिस लौटने के परामर्श के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है ।

काव्य के उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को प्रतीत हो गया होगा कि यह काव्य बड़ा सरस और सुन्दर है । विप्रलम्भ शृंगार के आश्रय में कवि ने नायिका की उत्कट कृष्णभक्ति का वर्णन किया है । नायिका का कृष्णप्रेम कृष्णभक्तों के लिए एक उत्कृष्ट आदर्श है । प्रकारान्तर से यह भी कहा जा सकता है कि यह रचना कवि की स्वानुभूतिपरक कृति है । कवि ने अपनी मनोवृत्ति को ही नायिका का रूपक देकर मन रूपी हस द्वारा उसे कृष्ण के लिए अर्पित कर दिया है । कवि की उत्कट कृष्ण भक्ति का अनुमान तो हस व प्रति कहे गए काव्य के अन्त में नायिका न निम्नलिखित वचनों से ही लगाया जा सकता है—

मन्ये साधो भवति भवति प्रीतिमान् वासुत्य—
स्तस्मिन् प्रीति सकलपरदे को हि न म्यात कृतार्थ ॥०१॥

दक्षिण भारत में लिखे गए सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से यह काव्य सर्वथा नवीन है। इसके अतिरिक्त कवि की कल्पना तथा भाव विन्यास भी बड़े सुन्दर हैं। सुकुमार भाव तथा अनुभूति के वर्णन के उपयुक्त माधुर्य और प्रसाद गुणयुक्त भाषा का ही काव्य में व्यवहार किया गया है। इसी तरह वैदर्भी रीति को ही कवि ने सर्वत्र अपनाया है। मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने इस काव्य का अन्धानुकरण नहीं किया है। केवल शैली में ही मेघदूत का प्रभाव कुछ दृष्टिगोचर होता है। काव्य का प्रारम्भ तो मेघदूत की तरह से ही किया गया है—

काचित् कान्ता प्रिरहशियिना कामिनी कामतप्ता
निध्यापन्ती कमपि द्रियत निर्दय दूरसस्थम् ।
भूयो भूयो रणरणकत पुष्पगटों भ्रमन्ती
लीलागपीज्मलपयिक राजहस ददर्श ॥१॥

विभिन्न अत्ररणों से काव्य की भाषा का तो विश्व पाठक स्वयम् अनुमान लगा सकत है। दृन्द तथा शैली की समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत की पदावली की छाया बिरकुल नहीं पाई जाती है। स्थान स्थान पर कवि ने सुन्दर उपमाओं और उत्प्रेक्षाओं का भी प्रयोग किया है। वहाँ २ अनुप्रास की सुन्दर छटा भी दर्शनीय है—

१ माधुरी माधुमधुपमहिलामण्डलीमण्डितानाम्
पादपानाम् ॥४५॥

२ कुञ्ज कुञ्जे कुसुमिततले कान्तमन्त्रिप्य यत्नाद् इत्यादि ॥४६॥

किन्हा स्थानों के वर्णन में इस काव्य तथा दक्षिण के अन्य सन्देशकाव्यों में पद्यान साम्य पाया जाता है। केवल दश के समुद्र तट का वर्णन करते हुए इस काव्य में कहा गया है—

बलामेलावनमुरमिता वीक्षमाण पयोधे-इत्यादि ॥३२॥

उद्गड शास्त्री के कोटिल सन्देश में भी एक स्थान पर ऐसी ही पदावली पाई जाती है—

कोलात्रेलावनमुरमिलार यादि यत्र प्रथन्ते-इत्यादि ॥१॥६०॥

यहाँ २ कवि ने वही सुन्दर सुनिया भी काव्य में उचित स्थान पर प्रयुक्त की हैं—

१ तन्द्रानुन्ध न म्बु घटते धर्मकार्याघतानाम् ॥२६॥

२ सत्पक्षाण द्रवति दि मन सटममे बाधयानाम् ॥३७॥

३ सन्त प्राणैरपि विदधते सम्मद सञ्चिताना
कामान् कुर्युः कथमिव न ते कर्मणा केवलेन ॥८॥

इस प्रकार काव्य के विभिन्न श्रमों का विचार करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि यह सन्देशकाव्य एक सुन्दर और अभिनय रचना है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी कवि की मौलिक प्रतिभा इस काव्य में पाई जाती है। तत्तद् स्थानों और भावों के वर्णनों में कवि ने बड़ी चतुरता दिखाई है। पाठकों को कृष्ण भक्त का सन्देश पहुंचाने में भी कवि को पर्याप्त सफलता मिली है। सन्देश काव्यों में विषय की दृष्टि से नवीनता उत्पन्न करने का कवि का प्रयास स्तुत्य है। कृष्ण भक्ति साहित्य में यह काव्य शैली तथा भाव की दृष्टि से एक विशिष्ट स्थान पाने के योग्य है।^१

वैकटनाथ या वेदान्त देशिक का संसददेश (वि० स० चतुर्दश शतक)

श्री वैकटनाथजी रामानुज संप्रदाय के एक बहुत बड़े आचार्य हो गए हैं। वाशिनिक होने हुए भी यह कवि थे। इनका जन्म फार्जीपरम् के निकट तुन्दिल नामक ग्राम में स० १२६६ ई० (वि० स० १३२५) में हुआ था। इनकी माता का नाम तोतरम्मा और पिता का नाम अन्तसूर्नि था। इनको तिरुपति के भगवान् वैकटेश के घण्टे का अन्तार स्वरूप माना जाता है। इन्होंने अपने मामा श्री आश्रय रामानुज के पास अध्ययन किया था। अपने सकल्प सूर्योदय नामक नाटक में इन्होंने लिखा है कि २० वर्ष की आयु में इनका अध्ययन समाप्त हो चुका था। कवित्प्रशक्ति की प्रगल्भता तथा शास्त्रार्थ निपुणता के कारण यह कवितार्किकसिंह कहलाते थे। वेदान्त के महान् व्याख्याता होने के कारण इन्हें वेदान्तदेशिक भी कहा जाता था। साथ ही न्याय, मीमांसा, साहित्य और अन्य विषयों का विद्वान् होने के कारण सर्व तन्त्रन्तन्त्र भी इनकी उपाधि थी। इनके तथा इनकी अलौकिक शक्तियों के सम्बन्ध में बहुत सा दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। यह जन्म से वरिष्ठ ही पैदा हुए थे

^१ प्रिबेन्ड्रम् संस्कृत सीरीज में प्रकाशित।

और दरिद्र रहने में ही खुश थे। जब कभी इन्हें कोई दान दिया जाता था, यह प्रसन्नता के साथ अस्वीकार कर दिया करते थे। कह देते थे—

नास्ति पित्रार्जितं किञ्चित् न मया किञ्चिज्जितम् ।

अस्ति मे हस्तिशैलाग्रे वस्तु पैतामह धनम् ॥

कुछ समय तक चुड़डलूर के निकट तिरुनद्दीन्द्रपुरम् में तथा थीरगम् में भी यह रहे। सर्वज्ञ सिंह के दरवार में भी यह गए थे। जय मलिकोफर ने दक्षिण पर आक्रमण किया, तब वे मैसूर भाग आए और उसी समय इन्होंने अपने अभीतिस्तव की रचना की। इन्होंने श्री वैष्णव सम्प्रदाय भी चलाया। वैष्णव लोग एक महात्मा के रूप में इनकी पूजा करते हैं और दक्षिण भारत के प्रायः प्रत्येक विष्णु मन्दिर में इनकी प्रतिमा प्रतिष्ठित है। प्रसिद्ध विद्यारण्यस्वामी इनके सहपाठी थे और इन्हें षडे आदर से देखते थे। इन्होंने कई बार इनको विजयनगर के दरवार में आदर पूर्वक बुलाया था परन्तु निस्पृहता के कारण यह बहाना न गए। यह वडे नम्र स्वभाव के थे। इन्होंने एक स्थान पर लिखा है—

कर्मात्रलभ्यका केचित् केचिज्ज्ञानात्रलभ्यका ।

यय तु हृदिदासाना पादप्राणावलभ्यका ॥

विचारण्यम्नामी तथा माध्वसम्प्रदायाचार्य अक्षोभ्यतीर्थ के शास्त्रार्थ में यह मध्यस्थ भी माने गए थे। कार्तिक पूर्णिमा त्रि० स० १४२६ (स० १३७० ई०) में इनका स्वर्गवास हो गया। अपने इस दीर्घ जीवन काल (१०१ वर्ष) में यह लगातार साहित्य और धर्म की साधना करते रहे। इनके लिखे हुए करीब १०१ ग्रन्थ हैं। जिनमें से बहुत से विशिष्टाद्वैत वेदान्त पर हैं और पद्य में हैं। न्याय के ग्रन्थ गद्य में ही हैं। अनेक स्तोत्र भी इन्होंने लिखे हैं।

कालिदास के मेघसन्देश, रघुवश और कुमारसम्भव से प्रतिस्पर्धा करने के लिए इन्होंने हस सदश, यदुवश (यादवाभ्युदय) और मागसम्भव जैसे काव्यों की रचना की। यादवाभ्युदय २१ सर्ग का एक महाकाव्य है तथा श्रीकृष्ण का जीवन और यदुवश का इतिहास इसमें वर्णित किया गया है। इस काव्य में काव्य की तीनों वृत्तियों का प्रयोग किया गया है। कवि ने स्वयं कहा है—

गौडवैदर्मपाचाल मालाकारा सरस्वतीम् ।

यस्य नित्यं प्रशंसन्ति सन्तस्तसौगभवदिन ॥

इस काव्य में कवि ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है, स्थान स्थान पर अन्य कवियों का भी अनुकरण देखने में आता है। यों तो प्रसाद और मागुय गुण से यह काव्य परिपूर्ण है लवि १ पद्य सर्ग में कवि ने चित्रकाव्य की भी योजना की है। काव्य के भिन्न २ सर्गों में भिन्न भिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। इस

पर प्रसिद्ध अण्य-दीक्षित की विस्तृत टीका भी है।^१ पादुकासहस्र नामक काव्य श्रीरामचन्द्रजी की पादुकाओं की प्रशंसा में लिखा गया है। कहा जाता है कि एक बार नान्यप्रतिस्पर्धा में एक रात्रि में केवल ३ घण्टों में १ हजार श्लोकों की रचना की गई थी।^२

सकरपसूर्योदय १० अकों का एक महानाटक है। इस नाटक के आरम्भ में कहा गया है—

न तच्छास्त्रं न सा विद्या न तच्छिल्पं न ता कला ।
नाऽसौ योगो न तज्ज्ञानं नाटके यन्न दृश्यते ॥

इसी कथन के अनुसार कवि ने इस नाटक में वेदान्तशास्त्र और अध्यात्मज्ञान को अपने विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार प्रेक्षकों के अन्तःकरण पर प्रतिबिम्बित करने की चेष्टा की है। श्रीकृष्णमिश्र के प्रबोधचन्द्रोदय नाम के नाटक के अनुकरण पर ही इसका नाम सकरपसूर्योदय रखा गया है। इस नाटक का प्रधान रस शान्त रस है। इस रस की प्रशंसा में नाटक में कवि ने लिखा है—

शमस्तु परिशिष्यते शमितचित्तत्वेदो रस
अनवमगुणो यस्मिन्नाट्ये रसो नवमस्थितः ॥

इस नाटक पर अहोविल, कौशिक श्रीशैलताताचार्य, नारायण और रामानुज इन विद्वानों की चार टीकाएँ हैं^३।

अच्युत शतक विष्णु भगवान् की प्रशंसा में लिखा गया एक प्राकृत काव्य है^४।

श्री वेदान्त देशिक की लघुरचनाओं में निम्नलिखित रचनाएँ सम्मिलित हैं—

हृषग्रीवस्तोत्र,	देवराजपञ्चाशत्,	गोपालविंशति,	देहली-स्तुति,
यथोक्तकारिस्तोत्र,	अष्टभुजाष्टक,	परमार्थस्तुति,	भगवदुद्ध्यनसोपान,
दशवतारस्तोत्र,	अभीनिस्तोत्र,	न्यास दशक,	न्यासविंशति,
न्यासतिलक,	श्रीस्तुति,	भूस्तुति,	नीलास्तुति,
गोदास्तुति,	सुदर्शनशतक	पोडशायुधस्तुति,	गण्डपञ्चक,
यतिराजसप्तति,	धानीपञ्चक,	वैराग्यपञ्चक ।	

१ मद्रास और धीरगम् से प्रकाशित ।

२ मैसूर और बम्बई से प्रकाशित ।

३ मद्रास, धीरगम्, बम्बई और यादगिरि से प्रकाशित तथा नारायणाचार्य और रघुनाथस्वामी (धीरगम्) द्वारा अंग्रेजी भाषा में अनूदित ।

४ मद्रास से प्रकाशित ।

रघुनीरगथ और गरुडदण्डक नाम और गरुड की प्रशंसा में लिखे गए गद्य काव्य हैं। भर्तृहरि के नीतिशतक क समान सुभाषित नीती भी उपदेशात्मक कृतियों से भरा हुआ एक काव्य इनका लिखा हुआ है^१।

श्री वेदान्तदेशिक के जीवन पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं। इनमें फौजिक गोत्र के बेंकटाचार्य के सुपुत्र कर्णिक सिद्ध वेदान्ताचार्य का आचार्य-विजय चम्पू मुरय ग्रन्थ है। इसमें चम्पू शैली में श्री बेंकटनाथ (वेदान्तदेशिक) का जन्म और जीवनवृत्त वर्णित किया गया है। यह ग्रन्थ तेलगु भाषा में मद्रास से प्रकाशित हो चुका है। निगमान्त चरित, वेदान्तदेशिक-गद्य, वेदान्तदेशिक-चरित और वेदान्त देशिक मंगलाशासन इत्यादि अन्य काव्य भी श्रीबेंकटनाथ के जीवनवृत्त और कार्यों पर लिखे गए हैं।^२

श्री वेदान्तदेशिक का पुत्र धरद अथवा नारायणाचार्य वि० स० १३७३ में उत्पन्न हुआ था। यह भी बड़ा विद्वान् था। इसने भी दो सन्देश काव्य कौकिल सन्देश और शुकसन्देश लिखे हैं।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीप्रतिवादिभयंकर श्रीवेदान्तदेशिक के मित्र थे। उनका पुत्र बेंकटेश वेदान्तदेशिक का शिष्य था और उसने भी वैष्णव मठियों की यात्रा के प्रसंग में अनेक स्तोत्र ग्रन्थ लिखे हैं।

हस-सन्देश की कथा

इस काव्य की कथास्तु रामायण से सयद्ध है। सीताजी की शोच करने के बाद जय हनुमानजी लका से लौट आते हैं, तब श्री रामचन्द्रजी रायण से युद्ध करने की तैयारिया करने में पूर्व अन्तरिम काल में सीताजी को सान्त्वना देने के लिए रावण-हस को अपना दूत बनाकर लका भेजते हैं। इस प्रसंग में प्रथम तो हस की प्रशंसा और उससे प्रार्थना की गई है। फिर उसे मार्ग की सुविधाएँ बताते हुए लका जा को कहा गया है। माल्यधानु पर्वत से लका जाने के लिए दो मार्ग बताए गए हैं—सह्य पर्वत होत हुए एक पश्चिम मार्ग तथा मद्रास प्रान्त के पूर्वी समुद्र तट से होते हुए दूसरा पूर्वी मार्ग। पश्चिम मार्ग में निरन्तर धर्या होते रहने के कारण हस को पूर्वी मार्ग प्रदण करने का परामश दिया गया है। इस प्रकार पूर्वी मार्ग से लका की ओर

^१ का-यमाला, भाग = पम्पई से प्रकाशित।

^२ डॉ० सत्यप्रसन्नसिंह, पृष्ठ ९, पी एच डी का 'वेदान्तदेशिक उनके जीवन, प्रयोग और दर्शन का अध्ययन' नामक ग्रन्थ भी दर्शनीय है। यह ग्रन्थ चौधव्या बनारस से प्रकाशित हुआ है।

चलने पर कर्णाट और आन्ध्र देश होते हुए अजनाद्रि^१ (वेंकटाद्रि) के मिलने का उल्लेख किया गया है। अजनाद्रि से दक्षिण की ओर चलने पर वनरु मुखरी [सुवर्णमुखरी] नदी के तट पर विश्राम करने के बाद तुण्डीरमण्डल^२ में घूमते हुए सत्यव्रत-क्षेत्र तथा काचीनगरी जाने का हस को परामर्श दिया गया है। इस अन्तर पर काचीनगरी के मध्य में से बहती हुई वेगा नाम की नदी तथा उसके उत्तरी तट पर स्थित हस्तिशैल पर्वत का भी उल्लेख किया गया है। तुण्डीरमण्डल के बाद चोलदेश जाने का हस को फिर परामर्श दिया गया है। चोलदेश के वर्णन में कवि ने पृगवृक्षों के समूह, कावेरी नदी श्वेतशैल, नीलीयन तथा चन्द्रपुष्करिणी का उल्लेख किया है। चन्द्रपुष्करिणी के तट पर श्री रमधाम की स्थिति बताई गई है। चोलदेश और पाण्ड्य देश के मध्य में चोरो इत्यादि से युक्त भयकर वन की स्थिति बताई गई है। अतः इस वन को चुपचाप शीघ्र गति से पार करने का हस को आदेश दिया गया है। पाण्ड्यदेश में पहुँचने पर सुन्दर विष्णु के निवासस्थान धृगभाचल को नमस्कार करने के बाद ताम्रपर्णी नदी और वहा से बाईं ओर चलने पर दक्षिण समुद्र तट के मिलने का वर्णन किया गया है। इस समुद्र-तट से लका नगरी के लिए उड़ने पर मार्ग में सुवेल पर्वत के मिलने तथा वहा से फिर हस के लका पहुँचने का उल्लेख किया गया है। लका में राण के प्रासाद से सीधे त्रशोरुगटिका में जाने और वहा शिशपा वृक्ष के नीचे सीताजी से मिलने का हस को परामर्श दिया गया है। इस प्रकार सीताजी के पास हस के पहुँचने की सभायना कर कवि ने सीताजी की विभिन्न विरहायस्थाओं का रामचन्द्रजी के मुख से वर्णन किया है ताकि हस को सीताजी के पहिचानने में कोई कष्ट न हो। अन्त में कवि ने रामचन्द्रजी का सीताजी के प्रति दिया जाने वाला सन्देश हस को बताया है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी के प्रियोग में उठाए हुए रामचन्द्रजी के अनेक कष्टों तथा विभिन्न शत्रुओं में उनकी विविध विरहायस्थाओं का वर्णन किया गया है। इन्मक बाद समुद्र का पुल बाध कर लका पहुँचने, लका का विध्वंस करने और राण के सहार के बाद सीताजी को वापिस ले आने का उल्लेख किया गया है। अन्त में सीताजी को किसी तरह अपना जीवन बनाए रखने का भी परामर्श दिया गया है। इस प्रकार मार्ग-प्रदर्शन और सन्देश कथन के बाद हस से एक दम लका जाने की प्रार्थना की गई है। सन्देश कार्य करने के बाद अपनी राजहसी के साथ स्वैर विहार करने की शुभकामना भी हस के प्रति व्यक्त की गई है।

१ उत्तरीय अर्काट में तिरुपति [तृपति] के निकटस्थ तिरुमलाई पर्वत। वहा पर श्री रामानुज ने शिव के स्थान में वेंकटस्वामी नाम से विष्णुभगवान् की पूजा प्रचलित की।

२ टोण्डमण्डल।

इस प्रकार हंस द्वारा सन्देश भेजकर तथा सेतु द्वारा समुद्र पार कर रामचन्द्र जी लका पहुँचते हैं। वहाँ रावण को मार कर और सीताजी को लेकर प्रसन्नता के साथ अपनी राजधानी अयोध्या में वापिस आ जाते हैं और भरत द्वारा रक्षित राज्य को पुनः चलाने लगते हैं। उस, यहाँ पर काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्यसमीक्षा

प्रस्तुत काव्य एक सुन्दर सन्देशकाव्य है। इसमें दो आश्रयास हैं। किसी को सन्देश भेजने का प्रयोजन उभे आश्रयासन देना ही होता है। इसीलिए इस काव्य में कथावस्तु दो आश्रयासों में बँटी हुई है। प्रथम आश्रयास में मार्ग प्रदर्शन है तथा द्वितीय में लकार्णन और सन्देश कथन है। प्रथम आश्रयास में ६० तथा द्वितीय में ५१ श्लोक हैं। मन्दाक्रान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है। काव्य की शैली उड़ी मधुर है। प्रसाद और माधुर्य गुणों ने काव्य श्रोतप्रोत है। क्लिष्ट और लम्बे समास प्रायः इस काव्य में नहीं हैं। रामायण की कथा को सक्षेप में प्रस्तुत करने के कारण इस काव्य में सक्षेप गुण भी विद्यमान है। काव्य का मुख्य रस त्रिप्रलभ शृंगार है। यद्यपि कथावस्तु रामायण से संबद्ध है, फिर भी कवि ने हंस को दूत बनाकर अपनी स्वतन्त्र उद्भावनशक्ति का परिचय दिया है।

काव्य में यत्र तत्र रमणीय स्थलों का बड़ा ही सरस वर्णन किया गया है। कर्णाट और आन्ध्र देश के सीमा प्रदेश में खेतों की खजाली करने वाली कृषक स्त्रियों की सुगन्धस्था का बड़ा ही भावपूर्ण चित्र कवि ने अंकित किया है—

इच्छुच्छ्राये विसलपत्रय तल्पमातस्थुषीणा
सरलापेम्नैर्मुदितमनसा शालिसरसिकाणाम् ।
कर्णाटान्ध्रप्रतिकरवशात् कर्तुरे गीतिभेदे
मुह्यन्तीनामदनकल्प मीगध्यमात्सादयेथा ॥१॥२०॥

इसी प्रकार चोल देश के वर्णन प्रसंग में वहाँ की रमणियों के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कवि इस में कहता है—

सन्ध्यादाग सुरभिरजनीसमयैरगरागी
केशीज्यात्साकलदि तिमिर पालिकापीडगमं ।
आत्रिभ्राणामसरसिजहशो हस दोलाधिरोहात्
आधाम्यन्त मदकलगिरस्तेषु नेत्रोत्सर्ष ते ॥१॥ ३७ ॥

इस पद्य में बिना किसी शृंगार विशेष के चोल रमणियों का स्यामाधिक सौन्दर्य की व्यञ्जना की गई है। कुछ स्त्रियाँ झूला झूल रही हैं। साथ में गा मी

रही हैं। हरिद्रा का अग राग उनके अग पर लगा हुआ है। इससे सध्याकालीन जैसी लालिमा उनके अगों पर व्याप्त है। काले केशों में पूग कुसुम [सुपारी के फूल] लगे हुए हैं। इससे ज्योत्सना के साथ साथ एक तरफ अन्धकार भी है। इस प्रकार विभिन्न रूपकों द्वारा चोत्तरमणियों में कवि ने रजनी के रूपक की व्यञ्जना की है।

विद्रुमारण्य के सपर्क से शोभायमान समुद्र का वर्णन करते हुए कवि यही सुन्दर २ उपमाएँ देता है—

दायासक वनमित्र नभस्सन्ध्येषानुविद्ध
सिन्दूराक द्विपमिव हरि स्वाम्बरेणैव जुष्टम् ।
विद्रुयुद्विभन्न घनमिव सखे विद्रुमारण्ययोगात्
देहेनैक मिथुनमिव च द्रक्ष्यसि त्व पयोधिम् ॥ १ ॥ ५५ ॥

इस से लगा नगरी का वर्णन करते हुए कवि ने लका में राजहसी की बड़ी सुन्दर उत्प्रेक्षा की है—

तस्मिन् दृश्या तदनु भयतश्चारसीधावदाता
लका सिन्धोर्महति पुलिने राजहसीय लीना ।
त्वामायान्त पत्रनतरलैर्या पताकापदेशै
पत्तैरभ्युज्जिगमिपुरिव स्थासवति ध्राव्यनादा ॥ १ ॥ ६० ॥

रायण के यहा धन्दी जीवन विताती हुई सीताजी की कदण अग्रस्था का भी बड़ा हृदय-द्रावक चित्र पार्चा गया है—

शुद्धामिन्दोश्शपच भजने कौमुदां त्रिण्डुरन्तीं
आनीता या विपतरुवने पारिजातस्य शापाम् ।
सूक्ति रम्या खलपरिसरे सखे कीर्त्यमाना
मन्ये दीना निशिचर गृहे मैथिलस्थात्मजाताम् ॥ २ ॥ ७३ ॥

वर्षाकीणामिव कमलिनीं व्याहृतार्थामिरोक्तिम्
पकाञ्जिलष्टामिव त्रिसलता पत्यपेतामिरेभीम् ।
मेघच्छन्तामिव शशिकला त्रिघ्नरक्षाभिमाशा
व्याघ्रभ्रस्तामिव मृगवधू भूतले ज्यामिनास्ताम् ॥ २ ॥ ७४ ॥

अगौर्लायत्कि सलयसमैरज्जिभता कल्पपुष्पै
गाढाञ्जिलष्टा वपुषि विमल विम्रिताभिर्लतामि ।
सतापोष्णश्वसनपरपच्छापया किं च दीना
बन्दीभूता निशिचरगृहे तन्दनन्येव लक्ष्मीम् ॥ २ ॥ ७५ ॥

अन्त में सीताजी की दीना-स्था का भी बड़ा कष्ट विषय प्रस्तुत किया गया है। रामचन्द्रजी सीता के सम्बन्ध में कहते हैं—

शून्या दृष्टिश्चसितमधिक मीलित वक्त्रपद्म
धाराकार नयन सलिल सानुबन्धो विलाप' ।
इत्थ दैन्य किमपि विधिना दुर्निगारेण नीता
सा मे सीता तनुतरतनुस्तप्यते नूनमन्त ॥२॥२३॥

इस श्लोक में कवि ने सीता की विरहा-स्था का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दिया है। 'सानुबन्धो विलाप' से मन सग, संकटप और प्रलाप अ-स्थाप व्यक्त की गई है। 'शून्या दृष्टि' से जागरण-स्था और अरति, 'तनुतरतनु' से काश्य, 'धाराकार नयनसलिलम्' तथा 'सानुबन्धो विलाप,' इन पदों से लज्जात्याग और 'तप्यते नूनमन्त' से सज्जर अ-स्था व्यक्त की गई है। 'शून्या दृष्टि' से उन्माद अ-स्था का भी बोध होता है। 'मीलित वक्त्रपद्मम्' से मूर्छा की व्यजना हो जाती है। 'सा मे सीता' इन शब्दों व द्वारा कवि ने सीता के प्रति राम के प्रात्मीय भाव की बड़ी विशद अभिव्यक्ति की है।

रामचन्द्रजी के द्वारा सीता क प्रति भेजे जाने वाले सदेश में कवि ने रामचन्द्रजी की विभिन्न ऋतुओं की तत्तत् विरहा-स्थाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है। वसन्त ऋतु में कोयल कूक रही है। मरिचिका पुष्प खिले हुए हैं। चारों तरफ भौंरे गूँज रहे हैं। मलयचल की सुरभित हवाएँ धीरे धीरे चल रही हैं। हृदय में विरह का भार लिए रामचन्द्रजी स्तब्ध पड़े हुए हैं। ऐसी अ-स्था में इस डर से कि इन्हें कुछ हो न जाय, लक्ष्मणजी वायु के वेग से दूर रहने का रामचन्द्रजी से आग्रह करते हैं—

पाशें लोलै परभृतकुलैर्मुक्तकोलाहलाना
मर्लरिणुस्थगितधपुषा मन्दर निर्गतानाम् ।
भीतनाह भ्रमरपटलीश्रुखलासकुलानाम्
मागे तिष्ठन्मलयमरता धारितो लक्ष्मणेन ॥२॥२६॥

यथाऋतु में मेघों के गरजने तथा बिजली के चमकने पर अपनी प्रेयसी के साथ नृत्य करत हुए मोर को टपकर राम का ध्यान बलात् उसकी ओर आशुट हो जाता है—

चतो नैव त्यजति चपलाहेमकोणाभिधातात्,
धीरोदात्तस्तनित जलदात्ताण्डवारम्भमिच्छन् ।
पातो'मुक्त' कुटजकुसुमैर्यासिते शैलभृग
रक्ष पीडारहितद्विनादलपत्रन्यो मयूर ॥२॥२७॥

मयूर को राक्षसों की पीडा से मुक्त अपनी प्रेयसी के आलिंगन से धन्य वता कर राण द्वारा अपहृत सीता के वियोग से दुःखित राम ने अपनी अग्रन्यता व्यक्त की है।

दुःसह विरहवेदना में अपने जीवन की गतिविधि का वर्णन करते हुये रामचन्द्रजी सीताजी से कहते हैं—

देहस्पर्श मलयपत्रने दृष्टिसभेदमिन्द्री
धर्मकल्पा जगति भुवि चाभिन्नपयकगोत्रम् ।
ताराचित्रे प्रियति रितति श्रीरितानस्य पश्यन्
दूरीभूता सुतनु रिधिना त्वामह निर्विशामि ॥२॥४०॥

अन्न में सीता के पतिपरायणता, सुशीलता तथा मुकुमारता इत्यादि गुणों की प्रशंसा करते हुए और अपनी निष्ठुरता तथा परिताप का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं—

तातादेशात्सपदि भरते न्यस्तराज्याभिपेक
या मामेका वनमनुगता राजधानीं विहाय ।
तामेव त्वामुचितशयना याहमभ्ये मदीये
दूरे कर्तुं गुणरति मुहुर्दूयते जीरित मे ॥२॥४६॥

इस प्रकार इस काव्य में राम और सीता के विरह का उदा भावपूर्ण चित्रण पाया जाता है।

यह सन्देश काव्य मेघसन्देश का एक सफल अनुकरण है। भावा, भाव, छन्द और प्रक्रिया सभी दृष्टियों से कवि को अपने प्रयास में सफलता मिली है। छन्द तो मन्दाक्रान्ता है ही, साथ में भावा भी मेघ सन्देश के समान माधुर्य और प्रसाद गुण से परिपूर्ण है। प्रक्रिया की दृष्टि से भी यह काव्य मेघसन्देश जैसा ही है। स्थान स्थान पर भाव-साम्य भी काव्य में पाया जाता है। पाठको के तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों काव्यों से समानान्तर अवतरण दिए जाते हैं—

राजहस के विषय में हस-सन्देश में कहा गया है—

कृत्वा तस्मिन् बहुमतिमसौ भूयसीमाञ्जनेयात्
गाढोन्माद प्रणयपदयो प्राप धार्ताऽनभिज्ञे ।
विश्लेषेण क्षुभितमनसा मेघशैलद्रमादौ
याचना दैन्य भवति किमुत क्वापि सवेदनादे ॥१॥४॥

मेघसन्देश में मेघ के सन्बन्ध में कवि इस प्रकार कदना है—

इयौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्त (मेघ) यथाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥२॥

पाण्डय देश की स्त्रियों के प्रसंग में इस ने कहा गया है—

स्रस्तापीड प्रचलदलक व्यक्तताटकरत्नम्
मुकानूर्णस्फुरितिलर वन्त्रमुत्तानयन्त्य ।
देशे तस्मिन् कुण्डलयदृशो जातकौतूहलाम्बवा
मालादीर्घर्मधुरगिरित मानयिष्यन्त्यपागै ॥१॥४॥

इस पद्य में मेघसन्देश के निम्नलिखित पद के भागों की झलक स्पष्ट विद्यमान है। मेघ सन्देश में महानाल के मंदिर के पास कुछ काल तक ठहरने का मेघको परामर्श देते हुये कहा कहा गया है—

पादन्पासै कण्ठितरसनास्तत्र लीलापद्यै
रत्नच्छायापचितरलिभिश्चामरै कलान्त हस्ता ॥१॥३६॥इत्यादि

मेघ सन्देश में अलकापुरी का वर्णन करते हुये कवि ने अलका के प्रासादों की की तत्तद् विशेषताओं को लेकर प्रासादों और मेघ में समानता वर्णित की है। यथा—

विद्यन्त ललितप्रनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सर्गीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगभीरघोषम्
अन्तस्तोय मणिमयभुजस्तु गमभ्र लिहाग्रा
प्रासादास्त्वा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥२॥१॥

इसी तरह हससदेश में भी लना में लाई हुई सुरयुतियों द्वारा इस के अनुरक्त किये जाने का वर्णन करते हुये कवि ने सुरयुतियों और हस में समानता वर्णित की है—

लीलापेल ललितगमनाश्चारुनाद सशिजा
भरलाक्ष त्रय म्भरशरदृशो गौरमापाण्डुराग्य ।
मुग्धालाप म्पुण्यवसो मानसाहं मनोज्ञा
यथानीताम्सुरयुतयो रजयेयुस्समक्षम् ॥२॥१॥

इस पद्य में विषय भेद होत हुये भी मेघसन्देश की छाया स्पष्ट ही देख पड़ती है।

मेघ सन्देश में मेघ से निम्नलिखित प्रकार से सन्देश प्रारम्भ करने का लिये कहा गया है—

भर्तु मित्र प्रियमविधुय विद्धि मामभ्युवाह
तत्तमश्रीहृदयनिहितैरागत त्वत्समीपम् ।

यो वृन्दानि त्वरयति पयि श्राम्यता प्रोपिताना
मन्द्रस्निग्धैर्धनिभिरवलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥२॥३८॥

इसी प्रकार हस सन्देश में हस से सन्देश प्रारम्भ करने के लिये कहा गया है—

पत्युदेवि प्रणयसचित्र त्रिद्वि ढीर्घांगुपो मा
जीजातु ते दधतमनघ तस्य सनेशमन्त ।
शराणा यश्शरदुपगमे वीरपत्नीरगणा
समानाह समयमुचित सूचयेत्कूजितैस्सै ॥२॥२८॥

हस को केवल सन्देश ग्राहक न बनाकर युद्ध के समय की सूचना देने वाला भी बताया गया है । रामचन्द्रजी के प्रणयसचित्र को होना भी ऐसा ही चाहिए, जो उन्हें युद्ध के उचित समय की सूचना दे सके ताकि वे डीक समय पर युद्ध कर शीघ्रातिशीघ्र सीताजी के पास पहुँच सकें ।

मेघ सन्देश में मेघ के परिचय के बाद अपनी पत्नी की उत्सुकता का वर्णन करते हुए यक्ष कहता है—

इत्याख्याते पन्नतनय मैयिलीरोन्मुखी सा
न्यामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीन्य सभाज्य चैव ।
श्रोप्यत्यस्मात् परमवद्विता सौम्य सीमन्तिनीना
कान्तोदन्त मुहदुपगत, रुगमात् किंचिदून ॥२॥३६॥

इसी प्रकार हस के परिचय के बाद रामचन्द्रजी सीताजी की उत्कण्ठ का वर्णन करते हुए कहते हैं—

पश्यन्ती सा रघुपतिरधूस्रगामशेषावदात
प्रत्याश्वासादधिगतरुचि प्रान्तनीरेन्दुलेखा ।
भत्सदेशे तदनु सुमुखी साधधाना भवित्री
किं न स्त्रीणा जनयति मुद कान्तजातांगमोऽपि ॥२॥३०॥

मेघसदेश में मेघ से सर्वप्रथम कुशल पूछने के लिए कहा गया है—

अन्यापन्न कुशलमगले पृच्छति त्या वियुक्तः ॥२॥४०॥

हससदेश में भी सर्वप्रथम सीताजी की कुशल ही पूछी गई है—

पश्चादेव कथय भवतीभागप्रेयेन जीवन्
कल्याणीं त्या कुशलमनघ कोरुस्तेन्द्रोऽनुयु ते ॥२॥३१॥

‘अव्यापन्न,’ और ‘भरतीभागधेयेन जीवन्’ इन दोनों कथनों में भावसाम्य तो है ही, प्रत्युत ‘भरतीभागधेयेन जीवन्’ इस कथन द्वारा हससदेश में सीताजी के प्रति आदरमान भी व्यक्त किया गया है।

मेघ सदश में यक्ष मेघ से निम्न प्रकार से सदश प्रारम्भ करने के लिए कहता है—

शब्दारथेय यदपि किल ते य सखीना पुरस्तात्
कण्ठे लोल कथयितुमभूदाननस्पर्श लोभात् ॥२॥४२॥ इत्यादि

हस सन्देश में भी बहो जोरल कल्पना की गई है। वस्तु भेद होते हुए भी मूल भाव भिन्न नहीं है। देखिए, हस को किस प्रकार सन्देश प्रारम्भ करने के लिए कहा गया है—

यस्या यस्मिन् व्यग्रधिरभ्रदृभूपणालपनादि
नीतामेना नियतिभिभवादन्तरीष दरीष ।
प्रत्यासीदन्निय नयनयोयर्त्मनि स्थापयित्वा
स त्वामेव धदति कुशली दैवि सख्या मुनेन ॥२॥३२॥

मेघ सन्देश में यक्ष अपनी प्रेयसी को आश्वासन देता है—

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शाङ्गपाणी
शेषान् मासानगमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥२॥४६॥ इत्यादि

इसी प्रकार रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही आश्वासन दत हैं—

रक्षोर्मीलिस्तवकलवनाद्वैरग्रन्धे विमुक्ते
गत्या चोर्षी गगनपद्वीस्वैरिणा पुष्पनेण ।
सिद्धारम्भो सपदि भरतामाधिराज्याभिषेकात्
संप्राप्त्याश्चिरविरहतस्सचितान्देवि भोगान् ॥२॥४४॥

यक्ष ने अपने सदेश में कहा है—

नन्यात्मान बहू प्रिगणयन्नात्मनैरायलभ्ये
तत्कट्याणि त्यमपि नितरा मा गम कातरत्वम् ॥२॥४८॥

रामचन्द्रजी भी सीताजी को ऐसा ही परामर्श दत हैं—

रजात्मान कथमपि शुभे जीवितालयनमे ॥२॥ ६॥

मेघ सदश में यक्ष के दूत के रूप में मेघ की सत्यता प्रमाणित करने के लिए एक अभिज्ञान घटना भी उसे बताई गई है—

भूयश्चाह त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे ॥२॥१५०॥ इत्यादि

उसी तरह हस सन्देश में भी हस के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार के सन्देश के नियारण के लिए रामचन्द्रजी ने हस के द्वारा सीताजी को एक व्यक्तिगत घटना की याद दिलाई है—

चित्ते कुर्यात्तदपि भवती यज्जनस्थानयुद्धात्
सप्राप्त मा दशमुखसमान्भारयित्वा खरादीन् ।
शस्त्राघात स्तनफलशयोरूपमणा रोपयद्भिभ
गाढाश्लेषैरपिहितवती गद्गदा हर्ष-वाप्यै ॥२॥४५॥

मेघ सन्देश के समान इस काव्य में भी सन्देश पहुँचाने के बाद हस के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की गई हैं—

स्वैर लोभान् विचर निखिलान् सौम्य लक्ष्म्येऽदिष्टु
सर्वाकारैस्त्वदनुगुणया सेवितो राजहस्या ॥२॥४८॥

इस प्रकार दिश पाठक समझ सकते हैं कि इस काव्य में मेघसन्देश का भाषा और भाव दोनों दृष्टि से पर्याप्त अनुकरण किया गया है।

कुछ विद्वानों की धारणा है कि इस काव्य में रामरूपी पर ब्रह्म से सीतारूपी जीव का विरह मनरूपी दशासन के द्वारा ससार रूपी समुद्र के पार ले जाने के कारण उत्पन्न कर गुरु रूपी हस को जीव ब्रह्म के मध्य में सन्देश-वाहक बनाकर शरद् ऋतु का वर्णन करते हुए शान्त रस का परिपोष किया गया है। लेकिन काव्य में इस धारणा की पुष्टि करने वाले अन्तरण प्राय नहीं ही हैं। चूँकि लेखक वैष्णव सम्प्रदाय का एक विशिष्ट आचार्य हैं तथा दार्शनिक भी हैं, अतः यत्र तत्र 'धर्म और दर्शन का प्रसंग आ जाना स्वाभाविक ही है। उदाहरण के लिए निम्न लिखित श्लोक देखिए—

सचिन्वयाना तदणुतुलसीदामभिस्वामभिव्या
तम्या वेद्यामाविदधती श्यामल हव्यराहम् ।
भोगैश्वर्यप्रियसहचरै काऽपि लक्ष्मी कटाक्षै
भूपश्चामा भुवनजननी देवता सन्निधत्ते ॥२॥१२०॥

इस श्लोक में दृष्टिशैल पर स्थित लक्ष्मीजी के साथ नारायण के विरह का वर्णन किया गया है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल में सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कवि ने योग का प्रसंग उपस्थित किया है। यथा—

धेतोवृत्तिं शमयति बहिस्सार्वभौमे निरोधे
 मय्येकस्मिन् प्रलिहितधिय मान्मथेनागमेन ।
 अभ्यस्यन्तीमनितरजुपो भावनाया प्रकषात्
 स्यातेनान्तर्विलयमृदुना निर्रिकल्प समाधिम् ॥२॥२२॥

इस श्लोक में रामचन्द्रजी के प्रति सीताजी के एकाग्रभाव का वर्णन करते हुए कवि ने निर्विकल्पक समाधि का रूपक प्रस्तुत किया है। लेकिन यह सब गौण है। शान्त रस के परिपोषण की ओर कवि की दृष्टि कभी नहीं रही है। काव्य के प्रारम्भ में ही कवि ने रामचन्द्रजी की अबन्धा का वर्णन करते हुए कहा है-

वंशे जातस्सन्नितुरनघे मानयन्मानुपत्यं
 देवश्रीमान् जनकतनयान्पणे जागरूकः ।
 प्रत्यायाते पन्नतनये निश्चिन्तार्थस्स कामी
 कर्पाकारा कथमपि निशामानिभात विपेहे ॥१॥१॥

इस पद्य में 'जनकतनयान्पणे जागरूक' तथा 'निश्चिन्तार्थस्स कामी' इन पदों से राम के मन सग और स्वरूप तथा 'कर्पाकारा कथमपि निशाम्' इत्यादि कथन से जागरावस्था, आत्मसुख और चिन्ता की व्यञ्जना की गई है। इस तरह यह स्पष्ट है कि इस काव्य में बियुक्त सीता रूप आलम्बन, शरद ऋतु और एकान्त वाम इत्यादि उद्दीपन, शय्यापरिवर्तन इत्यादि अनुमानगम्य अनुभाव, चिन्ता और आत्मसुख इत्यादि सचारिभाव तथा रोमांच, स्वेद और वैषम्य इत्यादि सात्त्विक भावों व द्वाग श्री रामचन्द्रजी व रतिस्थायिभाव की ही पुष्टि की गई है। अतः विप्रलम्भ ऋ गार ही इस काव्य का मुख्य रस है और यह विप्रलम्भ भी यदा पर प्रयासजन्य है, क्योंकि रामचन्द्रजी और सीताजी का परस्पर मिलन पहिले तो हो ही चुका है। विप्रलम्भ ऋ गार के साथ साथ करण रस भी काव्य में विद्यमान है।

काव्य के परिशीलन से इतना तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य बहुत सरल और मधुर है। मेघसन्देश के अनुकरण पर लिखे होने पर भी काव्य में मौलिकता है। भावा पर कवि का पूर्ण अधिकार है। राम जैसे धीरोदात्त और इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति को काव्य का नायक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को मेघ सन्देश की अपेक्षा कुछ विशिष्ट रूप दे दिया है तथा नायक नायिका के दृष्टि-कोण से सन्देशकाव्यों के क्षेत्र को और भी विस्तृत कर दिया है।

इस के दूत बनाए जाने का विचार कवि ने नलदमयन्ती घृत्तान्त से ही प्रद्वल किया है। सन्देश की समाप्ति पर इस की प्रशंसा करते हुए रामचन्द्रजी कहते हैं-

प्रागप्येव परिणतगुणा नेवत्रे वीक्ष्य वार्ताम्
अर्तनाण व्रतमिति विदुहस शुद्धात्मना य ॥२॥४७॥

इस पद्य से यह नितान्त स्पष्ट है कि नलदमयन्ती वृत्तान्त से ही कवि ने इस के दूत बनाने का विचार ग्रहण किया है। भाषा, भाव, छन्द तथा प्रक्रिया इन सभी दृष्टियां से यह सन्देश काव्य एक सुन्दर रचना है तथा सन्देशकाव्यों की परम्परा में विभिन्न साहित्यिक विशिष्टताओं के कारण इसका अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है।

किसी अनिर्ज्ञात लेखक का इस संदेश (वि० पञ्चदश शतक)

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् ससृष्ट सीरीज, त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्प्रशिव शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है। इस काव्य पर पद्यमय एक व्याख्या भी है। लेकिन कवि तथा टीकाकार दोनों के ही विषय में कुछ ज्ञान नहीं है। हिज हाईनेस श्री विशागम् तिरुनल महाराज ने, जो कि ससृष्ट विद्या के प्रेमी थे और स्वयं भी बड़े विद्वान् थे, इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में रायल एशियाटिक सोसाइटी के पत्र स० १६ स० १८८८ ई० पृष्ठ ८५० पर लिखा है—

“The other Hamsa sandesha whose author's name could not be found out, is quite of a different nature. The subject is a philosophical one. It is probable that some rival poet of the Vaishnava Vedantacharya has written this, as he (the Vedantacharya) has composed a Nataka named “Sankalpa suryodaya” to match the Prabodhachandrodaya”

हिज हाईनेस श्री विशागम् तिरुनल महाराज की यह भी राय है कि यह काव्य तथा और भी सन्देश काव्य केरल देश के ही कवियों की रचनाएँ हैं और जिस तरह छप्पमिथ्र के प्रयोधचन्द्रोदय नामक नाटक के अनुकरण पर श्री वेदान्तदेशिक ने अपना सफरप सूर्योदय नामक नाटक लिखा, उसी तरह यह काव्य

भी वेदान्तविषय को सुगम बनाने के लिए लिखा गया है। श्री वेदान्तदेशिक ने भी इस सन्देश लिखा है, लेकिन यह काव्य उनके काव्य से केवल नाम में ही समता रखता है। विषय की दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है।

काव्य में—यत्सश्लेषे सति नु गुरुणा शक्रेण्य्यभिन्नम् ॥२॥३६॥ पद 'से' श्री शकराचार्य के लेखक ने गुरु होने की भी सम्मानना की जा सकती है। समझ है कि लेखक श्री शकराचार्य का साक्षात् शिष्य न हो और उनकी परम्परा में होने के कारण उन्हें गुरु रूप से मानता हो।

इस तरह यह तो निश्चित ही है कि यह काव्य श्री शकराचार्य तथा श्री कृष्णमिथ के परंपरों किसी कवि की रचना है। समझत श्री वेदान्तदेशिक के समकालीन किसी कवि ने इसे लिखा हो। अतः इस काव्य का रचनाकाल वि० चतुर्दश शतक के कुछ बाद ही होना चाहिये।

कथासार

इस सन्देशकाव्य में कथास्तु जैसी कोई चीज नहीं है। वेदान्त विषय को रोचक ढंग से समझाने के लिये प्रतीक शैली (allegorical way) में यह सन्देश काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है—

कोई शिवभक्त शिवभक्ति रूपी अपनी अत्यन्त प्रेयसी के सुखद सम्पर्क से अद्वैतानन्द में मग्न था। अपने पूर्व कर्मों के प्रभाव से माया के वर्शामृत हो जाने के कारण वह शिवभक्ति से विरक्त हो जाता है। किसी तरह कुछ दिन जीतने के बाद वह अपने मनरूपी इस को दूत बनाकर शिवलोक में स्थित अपनी प्रेयसी शिवभक्ति के पास प्रेम सन्देश देकर भेजता है।

इस प्रसंग में भूमि से शिवलोक पर्यन्त मार्ग, तदन्तर्गत देश तथा उस स्थान के स्वताओं का वर्णन किया गया है। सर्व प्रथम इस से उत्तर दिशा की ओर चलने को कहा गया है। तदनन्तर गंगा (विंगला), यमुना (इडा) और सरस्वती (सुषुम्ना) इनके संगम पर स्थित मूलस्थान तीर्थ होते हुए तथा वहा पर विराजमान ईश, गणपति, तारकारि और दुर्गा की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर पास में ही पार्वती का तपोवन बनलाया गया है। वहा से उत्तर की ओर चलने पर कीचकचक्र, धर्मीकान्ध, महामेघ, सिद्धों द्वारा चन्दनीय मणियम मण्डप तथा वहा पर किराती रूप में विराजमान अर्पणा देवी के दर्शन करने का क्रमशः इस की परामर्श दिया गया है। वहा से फिर ऊपर की ओर सिद्धों द्वारा चन्दनीय कोई पूण्ड्रि आश्रम तथा वहा पर विराजमान मंगलाय्या देवी का उल्लेख किया गया है। वहा से आगे चलने पर जालन्धर देश तथा वहा पर लम्बिका में विराजमान भगवान् शिव की स्तुति करने के बाद आगे बढ़ने पर कैलाश नामक स्थान में शिदार करने का इस

को परामर्श दिया गया है। इसी कैलाश पर द्वादशान्त नामक शिवलोक बताया गया है। शिवलोक के वर्णन के बाद यहाँ पर स्थित चन्द्र मण्डल, दीर्घिका, ज्ञानकमल तथा उसके मध्य में प्रकाशमान स्वरूप कर्णिका का वर्णन किया गया है। इस ज्ञान कमल में ही शिवजी और पार्वतीजी को विहार करता हुआ बताया गया है। यहाँ पर शिवजी की श्रद्धा पूर्वक पूजा करने के बाद शिवभक्ति से हस के मिलने का उल्लेख किया गया है। शिवभक्ति को शान्ति के साथ विहार करता हुआ देखकर फिर सन्देश सुनाने की हस से प्रार्थना की गई है। सन्देश में भक्त ने अपनी दीना यस्था तथा शिवभक्ति की महिमा का वर्णन किया है।

श्रन्त में हस की कार्यक्षमता तथा उसके प्रति शुभ कामनाओं से काय समाप्त हो जाता है।

काव्यसमीक्षा

प्रिय की दृष्टि से यह सन्देश काय विरहलक्षणा नप ढग का है। सन्देश-काव्य प्रायः विप्रलम्भ शृंगार को ही प्रधान मानकर लिखे जाते हैं। वात्मीकि रामायण में रामचन्द्रजी के दूत के रूप में हनुमान्जी का सीताजी के पास जाना विरहकालीन घटना है और कालिदास के मेघदूत में भी मेघ को प्रेयसी के विरह प्रसंग में ही प्रिय का दूत बनाकर भेजा गया है। अतः यह स्पष्ट है कि सन्देश काव्य प्रायः विरहप्रसंग को ही लेकर लिखे गए हैं। इस हस सन्देश का लेखक भी इस बात को जानता है। उसने कतिपय स्थलों में रामचन्द्रजी, सीताजी और हनुमान्जी का उल्लेख भी किया है—

रामो यद्वज्जनकसुतया दण्डकारण्यभूमौ
क्षेत्रे प्राप्त क्वचन पुष्य कटपयामास वासम् ॥१॥१॥

काव्य के श्रन्त में भी शिवभक्ति से अपने मिलने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

काम इत्या बहुमुपमया प्रेयसीं तामजाप्स्ये
यद्वत् पूष्य रघुकुलपतिमथिलां मान्यशीलाम् ॥२॥१॥

इसी प्रकार हस को दूत बनाने के प्रसंग में हनुमान्जी का भी उल्लेख किया गया है—

क्षेत्रे तन्मिन् सह विहरतामिन्द्रियाणा मृगाणाम्
इत्या तृप्तिं विषयस्वल्पैर्यापयित्वा दिनानि ।
संसारार्धे प्रतरणविधायान्जनेयं यथा यं
हस कञ्चित् सदचरमसौ मानसस्थ ददर्श । १॥२॥

इन सब अवतरणों से यह स्पष्ट है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में वात्मीकि रामायण का यह प्रसंग अग्रगण्य था । कालिदास का मेघदूत भी एक आदर्श सन्देशकाव्य के रूप में कवि के समय में प्रसिद्ध था और कवि की यह महत्संकाक्षा रही होगी कि उसका काव्य भी देश भ्रम में प्रसिद्ध हो । इसीलिए काव्य में कालिदास का अनाग्रयक रूप से उल्लेख भी पाया जाता है । कालिदासी को एक बार प्रणाम करने से कालिदास की तरह इस के भी ख्यातिप्राप्त होने का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

कालीं कालाभ्युदनिभरचिं ता सकृत् तत्र नत्वा
 प्राप्तासि त्व प्रथितमहसं कालिदासस्य कीर्तिम् ।
 सूक्तिज्योत्स्नासु तिविततिभि स्वर्धुनीस्पर्धिनीभि
 आन्यं काव्य भुवि रचयतां मातृका यत्प्रबन्धा ॥१॥३३॥

टीकाकार ने भी लिखा है कि कवि ने कालिदास की महिमा गाने के लिए ही कालिदास का उल्लेख कर दिया है—

किञ्चिन्निमित्तमाधित्य कालिदास महाकविम् ।
 उपश्लोकयितुं प्राह कवि श्लोक सुगोधक

इन सब बातों से यह नितान्त स्पष्ट है कि कवि सन्देशकाव्यों की विषयपरम्परा में सर्वथा परिचित था । यह उसकी अपनी नवीन कल्पना ही है कि उसने वेदान्त और भक्ति के विषय को सन्देशकाव्य के रूप में पाठकों के सामने रखा है । कवि को इस का नल के सम्बन्ध में किया गया दूतकार्य ज्ञात ही है जैसा कि उसने स्वयं उल्लेख किया है—

प्रेक्षेत त्या नल परिसरादागत राजहस
 यैर्दभीं प्रियरचनतो भूयसाऽह्लादयन्तम् ॥२॥३१॥

तथा कवि ने स्वयं—

आय भर्तुं स्तत्र सहचरश्चित्तसङ्गोऽस्मि हस
 स्तत्सन्देशादुपगत इहेत्येवमाचक्षत तस्यै ॥२॥२६॥

इस पद्य में चित्त को हंस स्वरूप माना है, अतः इस को सन्देश यादक बनाना उचित ही है । इसका अतिरिक्त श्री वेदान्त-दक्षिण जो कि रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे और त्रिशिष्टाद्वैत के मानने वाले थे, इस-सन्देश नामक सन्देश काव्य रामचन्द्रजी की कथा के आधार पर लिख चुके थे, उनके समकालीन और प्रतिद्वन्द्वी होने के कारण कवि का अपने काव्य का इस-सन्देश नाम रखना और भी उचित जान पड़ता है ।

विषय की दृष्टि से सर्वथा भिन्न होते हुए भी यह काव्य मेघदूत के अनुकरण पर ही लिखा गया है। काव्य में दो भाग हैं। पूर्व भाग में ५० और उत्तरभाग में ५१ श्लोक हैं। छन्द मन्दाक्रान्ता ही है। भाजानुकूल सरस और प्रसाद गुणयुक्त भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शान्त रस की ही काव्य में प्रधानता है।

काव्य में दो मार्गों का प्रतिपादन किया गया है—एक आध्यात्मिक मार्ग जो कि परमार्थ स्वरूप है तथा उसका सहायक योगमार्ग। आध्यात्मिक मार्ग का तात्पर्य यह है कि मनुष्य अपने प्रारब्ध कर्मों के प्रभाव से ससार में जन्म लेता रहता है। जय श्रद्धा, ज्ञान, श्रमण, धृति, शान्ति और तपस्या के द्वारा उसके सासारिक बन्धन नष्ट हो जाते हैं और वह अपने स्वरूप में आ जाता है, तब परमात्म प्रेम रूपी भक्ति के द्वारा उसे शिवसायुज्य प्राप्त हो जाता है। कवि ने काव्य के प्रथम श्लोक में ही कहा है—

अञ्चिन्माया मृग यश गत कर्मणा मुह्यमानो
भक्त्या शम्भोश्चरणभक्त्या विप्रयुक्तो विपश्य ॥१॥११॥

तथा एक अन्य स्थल पर भी अध्यात्म मार्ग का चित्र कवि ने इस तरह दिया है—

न त्यदयामि क्षणमपि चिरात् सञ्चिता ता तु सार्धौ
तस्या-सक्त सुचिरमनघ स्वाधिराज्य प्रपत्स्ये ।
श्रद्धा मेधा श्रुतिमपि धृतिं शान्तिदान्ती च मुक्तिं
कृष्णो गोपीजनमित्र भजन् निर्वृतस्त्व च भूया ॥

इस अध्यात्ममार्ग का महायज्ञ दूसरा मार्ग योगमार्ग है। इस मार्ग में सुषुम्णा से लेकर द्वादशान्तेन्दु मण्डल तक विभिन्न अवस्थाओं में से होते हुए मन की यात्रा का वर्णन किया गया है। अन्त में मन भक्ति व साध अमृतयोग अवस्था में पहुँच कर पूर्ण विधान्त हो जाता है। योग मार्ग का वर्णन कवि ने इस तरह दिया है—

मूले लिंग महितभुजगीमौलिरक्षापमानम्
ससर्पन्त्या शिशिरसुधया द्वादशान्तेन्दुशयात् ।
भक्त्या युतस्तत्र सहजया, मूयसै पाभिविज्ञ-
स्तत्तोयेन प्रियसग तनु प्लावयिवा सुगी स्या ॥२॥४७॥

इस दोनों धाराओं-अध्यात्म और योग-के अतिरिक्त काव्य में शैवसिद्धान्त की भी भक्तिक पाई जाती है। इस प्रसंग में निम्न अधतरणों पर विचार करना अनुचित न होगा—

दिव्या शक्ति परमपुरुषप्राप्तये श्रद्धधाना
मूले तस्मिन् निरसति चिर सा सुपुम्नाद्रूमस्य ॥१॥२२॥

सैवा गीरी सरस विसिनीकाण्डनन्तपमागी
भूतशेन प्रथितमहसा मट्गत प्रार्थयन्ती ।
मूले तस्मिन्त्रज्जलितमनल त्रि परिक्रम्य सम्यक्
प्रायस्तन्नी चरति सुचिर तापहन्त्री तपासि ॥१॥२३॥

इसके अतिरिक्त शिवभक्ति के पास ही तो इस के द्वारा सदेश भेजा गया है ।
इस प्रकार शैव सिद्धान्त की भी अन्तर्धारा काव्य में स्पष्ट ही प्रतीत होती है ।

उपर्युक्त शास्त्रीय विषयों के साथ-साथ काव्य में मधुरता लाने के लिए कवि ने
भक्ति को उत्तमनायिका तथा भक्त को उत्तमनायक के रूप में वर्णित किया है और
उनके विरह को इस तरह ही पाठकों के सामने रखा है मानो किसी प्रिय का अपनी
प्रेयसी से विरह हो । इस को देखकर भक्त की क्या दशा होती है । कवि कहता है—

दृष्टे तस्मिंश्चिरविरहिता प्रेयसीं रुद्रभक्ति
स्मार स्मार सजलनयनस्तत्र तूर्णविभूना ।
उच्चै स्तिथत्वा हतविधिवशात् प्राप्ततादग्विधाना
मूकीभाय खलु समुचितो बान्धवाना पुरस्तात् ॥१॥२३॥

भक्ति का विरहिणी नायिका के रूप में निम्न श्लोक में कैसा दयनीय चित्र
प्रस्तुत किया गया है—

काश्य यायात् खलु विधिवशात् प्रायश साम्प्रत सा
कालुष्य वा मयि पुनरनाचारमाशङ्कमाना ।
शोचेत् किं वा प्रियसदचरी दुर्लभं मा विदित्वा
किं किं बाला प्रियविरहिता नैव सञ्चितयन्ति ॥२॥२६॥

भक्ति का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

या सा वाचि प्रकृतिमधुरा वा च चित्तं दयालु-
र्यां वा नम्रा वपुषि विनयाद् वा च नेत्रे प्रसन्ना ।
साध्यास्तस्या किमिदं बहुभिर्यर्णनाना प्रकारै
सैवा वाचित् सरसिज्जमुषो मानसी च्छटिरन्या ॥२॥२७॥

इस पद्य में कवि ने भक्ति को एक उत्तम नायिका के रूप में कितने सुन्दर ढंग
से वर्णित किया है । जिस तरह कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी के गुणों की प्रशंसा करे,
इस तरह ही भक्त भक्ति के गुणों की प्रशंसा कर रहा है ।

कवि ने शिवजी का वर्णन करते हुए लिखा है—

मीलौ कुन्दोल्लसितमलरु सेन्दुलेश कण्ठ
काश्मीराङ्क तिलकमलिके लोचन सस्कुलिङ्गम् ।
कण्ठे कालागुरुमपि च य कालकूट चधत्से ।
सौम वृत्तं जघनपुलिने नूपूर व्यालमडघ्नौ ॥२॥६॥

भक्तों के हृदय का प्रभांरित करने वाला शिवजी का यह स्वरूप वर्णन कितना सुन्दर है ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट ही है कि अध्यात्म और योग के शुष्क विषय को कवि ने बड़े सरस ढंग से प्रतिपादित किया है । मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है । भिन्न विषय को लते हुए भी कवि ने मेघदूत की शैली का सफल अनुकरण किया है । कवि ने अपने विषय को ठीक उसी ढंग से व्यवस्थित किया है जैसा कि मेघदूत में पाया जाता है । भक्त का भक्ति से विरहित पुरुष के रूप में वर्णन, इस दर्शन, इस स्वागत, मार्ग वर्णन, सन्देशकथन और आश्वासन तथा इस के प्रति शुभकामनाएँ यह सब मेघदूत की ही प्रेरणा है । कहीं कहीं भाव-साम्य और शब्दसाम्य रिक्तकुल प्रत्यक्ष ही है । मेघदूत में मेघ के द्वारा सन्देश पहुँचाने की इच्छा से यक्ष मेघ का स्वागत करता है और उसके लिये अर्घ्य भी देता है—

अमीतेन स्वकुशलमयां हारयिष्यन् प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रै कुटजकुसुमै कटिपतार्घाय तस्मै
प्रीत प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागत व्याजहार ॥२॥८॥

इसी तरह इस सन्देश काव्य में भी कहा गया है—

आत्मोदन्त प्रियजनमसौ प्रापयिष्यन् प्रहृष्ट
कलत्तार्घाय प्रथमकुसुमै स्वस्ति तस्मै जगाद ॥२॥९॥

दोनों पद्यों में कितनी समानता है ।

मेघ को सन्देश ले जाने के लिये नियुक्त करते समय कामार्त होने का कारण यक्ष की विवेक शून्यता बतलाई गई है—

इत्योत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्त ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिरुपणाचेतनाचेतनेषु ॥२॥१०॥

इसी तरह इस काव्य में शिवलोक में मनरूपी इस से जाने की प्रार्थना करते हुए भक्त के सम्यग्ध में कहा गया है—

भङ्ग्यानास पशुपतिपदं गन्तुमेव यथावे ।
 नैवाविन्दत् तदिह वचसा चेतसामप्यभूमिम्
 युक्तयुक्तेऽपि हि त्रिदुपार्थिना नो विवेकः ॥१॥५॥

मेघदूत का मार्ग-कथन के प्रसंग में आया हुआ निम्न श्लोक—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्यत्रयाणामुत्तरुप
 सन्दश मे तदनु जलदं श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
 खिन्नं पिन्नं शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
 क्षीणं क्षीणं परिलघु पयः स्रोतसा चोपयुज्य ॥१॥१३॥

तथा इस काव्य का मार्ग कथन के ही प्रसंग में आया हुआ यह श्लोक—

आदौ तावच्छृणु कथयतो मार्गमन्याहृत मे
 सन्देशं ते श्रवणसुभगं सौम्यं । वक्ष्यामि पश्चात् ।
 पीत्वा पीत्वा शशिनिगलिता यत्र पीयूषधारा
 पद्मे पद्मे निहितजसति प्रत्यहं वास्यसि त्वम् ॥१॥६॥

देखिए । दोनों श्लोकों में शैली, भाव तथा शब्दों की समानता कैसी दर्शनीय है ।

मेघदूत में यज्ञ ने अपनी विरहिणी प्रेयसी की विरहावस्थाओं के समाजना प्रसंग में कहा है—

आलोके ते निपतति पुरा सा
 पृच्छन्ती वा मधुरवचना सारिका पञ्जरस्था,
 कच्चिदुभतुं स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥२॥२४॥

इसी तरह इस काव्य में भी विरहिणी भक्ति की विरहावस्था का वर्णन करते हुये कहा गया है कि सभय है वह उपनिपत् रूपी शारिका से यह पूछ रही हो कि उसे (शारिका को) कभी भक्त की याद भी आती है या नहीं—

पृच्छेद्वासौ चिरमुपनिपच्छारिकामन्तिवस्था
 पुं स किन्तु स्मरसि रसिके त्वं हि तत्र प्रेमपात्रम् ॥२॥२५॥

उपनिपत् को शारिका मानकर कवि ने यहाँ पर कैसी सुन्दर उपेक्षा की है तथा मेघदूत से लिये हुये भाव को भक्ति के प्रसंग में कितनी मौलिकता के साथ एकरस कर दिया है ।

मेघदूत क.—रामालिख्यं प्रणयमुपिता धातुदामे शिलायाम्—

आत्मानं स चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुंम् ॥२॥४७॥ इत्यादि

पद की छाया लेकर भक्ति के सम्यन्ध में कवि ने क्या ही सुन्दर कटना की है-

सप्रिद्धातु द्रव्यमतिरग स्वच्छमासाद्य मद्य
प्रज्ञासङ्गमपि च फलका तूलिका ध्यानरूपाम् ।
शान्ता मू त तत्र विलिपितु भावयाम्येव यावत्
तावद् वैरी नयनयुगल वाष्पपुरो निरुन्धे ॥

ज्ञान के रग से प्रज्ञा रूपी फलक पर ध्यान रूपी तूलिका से भक्ति की शान्त मूर्ति का भक्त चित्र बनाना चाहता ही है कि उसकी आशों में लगातार आस धरसने लगते हैं और चित्र बनाने का विचार अपूर्ण ही रह जाता है ।

भक्ति के पूर्णरूप की रोज में भक्त योगियों, प्रतिभों, यतियों तथा जटाधारियों क समीप जा चुका है, लेकिन कहीं भी उसे भक्ति का पूर्ण स्वरूप उपलब्ध नहीं हो सका है—

योगीन्द्रेषु श्रवणमननध्यानशीलेषु नित्य
मौनस्थेषु प्रतिषु यतिषु ब्रह्मप्रिद्धस्तु सस्तु ।
भस्मच्छन्नेऽपि च जटिलेऽशतस्त्वा विपश्यन्
पूर्णाकारा क्वचिदपि विधेर्वभयान्तो लभे त्वाम् ॥२॥२६॥

इस श्लोक में मेघदूत के—श्यामाम्बुङ्ग चकितहरिणीप्रैक्षणे दृष्टिपात
वक्त्रच्छाया शशिनि शिखिना र्हभारेषु केशान् ॥२॥२३॥ इत्यादि

पद का भावानुकरण किया गया है ।

मेघदूत में यक्ष अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की सभायना के पश्चात् कहता है—

वाचाल मा न खलु सुभगभन्वभाय करोति
प्रत्यक्ष ते निखिलमचिरात् भ्रातरक्त मया यत् ॥२॥२३॥

इसी तरह इस काव्य में भी भक्ति की विरहावस्थाओं की सभायना के बाद भक्त कहता है—

आत्मश्लाघा वरमिति न मे सीम्य । जानाहि वाक्य
साक्षात्कतुं प्रभवति भयान् क्षिप्रमेयामुमर्धम् ॥२॥२७॥

इस तरह मेघदूत और इस हस-सन्देश में समान भाव तथा पदावली वाले अनेक स्थल पाए जाते हैं ।

धार्मिक विषयों का प्रतिपादन करते हुए भी कवि ने अपनी साहित्यिक रुचि का, यथास्थान परिचय दिया है। योग के गहन मार्ग को सरल उपमाओं द्वारा सुगम बनाने की चेष्टा की है। सुषुम्णा मार्ग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

मीहे लाक्षागृह इव तदा दहमाने समन्तात्
सीपुम्न तत् प्रविश सुपिर वृत्तिभेदैश्च शक्त्या ।
मात्रा सुप्तै सह च सहजैर्भूमिसेन सुरङ्गा
यद्वत् प्राप्ते विदुरगुरुणा पूर्वमेगोपदिष्टाम् ॥१॥३१॥

महाभारत की प्रसिद्ध कथा से उपमाएँ सगृहीत कर कवि ने अपने विषय को कैसा सरल बनाया है।

इसी तरह वेदान्त के विषय को सर्वसुगम उपमाओं द्वारा कितना सरल बनाकर निम्न श्लोक में समझाया गया है—

नष्टो मायामृग इव खरो दूषणश्चैव पाप्मा
व्यामोहाय प्रसरति पर वासनाराक्षसो मे ।
ससाराख्ये केन विगलंति स्वप्नरूपेऽन्धकारे
बोधादित्येऽप्युदितंति सत्याययो म्याद्धि योग ॥२॥३८॥

ज्ञान के उदय होने पर ही भक्ति की प्राप्ति हो सकती है। इस सिद्धान्त को कवि ने कितनी अच्छी तरह सरल उपमाओं द्वारा समझाया है।

शिवलोक से हंस के साथ भक्ति के आने का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

इत्येव त्वययुदितमिति सा सानुकम्पा तदा त्वा—
मन्यग्यायात् प्रणयभरिता गौरिवात्मीयवत्सम् ॥२॥४४॥

भक्ति ही भक्तवत्सलता यत् करने के लिए 'गौरिवात्मीयवत्सम्' उपमा कितनी भावपूर्ण हो गई है। इस तरह कवि ने वेदान्त, योग और भक्ति के विषय को काव्य मय ढंग से इस काव्य में प्रतिपादित किया है।

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को भली भाँति काव्य के विषय, भाग, शैली, छन्द और भाषा से परिचय हो गया होगा। मेरूदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने अपनी कल्पना से काव्य में एक नूतनता उत्पन्न कर दी है। शृंगार रस के अनुकूल वातावरण में शान्त रस का संज्ञा कर दिया है। सन्देशकार्यों की परम्परा में यह काव्य विषय की दृष्टि से एक नई दिशा का निर्देश करता है। श्री वेदान्तदशिक न र्थाट्पणमिध क प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के अनुकरण पर विशिष्टाद्वैतपरक अपना

संस्कृत-सूर्योदय नामक नाटक लिखा । इस नाटक से कवि के हृदय में रूपकमय किसी काव्य के लिखने की प्रेरणा हुई होगी । लेकिन वेदान्तदेशिक के इस सन्देश देखकर उसने सन्देशकाव्य ही 'एलीगोरीकल' (Allegorical) ढंग से लिखना ठीक समझा तथा अपने प्रतिद्वन्द्वी के सन्देश-काव्य को तुच्छ बनाने के लिए वेदान्त, योग और भक्ति से युक्त अपने काव्य का नाम इस सन्देश रख दिया । यदि इस काव्य को मानससन्देश या ऐसा ही कुछ और नाम दिया जाता तो भी अनुपयुक्त न होता । अस्तु, सन्देश काव्यों की परम्परा में भक्ति-काव्य या शान्तरस प्रधान काव्य के रूप में इस काव्य के महत्त्व को भुलाया नहीं जा सकता । वेद है कि ऐसे महत्त्वपूर्ण काव्य के रचयिता का नाम इत्यादि अभी तक कुछ भी ज्ञात नहीं हो सका है । काव्य में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लेखक का कुछ भी परिचय नहीं मिलता है । इस काव्य के टीकाकार का भी समय और स्थान कुछ भी ज्ञात नहीं है । टीका की विशेषता यह है कि यह पद्यात्मक रूप में लिखी हुई है । वेदान्त और भक्ति के अनुयायी विद्वानों का अपने विषय में ग्रन्थ में कहीं भी कुछ भी न लिखना स्वाभाविक ही है ।

लक्ष्मीदास का शुकसंदेश (वि० पचदश शतक)

मालाशर प्रान्त के सन्देशकाव्य-लेखकों में लक्ष्मीदास का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है । इस सहृदय कवि की कोई और रचना अब तक उपलब्ध नहीं हुई है, लेकिन इसका यह शुकसंदेश ही मालाशर में बहुत दिनों से प्रथम कोटि का एक काव्य माना जाता रहा है । मालाशर के प्रसिद्ध कवि तथा कौंगनोर राजपूत से सवद्व स्वर्गीय श्री कुन्दकुट्टन धर्मन के मलयालम अनुवाद सहित श्री टी० क० वृष्णमेनन द्वारा मलयालम लिपि में यह काव्य प्रकाशित किया जा चुका है । ४० पी० पस० अनन्तनागयण शास्त्री द्वारा सक्षिप्त भूमिका और टिप्पणों के साथ दक्ष-नागरी लिपि में मंगलोदय कम्पनी, त्रिवार (कोचीन) से भी यह काव्य प्रकाशित हुआ है ।

केरल देश में 'फरिट्टिम्पिल्लि' नाम से आजकल प्रसिद्ध स्थान ही लक्ष्मीदास का जन्म स्थान था । ऐसा ही सब का विचार है । है भी यह उचित ही, क्योंकि

इस स्थान पर आक्षेपों के ही घर अधिक पाए जाते हैं। लेकिन लक्ष्मीदास के समय क संस्कृत में विद्वानों में प्रकाशित भेद है। केरलीय विद्वानों में प्रायः ऐसा देखा जाता है कि वे अपने रचनाकाल का अक्षरों की सख्या द्वारा उल्लेख करते हैं। इस प्रकार कुछ विद्वानों का विचार है कि लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में ही 'लक्ष्म्या रणे शरदि शशिन' इन पदों द्वारा मुद्रालकार में अपने काव्य का निर्माण समय बता दिया है। गणना करने पर कलियुग का 3013 वा वर्ष इस काव्य का निर्माणकाल ठहरता है। दूसरे शब्दों में स० ११० ई० इस ग्रन्थ का निर्माणकाल आता है। लक्ष्मीदास ने कालिदास का अनुकरण तो किया ही है और कालिदास का समय भी उक्त समय से कुछ पूर्व ही बहुत विद्वानों द्वारा माना जा चुका है। अतः स० ११० ई० में लक्ष्मीदास द्वारा शुकसदेश का लिखा जाना कुछ भी असंभव नहीं है।

इसके विपरीत कुछ विद्वानों का विचार है कि प्रथम पद्य के 'दूरनीन स तस्या' इन पदों में ही कवि काव्यनिर्माण का समय बताता है। यह पद कलि दिनों की सख्या बताते हैं। इस प्रकार 666 वा कोलम्ब वर्ष ही शुकसदेश का रचना काल है। 666 कोलम्ब वर्ष सन् १४६१ ई० ठहरता है। अतः यही समय ग्रन्थ का रचना काल है।

चूँकि उद्यकवि के मयूरसदेश में शुकसदेश और कोकिलसदेश इन दोनों काव्यों का अनुकरण पाया जाता है और शुकसदेश को सभी लोग कोकिलसदेश से भी प्राचीन मानते हैं अतः कम से कम वि० पंचदशशतक के प्रारम्भ को इस काव्य का रचना काल मानना उचित रहेगा। (विशेष अध्ययन के लिए काव्य की भूमिका पेटिए)।

काव्य की रचा

गुणमापुरी अथवा गुणपुरी में शरद ऋतु की रात्रि में अपने प्रासाद के ऊपर दो प्रेमी सुखमय विहार में मग्न थे। इतने में नायक को अकस्मात् ऐसा म्पन्न आता है कि वह अपनी प्रियस्त्री से त्रिबुड गया है और घुमते-घुमते रामेश्वर के समीप रामसेतु पर पहुँच गया है। तदनन्तर स्थान में ही वह अपनी प्रियस्त्री के पास गुणमापुरी में एक शुक के द्वारा अपना सदेश पहुँचाता है। इस प्रसंग में रामेश्वरम् से गुणमापुरी तक के मार्ग का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है।

१ गुणमापुरी प्राचीन समय में एक प्रसिद्ध नगरी थी। स्वमत आक्षेप के एकाग्रामनिलक का ही वह नाम रहा हो। आजकल यह एक छोटा सा ग्राम रह गया है।

रामेश्वरम् में शिवजी की पूजा करने के बाद समुद्र तट होते हुए संतुमध, ताम्रपर्णी नदी, पारुड्यदेश तथा पारुड्यदेश की राजधानी मणलूर नगरी (मनालोेर) आगे सह्य पर्यंत को पार कर केरलदेश पहुंचने के लिए शुक से कहा गया है। तदनन्तर केरलदेश में कुछ दूर पर स्थित कन्याकुमारी क्षेत्र को दूर से ही प्रणाम कर पुनः सह्यपर्वत पर आ जाने के बाद शिवजी के एक मन्दिर तथा ब्राह्मणों के एक अग्रहार का उल्लेख किया गया है। इस अग्रहार के बाद थोड़ी दूर पर ही स्थानन्दूर [त्रिनेन्द्रम्] नगर बताया गया है। इस नगर में भगवान् अनन्तशयन के मन्दिर में सायकालीन पूजा में भाग लेने तथा उहा पर ही बाहर किसी आश्रम वृक्ष पर विश्राम करने के बाद रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही शुक से फिर आगे बढ़ने के लिए कहा गया है। इस तरह आगे चलने पर समुद्र तट पर स्थित कूप-कराजाओं की नगरी कुलपुरी, तदनन्तर कोलम्पदेश (मिलान), वरलभग्राम (तिरुवरल), त्रिम्बलीनगरी (विष्णुनाट) तथा त्रिम्बली के राजाओं के स्कन्धासार सिन्धुद्वीप (कतलतुरुत्तु) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस के बाद फुरला नामक (मुन्नात्तुपुक्क) नदी को पार कर ब्राह्मणों के कुछ ग्रामों, सुब्रह्मण्य मन्दिर, पशुपतिक्षेत्र तथा इसके पास बहती हुई चूर्णी (अल्ययं या पेरियार) नामक नदी को पार करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर केरल देश के राजाओं की राजधानी महोदयपुरी (तिरुवम्बिक्कुलम्) पहुंचने का शुक को परामर्श दिया गया है। इस नगरी के बाद पास में ही स्थित चरिडिका के मन्दिर का वर्णन किया गया है। तदनन्तर मंदिर के पास में ही स्थित गुणकापुरी में सूर्यास्त होत = पहुंच जाने के लिए शुक से कहा गया है। गुणकापुरी (तृक्कणामतिलक) के वर्णन के बाद नायक अपनी प्रेयसी के निवास स्थान का वर्णन करते हुए निम्नदर्ती कूप, वापी और फ्रीडोधान का भी वर्णन करता है। उद्यानस्थित तिलक, कुरवक तथा आश्रमवृक्ष के वर्णन के बाद अपने प्रासाद में स्थित त्रिदिवी नायिका का फिर वहाँ ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

नायिका के वर्णन के बाद नायक शुक से उचित अस्तर पारर नायिका से अपना सन्देश सुनाने के लिए कहता है। इस प्रसंग में नायक ने अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए अपनी प्रेयसी को सन्तुमना भी दी है। अन्त में अपने सम्बन्ध में सन्देश निवारण के लिए कई अभिशान घटनाएँ बताई हैं। इस तरह मार्गवर्णन, नायिका की विरहावस्था तथा सन्देश कथन के बाद शुक ने प्रति मंगलकामना के साथ कान्य समाप्त हो जाता है।

काव्यसमालोचना

मालासार प्रान्त में लिखे गए सन्देश कान्यों में यह सन्देश काव्य एक महत्त्वपूर्ण सन्देशकाव्य है। मेरुदूत के अनुकरण पर ही यह लिखा गया है और दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में मार्ग वर्णन और द्वितीय में नायिका की विरहावस्था

तथा सन्देह कथन है। समग्र काव्य में मन्दाकांक्षा छन्द ही प्रयुक्त किया गया है। शृंगार रस के अनुकूल प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में ही काव्य की रचना की गई है।

काव्य की कथा-रस्तु से पाठकों को विदित ही है कि नायक का अपनी प्रेयसी से वियोग केवल स्वप्नजन्य है। इसलिए कथानक में वह स्वाभाविकता नहीं है जो कि मेघदूत में पाई जाती है। चूँकि यह दोष प्रायः सभी सन्देश काव्यों में पाया जाता है, अतः इसे दोष न मानना ही उचित रहेगा। कवि का शुक को दूत बनाना उचित ही है क्योंकि शुक में मनुष्यों की वाणी यथानुपूर्व्य उच्चारण करने की बड़ी क्षमता पाई जाती है। श्रीहर्ष कवि ने भी अपने नैपथ्य काव्य में इस की वाञ्छित शक्ति का परिचय दत्त हुए 'स कीरवन्मानुषप्रगवादीत्' इस कथन से शुक की मनुष्यों जैसी उच्चारण शक्ति का समर्थन किया ही है। इस तरह शुक के सन्देश ल जाने में स्वाभाविक सौकर्य को देखकर ही कवि ने इसे दूत बनाया है। शुक की विशेषताओं का वर्णन करते हुए कवि स्वयं कहता है—

सम्यक् श्रोतु सद्दभिहित सर्वदेवावधातु
धीनालम्बे पथि विचरितु व्यक्तमाभाषितु च ।
आधि यूनोरधरयितुमप्यार्तयोर्विप्रयोगे
ताम्रागोत्राभरण निपुणस्ताम्रतुण्डस्त्वमेव ॥१॥१५॥

इसी तरह शुक भी सन्देश प्रारम्भ करने से पूर्व अपना परिचय देते हुए कहता है—

मुक्तव्याजं परजनमुखाकण्ठिता नाम वाणी
वाचयेत्यथ मुनविदित यस्य यशवत मे ॥२॥१७॥

कविता की दृष्टि से भी इस काव्य का सन्देशकाव्यों में एक विशिष्ट स्थान है। अलंकार-योजना, भावपूर्ण सरस वर्णन तथा कोमल कल्पनाओं से यह काव्य भरा हुआ है। शुक से अपनी प्रेयसी के पास सन्देश ल जाने की प्रार्थना करते हुए नायक कहता है—

प्रसूतयां प्रसुरकरणाक्षेपणीभासि कृन्वा (धृत्वा)
तीर्त्वा घर्तन्युदधिमच्चिरात्तीप्रचिन्ताकुलाया ।
अस्मद्वार्ताधनसमुदधानम्युजाह्या हरेदये-
दार्तप्राणान्शुक सुकृतमत्रातरस्त च हस्ते ॥१॥१८॥

प्रसुर करणारूपी मीका दण्ड से युक्त प्रसूत रूपी मीका में रखकर तथा मार्ग रूपी समुद्र को पार कर बहुत दिनों से तीव्र चिन्ता में व्याकुल और कमल जैसे रत्नों वाली मेरी प्रेयसी के पास यदि मेरा सन्देश रूपी धन तुम पहुँचाओ, तो

हैं किसी दुःखी की रक्षा करने से बड़ा पुण्य मिलेगा । इससे बढकर और अतिर
 किराया) तुम क्या चाहते हो ?

कवि ने इस श्लोक में कैसे सुन्दर रूपक की सृष्टि की है ।

स्यानन्दूर नगर (त्रिवेन्द्रम्) में भगवान् अनन्त शयन के मन्दिर में साथ
 लीन पूजा के अवसर पर उपस्थित तरणियों का वर्णन करते हुए कवि ने
 अनुप्रास की कौसी अनुपम छटा दिखलाई है—

तत्सेवार्थं तरणसहितान्ताम्रपादारविन्द्रा
 स्ताम्यन्मध्यस्तनभरनतास्तार-हारायलीका ।
 तारेशास्यास्तरलनयनान्तर्जिताम्भोदशेष्य-
 स्तप्रस्था स्यु स्तत्रन्वित करास्तालवृन्तैस्तरण्य ॥१॥४३॥

इस श्लोक में तरणियों के उत्कृष्ट वर्णन के साथ-साथ तकार का कौसा सुन्दर
 अनुप्रास पूर्ण प्रयोग किया गया है ।

त्रिभिन्न नदी, नगरी तथा अन्य प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन करने में कवि ने
 नदर स्थलों को पहिचानने में जरा भी भूल नहीं की है । ताम्रपर्णी नदी का वर्णन
 करते हुए कवि कहता है—

चक्षुर्लीला चक्षुलशफरैरुर्मिभिभ्रूविलासान्
 फेनेर्हासधियमपि मुने व्यजयन्ती स्रयन्ती ।
 आत्मासङ्गे जनयति रञ्चि भर्तु रन्यास्वदृश्यै
 स्वेदङ्गे दैरदयिभिरसौ रञ्चल्लमुक्ताच्छलेन ॥१॥४६॥

नदी के इस सश्लिष्ट वर्णन में कवि ने किस तरह समासोक्ति अलंकार का
 द्वारा लेकर एक अनुरक्त और उत्कण्ठित नायिका का भी वर्णन कर दिया है ।

इसी प्रकार ताम्रपर्णी की एक, सहायक नदी चूर्णी नदी का भी कवि ने ऐसा
 सश्लिष्ट वर्णन किया है—

स्र सद्दीर्घासिचयपुलिनध्रेणिशिञ्जानहर्षी
 काञ्चि आम्यच्छफरनयन कीर्णश्रीवालेशम् ।
 आसीदन्तीमतिरसभरादानतार्तनाभिं
 दृष्ट्वा क्लान्त कथमिथ भवास्तामसभाव्य याता ॥१॥४७॥

नदियों के इन सश्लिष्ट वर्णनों में कवि ने कैसे उत्कृष्ट ढंग से नदियों में नायिका
 व्यवहार का आरोप कर दिया है ।

आगे चलकर गुणकापुरी का भी कवि ने वडा सरस और भावपूर्ण वर्णन किया है। गुणकापुरी में ऊचे २ प्रासाद तो हैं ही, उन प्रासादों में रहने वाली रमलिया भी कम सुन्दर नहीं हैं। चन्द्रमा भी उनके मुख को देखकर लज्जित हो जाता है और समय से पूर्व ही अस्त होने लगता है—

आलोन्मारादधिरजनि यथात्मन सौधसदृम
न्यासीनाना मुहुरतिशयीन्यङ्गनाना मुखानि ।
पूर्वमाशामुपरिगमनप्रप्सया सगृहीता
हित्वा सद्य पतनविधये पश्चिमांमेति चन्द्र ॥२॥५॥

गुणकापुरी की नृत्तशालाओं का वर्णन करते हुए कवि ने वही सुन्दर उल्लेख की है—

यस्या मृच्छन्मुरजनिनदा नृत्तशाला समीरे
णोद्धूताग्रैर्व्यञ्जपटभुजैरुत्तमाना नटीनाम् ।
नृत्यन्तीनामुपरि गुरुभिस्तै स्तनारोहभारै-
र्नीता कम्प निपतनभियाऽन्योन्यमालम्बयन्ति ॥२॥६॥

नृत्तशालाओं पर भरिडया लगी हुई हैं। धातु के घेग से घे एक दूसरे से मिलती हैं। इसी दृश्य को लेकर कवि कहता है कि नृत्य करती हुई नर्तकियों के गुन स्तन भार से कापकर जैसे नृत्तशालाय एक दूसरे का सहारा ले रही हों।

गुणकापुरी की पुष्पवाटिकाओं में पुष्परेणुओं के बिखरे हुए परमाणुओं को देखकर ऐसा लगता है कि मानों शिवजी की नेत्राग्नि से कामदेव के पूर्व शरीर के भग्म हो जाने पर फिर से कामदेव के नवीन शरीर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो रहा हो—

यत्पर्यन्त परममणुो रेणु पुष्पवाट्या
पोष्पा पक्ष्मस्यसनचलिता पक्षिणा चापमीर्या ।
प्लुष्टे नेत्राग्निवि पुरजिता पीरिंके पुष्पवतो-
रन्य दद घटयितुमत श्लाघनीय घटन्ते ॥२॥७॥

इसके साथ साथ गुणकापुरी में सर्वदा सभी ऋतुओं का होना भी कवि ने वडा की मित्रियों व अंगों की तत्तद् विशेषताओं व आधार पर उपमाओं की योजना द्वारा बर्षी अच्छी तरह प्रतिपादित किया है—

कशे मीपे दशि सरमिज कसर नाभिवक्रे
शुन्दच्छाय मृदुनि हसिते सौकुमार्ये शिरीषम् ।
गण्डे लोधघृतिमपि समं यत्र सदशंयती
कामोद्याने यिलसति सदा कामिनीप्यर्तयथी ॥२॥१०॥

त्रिहरी नायक ने शुक से अपनी प्रेयसी का जो वर्णन किया है, उसमें कवि की कल्पना अपनी पूर्ण कोमलता के साथ सजग हो उठी है। नायक शुक से कहता है—

तस्या प्राय सकलजगता च्चक्षुषोर्भोगर्धेय
तन्त्रात्रापात्रिपयफलद पञ्चराणस्य वश्यम् ।
नारीशिरपाभ्यमनजनित नैपुण त्रिष्वयोने
विश्लेषाशीत्रिपत्रिपरुजामौषध वत्लभा मे ॥२॥२७॥

प्रेयसा तत्र स्फटिकरदना पद्मरागाधरोष्ठी
कम्पश्यामोपलकचभगा स्निग्धमाणिम्य कान्ति ।
मुक्ताजालोत्लसितहसिता वैधसो मुख्यवृत्त्या
नोन्कृष्टरान्न परमपरैराडगना रत्नसृष्टि ॥२॥२६॥

इसी तरह अपनी प्रेयसी की मधुर वाणी का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

अन्तर्गता जनयतिरामन्यपुष्टागनाताम्
लीलागम स्वस्मधुलिङ्गा माधुरीजन्मभूमि ।
पीयूषस्य प्रतिनिधिविधिष्टकृतिमौरमौर्या
वाणी वीणावसहचरि वाणिनीना शिखाया ॥२॥३२॥

एक आदर्श रमणी रत्न की वाणी का वीणा के स्वर की तरह मधुर होना स्वाभाविक ही है।

आगे चलकर अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी एक साथ ही उसकी समग्र इन्द्रियों को तृप्त करने वाली है, क्योंकि उसकी कान्ति, वाणी का माधुर्य, अंगों की शीलता, शरीर का सौरभ और अमृत से भरे हुए अधर पुच्छ ऐसे ही अद्वितीय हैं—

सा कान्ति सा गिरि मधुरता शीलतय तद्दुग्मे
सा सीगन्धोद्गतिरपि सुधासोदर सोऽधरोष्ठ ।
एकास्त्रादे भृशमतिशयादन्यलाभेन यम्मि—
न्नेकीभाय व्रजति त्रिपय सय्य एवेन्द्रियाणाम् ॥२॥३५॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप वर्णन के बाद नायक उसकी त्रिहजन्य दुरवस्थाओं का चित्र शुक के सामने प्रस्तुत करता है। इस त्रिहवर्णन में कवि ने अपनी सूक्ष्म भावव्यजना द्वारा काव्य में चित्रोपमता और सजीवता का समावेश कर दिया है। ऐसे ही कतिपय भाव चित्र पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किए जा रहे हैं। नायिका त्रिरूप में कान्तिहीन हो गई है। उसका शरीर पाण्डुरण्य का हो गया है और यही

गहरी २ सासों लेती है। नायिका की इस अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सा निद्रासैरनिभृततरैर्मध्यभाजा बलीना—
मालोलानामुपरि कृषयोर्द्ध्वमन्दोलयन्ती ।
विभ्रत्यङ्गो विससितरश्चि धीधिभङ्गोद्गतीम्ब
पातैश्चफाह्वयशकुनयोर्भाति भागीरथीय ॥२॥४२॥

लहरों के ऊपर चक्राकृत पक्षियों के युग्म को आन्दोलित करती हुई भागीरथी की तरह ही विरहिणी नायिका अपने स्तनयुग्म को ईपञ्चचल त्रिप्रलिरेशाओं के ऊपर गहरी सासों के कारण आन्दोलित करती हुई शोभायमान लगती है। कवि ने यहाँ पर कौसी उपयुक्त उपमा दी है।

अपनी प्रेयसी की विरहजन्य मलिता तथा प्रियदर्शन की उत्सुकता का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

आसीनेन करचन धिटपे सा त्वयालोकनीया
नीलाम्भोदैरिव शशिकला निहन्तुताङ्गी रजोभि ।
च च्चत्पदम व्यजनपवनैश्चामरप्राहिणीना
चक्षुर्मह्नीक्षणसमुचिते घर्मनि प्रेरयन्ती ॥२॥४७॥

प्रिय विरह में नायिका इतनी व्याकुल हो उठती है कि वह क्रोध में आकर प्रिय को इस तरह का उपालम्भ देने लगती है कि इतने समय के लिए मुझे छोड़कर तुम कहीं चले गए हो। लेकिन धारण्य पूरा करते २ भय और ताप के कारण उसकी धारणी रुक जाती है और वह रोने लगती है तथा उसे ऐसा लगता है कि उसका प्रियतम उसके चरणों के पास ही उपस्थित है—

पताधन्त समयमिह मामेवमित्यर्धधाक्ये
रोपातङ्कव्यतिकरधती रोदितु या प्रवृत्ता ।
उद्यद्वाणा प्रचलद्धरा स्तोकनघ्नोत्तरोष्ठी
पर्यपती मा चरणपतित भायनाचक्षुपाऽग्रे ॥२॥५१॥

इस श्लोक में कवि ने नायिका के क्रोध, भय, ताप तथा स्मृति जैसे भावों को एक साथ सग्लिष्ट कर दिया है।

अतः में विरहिणी की परस्परविरोधी भावनाओं का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि आशा निराशा तथा जीवन मरण के बीच संघर्ष करती हुई उसकी प्रेयसी की विगदास्थानों का वर्णन टीका २ नहीं किया जा सकता—

आशास्ते वा मदभिगमन किन्तु तस्मिन्नुदास्ते
धत्ते तापप्रशमनविधीन् किन्तु तानेव सन्धे ।
एवंप्राया प्रणयिनि जने गाढमुत्कण्ठितानाम्
कैर्गण्यन्ते क्षणवयनवा' कामिनीनामरस्था. ॥२॥४४॥

विरहिणी नायिका के वर्णन के बाद नायक ने अपना सन्देश सुनाया है । सन्देश में प्रथम नायक की विरहावस्था का वर्णन किया गया है । नायक अपनी उद्विग्न अवस्था का वर्णन करते हुए कहता है कि शरद ऋतु की जो सुन्दर वस्तुएँ सयोग समय में बड़ी सुखद प्रतीत होती थीं, वे ही उसकी प्रेयसी के पास न होने पर मन को बड़ा दुःखी बनाती हैं—

मङ्गत्याङ्गि स्मरशरमयीमाशिवनीमश्नुवाना-
मैनामाशापलयमकृशामीक्षमाणस्य लक्ष्मीम् ।
तत्तच्चिक्ताकथलितधियस्तन्वि मे क्षीणपुरण्य-
स्यान्तस्तापं जनयतितरामन्तिकानीक्षण ते ॥२॥६३॥

प्रेयसी के वियोग में जय जय नायक भ्रमरों के कर्णप्रिय तथा हृदयाह्लादी गुञ्जन को सुनता है, तो उसका मन अधीर हो उठता है और उसे मूर्च्छा आ जाती है—

1.

मारोन्मादी मदकलगिरामत्र भृङ्गाङ्गनाजा
श्राव श्राव श्रावहृदयप्राहिगीतामृतानि ।
वृत्ताभोगस्तयकयहनव्यानताना लताना
मले मूले मुकुलितघृतिमूर्च्छैनामभ्युपैमि ॥२॥६४॥

प्रेयसी के वियोग में सभी सुखदायक और शान्तिदायक वस्तुएँ नायक के लिए दुःखदायी हो गई हैं । सुन्दर और मनोहर दृश्यों को देखकर उसे अपनी प्रेयसी की याद आ जाती है । स्मृति की इस भावना का कथि ने वषा ही सुन्दर वर्णन किया है । नदियों में मछलियाँ तैर रही हैं, कमल खिले हुए हैं और लहरें उठ रही हैं । इस दृश्य को देखकर नायक को चंचल नैत्रों, कम्पमान स्तनों तथा चंचल ध्रुवाली अपनी प्रेयसी की स्मृति आ जाती है और यह कह उठता है—

आशिलप्यन्त्या स्मरदधिगुणे प्रेमकोपप्रयातो
चञ्चनेत्रं चलदुरसिज चञ्चलध्रुवतं ते ।
उद्यन्मीना कमलमुकुलैरल्लसन्त्य प्रसन्ना
करलोलिन्य' कलुपकलुप कुर्यते मानसं मे ॥२॥६५॥

प्रेयसी की सन्निधि में चन्द्रमा, वापी, भ्रमरों का गुञ्जन तथा मन्द २ बहती

हुई ठण्डी हवाए जो चित्त को प्रसन्न किया करती थीं, वे अब उसके वियोग में प्रिय के मन को लेशमात्र भी आनन्द नहीं पहुँचाती हैं,—

प्रेक्षे चाह प्रकृतिरमणीयाङ्गि पूर्णैन्दुविम्ब
 कीडानापीमधुकरकलालापमन्दानिलाद्या ।
 तत्त्वाध्यास भ्रममुपगता; सन्निधौ ते समप्रा
 यन्मा नेमे किमपि रमयन्त्यद्य रम्या पदार्था ॥२॥६६॥

प्रेयसी की चिन्ता में नायक को नोंद तो आती ही नहीं है, इसलिए वह स्वप्न में तो अपनी प्रेयसी को देख ही नहीं सकता। चित्र बनाना चाहता है, लेकिन आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने के कारण चित्र भी नहीं बना सकता है। मानसिक सनाप से वह प्रेयसी का ठीक २ स्मरण भी नहीं कर सकता। अपनी इस अधीरता का नायक ने बड़ा ही हृदयद्रावक चित्र प्रस्तुत किया है—

दृव्येऽपि त्व मम न सुलभा घ्वस्तनिद्रागमत्वा-
 दक्षोत्पीडादधिमणिशिल लेखनीया न भूय ।
 स्मृतुं ताण्डपट्ट च मनस्तत्र तत्रोत्पतिष्णो-
 र्मध्येकाल फडिति फलयत्येव वामं हि दैवम् ॥२॥७१॥

प्रतिकूल दैव की कठोरता तथा नायक की विवशता का कवि ने यहाँ पर कैसा माधपूर्ण चित्रण किया है।

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद नायक प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देते हुए विविध मनोरजनों द्वारा चित्त को प्रसन्न बनाए रखने का परामर्श देता है। नायक का विचार है कि प्रेमियों का परस्पर प्रेम चिरविरह में भी टूटता नहीं है। यह कहता है कि विरहरूपी सर्प के गहरी २ सासे लते होने पर विरह के दिन जो अहर्-अगलते दिपाई पड़ते हैं, वे ही समागमरूपी चन्द्रमा के उदय हो जाने पर अमृत की दुगुनी वर्षा करेंगे—

किं चोदय श्वसिति सहसा विप्रयोगोरगेन्द्रे
 धान्यदान्तर्विपमिव धमन्त्याऽयोर्शसराणि ।
 तान्येवाम्रे त्वग्निमुदयं याति न सङ्गमेन्दौ
 सपरस्यन्ते द्विशुण्ममृतम्यन्दसन्द्दोहनानि ॥२॥७८॥

सयोग और वियोग के लिये यहाँ पर कवि ने कैसे उपयुक्त रूपक प्रयुक्त किये हैं। अन्न में अपनी कुशल का पूर्णरूप से विश्वास कराने के लिये नायक ने अभिधान रूप से कई व्यक्तिगत घटनाओं का उल्लेख किया है। इनमें से कुछ तो सार्व-साधारण हैं। केवल दो घटनाओं में कवि ने कुछ विशिष्ट कल्पना दिखलाई है। नायक की प्रसङ्गान्तर में कही हुई उक्ति से नायिका को यह भ्रम हो जाता है कि

उसका प्रिय किसी और भी नायिका से अनुराग रखता है और वह क्रुद्ध होने लगती है लेकिन ज्योंही 'कीरस्य = शुक्रस्य' कथन द्वारा वह अपने वाक्य को पूरा करता है तो नायिका लज्जा और क्रोध के साथ अपनी सखियों की ओर देखने लगती है—

पश्यासौ मे त्रमिन् रुचये पद्मविम्याधरेति
 प्रक्रान्तोक्तौ मयि कलुषित भीरु नेत्रोत्पल ते ।
 कीरस्येति स्थितिमति पुन भ्रमरमारि स्मितेषु
 व्रीडासूयाव्यतिकरगुरु क्षिप्तमालीमुखेषु ॥२॥२॥

'न मानिनी ससहतेऽन्यसङ्गमम्' इस कथन के अनुसार नायिका भी बड़ी मानिनी प्रतीत होती है, तभी तो पर नारी से अपने प्रियतम के प्रेम की जरा सी शका होते ही उसकी आँखों में क्रोध आ जाता है ।

इसी तरह का एक दूसरा अभिज्ञान घटलाते हुए नायक कहता है कि एक बार उसने जब यह पूछा था कि अशोक वृक्ष के किशलयपुट से मधुपूर्ण तथा ईषदक फूल जिस समय भ्रमर को प्राप्त होते हैं ऐसी वसन्त ऋतु कब आती है, तब दूसरे लोग तो वसन्त ऋतु का हिसाब लगाने लगे थे, लेकिन मेरे वास्तविक तात्पर्य को कि मैंने यह शब्द तेरे अधरामृत पान करने की इच्छा से कहे हैं, जानकर तू श्रोताओं की मूर्खता तथा मेरी विदग्धता पर हस दी थी और लज्जा के साथ तूने ताम्बूल से युक्त अपने मुख को नीचा कर लिया था । निम्न श्लोक में यही अभिज्ञान दिया गया है—

निलन्न माध्या किसलयपुटाल्लभ्यतेऽशोकपट्टे
 यंत्राताम्र कुसुममलिना स्यात् कदाऽसौ वसन्त ।
 इत्युत्कण्ठागिरि मयि जने तद्गणेषु त्व सलज्जं
 स्मित्वा मुग्ध मुखमनमयस्तन्नि ताम्बूलगर्भम् ॥२॥२६॥

घटना यद्यपि छोटी सी ही है, पर इस ढंग से घटित हुई घटाई गई है कि भुलाई नहीं जा सकती, अतः अभिज्ञान घट्टु के रूप से इसका धर्णित करना उचित ही है ।

इस तरह अभिज्ञान घटनाओं के धर्णन के बाद यह सन्देशकाव्य समाप्त हो जाता है । मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में यह काव्य अद्वितीय है । विषय, भाव, रस और प्रक्रिया इन सभी दृष्टियों से यह काव्य मेघदूत का अनुसरण करता है । जिस तरह यक्ष के घर के पास वापी, क्रीडाशैल और रत्नाशोक इत्यादि की स्थिति घटलाई गई है, उसी तरह इस काव्य में भी नायक अपनी प्रेयसी के मन्दिर के निकट कूप, वापी, क्रीडाशैल तथा वहा पर स्थित तिलक, कुरयक और

आम्रवृक्ष का वर्णन करता है। विरहवर्णन में कहीं २ शुक सन्देश में मेघदूत की अपेक्षा कुछ अधिक भावप्रवणता पाई जाती है। कवि ने कुछ स्थलों को मेघदूत की अपेक्षा अधिक परललित करने की चेष्टा की है। कहीं २ इस काव्य में मेघदूत के समानान्तर भाव भी पाये जाते हैं। मेघदूत में यज्ञ अपनी प्रियसी को धैर्य बधाते हुये कहता है—

कस्यात्यन्तं सुखमुपगतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चकनेमिकमेण ॥२॥४५॥

शुक सन्देश में शुक भी नायिका को उसके प्रिय का सन्देश सुनाते हुये कहता है—

दुजतिऽहं पानज इव प्रेषित प्रेयसा ते
सेतो, सीताहृदयदपितेनेव पूर्णं महाद्रे।
सेध त्वं च त्यज शुचमितं सेवितासे प्रियाणि
प्राय सर्वं स्पृशति त्रिपद सपदश्च क्रमेण ॥२॥४६॥

मेघदूत में भी हनुमान्जी के सीताजी के पास पहुँचने का उल्लेख किया गया है जैसा कि इस काव्य में यहाँ पर पाया जाता है।

मेघदूत में यज्ञ अपनी प्रियसी को अभिमान घटना के सुनाने के बाद कहता है—

स्नेहानाहु किमपि विरहे घ्नसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे यस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभयन्ति ॥२॥४७॥

कालिदास के अनुसार स्नेह त्रियोग में घटता नहीं है, यदि उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है। इसी तरह शुक सन्देश में भी त्रियोग में स्नेह के टूट जाने का विचार केवल मूर्खों का प्रयाद माना गया है। नायक अपनी प्रियसी को सम्बोधित करते हुये कहता है—

अन्योन्यस्य घृष्टति विरहे प्रत्यशं कामुकानां
मन्दं मन्दं चिरतरमनालोकनात् प्रमगन्ध।
पर्यं मूढ प्रयदति जनस्तत्र तिनने मयि त्व
मा गा शका सुतनु सुदढालयितत्मानुमाना ॥२॥४७॥

मेघदूत में यज्ञ अपने सन्देश के अन्त में मेघ से पूछता है कि तुमने मेरे कार्य को पूरा करने का विचार तो कर ही लिया होगा, लेकिन मेघ से कोई उत्तर नहीं प्राप्त होने पर भी वह चिन्तित नहीं होता है और कहता है—

नि शब्दोऽपि प्रदिशसि जल याचितश्चातकेभ्य
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सिताधर्मिभ्य ॥२॥४८॥

इसी प्रकार शुक-सन्देश में भी शुक से दूतकार्य करने की प्रार्थना करते हुये नायक ने कहा है—

जातोदन्यां न हि जलमुचश्चातका प्रार्थयन्ते
तूर्णामेवामभिमतममी तूर्णमापूरयन्ति ॥१॥११॥

दोनों उद्धरणों में भावों की कितनी समानता है। मेघदूत में मेघ से प्रार्थना तब भी की जाती है, लेकिन शुकसन्देश में तो प्रार्थना न करने पर भी मेघों के द्वारा जल बरसाने का उल्लेख किया गया है।

मेघदूत में यत्न अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है कि इस सुदीर्घ विरह काल में प्रयत्न वेदना के कारण उसकी प्रेयसी तुपात्पात से आहत पद्मिनी की तरह अन्यरूप हो गई होगी—

गाढोत्प्लवठा गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु याला
जाता मन्ये शिशिरमधिता पद्मिनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२२॥

इसी तरह शुक-सन्देश में भी नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुये कहता है—

एव मन्ये विरहदिवसैरभिरौक्षणा सा
क्षामक्षामा चिरमनशनघ्यानशोकानुबन्धे ।
न्यूनन्यूने मम सुचरिते नूनमन्यादृशी म्या-
द्वन्यस्तभ्येरमजिलुलिता सल्लकीमञ्जरीव ॥२॥३६॥

नायक के पास न होने से उसकी प्रेयसी का अनशन, घ्यान तथा शोक के कारण नितान्त वृश् हो जाना और पद्विचानने में न आना स्वामायिक ही है। क्षीण तथा क्षीन प्रेयसी की घन्य हाथी के द्वारा विलुलित सल्लकी-(शल्लकी) मञ्जरी से उपमा देकर 'कवि' ने मायिका का वास्तविक चित्र उपस्थित कर दिया है। दोनों कौनों में उपमान की भिन्नता होती हुये भी भाव-सौम्य स्पष्ट प्रतीत होता है।

इस तरह अन्य भी कई स्थलों में मेघदूत जैसे समानान्तर भाव इस काव्य में पाये जाते हैं।

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से स्पष्ट है कि कवि का भाषा पर पूर्ण अधि-कार है। सन्देश काव्य के उपयुक्त प्रथाहर्म्यां ललित भाषा में कवि ने यह यही सुन्दर रचना की है। भाषा की-विशदता का अनुमान निम्न अथतरणों से यही अच्छी तरह लगाया जा सकता है। नायक शुक को अपना वृत्तान्त सुनाते हुये कहता है—

अन्यत्राट प्रियसहचरी तामदन्यत्र जातो
 जाता चाग्ने मनसिजशरा शारदीयं विभूति ।
 मन्दो वायुर्मधुरमुदकं मञ्जुरावा मराला
 सज्जामोदा सरसिजननी सान्द्रभाद्रचन्द्रमाश्च ॥१॥७॥

शरद्व ऋतु की विभूति का कवि ने बड़ा सुन्दर चित्र यद्वा अंकित कर दिया है।

आगे चल कर शुक को मार्ग बताते हुये उसकी यात्रा का कैसा सरस चित्र कवि प्रस्तुत करता है—

स्थायं स्थाय तदपु धरणीस्थायिनो वञ्चयित्वा
 ग्राह ग्राह नयन हृदय-ग्राहिणी सस्यपटुकी ।
 पाय पाय परिल्लु पय पदिमनीनामजस्र
 गाय गाय पुनरपि भवान् गाहिता द्योम येपु ॥१॥१६॥

अन्तरण की तृतीय पंक्ति में अनुप्रास की कैसी अनुपम छुटा कवि ने दिखलाई है।

काव्यगत निशिष्टताओं के अतिरिक्त केरलप्रान्त के सामाजिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन के विचार से भी यह काव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। प्राचीन काल में केरल देश में कौन २ से नगर थे, वहा जिन २ राजाओं का शासन रहा था तथा जनता का उस समय जीवन किस तरह का था—इन सब बातों पर यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कन्याकुमारी से लेकर गुणकापुर तक का केरल देश का भाग इस सन्देशकाव्य में वर्णित किया गया है। यह गुणकापुर नगर आज कल का लक्ष्णामतिक्कलम् है। प्राचीन काल में मालाबार की यह राजधानी था। अब तो यह एक छोटा सा ग्राम ही रह गया है। कोई कोई गुणकापुर को किसी अन्य स्थान का ही नाम बताते हैं। काव्य में विभिन्न नदियों, नगरों, ग्रामों और मन्दिरों का वर्णन किया गया है। इससे भी केरलदेश की तत्कालीन भौगोलिक परिस्थितियों पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। आगे चल कर यह सन्देश काव्य दक्षिण भारत के अन्य कवियों के लिये एक आदर्श बन गया और दक्षिण भारत में इसका पर्याप्त प्रचार भी हुआ। उदय कवि के मयूरसदेश में मेघदूत के अतिरिक्त इस काव्य का भी प्रभाव दिखलाई पड़ता है। उद्दह कवि के कोकिलसन्देश में भी इस काव्य की छाप स्पष्ट दिखलाई पड़ती है।

अन्तु, यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कवि ने मेघदूत से प्रेरणा प्राप्त करने पर भी अपनी रचना का स्तर बड़ा ऊँचा रखा है। भाषा, भाव, प्रक्रिया, प्रकृति वर्णन और विरहवर्णन सभी में कवि ने अपनी परिष्कृत दक्षि का परिचय दिया है।

सन्देशकाव्य के उपयुक्त ललित और प्रवाहपूर्ण भाषा में ही यह काव्य लिखा गया है। शुक की वाणी की तरह ही काव्य की भाषा बड़ी मधुर है और भावमाधुर्य का का तो कहना ही क्या। मेघदूत के अनुकरण पर लिखे गये सन्देश काव्यों में निश्चय ही यह एक उत्कृष्ट और सरस सन्देश काव्य है।

वासुदेवकवि का भृगसन्देश (वि० पचदश-षोडश शतक)

यह भृगसन्देश दक्षिणभारत के किसी वासुदेव नामक कवि की रचना है। काव्य के अन्त में लेखक ने एक पद्य दिया है—

सन्देशेऽस्मिन् कथमपि गुरुश्रीपदाम्भोजयुग्म-
ध्यानोद्भूतप्रयत्नतमसा वासुदेवेन वद्वे ।
पूर्णे दोषैरपि यदि गुणाना कणा संप्रधेर-
धेतान् प्रीत्या मनसि परिगृह्णन्तु सन्तो महान्त ॥

इस पद्य से केवल इतना निश्चित होता है कि इस काव्य का लेखक वासुदेव नामक कोई कवि है। इसके रचनाकाल के सन्दर्भ में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। श्री एम० कृष्णमाचारियर ने अपने 'संस्कृत साहित्य के इतिहास' में पृ० २५० पर भृगसन्देश के लेखक वासुदेव के सन्दर्भ में इस प्रकार लिखा है—“वासुदेव महर्षि और गोपाली का पुत्र था। महर्षि कनि मालायार में पय्यूर भट्टमान के जो कि ई० पन्द्रहवीं के अन्त के लगभग विद्या का एक प्रसिद्ध केन्द्र था, रहने वाले थे। महर्षि के संस्कृत विद्या के सर्व शार्त्रों में पारंगत नौ पुत्र तथा एक कन्या थी। वासुदेव कवि तथा नाटककार उद्दण्ड का मित्र था, अतः यह कहा जा सकता है कि वासुदेव कवि भी स० १४२३ ई० के लगभग विद्यमान था। कालीकट का प्रसिद्ध राजा मानविक्रम जमूरिन इसका आश्रयदाता था। इसने भृगसन्देश के मिलने पर ही उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिलसन्देश की रचना की। बाद में यह राजा रविवर्मा और गौडवर्मा के राजदरबार में चला गया था। पाणिनि के सूत्रों पर व्याख्यास्वरूप वासुदेव विजय नामक काव्य भी इसने लिखना प्रारम्भ किया था। यह अपूर्ण ही रह गया था। बाद में सभयत इसके भानजे नारायण कवि ने धातु-काव्य नाम से इसको पूर्ण किया।

इसके अतिरिक्त लेखक ने ६ आश्रवासों में यमक शैली के साथ देवी चरित नामक एक काव्य लिखा है। इसमें गोपाली देवी की जिसकी कि वेदारण्यम् अथवा कुन्ननगोलम् में देवकी की आठवीं सन्तान और धीरुष्ण की बहिन के रूप में पूजा की जाती है, कथा वर्णित की गई है। अपने 'सत्यतप कथा' नामक काव्य में कवि ने तीन आश्रवासों में सत्यतप की कथा वर्णित की है। यह सत्यतप महर्षि के नाम से विख्यात लेखक के एक पूर्वज ही हैं, जिन्होंने कि वेदारण्यम् और निला नदी (भरतप्योल) के तट पर तपस्या की थी। शिवोदय नामक काव्य में ग्रन्थकार ने अपना और अपने आठ भाईयों का इतिहास दिया है। अच्युतलीला नामक यमक-काव्य में वेदारण्यम् में विराजमान भगवान् अच्युत का वर्णन किया गया है। गजेन्द्र-मोक्ष भी उसी की रचना प्रतीत होती है।" इस तरह धीरुष्णमाचारियर के अनुसार ई० पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रारम्भ कवि का रचना काल ठहरता है।

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। श्री के० साम्प्रशिव शास्त्री ने जो कि इसके सम्पादक हैं, लेखक के रचनाकाल पर भी पुस्तक की भूमिका में कुछ प्रकाश डाला है। उनका कथन है-

"वासुदेव नाम के कई कवि हुये हैं। युधिष्ठिरविजय तथा अन्य ग्रन्थों का लेखक एक, सुभद्राहरण जैसे ग्रन्थों का लेखक दूसरा और भृगसन्देश का रचयिता तीसरा। इनमें से मेरा विचार है कि भृगसन्देश का लेखक सब से अधिक अर्वाचीन है और यमककाव्य (युधिष्ठिर विजय) का लेखक सबसे प्राचीन। इस सन्देश काव्य में धीनारायण भट्टपाद का जो कि युधिष्ठिरविजय तथा सुभद्राहरण इन दोनों के लेखकों से उत्तरकालीन है तथा उसके (श्री नारायण भट्टपाद के) समकालीन धीमातृदत्तपरिडित का नाम आया है-

हेरभ्येण प्रथितयिभया मातृदत्तद्विजेन्द्र-
श्रीमच्छिष्योत्करमुपरितैरास्तुता शास्त्रधोषैः।
आरान्नारायणकविश्च स्वन्दमार्घुर्यनन्द-
द्वार्णामन्दस्मितसुरभिलायाहि पाटीर पाटीम् ॥१॥६१॥

सूक्ति नारायणकविमुखाम्मोजनिष्यन्द्माना
पीत्वा पापीकमलसधुषु प्राप्तनिर्येदमार ।
विष्ये भानोरपरगिरिःशृगेण सञ्चुम्भ्यमाने
लभ्येयास्य भ्रमर धरणी वहलभक्तोषिजन्धो ॥१॥६२॥

इस काव्य में उल्लिखित नारायण कवि से नारायणीय तथा अन्य ग्रन्थों के रचयिता, मेलपट्टूर निवासी महाकवि और शास्त्रकार श्री नारायणभट्टपाद का ही प्रदण करना चाहिये, जैसा कि निम्न श्लोक से प्रतीत होता है-

तस्मात् प्रत्यक् प्रद्वितनयनं कुरङ्गोहाधिवासम्
 सर्वज्ञं तं प्रणम्य गिरिशं भक्तिमानञ्जुतं च ।
 एषस्तापद् बहति शिगसि ज्योतिषामेकमिन्दु
 ज्योतिश्चक्रं निखिलमपरो धारयत्यन्तरङ्गे ॥१॥८६॥

लेखक ने अपने गुरु और ज्योति शास्त्र के प्रकाशक विद्वान् श्री अञ्जुत विश्व
 रीती का भा उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि वासुदेवकवि
 ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वभाग में था। ई० सत्रहवीं शताब्दी का पूर्वभाग ही
 अञ्जुत के शिष्य श्री नारायण मुनि का सत्तासमय है।

कवि ने अपने काव्य में त्रिवेन्द्रम् के तत्कालीन राजा भी वीरविजयन् कुल
 शेखर की भी प्रशंसा की है—

राज्य दृष्ट्याकलय रविवर्माप्रीन्द्रस्य सम्पत्—
 प्राज्य वाज्यन्तरितप्रिशिवोदप्रमथ्रे समप्रम् ।
 चित्रोत्कीर्णप्रिदशनिर्द्वै स्यूलनीलोपनीधै—
 धाम्ना तुत्य त्रिभुवनपतेधाम येन प्रतने ॥१॥९५॥

अतः हमें यह विश्वास रचना चाहिये कि इस कवि का समय भी श्री नारायण
 भट्टपाद का समय ही है। निम्नलिखित श्लोक से यह प्रतीत होता है कि
 श्री नारायण भट्टपाद ने नारायणीय नामक अपने स्तोत्रकाव्य को गुह्यायुपुर में स्थित
 श्री वृष्ण के मन्दिर में भगवान् के चरणों में जप अर्पित करने के बाद स्वास्थ्य लाभ
 कर लिया था और श्रीवृष्ण की एक महान् चित्रित्सक के रूप में रचाति हो चुकी
 थी, उसके बाद यह काव्य लिखा गया है—

इत्थं नुत्वा भुवनपितरी ती समामन्थ्य तस्मा—
 दस्मत्प्राणप्रियं स्वयं समीरालयं शीलयेथा ।
 यस्मिन् देव स्ययमपि महापावनं पावनाना—
 मातद्ज्ञानामुपशमयिता भामते वासुदेव ॥१॥९६॥

अतः वासुदेव कवि को ई० सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व भाग में ही मानना
 चाहिये।”

श्री कै० आर० विश्वरीती, धनारम् के अनुसार जनवरी १९७१ इस काव्य का
 रचना काल होना चाहिये। उनका कथन है—

१ विशेष विवरण के लिये सिद्धभारती, भाग २, (विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध
 संस्थान, होशियारपुर) में विश्वरीती जी का—वासुदेव का भृगसन्देश - ए
 डिस्टारिकल स्टडी - नामक लेख देखिये।

“इस काव्य में मालागार के संस्कृत कवियों में अप्रगण्य नारायण भट्टातिरि का केवल एक सरस कवि के रूप में उल्लेख है न कि शास्त्रकार या भक्त दार्शनिक के रूप में। इसके अतिरिक्त अच्युत पिशरोती अथवा गुरुवयूर मन्दिर से भी उनके संबद्ध होने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं है^१। अतः आवश्यक रूप से यह कहा जा सकता है कि नारायण कवि के अपना नारायणीय स्तोत्र (जिसमें कि गुम्बयूर मन्दिर तथा अच्युत पिशरोती से उसका सम्बन्ध बतलाया गया है) लिखने से पहिले यह सम्श्रकाय लिखा गया था और ई० १५८१ के लगभग ही यह लिखा गया होगा। इससे लेखक की उत्तर-सीमा तो निश्चित हो ही जाती है। हमें यह तो मालूम ही है कि मामकम् महोत्सव (माघोत्सव) ई० १५६६ में हुआ था और चू कि यह उत्सव बारह वर्ष में एक बार हुआ करता था, अतः पीछे चलते हुए हम कह सकते हैं कि ई० १५८७ और फिर ई० १५७५ में यह उत्सव हुआ होगा। चू कि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, इसलिये काव्य में उद्धिखित^२ मामकम् महोत्सव फरवरी मार्च १५७५ ई० का माना जाना चाहिये। इस तरह इस सन्देश काव्य का रचनाकाल जनवरी १५७५ हो सकता है।

वातक्कूर के राजा के उल्लेख^३ से भी यह समय सामञ्जस्य पाता है। हफ (Hough) ने अपने ‘क्रिश्चियनिटी’ (Christianity) नामक ग्रन्थ में लिखा है कि ई० स० १५७८ में वातक्कूर में एक रानी राज्य करती थी। उसने २४ वर्ष तक राज्य किया। स० १५६६ ई० में भी वह राज्य कर रही थी तथा आर्कबिशप मेन्नीज जो उसके राज्य में आया, तर भी वह शासन कर रही थी। अतः यदि गौडवर्मा को राज्य करना हुआ माना जाये, तो या तो यह १५७८ ई० से पूर्व होना चाहिये या कम से कम १६०२ ई० से बाद में। चू कि लेखक की उत्तर सीमा निश्चित हो चुकी है, अतः प्रथम कल्प ही केवल उचित है। अर्थात् गौडवर्मा के जो कि समस्त १५७५ के बाद लेकिन १५७८ से पहिले, गुजर चुका हो, अन्तिम दिनों में यह काव्य लिखा गया है।

दे० काव्य का पूर्व भाग श्लोक ६१ ६२ पूर्व उद्धृत।

२. ऐसा कहा जाता है कि नारायण ने अपने गुरु से यह बात रोग अपने ऊपर ले लिया था। फिर गुरुवयूर में जाकर यह भजन करने लगा और इसी समय उसने अपना प्रसिद्ध स्तोत्रग्रन्थ नारायणीय लिखा।
३. श्लाघो माघोत्सवमपि तिष्ठते दुष्टहन्ता ॥१॥६०॥
४. इत्थं नत्वा गिरिपरसुता गौडवर्मद्विर्तन्दो—
रभे सभावय पुरपरं प्रहुररुद्धे मसालम् ॥१॥३८॥

लेखक का यह रचनाकाल लेखक के इस विचार से और भी पुष्ट होता है कि १४६३ ई० से १६०२ ई० तक कोचीन में जो राजा राज्य करता था, वह रत्रिमर्मा था। सन्देश काव्य में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि करप्पुरम् राजा रथिवर्मा के प्रताप से उज्ज्वल था^१।

अतः हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि यह सन्देश काव्य स० १५७४ ई० में लिखा होना चाहिये न कि अगली शताब्दी के पूर्वभाग में। इस समय में कोचीन के राजा तथा कालीकट के जम्मूनि में युद्ध चलता रहा था और इन युद्धों का काव्य में कद वहाँ उल्लेख आता है।

कथासार

इस काव्य में एक प्रियही प्रेमी ने स्यातन्दूर (त्रिनेन्द्रम्) से श्वेतदुर्ग (कोट्ट करुल) में स्थित अपनी प्रेमिका के पास भृगु के द्वारा अपना सन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है कि किसी समय रत्रि न नायक अपनी प्रेमिका के साथ अपने प्रासाद पर निद्राविहार कर रहा था। इसी अवसर पर कोई यज्ञी उसके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर उमें मलयपर्वत पर उदा कर ले जाने लगी। मार्ग में अपने यज्ञ को आता देखकर वह उसे (नायक को) स्यातन्दूर में छोड़ जाती है। स्यातन्दूर में पद्मनाभ स्वामी के मन्दिर के निकट पुष्पाराम में जब वह नायक जागता है, तब अपने को अनेला पाकर उसे बड़ा दुःख होता है। इस अवसर पर एक भृगु उडता हुआ उसके पास आता है। वस, वह उसको ही अपना दूत बनाकर श्वेतदुर्ग में स्थित अपनी प्रेमिका के पास भेजता है। इसी प्रसंग में स्यातन्दूर से श्वेतदुर्ग तक का मार्ग घणित किया गया है।

पद्मनाभ स्वामी के दर्शन करने के बाद उत्तर की ओर चलने पर सर्वप्रथम राजा रथिवर्मा के राज्य, तदनन्तर कूपक राजाओं की राजधानी कुलपुरी (किलान), सुललिता नदी, घल्लभग्राम तथा तिरुत्तलस्थित विष्णुमन्दिर होत हुए उद्यमार्तण्ड राजा की दक्षिण विम्बली नगरी पहुँचने का भृगु को परामर्श दिया गया है।

कोणी नदी के दक्षिण तट पर स्थित त्रिम्बली राजाओं की इस राजधानी के बाद क्रमशः कुमारग्राम, मोदवर्म राजा की नगरी (यातक्ककूर), अम्बरपुल में राजा देवगारायण की राजधानी, तदनन्तर राजा रथिवर्मा के राज्य में से होत हुए व्याघ्रक्षेत्र (करप्पुरम्, वैक्कम्), पूर्णप्रयी (त्रिपुणीतीर्थ), राजा राजराज की नगरी (कोचीन), पचरङ्गाधिनाथ (त्रिम्बन्चिन्नुलम्), पुम्माधिनाथ (पुम्माय्योक्कनु) गुणकापुरी

१ एष्ट्या नन्दिष्यसि फलभरैरानता नालिकेर-
धेणी देशधनिपु रथिवर्मप्रतापोज्जयलासु ॥१॥२४॥

(वृष्णाम तिलकम्) सङ्ग्राम (इरिञ्जलकुन्द), बलयगेहाधिनाथ (उरकम् और त्रिचूर), समीरालय (गुम्फूर), अग्नि नेत्रनारायण का गृह (परमयन्तली) तथा उसके पास क देश, मुक्तिद्वान (मुक्कोल), निला नामकी नदी, नायाक्षेत्र और फिर कुण्डगेह तथा बलभक्षोरिण्यु का राज्य (बलभक्षोरिति) इन स्थानों को पार करने के बाद अन्त में उसकी प्रेयसी के निवासस्थान श्वेतदुर्ग का उल्लेख किया गया है। इस नगरी में स्फटिकमणियों से निर्मित सरोवर के उत्तर में बाल यज्ञ नामक गृह में बालनीली नामक नायक की प्रेयसी रहती हुई धतलाई गई है।

तदनन्तर नायिका के घर में स्थित उद्यान, चापी, कुरवकतर, मालती और आम्रवृक्ष इत्यादि के वर्णन के बाद नायिका तथा उसकी विरहावस्थाओं का वर्णन किया गया है। तदनन्तर भृगु से नायक ने प्रेयसी को अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था, नायिका के लिये आश्रयस्थान और अभिज्ञान घटनायें वर्णित की हैं। अन्त में नायक ने पुनर्दर्शन की अभिलाषा प्रकट करत हुए भृगु को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया है।

काव्य समीक्षा

यह सन्देशकाव्य भी उत्तरीभारत में लिखे गये सन्देशकाव्यों में एक प्रमुख सन्देश काव्य है। ऐसा कहा जाता है कि इस भृगु सन्देश की प्राप्ति पर ही उद्दण्ड कवि ने उत्तर स्वरूप अपना कोमलसन्देश लिखा। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। पूर्वभाग और उत्तर भाग इन दो भागों में काव्य बंटा हुआ है। पूर्व भाग में स्थानन्दूर (त्रिवेन्द्रम्) से श्वेतदुर्ग (कोट्टम्बल) तक के मार्ग का वर्णन है। उत्तर भाग में प्रेयसी के गृह का वर्णन, उसकी विरहावस्थाएँ और सन्देश दिया गया है। काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया गया है। पूर्वभाग में ६५ और उत्तरभाग में ८० श्लोक हैं।

काव्यस्तु काव्यनिष्ठ ही है। दक्षिण भारत के अन्य सन्देश काव्यों—मयूरसन्देश, शुभसन्देश और कोकिल सन्देश—की तरह इस काव्य में भी नायक सोते समय ही रात्रि में किसी यक्षी के द्वारा अपहरण किये जाने के कारण अपनी प्रेयसी से विछुड़ जाता है। उपर्युक्त सन्देश काव्यों में भी विरह का कोई ऐसा ही कारण उपस्थित किया गया है।

मार्गवर्णन में कवि ने आकर्षक स्थलों पर कुछ ठहरने की चेष्टा की है तथा पाठकों के सामने अपने सरस वर्णनों से तत्कालीन के सुन्दर शब्दचित्र उपस्थित किये हैं। अतः मार्गवर्णन नीरस नहीं होना पाया है। इस प्रसंग में काव्य में आये हुये दो एक उदाहरणों का अनुचित नहीं होगा। कृपक राजाओं की राजधानी विलान का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि इसका वाजारों में मणियाँ बड़ी प्रचुर मात्रा में विगरी पड़ी रहती हैं मानों समुद्र ने स्वयं अपने हाथों से उन्हें फैला दिया हो—

पारेपाथोनिधि कुलपुरी कृपकृन्मापतीनाम्
 लक्ष्या लन्मीभिहरणकलासम्पदो हेमलक्ष्या ।
 फेनक्षीमाभ्यरनिचुलितान् यन्निपद्यासु (राजार) हृद्यान्
 वीचीद्वस्तर्गिरिति मणीन् नित्यमम्भोधरेण ॥१॥२५॥

आगे चलकर निला नामक नदी का वर्णन करते हुये कवि कहता है—

अग्रे भागिन्यथ तत्र निला लम्बिता सिन्धुवीची-
 नीलक्षीमाभ्यरपरिसरे द्वारवटलीय भूमे ॥१॥२६॥

निला नदी को समुद्र की लहरों के नीले रेशमी वस्त्रों के साथ धारण की हुई पृथ्वी की द्वारवटली यथाकर कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा दी है ।

निला नदी में स्नान कर चुकी हुई स्त्रियों के घट्ट स्थल पर प्रतिप्रिम्बित भृग को सुवर्ण क्लेश पर स्थित नील रत्न की कितनी उपयुक्त उपमा कवि ने निम्न पद्य में प्रदान की है—

तत्र स्त्रीणा दिवसपिरतिस्नानधौताधराणा-
 मुत्तीर्णाणा अग्रनपुलिनामकसून्माभ्यराणाम्
 भानुच्छायाप्रणयिनि कुचे प्रिम्बितात्मा मुहूत
 धर्ताऽसि त्व कनकफलशीनीन्तरलोपमानम् ॥१॥२७॥

अग्रिम श्लोक में कवि कहता है—

फान्ते सारुं पिकमृदुगिरस्तत्र सत्रीडमाना
 पश्यन्त्यस्तत्रा पयनचलिते प्रिम्बित धीचिजाले ।
 छिन्नमस्त मरफतमणीदाम धत्तोदहादि-
 त्युद्भ्राम्यन्त्य सलिलकुहरे हस्तमार्तयेयु ॥१॥२८॥

नदी में अपने अपने पतियों के साथ विहार करती हुई स्त्रियों का जल में भृग की प्रतिच्छाया देगकर तथा बसे टूट कर गिर पड़ी हुई मरफत मणिमाला समझकर जल में हाथ डालना स्वाभाविक ही है ।

मार्ग में पढने वाले मन्दिरों में तत्तद् देवताओं की पूजा और स्तुति करने का भी भृग को परामर्श दिया गया है । इस प्रसंग में आए हुए स्तुत्यामक पद्यों में कवि ने बड़े सुन्दर और सरस भाव व्यक्त किए हैं । शिवजी की स्तुति में कहा गया निम्न पद्य देखिए—

आशा यस्ये तथ बहुतरा पूर्णकाम किल त्यम्
 पीत कण्ठे लगति गरल नीलकण्ठोऽसि लोके ।

श्रीकण्ठ त्वा कथयति जन कण्ठलग्ना च गौरी
तस्माद् विस्मापकमयि कथ प्रस्तुमस्त्वा नमस्ते ॥१॥२८॥

शिवजी के व्यक्तित्व को कवि ने किस प्रकार आश्चर्यजनक बना दिया है।

एक श्लोक में कवि ने शिवजी और पार्वतीजी दोनों की एक साथ स्तुति की है—

गौरीकान्त त्रिनयनमनोरत्नभे देव देवि ।
प्रेमोद्रेको जयति जगतामीशयोरीदृशोऽयम् ।
एव यो वा यलु कथलयन्नर्धगात्र नितेने
विश्लेषार्तिप्रदरमविदन्तौ मिलन्तौ भवन्तौ ॥१॥७५॥

शिवजी और पार्वतीजी के अनन्य प्रेम का कवि ने कौसा सुन्दर चित्र यहाँ अंकित किया है।

दक्षिण विम्बली में स्थित मन्दिर में कृष्ण की स्तुति करने के लिए भृगु को परामर्श देते हुए कवि कहता है—

वन्देथास्त्वभ्रमर पुरत कञ्चिदाश्चर्ययाल
घोषाद् घोषामन इव मुहुर्गोरस चोरयन्तम् ।
अस्य द्रम कथमिद पयोलुब्धता यो विशुद्धा
मुक्तिं दत्त्वा विपकट्ट पय पीतयान् पूतनाया ॥१॥३१॥

इस पद्य में कवि ने कृष्ण के मन्थन चुराने तथा दूध पीने के लातच का बहा सुन्दर वर्णन किया है।

जिस तरह मेघदूत में यक्ष ने अलका नगरी का सग्स और शृगार रस पूर्ण वर्णन किया है, उसी तरह इस काव्य में भी श्वेतदुर्ग का वर्णन बड़ा सग्स और सुन्दर है। श्वेतदुर्ग राजधानी का वर्णन प्रारम्भ करते ही नायक कहता है कि यह नगरी अपने तत्तद् विशेषभावों से भृगु को मत्त बनाने में पूर्ण समर्थ है। कवि ने भृगु से मिलते जुलते विशेषणों का ही नगरी के साथ प्रयोग किया है—

मन्त्रुध्यान सललितपुरन्धीजितारग्धगीता
माध्वीलोल नरमधुक्रीलोल लोलम्बजाला ।
वान्तासक्त मुदददयितारागमूढल्लोलापोरा
वैस्त्रीभायैर्मदबितुमलं त्वामसौ राजधानी ॥२॥१॥

उपर्युक्त श्लोक से नगरी के सगीन तथा विलास से पूर्ण जीवन का अनुमान किया जा सकता है।

श्वेतदुर्ग नगरी के मढ़लों की छुनों पर चलते हुए मूर्च्छनाशाली सगीत को सुनकर गन्धर्व तक मूर्च्छित हो जाते हैं और अपनी प्रेयसियों द्वारा कमल से मारे जाने पर ही उन्हें होश आता है—

यत्सौधाम्रे कुत्रलयदशा मूर्च्छनाशाली गीतम्
श्रुत्वा मूर्च्छामित्र गतयत्रा कौतुकस्तम्भितानाम् ।
गन्धर्वाणामनुगतनिजप्रेयसीरोपदत्त
क्रीडापद्मप्रहरणमहो जायते वीधनाय ॥२॥४॥

एक और श्लोक में कहा गया है कि श्वेतदुर्ग नगरी की सबकें स्फटिक मणि के साथ साथ वैडूर्य (नीलम) की बनी हुई हैं और उन पर कमल के समान मुख वाली स्त्रियां जत्र चलती होती हैं, तो हसों को सचमुच कमलजत का भ्रम हो जाता है और वे उन पर मडराने लगते हैं—

यस्याप्रच्छस्फटिक मणिसम्भिन्नवैडूर्यरोचि
र्वाचीभगप्रसरतरले राजमार्गान्तराले ।
गच्छन्तीना कुत्रलयदशा धीक्ष्य वक्त्राणि दूरे
दसा हेमाम्बुजवनधिषा सम्मणन्तो वलन्ते ॥२॥६॥

नगरी के वैभव तथा बहा की रमणियों के सौन्दर्य का एक साथ कवि ने कैसे सुन्दर वर्णन किया है ।

नगरी के वर्णन के बाद नायिका का वर्णन किया गया है । नायिका वर्णन कवि ने सरस भाषा द्वारा नायिका का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है ।

नायक अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कहता है—

यत्सौन्दर्यं सजलजगता नेत्रपीथूपजुष्टम्
यत्तादृश्य कुसुमधनुवो जैत्रमक्षय्यमस्त्रम् ।
यत्सौजन्यं बुधजनमनोहारि यद्भूरिसारा
विद्वन्निघ्ना जयति विमला सृष्टिरम्भोजयोने ॥१॥२४॥

नायिका के सौन्दर्य, तादृश्य और सौजन्य की कैसे सुन्दर ढंग से प्रशंसा की गई है । ब्रह्मा की विमलसृष्टि यथाकर नायिका के उत्तमशील और पातिव्रत्य की भी व्यञ्जना की गई है ।

आगे चलकर नायक कहता है कि उसकी प्रेयसी का मुख नियममेय है । चन्द्रमा और कमल इत्यादि से उसके मुख की उपमा देना सौन्दर्य को कम करना ही होगा । ब्रह्मा का सार शिल्प इसकी रचना में लग गया है -

वन्त्र तत्तादृशमतिमनोहारि नैरोपमाभि-
 न्यूनिकुवे शशिकनरुपकेरहाद्याभिरद्य ।
 चलुष्मन्तो न खलु विरदन्ते जना किं गृह्णन्तै-
 स्तस्या सृष्टौ परिणतमभूत् स्वर्गशिख्य विधातु ॥२॥२६॥

नायिका के स्वरूप का वर्णन करते हुए विरही नायक एक स्थान पर भृगु से कहता है--

प्राणान् वीणामधुरनिनदान् भ्रातगलोकयेथा
 व्यामग्राह्याञ्जघनपुलिने मध्यदेशे मनोशे
 मुष्टिप्राद्यानुरसिजभरे हेमशैलोपमयान् ॥२॥२७॥

सा कटयाणी मम सहचरी सौम्य विज्ञापयिष्य-
 त्यात्मानं ते मुहुरभिनवैरेव शोभाविशेषे ॥२॥२८॥

नायिका के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए 'प्राणान्' 'कटयाणी' और 'सहचरी' इन शब्दों से नायक ने अपने प्रेम को बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। पूर्व वर्णित नायिका के संबन्ध में आगे चलकर नायक कहता है कि विरह में उसके शर्मा की शोभा नष्ट होगई होगी--

एना भ्लानामधिरुमधुना कटपये विप्रयोग
 ध्यालक्ष्वेलो (विप) दुगतिभिरयथापूर्वशोभाङ्गलेषाम्
 राटक्षोभादिव शरदिजा कौमुदीं दायरद्वि
 ज्जालादाहादिव च मधुमासोज्ज्वला वालवल्लीम् ॥२॥२९॥

शरत्कालीन चन्द्रिका तथा वसन्त ऋतु में उत्पन्न हुई चाललता धताकर नायिका की सुन्दरता तथा शुभ्रुमारता को कौसी अच्छी तरह पाठकों के सामने रक्का गया है।

अपने प्रिय के विरह में नायिका की बड़ी करुण अवस्था का चित्र शक्ति किया गया है। प्रिय विरह में नायिका भस्मप्राय स्त्री वर्णित ही गई है। उसकी बेचल बर्ती प्रार्थना है कि उसकी भस्मराशि मन्द वायु के द्वारा उसका प्रिय के मार्ग में डाल दी जाए--

स्वामिन् । मन्दानिल । किमिदमारभ्यत हन्त दग्धु
 तीप्तोत्कण्ठाविपशितिशिखाधशेष मदत्तगम् ।
 एषा पाञ्चमा मम हि चरमा मन्दमादाय भस्म-
 क्षोद्रानेतान् दयितमिलित दिट्मुने पातयेथा ॥२॥३०॥

प्रिय विरह में नायिका निरन्तर रोती ही रहती है। उसकी सखिया किसी तरह उसको आश्वसन देनी है और सोने की प्रार्थना करती है -

अङ्क पट्टेरेह नरदलैगस्तुत तेलिसरया
गाढोत्तएठा मृदितमृदितैरङ्गकैरापलन्ती ।
वाले । मा मा रुदिहि दपितस्ते समायास्यति द्राग्
निद्रा तावद् भज निभृतमित्येवमाश्रयासिता वा ॥२॥८०॥

विरहाग्रस्था में नायिका के बेहोश तब हो जाने की सभायना की गई है। सखियों द्वारा शीतल जल के टिडरुने तथा आँखें खोलने पर उसके होश में आने का वर्णन किया गया है—

हा हा कष्ट सहन् रि । जगन्नेत्रपीयूषर्वा च्ची
माले । वाले । कवमिष दशमीटशीमागतासि ।
नेत्राम्भोज स्तिमितमिद्रमुन्मूलयत्यालिपमं
सिन्धत्यट्ग तुहिनपयसा बोधमासेदुषी वा ॥२॥८१॥

इस तरह नायिका की विभिन्न विरहाग्रस्थाओं की सभायना करने के बाद अन्त में भृगु से नायक ने अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश में नायक ने सर्व प्रथम अपनी प्रेयसी को अपने शीघ्र आने का समाचार दिया है—

इत्थ तस्ये कथय मुदति । त्वा प्रियो मन्मुलेन
व्यक्तः श्रुते नयमनुभवन्तीदृश विप्रयोगम् ।
पादाम्भोज तव सुपद्मे । नृडितु प्रस्थितोऽहं
तावन्मा मा तनु तनुलता दीपित तापयद्ही ॥२॥८२॥

तदनन्तर कुछ समय तक प्रतीक्षा करने का परामर्श दिया गया है—

(सन्देशवाणीम्) ता लब्ध्या च प्रणयिनि पुन सम्प्रतीक्ष्म्य कालम्
तत्तत्क्रीडातरलमनसा सार्धमालीजनन ॥२॥८३॥

तदनन्तर अपनी विरहाग्रस्था का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि जब मे तुम्हारा वियोग हुआ है, कामदेव अपने धनुष का तुम्हारी भ्रूसूत्री के द्वारा उपहास होने की वजह से घेर मानकर मेरे चित्त में लागीं बाण मार रहा है—

त्वद्भ्रूसूत्राया धनुषि हसिते मय्युपागच्छयैरो
मारश्चित्त मम प्रितशुते वाग्लक्ष्म्य लक्षम् ॥२॥८४॥

वायिषों में फलरथ करती हुई हसिया, फलियों से लदी हुई लताए तथा

द्विरनियों के भुण्ड देखकर नायक को अपनी प्रेयसी की स्मृति आजाती है और वह पागल सा धूमता है—

कूले कूले मुखरकलहसीकुले वापिकानाम्
मूले मूले पृथुलकलिकासन्नताना लतानाम् ।
यूथे यूथे वलिततरलालोकिनीना मृगीणाम्
स्मार स्मार तव सुमधुरान् विश्रमानुद्भ्रमामि ॥२॥६२॥

नायक अपनी त्रिरहदशा का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कहता है कि प्रातः काल में जब चक्रवाकमिथुन को प्रेम का पाठ पढ़ाती हुई शीतल हवा चलती है और जब मैं तुम्हें नहीं देख पाता हूँ तो मेरे मन में विरह की बड़ी तीव्र ज्वालाएँ उठती हैं—

वातैर्मञ्जुनणदलिकुलारब्धिश्लेषमूर्च्छित्
कोकद्वन्द्वप्रथमसुरताचार्यकै सेव्यमाना ।
उद्यदधूम मदनशिलिन त्वन्मुखालोमृशन्था
प्रत्यूपा मे मनसि नवपदुमाक्षि । सन्धुक्षयत ॥२॥६०॥

अन्त में नायक कहता है कि तीव्र उत्कण्ठा रूपी अग्नि, क्रुद्ध कामदेव रूपी सपे तथा मोह रूपी ग्राह से युक्त और हृदय सन्ताप रूपी विष से भरे हुए विरह-सागर में वह अपने दुर्भाग्यवश पड़ा हुआ है। पुनर्मिलन की आशा रूपी जहान क सहारे ही वह जी रहा है—

तीज्रोत्कण्ठादहनभरिते रष्टमारद्विजुष्टे
मोहग्राहे हतहृदयसन्तापकाकोलपूर्णे ।
विश्लेषाब्धौ सुमुष्टि । विधिना पातित, सङ्गमाशा—
पोतालम्बी तत्र सहचर प्राणिति प्राणनाथे ॥२॥६४॥

इस तरह अपनी त्रिरहावस्था का वर्णन करने के बाद नायक ने अपनी प्रेयसी को कुछ पूर्वघटनाओं की भी याद दिलाई है ताकि उसे अपने प्रिय की कुशल का निश्चय हो जाए। इन अभिमान घटनाओं में से कुछ एक तो बड़ी सरस हैं तथा नायक और नायिका की प्रलयनायनाओं का बड़ा सुन्दर विभ्र पाठकों के सम्मुख रखती हैं। कन्दुफत्रीटा क समय की एक घटना का वर्णन करते हुए नायक कहता है—

स्मर्तव्यं तन्मधुरमुष्टि । यत् कन्दुकफ्रीडितेषु
व्यासताया त्वयि तमद्वरं पाणिपटुमादह ते ।
याता रोवादिष सययसा मध्यतो मन्दिरान्त-
मांमालिङ्ग्य स्फुरितमदिधास्तत्र ताम्राधर मे ॥२॥६६॥

इस घटना में नायिका के रोव और प्रसन्नता का कैसा अपूर्व समिधण छिपा हुआ है ।

इसी तरह एक और अभिज्ञान में भी नायिका के घनिष्ठ प्रेम का परिचय दिया गया है । नायक के केवल अपने जाने की सूचना से ही नायिका चुन्प हो जाती है । उसके अंग शिथिल हो जाते हैं और रोने लगती है—

तद् वृत्त ते धृतिमण्डरस्यस्मदीया प्रहासे
गच्छामीति स्थिरमतिरुपामन्त्रय त्वामहेतो ।
सद्यश्शयाभुवि निपतिता सन्नगात्री मया त्वम्
भूयोभूयस्तदनु रदती गाढमालिङ्गिताऽम् ॥२॥७३॥

सन्देश के अन्त में नायक ने अपनी प्रेयसी को शीघ्र ही मिलने की आशा भी दी है—

निर्मड्ढ्याथ सुचिरमचिरात् सङ्गमानन्दपीयू-
पाध्वो यावद्विरहशिखिनस्ताप पति प्रशान्तिम् ।
सौघेऽद्यप्रभृति मुदितौ पुण्यशय्याञ्चितेषु
क्रोडिध्यागो वहलविगलच्यन्त्रिकासु क्षपासु ॥२॥७५॥

इस तरह भृग को सन्देश बताने के बाद भृग के पुनर्दर्शन और म्वज में भी उन दोनों का त्रियोग न हो, इस शुभ कामना के साथ काव्य समाप्त हो गया है—

भूयान्त्र प्रियसख पुनर्दर्शनं मा त्रियोग
स्वप्नेऽपि म्याद् भरतु शुभयो सर्वमङ्गल्यलक्ष्मी ॥२॥८०॥

काव्य के उपर्युक्त निवेदन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य एक सरस रचना है । विप्रलम्भ शृंगार की ही काव्य में प्रधानता है । यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है । मार्ग वर्णन, नायिका की नगरी का वर्णन, उसके गृह तथा विरहानुग्धाओं और नायक के सन्देश इत्यादि में सर्वत्र ही मेघदूत से प्रेरणा ली गई है । कहीं-कहीं भाव साम्य भी स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है ।

मेघदूत में यद्यपि मेघ को मार्ग बताते हुए कहता है—

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्व्यत्रयाणानुरूपम्
सन्देश मे तदनु जलद ! ध्योपसि ध्योत्रपेयम् ॥इत्यादि ॥१॥१३॥

इसी से मिलता जुलता भृगसन्देश का निर्मालिङ्गित श्लोक देखिय—

यातांमार्तां प्रति कथयितु प्रेथमां मे प्रवृत्तो
मार्गतावच्छृणु शुभमितस्तन्निकेतायसानम् ।

नीत्या नीत्या श्रममनुजन येन गन्तासि भूय
पीत्या पीत्या मधु सममलिन्या तलिन्या नलिन्या ॥१॥२१॥

दोनों पथों में मार्गस्थान तो है ही। शब्दसाम्य भी स्पष्ट है। इसके अतिरिक्त विषय भेद होते हुए भी शैली वी एकरूपता त्रिद पाठक स्वयं देख सकते हैं। इसी तरह भृगु की अपनी प्रयत्नी के पास सन्देश लेकर भेजते हुए नायक कहता है—

त्रिश्लेषार्या त्रिधुरप्रनसा वरलभानामुदन्त
प्राणान् वीणापरिमृदुगिरा कगडनालेऽपि हन्धे ॥१॥२५॥(दे० मेघदूत २, ३०॥)

मेघदूत में अलका नगरी के प्रासादों का वर्णन करते हुए प्रासादों और मेघ में परस्पर सादृश्य उत्पाने वाले विशेषणों द्वारा एक दूसरे की समानता प्रतिपादित की गई है। इसी तरह भृगु सन्देश में भी श्वेतदुर्गराजधानी और भृगु में परस्पर सादृश्य उत्पान वाले विशेषणों द्वारा राजधानी का वर्णन किया गया है (दे० श्लो० सं० ॥२॥१॥ ३१० पृष्ठ पर उल्लिखित)

मेघदूत में अलका नगरी की स्त्रियों की मुग्धता व्यक्त करते हुए कवि ने जो लिखा है, उसी के समानान्तर भाग को लेकर भृगु सन्देश में कहा गया है—

यस्यामन्तर्मणिनिलयने यत्नभैर्नीचिन्द्रे
सृष्ट्याना नरपरिणयत्रीटिताना यधुनाम् ।
लीलाम्भोज प्रहृतिभिरनिनापिते रत्नद्रीपे
ध्वान्तोद्गारी सपदि त्रिगलत्कुन्तलो बन्धुगसीत् ॥२॥७॥

मेघदूत में यज्ञ ने अपने प्रेयसी को शीघ्र मिलने का आश्रासन दिया है। इसी तरह भृगु सन्देश में भी शीघ्र मिलने का आश्रासन दिया गया है और तदनन्तर यह इच्छा प्रकट की गई है—

सीधेऽप्यप्रभृति मुदिनीं पुष्पशय्याञ्जितेषु
कीडिप्याग्रे बहलत्रिगलच्चन्द्रिकाम् क्षपासु ॥२॥७७॥

दोनों स्थलों में भागसाम्य के साथ-साथ शब्दसाम्य भी पर्याप्त रूप में दिखलाई देता है।

भौगोलिक दृष्टि से भी यह काव्य महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भाग के नगरों, मन्दिरो तथा प्रमुख विहारों के यथान्त काव्य की उपास्यता और भी बढ़ा दी है। इसमें तत्कालीन राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता

है। अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि सुन्दर भावों के साथ ललित भाषा में लिखा गया यह काव्य सहृदय पाठकों को मुग्ध करने वाला है और एक सफल सन्देशनायक है।

उद्दण्ड कवि का फौजिलसन्देश (वि० पचदश-षोडश शतक)

विक्रम १६ वें शतक के प्रारम्भ में कालीकट (कुम्हटकोड) में जन्मरत मान-विक्रम नामक राजा राज्य करता था। यह राजा विद्वान् और साहित्यप्रमी था। इसके दरबार में अठारह कवि और एक अर्थकवि सम्मिलित थे। अठारह कवियों में पर्यूर पट्टेरी वंश के अठ भाई और एक पुत्र, निरवपर और तिरनेगपर के पांच ज्ञानाण तथा मल्लपिल्लि पट्टेरी, चेन्नासु नारायण नम्बूट्टि, कान्मसरी नम्बूट्टि और उद्दण्डकवि यह लोग शामिल थे। पुन्नाट्टु नम्बूट्टि को अर्थकवि बना जाता था क्योंकि उनकी कविता मलयालम और संस्कृत मिश्रित होती थी। फौजिलसन्देश का रचयिता उद्दण्ड कवि इस कविमण्डल का प्रमुख व्यक्ति था। कदा कदा इन्ने उद्दण्ड शास्त्री भी कहा गया है। इसके माता पिता का नाम क्रमशः रत्नाम्मा और रत्ननाथ था तथा यह बधुलमोत्र का था। काशी के निकट लाटपुर नामक ग्राम में यह रहा करता था। 'ल्लारुवि ने सुभद्रा परिवार' नामक ग्रन्थ नाटक में लिखा है कि उद्दण्ड कवि चोल देश के तञ्जोर जिले के कन्दरमानिकक नामक ग्राम का गठन वाला था। उद्दण्ड कवि का पिता रत्ननाथ भी उसी ग्राम का निवासी था तथा राजा विद्वान् था। कर्तुवैगुण्यप्रायश्चित्तम्' नामक एक मूलग्रन्थ और पद्मवती तथा श्रीमूर्ति पर उसकी टीकाएँ पाई गई हैं। अतः यह भी समझ है कि कन्दरमानिकक नामक ग्राम में उद्दण्ड कवि का जन्म हुआ और बाद में वह काशी के निकट लाटपुर नामक ग्राम में

१ दे० ड्रीनिशल कैंट० आफ सन्स० एम० एस० एस० इन प्रोविपटल लाइ० मद्रास, १ १०४०।

२ दे० डिमिपटिष कैंट० आफ सन्स० एम० एस० एस० इन प्रोविपटल लाइ० मद्रास २ न० १९६६ और ड्रीनिशल कैंटालाग, १, ३६६।

रस गया हों। यह नल्लकवि भी कदर मानिक का निरासी है तथा वि० पौडश शतक इसका रचना काल है। ऐसा ही इसने अपने सुभद्रापरिणय नामक नाटक में उल्लेख किया है। उद्दण्ड कवि दक्षिण भारत के विभिन्न विद्याकेन्द्रों में अपना साहित्यिक जीवन बिताकर अन्त में यश की खोज में मालागार पहुँचा और वहाँ राजदरबारों में इसने अपने विरोधियों को परास्त किया। जमूरिन मानविक्रम राजा ने इसको सरक्षण दिया। राजदरबार में इस सफलता को देखकर लोगों में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगी और ऐसी जनश्रुति है कि किसी पंडित की स्त्री ने इसको परास्त करने वाले पुत्र को उत्पन्न करने का प्रण किया तथा समकालीन पंडितों की प्रार्थनाओं और मन्त्रशक्ति की सहायता से उसके ऐसा ही प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न भी हुआ। इस पुत्र का नाम कम्कासरी भट्टातिरि था। इसने बारह वर्ष की अवस्था में ही उद्दण्ड कवि को खुली चुनौती देकर परास्त कर दिया तथा संस्कृत में इन्दुमतीरायण और मलयालम में वसुमतीविक्रम^२ नामक नाटकों की रचना की।

उद्दण्ड कवि ने मल्लिकामारत नाम का इस अर्थों का एक प्रकरण^३ भी लिखा है। भवभूति व मालतीमाधव का इसमें अनुकरण किया गया है। इस प्रकरण में मल्लिकामा और मारत तथा रमयन्तिका और कलकण्ठ को प्रेमभावनाएँ वर्णित की गई हैं। मन्दाकिनी मालती माधव की कामन्दकी से और कालिन्दी अमलोकिता से मिलती जुलती है।

कवि ने कोमिल सन्देश में एक प्रेमी का कालीकट में स्थित अपनी प्रेयसी के पास कोमिल द्वारा सन्देश पहुँचाया है। कालिदास के मेघ सन्देश की यह एक सुन्दर अनुकृति है। ऐसा कहा जाता है कि रविवर्मा और गौडवर्मा के दरबार में स्थित वासुदेव नामक कवि ने अपना भृङ्गसन्देश नामक काव्य उद्दण्ड कवि के पास भेजा। उसके उत्तर में ही उद्दण्डकवि ने यह सन्देश काव्य लिखा है।

शंकर मगर उद्दण्ड कवि का मित्र था। गुप्तरयूर के मन्दिर में इन दोनों की भेंट हुई थी तथा शंकरकवि ने उद्दण्ड द्वारा प्रारम्भ एक कविता की पूर्ति भी की थी। शंकर कवि का श्रीरुण्णत्रिजय^३ नामक एक अन्य काव्य भी पाया जाता है।

१ दे० प्रायन्फोर स्टेट मैनुअल, ४३३।

२ दे० ट्रीनिडल क्वैट० आफ सन्स० एम० एस- एस० इन ओ० लाइ० मद्रास, ४, ४७३८। वेपल दो अफ उपलब्ध हैं।

कलकत्ता और मैसूर से प्रकाशित।

४ त्रिनूर से प्रकाशित।

सुकुमार अथवा प्रभाकर नामक एक और युवक कवि भी उद्दण्ड कवि का समकालीन था। कृष्णविलास^१ नामक उसका काव्य उसके नाम के समान ही सुन्दर और सरस है।

जिस तरह भयभूति का जन्म का नाम श्रीकण्ठ था परन्तु—

साम्ना पुनातु भयभूतिपवित्रमूर्ति । अथवा

तपस्वी का गतोऽवस्थामिति स्मेराननाविव ।
गिरिजाया स्तनी यन्दे भयभूतिसिताननी ॥

पद्यों के जिनमें “भयभूति” शब्द आया है, लिखने के कारण इसका नाम भयभूति पड़ गया, उसी तरह उद्दण्ड कवि का यह नाम भी साहित्यिक नाम प्रतीत होगा है। सामूहिक महाराज की सभा में प्रथम प्रवेश के अनन्तर पर कवि ने महाराज के श्री चरणों में निम्न पद्य भेंट किया था—

उद्दण्ड परदण्डमेव भयघात्रासु जैत्रधियो
हेतु केतुरतीत्य सूर्यसरणि गच्छन् निरायंस्त्वया ।
नो चेत्तपुटसपुटोदरलसच्छाटूलमुद्राद्रयत्
सारङ्ग शशियिम्बमेप्यति तुला त्वत्प्रेयसीना मुखे ॥

इस पद्य के उद्दण्ड शब्द के आधाग पर ही कवि का नाम उद्दण्ड पड़ गया।

कवि ने कोकिल सन्देश में केरल देश की यत्नी और कौली नदियों के मध्य में स्थित ब्राह्मणों के अप्रदारों का वर्णन किया है। इसी प्रसंग में रणजल (पोन्डिल) में स्थित पय्यूर वंश के अमज विद्वत्प्रथम महर्षि के घर का वर्णन वर्दी भद्रा के साथ किया गया है—

किञ्चित्पूर्वारणजलभुवि धीमद्ध्यत्तयेथा ।
तन्मीमासाद्वयकुलगुरो सद्म पुण्य महर्षे ।
विद्वद्भृन्दे विद्यदितुमनस्यागते यत्र शश्व
द्व्यात्प्याशालायलभिनिलयस्तिष्ठते कीरसत्र ॥१॥७८॥

यह महर्षि कवि राजा मान विव्रम जमूरिन् का राजकवि था। अतः इन दोनों का समकालीन होना स्पष्ट ही है।

इसके अतिरिक्त कवि ने अपने काव्य में शुकन कवि का उल्लेख किया है। कोकिल को कोलदेश (उत्तरी मालाबार में चिरक्कल वंश) जान का परामर्श नेन हुए कहा गया है—

१ रामपाणियाद की टीका के साथ पालघाट से बेयल चार सर्ग प्रकाशित।

कोलानेलापनसुरभिलान् याहि यत्र प्रयन्ते
 वेलात्तप्रथितप्रचस शकराद्या कवीन्द्रा ॥१॥६०॥

इस पद्य से उद्घट्ट कवि शकर कवि का भी समकालीन सिद्ध होता है। इस शकर कवि ने अपने श्रीकृष्णविजय नामक काव्य में लिखा है कि यह काव्य कोलेश के राजा उदय यमा के सरक्षण में लिखा गया है। राजा उदय यमा का शासनकाल प्रायः ई० १५ वीं शताब्दी का पूर्व भाग माना जाता है। मलयालम नाट्य चन्द्रोत्सव में भी शकर कवि का उल्लेख आया है। यह शकर कवि तथा उद्घट्ट द्वारा उल्लिखित शकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इस बात में तो कोई सन्देह ही नहीं है। मालाबार में एक और लोकप्रिय जनश्रुति यह भी है कि पुनम् नामक मलयाली कवि भी उद्घट्ट का समकालीन था। चन्द्रोत्सव काव्य में पुनम् कवि भी एक प्रसिद्ध कवि के रूप में उल्लिखित किया गया है। एक दूसरी दृष्टकथा यह भी है कि चेंनासु नारायण नम्बूट्टि भी जिसने तन्त्रसमुच्चय (त्रिवन्ट्रम् स० सी० स० ६७) लिखा है, उद्घट्ट कवि का समकालीन है। तन्त्रसमुच्चय नार ने अपना रचना काल ग्रन्थ के अन्त में कलिवर्ष ८५२६ दिया है—

करयन्द्रेषतियत्सु नन्दनयनेषम्मोधिसत्पेषु य
 समूतो भृगुवीतद्वयमुनियुद्धमूले सवेदोऽन्वये ।
 प्राहुर्यभ्य जयन्तमङ्गलपद्व धाम नारायण
 सोऽय तन्त्रमिद व्यधाद्दुविधादुद्धृत्य तन्त्रार्णवात् ॥
 (नन्द ६, नयन २, इषु ५, अम्मोधि ८)

कालिवर्ष ८५२६ वि० स० १८२५ से मिलता है। इसके अतिरिक्त कोलदेश के राजा उदययमा से सबद्ध शकर कवि का समय भी वि० स० की १५ वीं शताब्दी का उत्तरभाग है। अतः इन दो कवियों की समकालीनता के आधार पर उद्घट्ट कवि को वि० स० के १५ व शतक के अन्त में निश्चितरूप से रक्षया जा सकता है।

कवि ने अन्ननवलपुरी (तिरुवञ्चिकुल) का वर्णन करते हुए अतद्गुरु थी शकराचार्य का उल्लेख किया है—

रम्या दृर्म्यध्यजपटमरुद्धीजितप्रधनयुगया
 ममे पश्या ज्ञनवलपुरीमाधिता शरुकरेण ॥१॥८७॥

इसमें भी कम से कम यह तो निश्चित ही होता है कि उद्घट्ट कवि श्रीशकराचार्य से याद में ही हुआ है।

काव्य की कथा

कोई प्रेमी अपने प्रासाद पर प्रेयसी के साथ प्रेमालाप करते-से जाता है। प्रातःकाल होने पर यह देखता है कि कम्पा नदी के तट पर स्थित काची नगरी में भगवती के मन्दिर के पास बह पड़ा हुआ है। इसी अवसर पर उसे एक आकाशवाणी सुनाई पड़ती है जि वरुणपुर से विमान द्वारा आती हुई अप्सराएँ उसको यहाँ ले आई हैं और यदि वह पाँच महीने तक काची में निवास करेगा, तो फिर कभी उसका अपनी प्रेयसी से प्रियोग नहीं होगा। इस आकाशवाणी को सुनकर वह प्रेमी काची में निवास करने लगता है। अपनी इस विरहावस्था के दो तीन महीने तो वह किसी तरह काट लेता है लेकिन चैत्र लगते ही वसन्त ऋतु के आने पर वह बड़ा विह्वल हो जाता है और पास में कोकिल को फूकता हुआ देखकर तो उसने हृदय में प्रेयसी की स्मृति और भी जागृत हो जाती है तथा वह उससे प्रेयसी के पास अपना सदेश ले जाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में काची नगरी से चूर्णी नदी के दक्षिण तट पर स्थित जयन्तमगल नामक (आधुनिक बेन्नमगल) देश तक के मार्ग का पवित्रपूर्ण वर्णन किया गया है।

काची नगरी के निकट कम्पा नदी के तट पर स्थित किसी उद्यान से कोकिल की यात्रा प्रारम्भ होती है। मार्ग में श्री कामाक्षी, श्री विष्णु, कामपीठ तथा श्री महादेवजी के दर्शन करने के बाद काची देश से पश्चिम की ओर क्षीरसिन्धु नामक नदी (पालार) के मिलने का उल्लेख किया गया है। इस नदी से दक्षिण की ओर चलने पर ब्राह्मणों के अग्रद्वारों, चोलदेशस्थित विरभजेन्द्र, तदनन्तर घने जंगलों को पार कर कावेरी नदी तथा इसके तट पर स्थित होसल देश पहुँचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। होसल देश से सह्यपर्वत होते हुए केरलदेश में वाड् मयी नदी के तट पर महादेवजी और भद्रकाली के दर्शन करने के बाद पुरली (कोट्टयम्) के राजाओं की राजधानी का वर्णन किया गया है। यहाँ से दक्षिण की ओर जाने के आवश्यक होने पर भी पश्चिम की ओर बढ़ने का ही कोकिल को आदेश दिया गया है। मार्ग में महादेवजी का मन्दिर, सम्पदग्राम तथा यहाँ के ब्रह्मन्द् इत्यादि विद्वानों के दर्शन कर यहाँ पर ही रात बिता कर प्रातःकाल होने पर शम्भर देश में बालकृष्ण भगवान् के दर्शन करत हुए दक्षिण दिशा की ओर बढ़ने पर कोल देश का आने का उल्लेख किया गया है।

कोलदेश से समुद्रतट होते हुए कुक्कुटकोड (कालीकट) नगर, तदनन्तर प्रकाशेश (वेत्तनाट्) में श्वेतारण्य (शुभ्रट्टोड्) के निकटवर्ती मृत्युञ्जय नगर के दर्शन करने के बाद निला नाम की नदी को पार करते हुए नेप्रनारायण (तम्पुराक्कल्) वश के ब्राह्मणों के देश पहुँचने का कोकिल को परामर्श दिया गया है। यहाँ से कुछ पूर्व की ओर रणमल देश (पोर्कलम्) में मरिचि पय्यूर के आश्रम को देखने के बाद वृषपुरी (श्री शिवपुर-वृषपुर) में महादेवजी तथा उसके समीप

ही कनक भवन में पार्वतीजी की पूजा करते हुए सगमग्राम (हरिङ्गालस्कट) पहुंचने का उल्लेख किया गया है ।

सङ्गमग्राम में कृष्णजी के दर्शन करने के बाद आगे बढ़ने पर श्रीकुम्भ नामक वन में कालीजी के मन्दिर का दर्शन किया गया है । तदनन्तर अजन्तपुरी (तिरुचिकुल) नामक नगरी को देखते हुए चूर्णी नदी के पार करने पर दक्षिण की ओर जयन्त मगल नगरी के मिलने का उल्लेख किया गया है ।

इस तरह मार्गदर्शन के बाद अन्त में जयन्तमगल नगरी का दर्शन किया गया है । इस नगरी में त्रिष्णु क्षेत्र से दक्षिण की ओर ही प्रेयसी का घर बताया गया है । प्रेयसी के घर में स्थित लीलावापी, उद्यान, आम्रवृक्ष, चम्पक, चन्दन वाटिका, लतामण्डप, कुरवक तरु इत्यादि स्थानों में प्रेयसी के न मिलने पर माहेन्द्रगौल नामक प्रासाद में तो उसके मिलने की अवश्य ही आशा की गई है । इस प्रसंग में प्रेमी ने अपनी प्रेयसी की विरहावस्था का विविध भावभंगिमाओं के साथ दर्शन किया है । अन्त में सूर्य के ताप के कुछ शान्त होने पर मध्याह्न के बाद कोकिल से प्रेयसी को प्रियतम का सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है । सन्देश इस प्रकार है । प्रेमी कहता है—हे कट्याणाङ्गि ! तुम्हारे त्रियोग में मेरी इन्द्रिया विकूल शिथिल हो गई हैं और मन तो दिन रात तुम्हारी ओर ही लगा रहता है । रात्रि में जब सारा ससार सोता होता है तब मैं रोता ही रहता हूँ । मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि कामदेव को आजकल ओर कोई काम नहीं है । नितान्त रूप से मेरे चारों ओर ही घूमता रहता है । मलय पवन के स्पर्श से हिलती हुई लताएँ देख कर मुझे तुम्हारी याद आ जाती है । इस दुःसह त्रियोग में केवल भावना का सहारा लेकर मैं जी रहा हूँ । तुम भी अपनी सखियों के आग्रह से स्नान इत्यादि निरन्तर करती रहना । पार्वती की ठुपा से तिरहकाल समाप्त सा ही हो गया है । दो मास का तिरह और सह लो । उसके बाद तो हम लोगों का मिलन अवश्य ही होगा । अन्त में दो तीन अभिज्ञान घटनाएँ बतला कर और कोकिल को आशीर्वाद देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है ।

यस, यही काव्य की कथा है ।

काव्य समीक्षा

केरल देश में लिखे गए सस्कृत के सन्देश काव्यों में कोकिल सन्देश एक महत्त्वपूर्ण सन्देशकाव्य है । मेघदूत का यह एक सफल अनुकरण है । काव्य दो भागों में विभक्त है । पूर्व भाग में मार्गदर्शन तथा द्वितीय में नायिका की विरहावस्था और सन्देश दिया गया है । छन्द भी समग्र काव्य में मन्दात्रान्ता ही है । शृ गार रस के अतुल्य प्रसादगुणयुक्त ललित भाषा में यह काव्य लिखा गया है । यसन्त श्रुत के प्रारम्भ में कोकिल की सन्देश यादएँ बनाकर काव्य ने अपनी कटपाशक्ति का

अरुञ्जा परिचय दिया है। कोकिल के पंचम स्वर ही को सुनकर तो विरही प्रेमी को अपनी प्रेयसी की मधुर वाणी की स्मृति आती है तथा कोकिल ही अपने मधुर कृजन के द्वारा मानिनी नायिकाओं को अपने प्रेमियों से मिलने के लिए प्रेरित करता है। अतः कोकिल के द्वारा सन्देश भेजना उचित ही है। दूसरे कोकिल स्वयं इतना भायुक है कि पक्षों के बीच में यदि कहीं उसकी प्रेयसी छिप जाती है, तो क्षण भर में ही वह वहाँ व्याकुल हो जाता है। अतः वह विरहियों के ताप को बहुत शीघ्र समझ सकता है। प्रेमी स्वयं कहता है—

अन्तस्तोष मम पितनुषे हन्त जाने भयन्तम्
स्कन्धानारप्रथमसुभट पचयाख्य रास ।
कृजा याजाद्वितमुपदिशन् कोकिला याजग्न्धो
कान्ते साक ननु घटयसे मानिनीर्मानभाज ॥१॥७॥

किञ्चिल्लीना किसलयपुटे कोकिलामाकुलात्मा
त्व चापश्यन् घत विरदिणा येन जानासि तापम् ॥१॥८॥

सन्देश सुनाने के अन्तर पर कोकिल भी अपने सन्ध में कहता है—

जात विद्धि श्रुतिसुखगिरा कोकिलाना कुले मा
ये पन्वेपो किमपि पयिकाकर्पण पष्टमस्त्रम् ॥२॥७॥

मार्ग-दर्शन के प्रसंग में कवि ने सुरम्य स्थलों तथा दृश्यों को बड़े भावपूर्ण ढंग से पाठकों के सम्मुख रक्खा है। क्षीरसिन्धु (पालार) नदी के तट पर स्थित उद्यानों तथा नदी में स्नान कर चुकी हुई द्रविड सुन्दरियों को लेकर कवि कहता है—

आम्ने आम्ने कुसुमकलिका त्या च दृष्ट्वा समेतम्
यालाशोकाहननमरुणैरग्निभिस्तन्वतीनाम् ।
तन्वद्गीना धधणसुभगेनू पुराणा विराये
र्षाचाला स्युर्नियतमभित कूलमारामसीना ॥१॥९॥

स्तातोत्तीर्णा सजलकणिकासुन्दरोरुजनुम्भा
(हरिद्रा) श्यामापङ्कै शुभपरिमलै स्पृष्टमाङ्गल्यमृपा ।
तीरे तस्या द्रमिडसुदृशो दर्शनीया विलोक्य
प्रायो भार्या क्षणमिय ससे गच्छतस्ते विलम्ब ॥१॥१०॥

इसी तरह विल्वक्षेत्र में कोकिल के पङ्चने पर वदा के उद्यानों द्वारा कोकिल के सत्कार की वहाँ कोमल कल्पना की गई है—

पक्षिस्त्रानै पट्टमदकलै स्वागतानि द्रुगणा
 व्याकीर्णाध्यां कुसुममधुभिर्नीजयन्त प्रवालै ।
 तन्नारामा सुरभिसचिध त्वा सखे मानयेयु-
 स्तुत्यप्रीतिर्भवति हि जनो राजवद्राजमित्रे ॥१॥२६॥

कुम्भुट कोड (कालीम्हट) नगर का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि यहाँ तो लक्ष्मी साक्षात् निवास करती है और देश देशान्तरों से रत्नों से भरी हुई नौकाएँ जो यहाँ आती हैं वह तो मानों समुद्र की अपनी पुत्री (लक्ष्मी) के लिए भेंट हो—

यत्र क्षात्वा कृतनिलयनामिन्दिरामात्मकन्या
 मन्य स्नेहाकुलितहृदयो वाहिनीना विबोधा (समुद्र) ।
 तत्तद्वृद्धीपान्तरशतसमानीतरत्नीघ पूर्णं
 नौकाजाल मुहुरूपहरन् वीचिभि' श्लिष्यतीव ॥१॥६६॥

आगे चलकर प्रकाश नामक देश (वेङ्गुनाट्ट) में श्वेतारण्य (लृमङ्कोट्ट) नामक स्थान के निकट शिवजी के मन्दिर के पास बहती हुई निला नामक नदी के सम्बन्ध में कवि ने बड़ी सुन्दर उपमा दी है—

पाश्र्वे यस्य प्रवृत्ति निला नाम कटलोलिनी'सा
 सन्ध्यानृत्तभ्रमिषु पतिता मस्तकाज्जाह्ववीव ॥१॥७१॥

ग्रीष्म काल में लीलाकाय, शैवाल से आच्छन्न कमलवाली तथा सैकत देश में फिरते हुए हस्तों से युक्त नदी की कल्पना से कवि ने विरही नायक के हृदय में उसकी प्रेयसी का व्याज जागृत करा दिया है। नायक कहता है—

शैवालीघच्छुरितकमला सैन्तस्र सिहसा
 नीना काश्य तपनकिरणीसरेष्वेषु सिन्धु ।
 व्याकीर्णास्यामलकनिकरै श्रोणिभिश्च शिकार्या
 मन्ये दीना विरहदशया प्रेयसीं मेऽनुयायात् ॥१॥७३॥

नदी और नायिका के लिए विषयप्रतिबिम्ब भाग वाले विशेषणों का प्रयोग कर कवि ने दोनों का सादृश्य प्रस्तुत कर दिया है। मार्ग-वर्णन के अन्त में चूर्णी नदी का वर्णन करते हुए भी कवि ने नदी में नायिका का आरोप किया है—

चारुस्यच्छा शकरनयना चक्रयाकस्तनधी
 फल्लोलध्रु फमलरदना कम्पशैवालवैशा ।
 संसे'या स्यात् सरसमधुगा साऽनुपूलापतीर्ण
 दुर्गादास्यैरिति हि सरणि' काऽपि गाम्भीर्यमाजाम् ॥१॥=६॥

यहा पर रूपक अलंकार के द्वारा नदी को नायिका का रूप दिया गया है ।

अलंकारपुरी के उर्ण के समान ही इस काव्य में जयन्त मंगल नगरी का भी शृंगारमय उर्ण किया गया है । इस नगरी में अभिसारिकाएँ दिन में भी अपने प्रेमियों के पास निश्चिन्त जाती हुई बतलाई गई हैं—

धीव्या धीव्या वलरिपुशिला (इन्द्र नीलमणि) भङ्गपद्मस्थलाया
समूर्द्धि किरणपटलेस्त्रपदुगकज्जालनीले ।
यत्रारन्ध्रे दिनकरकरैरप्यद्वयंऽन्धकारे
तोलाक्षीणा भवति दिवसे निर्दिशङ्कोऽभिसारः ॥२॥३॥

नगरी में स्थित चन्द्रशालागृहों की ऊँचाई का अनुमान निम्न श्लोक से भली प्रकार लगाया जा सकता है—

पीचीक्षिता इव सुरधुनीमालशैवालमाला
यत्रोदीर्णा मरकतचञ्चलशालागृहेभ्यः ।
घासभ्रान्त्या गगनपदपीदीर्घपांथायमाना-
श्चञ्चत्प्रोथ (प्रोथ=नासिका) तरणितुरगाश्चरितु प्रारभन्ते ॥२॥४॥

मरकत मणियों की किरणों को हरी घास समझ कर सूर्य के घोड़ों का उतनी और झुकना स्याभासिक ही है ।

विरही नायक ने अपनी प्रेयसी का वर्णन करते हुए कोकिल के सामने नायिका का जो स्वरूप प्रस्तुत किया है, जरा उसे भी देखिए—

सा नेत्राणाममृतगुलिका सृष्टिसारो विधातु
सौन्दर्येन्द्रो प्रथमफलिका दीपिका भूतधात्र्या ।
कन्दर्पस्य त्रिभुवनविभो काञ्चना वेतुपट्टि
शृङ्गारान्ध्रे शशधरफला जीवित मे द्वितीयम् ॥२॥५॥

ऐसी स्त्री का पद्विचानना कोई कठिन काम नहीं है । इसी आशय को लेकर विरही प्रेमी कहती है—

पश्यन्नेना यद्वलसुपमामण्डलान्तनिर्मलाम्
मन्ध्रेऽन्यासामपि चलदशा शास्यसे नो कथं त्वम् ।
ज्योऽस्नाज्जालमनपितभुवना तारकाणा समीप
चान्द्री मूर्ति कथय जगतो क्षाप्यते वैत रात्रौ ॥२॥६॥

निम्न श्लोक में विभिन्न उपमानों के द्वारा उपमेय भूत नायिका के अंगों का सौष्टय भाष्य ने बौसी अच्छी तरह प्रतिपादित किया है । कंशभार, मुग्धता, कञ्च

कलश, रोमराजि, पट्टिभाग, जघन, ऊरु और चरणों की क्रमिक उपमाएँ देखते ही धनती हैं—

सान्द्रामोदस्तिमिरनिकरञ्चन्द्रमा निष्कञ्जङ्ग
शैलौ हैमौ भ्रमरपटञ्जीकीलितो व्योमभाग ।
कञ्ज चक्र मृदुकरिकरङ्गमञ्जे सलीले
सर्वं चैतन्मदनघटितं सौम्यं सभूय साऽभूत् ॥२॥२१॥

ऐसे रमणी विशेष की विभिन्न छेष्टाएँ भी कुछ विशिष्ट ही होनी चाहिए । आगे चलकर विरही नायक फिर अपनी प्रेयसी का वर्णन करता है—

नीचीकुर्वन्त्यलसयलिता नेत्रपाता कुरङ्गान्
यीचीगव्य इरति निखिल विभ्रमान्दोलिता भ्रू ।
पाणी कटपद्मकिसलयप्राभय न क्षमेते
वाणी तस्या वदति भरता पञ्चमैर्बालमैत्रीम् ॥२॥२२॥

विरही नायक का मन अपनी प्रेयसी की ओर इतना अनुरक्त है कि वह उसे भुला ही नहीं सकता । उसके मुख से अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में बरबस यह शब्द निकल ही पड़ते हैं—

सा कान्तिश्चेद्द्रवति कनकतन्मुखं चेत् कश्नु
सा चेद्दिश्याधरमधुरता तिक्रतामेति माध्वी ।
सा वा तस्या यदि तनुलता मालती लोहतुल्या
तो चंद्रू कनककदलीस्तम्भयो क्वापि उम्भ ॥२॥२३॥

अपनी प्रेयसी के स्वरूप का वर्णन करते करते विरही प्रेमी को अकस्मात् । प्रेयसी की विरहापस्था का ध्यान आ जाता है । वह कहता है कि आजकल अयश्य ही उसकी सुकुमार प्रेयसी कटपसमान इन विरह दिनों में बही उ खी [होगई होगी-

सजापेत प्रयलविरहोद्वेजिता पेशलाङ्गी
मूर्च्छदुर्धमज्वरपरयशा नीलकण्ठीव* खिन्ना ॥ (१ = मयूरी)

विरही प्रेमी कहता है कि उसके प्रियोग में उसकी प्रेयसी हमेशा चिन्तित रहती होगी तथा गालों पर हाथ रक्के घँटी होगी—

यत्रापाङ्गघनिकयचित्तं किञ्चिदुत्सार्यं केशान्
वृक्षं प्रेम्णा दिनमनु मया दीर्घिकारत्पद्म
तस्मिन्नस्या भयति निपतं हन्त चिन्ताकुलाया
गदहन्त्यस्तं करकिसलयं वर्णमाहेऽपलस ॥२॥२६॥

कर्यमूल में कमल के स्थान पर हाथ ही उसकी शोभा बढ़ाते होंगे ।

विरहिणी नायिका के निरन्तर रोते रहने का उत्प्रेक्षा के आचरण में कितना मर्मस्पर्शी चित्र उपस्थित किया गया है । नायक कहता है—

क्रीडाशैली मदननृपते कान्तिपूरस्य कोकी
स्याता तस्या ध्वजमुसिञ्जी किञ्चिदापाण्डुमूली
मद्विश्लेष शरदुडुनिभा त्याजयन् द्वारमाला
मन्ये भीनो वितरति तयोरश्रुभाराभिरन्याम् ॥२॥२६॥

अन्त में नायक कहता है कि मेरी प्रियेसी अवश्य ही आजकल पृथ्वी पर पड़ी रहती होगी, उसके नेत्रों से लगातार अश्रुधारा चहती होगी, हाथ पर गाल रफ्फे रहती होगी, विरहताप को दूर करने के विचार से उसने विसलताओं के द्वार पहिन रफ्फे होंगे और मलिन वस्त्र पहिने होगी—

पृथ्वीरेखूनलफनिकरे नेत्रयोर्वाप्पपूर
हस्ते गण्ड सितरिसलताद्वारजाल स्तनाग्रे ।
श्रोण्या क्षीर्म मलिनमखण सा घटत्येय हन्ते—
त्यास्तामेनद्दहद्विलपितैर्मांस्तुकालातिपात ॥२॥३४॥

इस पद्य में कवि ने विरहिणी नायिका का पूर्णचित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर दिया है ।

आगे चल कर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरह-चेष्टायें मी बड़े भावपूर्ण ढंग से वर्णित की गई हैं । अपने प्रेमी के विरह में नायिका बिल्कुल उन्मत्त सी हो गई है । उसे चित्र तथा यथार्थ का भेद ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता है । चित्रशाला में एक चित्र में जब वह अपने प्रिय को अपने पैरों पर पहा हुआ देखती है तब एकदम वह अपने प्रिय को मनाने लगती है—

प्राप्तालम्बा परिजनकरै प्राप्य वा चित्रशाला
मुग्धा स्यम्याश्चरणपतित वेंति त मा निरीक्ष्य ।
एद्भ्युत्तिष्ठ प्रिय न कुपिताऽस्मीति वाष्पाकुलाक्षी
गाढाश्लेषप्रचलितकरा रुष्यमाना सर्गभिः ॥२॥३५॥

ऐसे ही एक और स्थल में घुसग बलकों से आच्छन्न अपने मुख को शुद्ध स्फुटिक मणियों द्वारा निर्मित भित्तिभाग में प्रतिबिम्बित देखकर वह उसे मेखण्डों से आच्छन्न चन्द्रमा समझ बैठती है और सधियों से दर के साथ पूछती है कि यह चन्द्रमा यहा कौन ले आया है—

गण्डालम्यैर्लुलितमलकैर्भूसरैर्वनप्रविभ्रम्
 दृष्ट्वा शुद्धस्फटिकघटित विभ्रित भित्तिभागे ।
 अन्तर्गोह जलद शकलैरावृतो रोहिताङ्क (चन्द्रमा)
 केनानीत पुर इति भिया व्याहरन्ती सखीर्वा ॥२॥४०॥

विभ्रम के साथ साथ भय की भी इस पद्य में समाजना की गई है ।

अन्त में विभिन्न शुभ निमित्तों से प्रिय के आने की आशा लगाती हुई तथा अपने प्रिय का ध्यान करती हुई विरहिणी प्रेयसी की समाजना की गई है—

वक्ति ध्वाङ्क्ष सुहृदुपगम दक्षिणे क्षीरवृक्षे
 वाम नेत्र स्फुरति सुचिरादुच्छ्रयसित्यद्य चत ।
 किञ्च स्वान धनणमधुरो जायते कोकिलानाम्
 प्राणेषाशामिति कथमपि आतरायन्ती वा ॥२॥४१॥

मुक्त्वा जीवाम्यसुसममिति व्रीलिता विस्मिता वा
 तत्सङ्गाशा पुनरिह पर हेतुरित्यासिता वा ।
 शोचन्ती मा दयितमया त्रिप्रयोगसद्विष्णु ॥२॥४३॥

नायिका की विरह चेष्टाओं के वर्णन के बाद प्रिय का सन्देश प्रारम्भ होता है । इस सन्देश में नायक ने अपनी विरहावस्था का बड़ा करण चित्र उपस्थित किया है । प्रेयसी के विरह में नायक हमेशा चिन्ता में डूबा रहता है, उसके सासें चलती रहती हैं और अर्धरात्रि में जब ससार सोता होता है, तो वह रोता ही रहता है, इस घटना को केवल चक्रवाक ही जानते हैं—

माघदृष्टगे कुमुदपत्रनेस्तर्ज्यमानस्य घोरे—
 रातट्काख्ये सरसि लुठतो हा निशीथे निशीथे ।
 निद्रामूकं जगति रुद्रत श्वासचिन्ताजुयो मे
 संनन्दन्तश्चटुलनयने चक्रवाका सहाया ॥२॥४०॥

वसन्त ऋतु में मलयपर्वत के स्पर्श से ढिलती हुई तथा भौरों के शुकन से युक्त सुन्दर लता थल्लारियों को दृष्टकर प्रिय के हृदय में बरवस प्रेयसी की स्मृति जाग उठती है—

काले चाम्बिन् कन्दलिभृत कम्पिताप्रप्रयाला
 कम्पा पत्त्य किमपि मरुता चुम्बिता दक्षिणेण ।
 किञ्चिद्दृष्टाधरकिसलया प्राङ्मया भोगकाल ।
 सन्निवर्षाणा ध्रुतपरतला त्या प्रिये स्मारयन्ति ॥२॥४३॥

तीव्रताप से युक्त तथा विरह के कारण अत्यन्त लम्बी रात्रि को बिताकर सूर्योदय होने पर जग चक्रवाकी अपने चक्रवाक से मिलनी है, तब इस दृश्य को देखकर विरही नायक के हृदय में ईर्ष्या उत्पन्न होने लगती है—

तीर्त्वा रात्रि विरहमहतीं तीव्रतापा कथञ्चित्
दृष्ट्वा मानो किरणमरण जम्भशप्रोदिगन्ते ।
प्रत्युद्यान्तीं त्वरितमधला श्लिष्यत भाग्यसीम्ने
सारङ्गादि स्पृहयति मनो हन्त चक्राप्ययूने ॥२॥१५॥

अन्त में विरही नायक कहता है कि इस कठोर वियोग में केवल भावनारूपी कल्पवल्ली के सहारे ही मैं जीवित हूँ और किसी न किसी तरह धैर्य धारण कर रहा हूँ—

हा हन्तास्मिन्नसुलभमियोदर्शने त्रिप्रयोगे
सैवालम्नो मम भगवती भावनाकल्पवल्ली ॥२॥१६॥

सत्य तैस्ते वृत्तघृतिरह प्राणिमि प्राणनाथे ॥२॥१७॥

अपनी प्रेयसी को भी बध धैर्य रखने का परामर्श देता है, क्योंकि विरहरूपी सागर अथ समाप्तप्राय हो चला है। दो मास का ही और कष्ट है। फिर तो वे मिलेंगे ही—

त्यच स्नानादिषु सथयसा प्रार्थना मा निषेधी ॥२॥१८॥
तीर्णप्रायो विरहजलधि शैलकन्याप्रसादात्
शेष मासद्वितयमयले सहयता मा विपीद ।
धूपोद्गारै सुरभिषु ततो भीरु । सौधान्तरेषु
क्रीडिष्याथो नयजलधरध्यानमन्द्राण्यहानि ॥२॥१९॥

विरह में बुद्धि के लुप्त हो जाने से विरही नायक दिन में भी क्रीडा की आशा करता है ।

सदेश के बाद कई अभिज्ञान घटनायें भी वर्णित की गई हैं ताकि प्रेयसी को अपने प्रिय की कुशल का पक्का ज्ञान हो जाये। दो एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

आश्लिष्यन्तं विटपभुजया तत्र वल्लीरनेका
क्रीडारामे कमपि तरुणं वीक्ष्य माकन्दवृक्षम् । (आत्र)
साचीरृत्य स्फुरदधरया चगिड । यदत्र भयत्या
सध्रभंग सजलकण्ठि प्रेषितो मय्यपाङ्ग ॥२॥२३॥

कच्चिच्चिबत्ते स्फुरति चपलापाङ्क्ति

पुरुष प्राय कई स्त्रियों से प्रेम करते होते हैं। इस विचार से कोप के साथ मुख तिरछा कर नायिका का नायक की ओर देखना उचित ही है।

एक दूसरे अभिज्ञान में एक बहुत छोटी सी घटना की याद दिलाई गई है। इस दृष्टांत अपनी सहचरी का चुम्बन ल रहा था। नायक और नायिका दोनों इस दृश्य को देख रहे थे। तब इस अवसर पर नायिका ने बड़ी लंछा के साथ नायक की ओर देखा था। इसी घटना को नायक निम्न पद्य में अपनी प्रेयसी के लिये बतलाता है—

भूयश्चैक शृणु सहचरिं घृतनेकानुनीतिम्
केली हृसे स्मरजुपि दृष्टाच्चुम्बतीपत्स्वनन्तीम्
तत्र तस्मिन्ना त्रिमपि बह्वलव्रीलमालोकथा माम् ॥२॥६२॥

अभिज्ञान वर्णन के बाद सन्देश समाप्त करते हुए कोकिल को आशीर्वाद देने में भी कवि ने बड़ी चतुरता दिखाई है। प्राय 'परै भृत' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृत' कहा जाता है। लेकिन नायक कहता है कि अथ 'परान् त्रिभर्ति परभृत्, त परभृतम्' इस अभिप्राय से कोकिल को 'परभृतम्' कहा जायगा। आशीर्वाद में कोकिल का उसकी प्रेयसी से कभी एक बार भी वियोग न हो, यह शुभकामना प्रकट की गई है—

मान्यधी स्यान्मदननृपते कोकिला तेऽनुकूला
भूयान्मेव सकृदपि तथा त्रिप्रयोगप्रयोग ॥२॥६६॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकों को यह स्पष्ट प्रतीत हो गया होगा कि यह सन्देश काव्य विप्रलम्भ शृंगार से पूर्ण है तथा एक प्रेमी ने अपनी प्रेयसी के पास इसमें सन्देश भेजा है। भावों के अनुकूल सरस और प्रवाह पूर्ण भाषा का ही कवि ने सर्पत्र व्यवहार किया है। कहीं कहीं अनुप्रास की छटा भी देखने योग्य है। विरहिणी नायिका क वर्णन में अनुप्रास के साथ साथ उपमा का भी कवि ने सन्निवेश कर दिया है—

तत्र द्रव्यस्यखिलमदिक्षामौलिमालायमानाम्
वालामेवा त्रियतमधुना मद्दियोगेन दीनाम् ।
कटपाणी सा कनककदलीकन्दर्लीकोमलाङ्गी
कन्दपाणि कथमिय कुचूलाग्निकटप सहेत ॥१॥२॥

भवभूति के मालतीमाधव क अनुकरण में कवि ने जिस तरह मल्लिकामालन नाम का प्रकृत लिखा है, उसी तरह ये श्लोक अनुकरण पर यह सन्देशकाव्य

लिखा गया है। मेघदूत की शैली छन्द, विषयव्यवस्था तथा भावयोजना से यह काव्य पूर्णतया प्रभावि है। कोकिल का स्वागत, मार्गदर्शन, जयन्तमंगलपुरी के पेश्वर्य तथा प्रियसी के गृह का वर्णन, लीलावापी, आम्रवृक्ष, इन्धे पास ही स्थित सुवर्णमय आलमाल से युक्त चम्पक वृक्ष तथा नाचते हुए मयूरों से पूर्ण चन्दन, यादिका यह सब मेघदूत की ही छाया है। कहीं कहीं भाव साम्य के साथ साथ शब्द साम्य भी पाया जाता है। कोकिल से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करते हुए विरही नायक कहता है—

कान्तोदन्त सुहृदुपगतो विप्रयोगादितानाम्
प्राय स्त्रीणां भवति किमपि प्राणसधारणाय ॥१॥१०॥

इसी तरह प्रभात में सूर्योदय होने पर कोकिल को आगे बढ़ने की प्रेरणा देते हुए कहा गया है—

प्रस्थातु त्व पुनरपि सपे प्रक्रमेथा प्रभाते
स्थात्मश्लेश सुहृदुपवृत्तौ त्वावशाना मुखाय ॥१॥१२॥

मेघदूत में उज्जयिनी व वर्णन प्रसंग में शिप्रानदी की वायु को लेकर व्यक्त किये गये भावों की तरह यहाँ पर भी अजन्तलपुरी (तिरुनच्चिरकुल) का वर्णन करते हुए चूर्णा नदी की वायु के सम्वन्ध में समानान्तर भाव व्यक्त किये गये हैं—

यन्नाशिलष्टो धरयुवतिभिश्चुम्बति स्थिन्नगण्डम्
चूर्णायात प्रिय इव रतिथान्तमास्यारविन्दम् ॥१॥२७॥

मार्ग में पवने वाली आम्रवालियों के रसास्वादन की समाचना करते हुए कोकिल से कहा गया है—

भोक्तासि त्व कमपि समय तत्र माकन्द्यल्ली
कान्तारगे सति विकसिते क पुमास्त्वकुमीष्टे ॥१॥३०॥

इस अघतरण की अन्तिम पंक्ति को देखकर मेघदूत का यह पद—

शातास्वादो विवृतजघना को विहातु समर्थ ॥१॥२२॥ याद आ जाता है।

मेघदूत में वरु ने अपनी प्रियसी को—

ता जानीया परिमितकथा जायित मे द्वितीयम्—कहा है।

इस सन्देशकाव्य में भी नायक अपनी नायिका के लिए—

'शृङ्गाराधे शशधरकला जीयित मे द्वितीयम्' ॥२॥१६॥ कहा है।

इस तरह परस्पर भाव तथा शब्द साम्य धाले अनेक उद्धरण दिये जा सकते हैं। मेघदूत में स्नेह के सम्बन्ध में यज्ञ ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—

स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वसिनस्ते त्वभोगात्
इष्टे वस्तुन्युपचितरसा प्रेमराशीभवन्ति ॥२॥११॥

इसी तरह यहाँ भी प्रेमी अपने सन्देश की समाप्ति पर कहता है—

रागो नाम श्रुति विरहेणेति लोकप्रवाद-
स्वयत्सपत्नी मम शतशुण सगमादिवप्रयोगे ॥२॥६७॥

दोनों अवतरणों में कितना भाव साम्य है। विघ्न पाठक स्वयं जान सकते हैं।

स्थान स्थान पर शिवजी, रगनाथजी, भद्रकाली, चण्डिका, श्रीकृष्ण, पार्वतीजी इत्यादि देवी-देवताओं के वर्णन से कवि की आस्तिन्यभाषना का परिचय मिलता है। कवि ने मार्ग में पढ़ने वाले देवी-देवताओं की समान धर्या के साथ स्तुति की है। इससे कवि की धार्मिक उदारता भी प्रतीत होती है।

कोकिल के सम्बन्ध में कवि ने एक स्थल पर कहा है—

श्लाघ्यच्छुन्दरिधितिमयि मया शोभनेऽर्थे नियुक्तम्
श्राव्य शब्दै सरससुमनोभाजमध्रान्तवृत्तिम् ।
दूरप्राप्त्या प्रशिथिलमिव त्वा सखे ! काव्यकल्प
धीमान् पश्येत् स यदि ननु ते शुद्ध एव प्रचार' ॥१॥८०॥

कोकिल को काव्य-कल्प बताने हुए श्लेष विशेषणों द्वारा कवि ने अपने काव्य का ही कुछ परिचय दिया है। इस काव्य में छन्द भी श्लाघ्य है, अर्थ भी निर्दुष्ट है, विद्वानों के मन को कर्णमधुर शब्दों द्वारा यह काव्य घस में करता है तथा इसकी शैली और प्रवाह निर्दुष्ट हैं। कवि का यह कथन सर्वथा सगत है। मेघदूत का अनुकरण होते हुए भी काव्य की उपादेयता कुछ कम नहीं है। कोकिल को सन्देश पाहक बनाकर कवि ने अपने सन्देश काव्य को और भी सुन्दर बना दिया है।

उद्य कवि का मयूरसदेश (त्रि० स० पचदशशतक)

आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक पर अभिनवगुप्त ने लोचन नाम की टीका लिखी। इस लोचन पर भी कई टीकाएँ लिखी गईं। उनमें एक कौमुदी नाम की भी टीका है। यह टीका चार उद्योतों में से केवल प्रथम उद्योत पर ही पाई जाती है। इस टीका में लेखक ने एक श्लोक स्वरचित रचना के रूप में उद्धृत किया है -

आदिदीपक यथाममैव मयूरदूते काव्ये-
सा जागति स्वपिति च मुधा भूकतामेत्यवदुध
प्रते रोदित्यधिकमनुल धैर्यमालम्बते च ।
मूर्च्छा प्रानोत्यपि च भजते चेतनामित्यशक्तौ
यस्तु वेधा अपि विरहज्यापृतीरगनानाम्

यह श्लोक इस सन्देश काव्य के उत्तर भाग में [श्लोक स० ६५] पाया जाता है। अतः यह तो निश्चित ही है कि कौमुदी तथा इस सन्देशकाव्य का रचयिता एक ही व्यक्ति है।

कौमुदी टीका के लेखक का नाम स्पष्ट रूप से टीका में कहीं नहीं दिया गया है। फिर भी लेखक के नाम को निश्चित करना कठिन नहीं है। टीका की भूमिका के अन्त में यह श्लोक पाया जाता है--

आशसिता रसिकलोकचकौरवृन्दै
राविभ्रंयन्त्युदयतोऽमृतगोचरात् ।
आचन्द्रतारकमिदं नयकौमुदीय
प्रीतिं दधातु जगता विवृतिर्मदीया ॥

इस पद्य में 'उदयत' शब्द का कोई विशेष अर्थ नहीं निकलता, जब तक कि इससे कवि या टीकाकार के नाम का ज्ञान न करें। सम्पूर्ण श्लोक से यह ध्वनि निकलती है कि कौमुदी टीका का रचयिता उद्य नामक कोई व्यक्ति है। इस विषय पर अधिक विवाद अथवा स्पष्टीकरण की कोई आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इसके अतिरिक्त कौमुदी टीका में प्रथम उद्योत की समाप्ति पर निम्न श्लोक पाया जाता है—

इत्थ मोहतमोनिर्मीलितदृशा ध्वन्यर्धमागे यता
ध्यान्याभासमहोपलज्यरजुषा प्रेक्षायता प्रीनय ।
उत्तु गाबुदयक्षमाभृत उरैयुष्याममुष्यामयं
कौमुद्यामिदं लोचनस्य विवृताद्युद्योत आद्यो गत ॥

इस श्लोक में भी टीका के लेखक का स्पष्ट उल्लेख किया गया है। लेखक का नाम उदय है। इसके अतिरिक्त उपरिलिखित श्लोक यह भी बतलाता है कि लेखक राजयश का है। 'क्षमाभृत्' शब्द 'पर्यंत' और राजा इन दोनों अर्थों में यहाँ पर प्रयुक्त हुआ है। यद्यपि 'उत्तम' शब्द के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है कि यह 'पर्यंत' तथा लेखक दोनों से सम्बद्ध है, लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि 'उत्तम' शब्द केवल पर्यंत के विशेषण के रूप में ही प्रयुक्त हुआ हो। हा, इतना निश्चित है कि कौमुदी टीका का लेखक उदय नामक कोई राजा है।

वाहय साध्य से केवल इतना निश्चित होता है कि कौमुदीटीका का लेखक ही मयूरसन्देश का लेखक है। अब हमें यह देयता है कि मयूर-सन्देश से लेखक के सम्बन्ध में हमें क्या ज्ञान प्राप्त हो सकता है। सर्वप्रथम हमें यह निर्णय करना है कि काव्य का नायक और लेखक दोनों एक ही व्यक्ति है। चूंकि विरोध में कोई प्रमाण नहीं है, अतः हम स्वाभाविक रूप से ऐसा मानते ही हैं कि काव्य का नायक ही काव्य का लेखक है। काव्य से यह भी ज्ञात होता है कि नायिका का पितृवृत्त नाम 'उमा' है और कत्रियों के द्वारा उसे 'मारचेमन्तिका' [भाग २, श्लोक ३६] कहा जाता है तथा वह 'तच्चप्पिरिल' वंश की है [भाग २, श्लोक १६]। पूर्वभाग श्लोक सख्या २३ में नायिका के ग्राम का नाम श्वेतच्छुद्रतट और श्लोक सख्या १०६ में सितगरस्तीर बताया गया है। केरलभाषा में आजकल अन्नकर नाम से पुनारे जाने वाले इस ग्राम में तच्चप्पिल्लि नाम का एक परिवार आजकल भी पाया जाता है। लेकिन मालावार में पत्नी का वंश पति के वंश के समान नहीं होता है। अतः नायिका के वंश से नायक तथा काव्य के लेखक के वंश का कुछ भी निर्णय नहीं किया जा सकता।

काव्य के द्वितीय श्लोक में काव्य की नायिका मारचेमन्तिका को 'थी कण्ठो वींपतिप्रहमत' बताया गया है। चतुर्थ श्लोक में यह भी कहा गया है कि कुछ देवताओं ने राजा को अपनी रानी उमा के साथ अपने प्रासाद के ऊपर विहार करता हुआ देखाकर भूल से साक्षात् थी कण्ठ (शिर) समक लिया। यह भूल तभी हो सकती है जब कि यह राजा किसी दूसरे रूप में भी थीकण्ठ हो। अतः इन पद्यों से यही अर्थ निरूतता है कि काव्य का नायक स्वयं राजा थीकण्ठ है और कौमुदी टीका का रचयिता उदयक्षमाभृत् मयूरसन्देश के नायक तथा लेखक थीकण्ठोर्वीपति से भिन्न नहीं है। उदय इसका वास्तविक नाम है और थीकण्ठ इसकी कुलव्रमागत उपाधि है तथा मालावार में ही यहाँ का यह राजा है।

मलयालम भाषा में लिखे गए उन्नुनीलीसन्देश नामक सन्देशकाव्य से यह मयूरसन्देश बहुत कुछ मिलता जुलता है। उन्नुनीली-सन्देश में नायिका को पिम्पिलि प्रदेश के राधा मणिकण्ठ द्वारा धारण किए जाने वाला मुक्तादार बतलाया गया है। राजा मणिकण्ठ नायिका का पति नहीं है। नायिका पिम्पिलि राज्यश के एक अन्य व्यक्ति

की पत्नी है। इस प्रकार मयूरसन्देश में भी 'श्रीकण्ठोर्ध्वपति वटुमत' इस पद का यह भी अर्थ हो सकता है कि नायिका मारचेमन्तिका श्रीकण्ठोर्ध्वपति द्वारा शासित प्रदेश की केवल एक प्रतिष्ठित महिला है।

इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्सव नामक मलयालम भाषा के एक अन्य काव्य में भी मारचेमन्तिका नाम अता है। काव्यगतवर्णनों से केवल इतना पता चलता है कि यह मारचेमन्तिका राजवंश से सम्बन्धित है। चन्द्रोत्सव काव्य में पाई जाने वाली नायिकाओं में मारचेमन्तिका का तृतीय स्थान है। चन्द्रोत्सव का राजा कटनकोट (संस्कृत श्रीकण्ठ) सरदार है। जिस स्थान पर चन्द्रोत्सव मनाया गया था, यह मयूरसन्देश की नायिका मारचेमन्तिका के निवासस्थान से दूर नहीं है। इन बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव की मारचेमन्तिका तथा मयूरसन्देश की नायिका मारचेमन्तिका दोनों एक ही हैं। यदि मारचेमन्तिका राजा कटनकोट (श्रीकण्ठोर्ध्वपति) की पत्नी रही होती, तो चन्द्रोत्सव काव्य में उसे प्रथम स्थान दिया गया होता। चूंकि उसे तृतीय स्थान दिया गया है, अतः यह मानना पड़ेगा कि यह राजवंश के किसी अल्पवयस्क व्यक्ति की पत्नी है। मलयालम काव्य चन्द्रोत्सव में श्रीर मयूरसन्देश में एक और बात में भी साधर्म्य पाया जाता है। मयूरसन्देश का लेखक धन्यालोक की लोचन नामक टीका पर कौमुदी नाम की स्वीय अपनी टीका लिखता है। इससे यह स्पष्ट है कि काव्यममीक्षा के विषय में यह लेखक धनिसप्रदाय का अनुयायी है। चन्द्रोत्सव काव्य में भी इस बात का कुछ सूत्र मिलता है। काव्य की भूमिका में एक श्लोक द्वारा धनिसप्रदाय के अनुयायियों से चन्द्रोत्सव काव्य पर भी कृपादृष्टि करने की प्रार्थना की गई है। मयूरसन्देश तथा कौमुदी टीका के रचयिता किसी राजा को ही लक्ष्य कर यह लिखा गया है।

चन्द्रोत्सव काव्य की नायिका मारचेमन्तिका का पति राजा श्रीकण्ठ के परिवार का केवल एक अल्पवयस्क व्यक्ति है तथा मयूरसन्देश भी लेखक की प्रथम रचना है जिसका कि नायक स्वयं लेखक ही है, अतः यह मानना अधिक सगत होगा कि श्रीकण्ठोर्ध्वपति इस सदृशकाव्य का नायक तथा मारचेमन्तिका का पति दोनों ही नहीं है बल्कि इस काव्य के द्वितीय श्लोक में उल्लिखित राजा श्रीकण्ठोर्ध्वपति के परिवार का कोई राजकुमार ही इस सदृशकाव्य का नायक है।

लेखक के विषय में इतना ज्ञान लेने के बाद अब हमें इस काव्य के रचनाकाल पर भी विचार करना है। मलयालम भाषा के उन्मुनीलीसन्देश नामक मन्त्र काव्य में राज्य के उत्तराधिकारी किलान (कीलम्ब) के राजकुमार आदित्यवर्मा को सन्देश-वादक नियुक्त किया गया है। यह आदित्यवर्मा इरारि वर्मा के बाद जिसको कि काव्य में किलान का तत्कालीन शासक बताया गया है, राजगृही पर बैठा। इन दोनों का शासन काल निश्चित है। उन्मुनीलीसन्देश में आदित्यवर्मा द्वारा उरुष्क

सेना क हटाए जाने का भी वर्णन है। अतः उन्नुनीलीसन्देश को हम ई० चतुर्दश शतक की रचना मान सकते हैं। मयूरसन्देश में प्रारम्भ में उन्नुनीलीसन्देश की शैली का अनुकरण किया गया है। अतः हम कह सकते हैं कि मयूरसन्देश ई० चतुर्दशशतक के अन्त का लिखा हुआ है।

इसके अतिरिक्त मयूरसन्देश के पूर्व भाग श्लोक सरया ८३ में उद्दण्ड नामक कवि का उल्लेख मिलता है (उद्दण्डाख्य सुरभिकवितासागरेन्दु कवीन्द्र ॥८३॥)। - ८ श्लोक से केवल इतना निश्चित होता है कि मयूरसन्देश उद्दण्ड कवि की समकालीन रचना है। लेकिन उद्दण्ड कवि का समय स्वयं निश्चित नहीं है। उद्दण्ड कवि ने अपने कोकिल सन्देश में कोलदेश में [उत्तरीय मालाशर में चिरककल देश] रहने वाले एक शकर कवि का उल्लेख किया है। इस शकर कवि ने श्रीकृष्ण विजय नामक अपने काव्य में कोल देश के राजा उदयवर्मा को अपना सरलक धर्तार्य है। ई० पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध राजा उदयवर्मा का शासन काल माना जाता है। मलयालम काय चन्द्रोत्सव में भी एक शकर कवि का उल्लेख आता है। यह शकर कवि और उद्दण्ड कवि द्वारा उल्लिखित शकर कवि दोनों एक ही व्यक्ति हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्रोत्सव काव्य में पूनम नामक एक अन्य विशिष्ट कवि का भी नाम पाया जाता है। मालाशर की दन्त कथाओं में पूनम और उद्दण्ड समकालीन कहे जाते हैं। एक और दन्तकथा के आधार पर तन्त्रसमुच्चय (शिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज, स० ६७ और ७१) के लेखक और उद्दण्ड कवि को भी परस्पर समकालीन माना जाता है। तन्त्रसमुच्चय के अंत में ग्रन्थ का रचनाकाल कलियुग ४५२६ दिया हुआ है। कलियुग ४५२६ ई० १४२८ से मिलता है और ई० पञ्चदशशतक के पूर्वार्ध में शासन करने वाले कोलदेश के राजा उदयवर्मा से सयद्ध शकर-कवि के आधार पर निश्चित किए गए उद्दण्ड के रचना काल से भी इस कलियुग का सामंजस्य ठीक बैठ जाता है। अतः ई० पञ्चदश शतक का पूर्वार्ध अथवा स० १४०० ई० के कुछ बाद का समय ही मयूर सन्देश का रचना काल है। विक्रम सप्तके अनुसार ग्रन्थ का रचना काल स० के पञ्चदशशतक का उत्तरार्ध अथवा पूर्वार्ध का अन्त ही समझिए। विशेष ध्यान के लिए श्रो० धी० प० पूना से प्रकाशित इस काव्य की भूमिका देखना चाहिए।

काव्य की कथा

मालाशर के राजा श्रीकण्ठ के परिवार का कोई राजकुमार अपनी रानी मारचेमन्तिका के साथ प्रासाद की छत पर विहार कर रहा था। विद्याधर भूल से उसकी पार्वती के साथ स्वच्छन्द विहार में सलग्न साक्षात् शिव समझ बैठे। उनकी इस भूल पर पद राजकुमार उनका उपहास करने लगा। विद्याधरों ने इस पर राजा को एक मास के लिए अपनी प्रियसी से वियुक्त रहने का शाप दे दिया। राजा के प्रार्थना करने पर किसी तरह विद्याधरों ने उसे स्पानन्दुर (त्रायनकोर की राजधानी

आधुनिक त्रिवेन्द्रम्) में रहने की अनुमति दे दी। अपनी प्रेयसी के विरह में निमग्न यह राजा वर्षा ऋतु में एक मोर को देखा है और उसके द्वारा अपनी प्रेयसी के पास अन्नकर नगरी में सन्देश भेजता है। इस नाम का एक ग्राम कोचीन राज्य में आधुनिक त्रिचूर के पश्चिम में लगभग आठ मील पर अब भी स्थित है। त्रिवेन्द्रम् से अन्नकर तूरु के मार्ग का काय में बड़ा ही सुन्दर वर्णन पाया जाता है। मार्ग में पढ़ने वाले नगरों, मन्दिरों तथा मालावार के विभिन्न राज्यों के वर्णन के साथ-साथ नदियों और समुद्रतट का भी तत्तत् स्थान पर वर्णन किया गया है। मार्ग वर्णन के बाद अन्नकर नगरी, तच्चप्पिञ्जि नामक नायिका के गृह, समीप में ही स्थित आम्र वृक्ष, पुण्ड्रियान, वकुलवृक्ष, अशोकवृक्ष, वापी, कूप, गृहघाटिका, बाटिका के मध्य में स्थित मण्डप, उसके पास मालतीलता और अन्त में आम्रवृक्षों से घिरे हुए प्रेयसी के प्रतिस्थान लता मन्दिर का उल्लेख किया गया है। इस लतामंदिर में ही परिजनों द्वारा निर्मित शीतोपचार युक्त विरहशय्या पर पड़ी हुई नायिका के मिलने की सभायत्ना की गई है। समीपवर्ती किसी तमालवृक्ष पर बैठकर अपनी प्रेयसी के देखने के लिए राजकुमार मयूर से कहता है। इस अन्तर पर प्रथम तो राजकुमार ने अपनी प्रेयसी के अनुपम सौन्दर्य का वर्णन किया है। फिर उसकी विभिन्न सभायत्नमान विरहावस्थाओं का बड़ा ही भावपूर्ण करुण चित्र अंकित किया है। अन्त में अपनी प्रेयसी के लिए कहा जाने वाला अपना सन्देश मयूर को बताया है। मयूर को सन्देश सुनाकर तथा उसके द्वारा प्रेयसी के पास सन्देश पहुंचाने की सभायत्ना कर अन्त में राजकुमार उसके प्रति शुभ कामना व्यक्त करता है। वस, यहीं पर काव्य की कथा समाप्त हो जाती है।

साहित्यिक समीक्षा

मेघसन्देश के अनुकरण पर तो यह सन्देश काव्य लिखा ही गया है। साथ में मालावार प्रान्त के तीन अन्य सन्देशकाव्यों का भी इस पर प्रभाव पड़ा है। इन तीनों सन्देशकाव्यों में एक सन्देश काव्य तो मलयालम भाषा का उन्नुतीली-सन्देश है। अरशिष्ट दो सन्देश क हैं—प्रथम तो लक्ष्मीदास का शुक्रसन्देश, द्वितीय उद्दण्ड कवि का कोन्जिलसन्देश। मयूर सन्देश तथा उपर्युक्त अन्य तीन सन्देशकाव्यों में गन्तव्य स्थान तथा मार्ग वर्णन में यत्र तत्र पर्याप्त सादृश्य पाया जाता है।

मेघ-सन्देश की तरह इस काव्य में भी पूर्वभाग और उत्तरभाग इन दो भागों में कथा-वस्तु बँटी हुई है। पूर्व भाग में १०७ और उत्तरभाग में १० श्लोक हैं। समग्र काव्य मन्दाप्रान्ता छन्द में ही लिखा हुआ है। बदल प्रथम श्लोक मालिनी छन्द में है और इसमें गणेशजी की पचना की गई है। इन्होंने अतिरिक्त प्रारम्भ के कुछ अन्य पद्यों में काव्य की भूमिका भी पाई जाती है। सन्देशकाव्य की पद्य शैली मलयालम भाषा के उन्नुतीली सन्देश से इस काव्य में गृहीत की गई है।

मेघ सन्देश में यक्ष और उसकी प्रेयसी के विरह का कारण तथा वे परिस्थि-
तियां जिनमें कि सन्देश भेजा गया है, नितान्त स्वाभाविक हैं। लेकिन इस काव्य में
विरह की अवधि केवल एक मास है, अतः विरहव्यथा के किसी प्रयत्न का कारण के-
न होने से परिस्थितियां कुछ कृत्रिम सी हैं।

जिस प्रकार मेघसन्देश में अलकापुरी का बड़ा उदात्त और शृंगाररस पूर्ण
वर्णन किया गया है, उसी प्रकार इस काव्य में भी नायिका की नगरी सितगरुत्तीर
(अन्नकर) का बड़ा भव्य चित्र प्रस्तुत किया गया है—

यस्या ह्यायातरनिरवकाशेन्दुमानुप्रचारे
ध्वारामेषु प्रचुरगतिताश्चन्द्रसूर्याश्मपु जा ।
वालार्कभैरधरमणिभिर्गालवामेक्षणानां
मावेद्यन्ते विगलितकलनेन्दुमिश्रैश्च वक्त्रैः ।

यस्या मान्द्य गतिद्वसितयोरेव मालिन्यमुद्रा
केशेष्वेव स्फुरति कुटिलत्वं च कार्श्यप्रसंग ।
मध्येष्वेव स्तनकलशयोरेव सघर्षयोगो
नेत्रेष्वेव श्रुतिपथसमुत्लघिता मज्जुवाचाम् ॥२॥११॥

अन्नकर नगरी में स्फटिक खण्डों से सर्वत्र ही प्रकाश फैला रहता है। सूर्य
और चन्द्रमा तो केवल कमल और कमलिनी के विकासमा के लिए उदित होते हैं—

शुद्धच्छायास्फटिकशकलश्रेणिशोशुभ्यमानै—
रस्तं नीते तिमिरनिकरे भासुरैर्भूयिभागैः ।
यस्या प्राय सरसिजपनीकैरधोद्वोधमात्रे
जागर्ति स्म घुमणिशशभृद्दीधितिना प्रयास ॥२॥११॥

अग्रे चलकर नायक विरहिणी नायिका का उदाही भावपूर्ण वर्णन करता है।
यह भयूर से कहता है—

स्वैर निर्णय सुवदना मेघप्रणडादनाण्डे
विद्युद्वदलीमिव निपतिता भूतल वपमानाम् ॥२॥३१॥

अपनी प्रेयसी का वर्णन प्रारंभ करते हुए नायक कहता है—

सौन्दर्येन्दोःदयशिखरी सौकुमार्यप्रपञ्च—
स्यैका मूलप्रवृत्तिरुदधि कान्तिफलोलिनीनाम् ।
सिद्धधान्ताद्यैस्त्रितिरयिचला चित्तजन्मागमाना
। वशाब्दस्य तरलमयनं जीवितं मामकीनम् ॥२॥३२॥

मेघ सन्देश में यक्ष भी अपनी प्रेयसी को 'जीरित मे द्वितीयम्' बताता है।
 आगे चल कर फिर राजकुमार अपनी प्रेयसी के सम्बन्ध में कहता है—

षेणीभागे विदसतितरा वैभवं वारिवाह—
 श्रेणीभासा वदनसुपमा सोदरी शारदेन्दो ।
 धाणी वीणामधुरिमधुरामातुरीकर्तुमीष्टे
 नाणीयासो नयनयुगलीविभ्रमा पन्मलाद्या ॥२॥३७॥

शरयायेते करसरसिजे पल्लवाडम्बराणाम्
 फटपाणाद्रेरसरसिजभर कल्पभाज क्षिणोति
 कोदण्डज्या कुमुमधनुष कोमला रोमरेगा
 वेदं धत्ते कुलपदस्थ कुचिता मध्यरह्नी ॥२॥३८॥

अपनी इस अद्वितीय सुन्दरी और सुकुमार प्रेयसी के जग विरहदुःख का
 राजकुमार को ध्यान आता है, तब यह कहता है—

सा मृदुवगी जलदसमये सम्प्रति प्राग्भरीये—
 दुग्दोदकं दुर्दितनिन्दै दूर्दितप्राणनाथा ।
 जाता नून मनसिजशिखिज्वालजालामलीढा
 मध्येऽरण्य दयदुतभुजा दहमाना मृगीय ॥२॥४२॥

विरहाग्नि में तबपती हुई नायिका के लिए चारों तरफ से घन की अग्नि में
 जलती हुई हिरनी की बड़ी ही उपयुक्त उपमा प्रदान की गई है। विरहिणी प्रेयसी
 की कुछ अवस्थाओं का उल्लेख करने हुए राजा धीकण्ट कहता है कि समय है—

अभ्यर्णस्थानपि भसितयन्युदुभटो देहवाह—
 स्तन्तन्यरन् सलिलनिधय सन्ततैरश्रुपुरै ।
 श्वासा वासावसधवलभीक्षीपनिर्वाणदक्षम्
 द्राधिष्ठत्य दधति दलितेन्दीवरान्तर्दलाद्या ॥२॥४१॥

विरहिणी नायिका के वर्णन में कवि ने २५ श्लोक लिखे हैं। भायों की कोमलता
 तथा विरह की तीव्रता की दृष्टि से यह पद्य बड़े ही अनूठे हैं। कहीं २ तो विरह
 का घटा करण चित्र अंकित किया है। विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए अन्त में
 नायक कहता है—

आस्ते शेष ध्रमति भजते मूकता यहवद
 स रोदित्युदितकरुण धीर्पमालम्भते च ।
 मूर्च्छा प्राप्नोत्यपि च लभते चेतनामित्यश्वो
 पक्तुर्धधा अपि विरहजान्यागनाचेष्टितानि ॥२॥६५॥

अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाओं की सभायना करने के बाद राजकुमार मयूर को प्रेयसी के लिए सुनाया जाने वाला अपना सन्देश बतता है। सन्देश में सर्व प्रथम उसने अपनी विरहावस्थाओं का वर्णन किया है, बाद में प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आग्रहासन दिया है और अन्त में कुछ अभिज्ञान घटनाएँ मयूर की सत्यता प्रमाणित करने के लिए उल्लिखित की हैं। राजकुमार ने अपने विरह का भी बड़ा भावपूर्ण चित्रण किया है। अपनी दशा का वर्णन करते हुए वह कहता है—

नि श्वासैर्मं दहनलहरीमुद्विगद्विभ समन्ता
नि सर्पद्विभ परिसरजुषो दीर्घिका दीर्घनेत्रे।
शोशुष्यन्ते नयनगलितै सन्ततेरम्बुपुरै
शिञ्च चित्र पुनरपि दशा प्राक्तनीं प्राप्नुवन्ति ॥२॥७७॥

कवि ने प्रेयसी के विरह में विह्वल नायक की सन्ताप और अक्षुपात अवस्थाओं का कैसा आश्चर्य पूर्ण चित्र बड़ा प्रस्तुत किया है।

विरही नायक प्रेयसी के विरह में उसके अंगों की तत्त् प्राकृतिक रम्य वस्तुओं में शोभा रख देखकर किन्हीं तरह अपना जीवन बिताता है—

अम्भोदाम्भोदहशशिसुधा शैल शैवालज्ज्ञी
द्योमश्रीमत्पुलिनरुदलीकाएजालप्रवालै ।
त्वद्गगात्रश्रीप्रदणुभगभाजुकैश्चित्तरम्यै-
स्तैस्तेर्भावै कथमपि हुरगाक्षि कालं क्षिपामि ॥

काले काले मेघों में प्रेयसी के केशों की शोभा, कमलों में नेत्रों की शोभा, चन्द्रमा में मुख की शोभा, सुधा में अधरमाधुर्य, शैलों में कुचसौन्दर्य, शैवालज्ज्ञी में रोमाजली की शोभा, आकाश में मध्यदेशकी तनिमा, पुलिनप्रदेशों में नितम्ब भाग की गरिमा, रुदली-खण्डों में प्रेयसी की जघाओं का सौन्दर्य तथा बालप्रवालों में प्रेयसी के चरणों की लालिमा देख-देख कर विरही राजकुमार का अपना समय काटना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस पद्य में बड़ी सुन्दर वस्तुओं का समवय प्रस्तुत किया है। कालिदास का यक्ष भी प्रकृति के विभिन्न सुन्दर रूपों में अपनी प्रेयसी के सादृश्य के पाने की चेष्टा करता है। (३० मेघसन्देश का—श्यामास्वर्गं चकितहरिणीं प्रैक्ष्णो दृष्टिपातम्—इत्यादि पद्य ॥२॥७३॥)

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद राजकुमार अपनी प्रेयसी को शोक न करने तथा धैर्य रखने का परामर्श देता है—

त्वद्विषद्वलपादिति समुद्रितामस्मदीयामपमथा
विष्ठापाशु प्रशमय शुच शान्दाम्भोजनेत्रे ।

मुग्धे सस्थापय च सुनरामात्मनात्मानमान्त्र
स्वैर यात्रन्मद्भिगमन जातयिश्नासयोगा ॥२॥६॥

मेघ सन्देश की तरह इस काव्य में भी सन्देश ग्राहक तथा सन्देश की सत्यता प्रमाणित करने के लिए कुछ अभिज्ञान घटनाएँ घणित की गई हैं। सर्व प्रथम रामकुमार कहता है—

काते तत् किं स्मरसि ननु यत् सार्धमालीजनेन
स्वैर सायं कुसुमविचये प्रस्तुते पुष्पराट्याम् ।
आश्लेषोत्के मयि सविधगे भीतभीतेर हा हा
वाच्ये भृ गैरहमिति सरोमाचमालिगथा माम् ॥२॥७॥

इसके बाद एक दूसरी घटना भी फिर घणित की गई है—

त्यद्वयम्भ्रालोकरसभृश हिग्न्नगात्र मुहुर्मा
पश्यन्ती त्व गुरुसविधगा शकमानाऽन्यसगम्
आसी योपात् कलुपनयना तावदेवात्मयाणो
हन्त्यात्मान परमिति सपीयोधितागा प्रसादम् ॥२॥८॥

लेकिन यह दोनों अभिज्ञान घटनाएँ कुछ उच्चकोटि की नहीं हैं तथा नीरस और परम्पराभुक्त सी हैं। कालिदास ने भी कोई बड़ी भावपूर्ण घटना अभिज्ञान न्य रूप घणित नहीं की है। लेकिन इस काव्य में एक सुतीय अभिज्ञान घटना भी घणित की गई है—

भुक्त्वा साय प्रहसितमुखीं पट्टिमनीं पट्टपदोऽसौ
भोक्तु भूय कुयलययनीं पश्य याति प्रदोषे ।
इत्थ सायंसमययिभयं यण्यन्त प्रिये मा
निर्यद्व्याप्यैर्निभृतमभिन कोपरुक्षै फटाक्षै ॥२॥९॥

भावोत्कर्ष की दृष्टि से यह अभिज्ञान घटना बड़ी ही उच्च कोटि की है। प्रिय के मन में दो प्रेमिकाओं के उपभोग की उत्सुकता देख कर ही प्रेयसी के कुपित होने का इस पद्य में उल्लेख किया गया है। इस काव्य की नायिका मेघ-सन्देश की नायिका से भी कहीं अधिक मानिनी है, क्योंकि यह प्रिय के मन में किसी अपर नायिका के प्रति उत्सुकता की भावना से ही कुपित हो जाती है। याम्तथ में उदय कवि ने यहा पर कालिदास का भी अतिश्रमण कर दिया है। इस प्रकार क उच्च ष्ट अभिज्ञान वाक्य अन्य सन्देशकाव्यों में प्राय कम ही मिलते हैं।

सन्देश के अन्त में मेघ की तरह मयूर को भी आशीर्वाद दिया गया है—

मा भूत्वान्नात्रिरहघटना किं च जमान्तरेऽपि ॥२॥६२॥

इस प्रकार मार्गवर्णन, अन्नरुच नगरी तथा नायिका के गृह इत्यादि का वर्णन विरहिणी नायिका तथा त्रिहर्षी नायक के त्रिरहवर्णन और सदेश कथन में मेघसन्देश का ही इस काव्य में अनुसरण किया गया है। विचार-तारतम्य, वस्तुवर्णन, छन्द तथा शिल्पप्रधान की दृष्टि से यह काव्य मेघ सदेश का एक सफल अनुकरण है। माधुर्य और प्रसाद गुण होने पर भी काव्य में लम्बे और फिलफट समास स्थान २ पर पाए ही जाते हैं—

- १ अत्रिरतमदधाराधोरणीपारणोदुयन्
मदमधुकरमालाकृजितोदुघोविताशम् ॥१॥१॥
- २ स्वर्गारामद्र मनउलतासूनसौरभ्यलोम
भ्राभ्यन्पुष्पन्धय वलकलध्वानवाचालिताशे (सौधे) ॥१॥३॥
- ३ स्थूल स्थूल प्रचुर फल सभार भग्नोत्तमाग--
त्वगतैरक्षितजनिकराबद्धसान्द्रान्धकारा ।
पृथ्वीकान्तातिलकरचनास्फीतिमान दधाना
प्रीति ददुयुस्तय नयनयोरिंशुदीभूविभागा ॥१॥५७॥

इस प्रकार के समस्त पद एक विरहकाव्य में कुछ कम ही सुन्दर लगते हैं।

समस्त पद बहुत होने पर भी इस सन्देश काव्य को कवि ने 'हृष्यन्मत्लीमधुर मधुनिष्यन्दि सन्देशकाव्यम् (१, २)' कहा है। कवि का यह कथन बेबल आत्म प्रलायामात्र नहीं है। कर्णमधुर अनुप्रास और यमक यत्र तत्र काव्य में बिखरे पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ निम्नलिखित अत्रतरण देखने योग्य हैं -

- १ सन्देश तं नवविरहिण्यं साम्प्रत मे प्रतीत
सदेश त नय नयनिधे यत्र सा पद्मलाक्ष्मी ॥१॥२१॥
- २ खानीद्वि त्व जनितजनतानन्द आयाधियुक्तम् ॥१॥१६॥
- ३ कोऽलं वधतु कविरनुपमामृद्धिमित्यर्थशस
कोलज्येति ध्रुवमधिफलो यत्र जागति शब्द. ॥१॥५२॥
- ४ कु जे कु जे कु सुमितलंते यत्र पूजाच्युलेन ॥२॥=॥

अपर्युक्त समीक्षा से पद तो स्पष्ट ही है कि कालिदास का अनुकरण करने पर भी कवि ने अपनी उत्प्रेरणा मौलिक प्रतिभा का स्थान-स्थान पर काव्य में परिचय दिया

है। कवि की गौरी प्रभाङ्गुली है और भाषा भी कवित्वमय तथा विचारों से समृद्ध है। भारतवर्ष में वास्को डि गामा के आने से एक शतक पूर्व अर्थात् ई० चतुर्दश शतक के अन्त में केरल प्रदेश के राजनैतिक भूगोल पर भी यह काव्य बड़ा प्रकाश डालता है। अतः इतिहासकारों के लिए यह सन्देशकाव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है। दक्षिण भारत के संस्कृत सन्देशकाव्यों में इस काव्य का साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दोनों ही दृष्टि से प्रमुख स्थान है।

वामनभट्ट बाण का हंसदूत (वि० पचदश शतक)

वामन-भट्ट बाण राजा धेमभूपाल का राजकवि^१ था। धेमभूपाल के अमरशतक पर शृगारदीपिका टीका^२, सप्तशतीसार^३ और साहित्यशास्त्र पर साहित्यचिन्ता मणि^४ यह ग्रन्थ लिखे हुए पाए जाते हैं। यह राजा स० १४०३ ई० के लगभग

१ दे० धेमभूपालचरितम् (श्रीरामम्) पृ० २, श्लोक ७८

कविरभिनवबाण काव्यमत्यद्भुतार्थं भुवनमहितभूमा नायको धेमभूप ।

त्रिभुवनमहनीयव्यातिमानेव योग प्रकटयति न केवा पडिनाना प्रहपम् ॥७॥

चूडामणिर्नृपाणा दुर्मतिपरिपन्थिशिम्बदिदम्भोलि ।

सर्वस्य-चक्रवर्ती पेद्दकोमट्टिधेमभूपतिर्जयति ॥८॥

धेमभूपाल के परिवार के विशेष विवरण के लिए धेमभूपाल चरित (वीरना रायण-चरित) पढ़िए ।

२ दे० शेषगिरि शास्त्री की रिपोर्ट, भाग २, पृ० १६३ १६४, मद्रास ओरियंटल प्रेस० प्रेस० लाइब्रेरी ।

३ संस्कृत दस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, मद्रास, २२, ८७०८

४ प्रायःकोरका संस्कृत की दस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, स० ८०

कुमारगिरि के बाद कोण्डविदु के राज सिंहासन पर बैठा था। इसने विभिन्न अस-
सों पर ब्राह्मणों के लिए अनेक ग्राम उपहार में दिए।^१

गामन भट्ट ने शब्दचन्द्रिका नामक अपने कोषग्रन्थ में स्वामी विद्यारण्य और
सारंगभोम जैसे सत्कवियों के प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित की है।^२ विद्यानगर
अथवा विजयनगर राज्य के संस्थापक स्वामी विद्यारण्य अथवा माधवाचार्य ई०
चतुर्दश शतक के अन्त और पचदशशतक के प्रारम्भ में हुए।^३ अतः यह स्पष्ट ही
है कि राजा वैमभूपाल का राजकवि और स्वामी विद्यारण्य का शिष्य यह गामनभट्ट
बाण ई० पचदशशतक के पूर्वार्ध में रहा होगा तथा स्वामी विद्यारण्य का यह एक
अत्यन्त शिष्य होगा। अपने शब्दरत्नाकर के प्रारम्भ में—

वरदाग्निचित पौत्र पुत्र कोमटियज्जन् ।

जागर्ति वामनो बाणो वत्सत्रशशिखाप्रणि ॥

और अन्त में 'इति वत्सकुलगामन भट्ट विरचिते शब्दरत्नाकरे' ऐसा गामनभट्ट
ने लिखा है।^४ इससे पता चलता है कि यह वत्स सोत्र के वरदाग्निचित का पौत्र
तथा कोमटियज्जन् का पुत्र था। अपने जीवन के प्रारम्भिक दिनों में राजा हर्षिहर
के समृद्ध शासन काल (स० १३८४-१४२६ ई०) में यह विजयनगर राज्य में रहा।
यह इसी अत्यन्त श्रेष्ठ गारभूयण नामक एक भाण लिखा जो कि विरूपाक्ष के उत्सव पर

- १ स० १४१९ ई० में बृहसिंह नामक किसी ब्राह्मण के लिए मल्लवर नामक कोई
ग्राम इस राजा ने दिया। एपेग्रैफिया इंडिका, भाग ४, सं० ४६, श्लोक २६
देखिए (प्लेट २, दूसरी तरफ)।

श्री शाके गुण रामविश्वगणिते कार्तिष्यदेऽप्ये खरे
प्रादात् काटयवेमय श्रवणितामल्लारिकानामत ।
ग्राम मल्लवर बृहसिंह विदुषे काण्डद्विजायादरा-
दाचन्द्रार्कमुदर्कलालसमति सार्धभोगाएकम् ॥

- २ विद्यारण्यगुरुन् सारंगभोमाद्यखिल सत्कवीन् ।
नमस्तृत्याथ बाणेन क्रियते शब्दचन्द्रिका ॥
म्यगें सारस्वतपुरी भोगभूमिस्तु सैरिक ।
गीर्णानगरी धीर-साधारण पुरीति च ॥

- ३ डा० जे० बी० चौधरी द्वारा प्रकाशित काल-माधय-लक्ष्मी, पृ० ३५-३८ देखिए ।
"सोरसेज आफ विजयानगर हिस्ट्री" पृ० ४७-५१ भी देखना चाहिए ।
४ दे० तजोर कटालाग आफ एम० एस० भाग ६, सं० ५०५६ ।
५ काव्यमाला में मय्यई से तथा मद्रास से प्रकाशित ।

खेल' गया था। इस भाग में विलासशेखर की विलासमय चेष्टाओं के वर्णन प्रसंग में कवि ने मधुर छन्दों में सुन्दर कल्पना के साथ तत्कालीन सामाजिक जीवन का चित्र अंकित किया है। इससे पता चलता है कि कवि को तत्कालीन सामाजिक जीवन का निरुद्ध परिचय प्राप्त था। लगभग तीस वर्ष की आयु होने पर कोण्ड विट्ट के शासक राजा पेद मोमटि वेमभूपाल (स० १४०२-१४२० ई०) की राजसभा में यह चला आया। वामन भट्ट वहा ही अद्वितीय विद्वान् था और इसकी कविता भी वही उच्च कोटि की मानी जाती थी। सदुभाषावत्लभ और कविसार्वभौम इसकी उपाधिया थीं। गद्यकाव्य के क्षेत्र में कादम्बरी के रचयिता वाण भट्ट का यह अनुकरण करना चाहता था। वाणभट्ट भी उत्सवोत्र का था। इसलिए वामनभट्ट गद्य काव्य के क्षेत्र में स्वाति प्राप्त करना अपना पैल्लु अधिकार समझता था। वह अपने को वाण का अउतार मानता था और अपने लिए अभिनवभट्ट वाण कदा करता था। वाण ने अपने सरक्षर हर्ष उर्धन के जीवन पर हर्षचरित लिखा। इसी रचना के अनुकरण पर वामनभट्ट ने अपने सरक्षक राजा वेमभूपाल अथवा वीरनारायण के जीवन पर वेमभूपालचरित या वीरनारायणचरित लिखा। वाण के बाद कोई भी कवि सुन्दर गद्यकाव्य न लिख सका, इस अपयश को दूर करने के लिए ही वामनभट्ट ने वेमभूपालचरित लिखा। वाण का अनुकरण करने में वामनभट्ट को सफलता भी पर्याप्त प्राप्त हुई है।

वामनभट्ट की रचनाएँ

(१) काव्य-ग्रन्थ

- (अ) नलाभ्युदय — इस काव्य की कथास्तु स्वतः स्पष्ट है। दुर्भाग्यवश कोई भी पूर्ण हस्तलिखित प्रति इसकी उपलब्ध नहीं है। थी टी० गणपति शाम्भ्री द्वारा सम्पादित तथा त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज में प्रकाशित पुस्तक (स० ३) भी अपूर्ण है और नवम सर्ग के श्लोक स० ३ के गद्य काव्य समाप्त हो जाता है।
- (ब) रघुनाथचरित — यह काव्य ३० सर्गों में पूर्ण होना है और अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति तज्ञौर हस्तलिखित पुस्तक सप्रह (जिट्ट ६, स० ३७०१) में है और दूसरी अद्वयार पुस्तकालय (०, ०७) में है।

१ वाणीविलास प्रेस, धरिदगम् से प्रकाशित वेमभूपालचरित की भूमिका, पद्य सं० ६ देखिये—

वाणादन्ये कथय वाणा एतु सरसगद्यसरणीषु ।
इति अगति रुद्रमयशी वादनवाणोऽपमाणि पत्सभुल ॥

हसद्वृत — कालिदास के मेघसदेश के अनुकरण पर लिखा गया यह एक सदेशकाव्य है तथा मेघसदेश की ही कथावस्तु इसकी कथावस्तु है।

(द) वाणामुर विजय — ओरियन्टल लाइब्रेरी मद्रास की त्रिवर्षीय हस्तलिखित-पुस्तकसूची, ६, स० ७१८१। यह पुस्तक पूर्ण है और ग्रन्थाक्षरों में लिखी हुई है।

(२) नाटक-ग्रन्थ

(अ) पार्वतीपरिणय-कुमारसभन की ही कथा के आधार पर यह नाटक लिखा गया है। इसमें पाच अंक हैं। लेखक ने इस नाटक में अपने सयन्ध में लिखा है-

अस्ति कविसार्वभौमो धन्सान्वयजलधिकौस्तुभो वाण।

नृत्यति यद्रसनाया वेधोमुखरग लासिका वाणी ॥

(घ) कनकश्लेखा - इस नाटक में चार अंकों में व्यासवर्मन् के साथ कनकश्लेखा के विवाह का वर्णन किया गया है। कनक-श्लेखा और व्यासवर्मन् दोनों विद्या धर थे लेकिन किसी ऋषि के शाप से मनुष्य रूप में पृथ्वी पर उत्पन्न हुए थे। यह नाटक अभी तक मुद्रित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिये त्रिवर्षीय सूची मद्रास भाग ६, स० ७१०० (कनकरेवाकरकण) तथा कुप्पुस्वामी की रिपोर्ट (१९१६), पृ० ४१-४२ देखिये।

(स) शृ गारभूषण भाण — यह एक भाण ग्रन्थ है और साहित्य शास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट भाण ग्रन्थ के सारे लक्षण इसमें पाये जाते हैं। बिलासशेखर नामक एक धूर्त व्यक्ति इस भाण का नायक है। यह रचना एक अंक में ही समाप्त हो जाती है। नायक एक ऐसे व्यक्ति से वार्तालाप करता है जिसको कि केवल वह ही देखता और सुनता है। इस नाटक में कोई अन्य पात्र नहीं है। शृ गार और वीर रस का उचित प्रयोग किया गया है तथा वस्तु में कार्पणिक ही है।

(३) गद्यग्रन्थ-जीवन चरित

(अ) धेमभूपाल चरित — पुस्तक के अन्त में 'सर्वात्मकेण यतमान साक्षरतन्त्रमी समुच्चारितजयशम्भु विभ्य विभ्रम्भरा-पाल मौलिमालामकरन्दसुरभितचरणार त्रिन्दो-जपति विश्वाधिकविभवो धेमभूपाल' इस कथन से यह बात निःसदिग्ध हो जाती है कि यह रचना धेमभूपाल के जीवन-काल में ही पूर्ण हो गई थी। जीवन-चरित की विशिष्टताओं के साथ-साथ इस रचना में बहुत सारे ऐतिहासिक तथ्य भी पाए जाते हैं। साहित्यिक महत्त्व के साथ-साथ इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है। धीरगम् से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है।

[४] कोपग्रन्थ

- (व) शब्द-चन्द्रिका — यह रचना अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। हस्तलिखित प्रति के लिए त्रिपर्णय सूत्री मद्रास, भाग ३, सख्या ३३२०, मैसूर केटालाग, ६०६ और तजोर केटालाग भाग ६ स० ५०५० देखिए।
- (घ) शब्दरत्नाकर — यह ग्रन्थ भी अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ है। हस्तलिखित पुस्तक के लिए अट्टयार लाइब्रेरी केटालाग भाग २, १६ तथा तजोर केटालाग भाग ६, स० ५०५८-६१ देखिए।

हंसदूत की कथा

हंसदूत की कथा मेगसदेश जैसी ही है। अलकापुरी से निर्वासित एक यक्ष अपनी प्रियतमा के पास अपना विरह सदेश भेजना है। केवल इतना भेद है कि हंसदूत में यक्ष रामगिरि पर्वत पर न रह कर सुदूर दक्षिण भारत में कैलाश पर्वत पर रहता है और मेघ के स्थान पर हंस को अपना दूत बनाता है।

पूर्वभाग में मार्ग वर्णन है। उत्तरभाग में अलका नगरी, यक्षगृह तथा नायिका के वर्णन के बाद सदेश घतलाया गया है। मार्गवर्णन में मलयपर्वत से हिमालय स्थित अलकापुरी तक के मार्ग में आने वाले स्थानों का वर्णन किया गया है। मलयपर्वत से चलकर ताम्रपर्णी नदी के किनारे किनारे उबते हुए मद्रुरा नगरी और वहा से फिर कावेरी नदी की शोभा देखते हुए रगदेश, चोलदेश और पुण्डरीक नगर जाने के लिए हंस से कहा गया है। उसके बाद क्रमशः काजीयरम्, पुण्य-फोटी, करिवरगिरि और कग्गा नदी जाने का हंस को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर अजनाद्रि, फाल हस्तिपर्वत और कनकमुगरी नदी के बाद आन्ध्र देश और वहा से फिर वृष्णवेणी, तु गभद्रा तथा गोदावरी नदी होत हुए विन्ध्य पर्वत पहुँचने का हंस को आदेश दिया गया है। इसके बाद नर्मदा, यमुना और गंगा नदियों को पार कर काशी नगरी तथा इक्ष्वाकु राजाओं की राजधानी अयोध्या नगरी, तदनन्तर सरयू और गण्डक नदी होत हुए कुरुक्षेत्र पहुँचने का हंस को परामर्श दिया गया है। वहा से फिर हिमालय, मौंचरध्र और कैलाश पर्वत को पार कर हंस के अलकापुरी पहुँच जाने का उल्लेख किया गया है।

अलका के वर्णन के बाद यक्ष के गृह का वर्णन किया गया है। तदनन्तर विरहिणी नायिका की विभिन्न विरहावस्थाओं की समाधना के बाद यक्ष ने हंस को अपनी प्रियतमा के प्रति दिया जाने वाला सदेश बताया है। अन्त में हंस का प्रति शुभ कामना के साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीच

यह सदेश काव्य मध्यकालीन भारत का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है। विभिन्न नगरों, नदियों, पर्वतों और जानियों का इस काव्य में वर्णन पाया जाता है। दक्षिणभारत और उत्तर भारत में यातायात के मार्ग पर भी यह काव्य पर्याप्त प्रकाश डालता है। कालिदास के मेघ सदेश के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। काव्य में दो भाग हैं। प्रथम भाग में मार्गवर्णन तथा द्वितीय में अलकावर्णन, यक्षगृहवर्णन, नायिका का विरहवर्णन और सन्देश कथन है।

पुर्वभाग में ६१ तथा उत्तर भाग में ६० श्लोक हैं। मन्दाक्राता छन्द का ही सम्पूर्ण काव्य में प्रयोग हुआ है। माधुर्य और प्रसाद गुण युक्त भाषा में ही काव्य की रचना की गई है। कवि की सरसता का तो इसी से पता चल जाता है कि वह हंस से साथ में अपनी पत्नी के भी ले जाने का अनुरोध करता है। यकी हुई हसिनी को विधाम पहुंचाने का इस के लिए कवि ने बड़ा ही सरस परामर्श दिया है -

क्लाम्पेत्तन्वी गगतपदरीलधनःश्लेशतस्ते
क्लान्तामेना मृदुलमुमन केसरोदारपक्षाम् ।
छायालाना धनपिठपिना सीमिन् विधम्य पश्चा -
दस्यै दद्या सरसिजमधु स्वेन चञ्चुपुटेन ॥१॥६॥

ताम्रपर्णी नदी के द्वारा इस के आतिथ्य की कवि ने बड़ी सुन्दर कल्पना की है—

अम्बुदुर्गाण्वर्णवमण्णिरौ कल्पिताग्रोपहारा
सा तिष्ठेत स्तिमितगमना तुभ्यमभ्यागताय ।
आतिथ्याय भ्रमरविकृतै किं च याचिष्यते त्वा
त्वं चास्वादात्कमलमधुनस्तत्र ता प्रीणयेथा ॥१॥१४॥

गंगा वर्णन में भी कवि ने बड़ी सुन्दर उपमाएँ और रूपक प्रयुक्त किये हैं—

सा लोकाना दुरिततमस शारदी चन्द्रलेखा
भूषा मुक्तामणिरिचिता या च मुक्त्यगताया ।
पुत्रीभूता मुनिपरिषदा या पुन पुण्यधारा
दूरादेना त्रिदशतटिनी मक्तिनद्यो भजेथा ॥१॥२६॥

आधत्ते या हिमयति गिरातुत्तगसगलद्वी
मौले शम्भोरिलसति च या मालतीमालिकेय ॥१॥४४॥

कालिदास के भावों की छाया लेकर स्वतंत्र रूप से कवि ने यही सरस रूप
नाए प्रस्तुत की हैं। यज्ञ अपनी पत्नी कन्दर्प लेखा का वर्णन करते हुए कहता है—

विद्युद्गुमीरी विमलदशना वृत्तगम्भीरनाभि
ताम्यन्मध्या तरलशफरीताडिताम्भोदहाती ।
तु गापीनम्वनभरनता दुर्द्वधोष्णिभारा
सौन्दर्याणा सरणिरिव या तत्र दृश्येत तन्वी ॥२॥६४॥

शातव्या सा मम सहचरी जीवितस्य द्विरुक्ति ॥२॥६५॥

इन पक्तियों को पढ़ते ही मेघसदेश की—

तन्वी श्यामा शिगरिदशना पक्वविग्नाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितदृग्णीप्रोक्षणा निम्ननाभि ।
धोष्णीभारादलसगमना स्तोक्नम्रा स्तनाभ्याम् ॥२॥२१॥
ता जानीया परिमितकथा जीवित मे द्वितीयम् ॥२॥२२॥

यह पक्तियाँ धरम ध्यान में आ जाती हैं।

अपने गृह की पहिचान के लिए विभिन्न लक्षणों को बताकर अन्त में अपनी
अनुपस्थिति के कारण गृह की कान्तिहीनता का विचार कर यज्ञ कहता है—

प्राय कान्तिर्न भवति पर प्राक्तनी मह्वियोगात्
किं शोभायै भवति गगन विप्रकृष्टेन्दुविग्मम् ॥२॥२३॥

मेघसन्देश में कालिदास ने भी ऐसे ही विचारों को व्यक्त किया है।

दस के यज्ञ गृह में जाने के लिए प्रस्तुत होत समय चलने वाली वायु को लेकर
कवि ने यही सुन्दर और सरस उल्लेख की है—

अन्तर्घातु चलितमनसो मरिप्रया सद्विहसो-
राहादत्ते षपुषि त्रिलयन्मध्यगेदापनीदी ।
यास्यत्यग्रे परिमलयतीर्मन्दमाधूय यज्ञी-
वर्ति पृच्छन्निय मधुवृता गीतिभिर्मतिरिवा ॥२॥२४॥

पामनभट्ट का विरहवर्णन परम्पराभूत नहीं है। इसमें तीव्रता और गम्भीरता
दोनों पाई जाती हैं। प्रियविरह में कन्दर्पलेखा की दीन अवस्था का जो चित्र
उपस्थित किया गया है, यह करुण और शोक दोनों से ही पूर्ण है। निम्न पद्यों में
कवि ने विरहिणी कन्दर्पलेखा का क्या ही करुण चित्र अंकित किया है—

वैलक्ष्ण्य उपुपि दधती स्वेदिनी घेषमाना
 विस्त्रस्तागी विकलकरणा विभ्रती रोमहर्षम् ।
 जातस्वम्भा मुकुलनयना मोहमासाद्यन्ती
 सा दृष्टेव स्मरविपमुचा याति ता तामवस्थाम् ॥२॥६६॥

विन्यन्दन्ती करकिसलये चेदिनीं गण्डपाली
 मन्त्राभ्योमि स्तनकलशयोरगदधानाऽभिषेकम् ।
 अन्तश्चिन्तास्तिमितनयना सा मुहुर्जं म्भितेन
 श्वासोष्णेन स्मरहुतभुजो वेदना धेदयेद्वा ॥२॥१००॥

लेखामिन्दोरिव दिनमुखे क्षीनतामश्रुवाना
 भग्योपन्नामिव नगलता ह्यायया मुच्यमानाम् ।
 मेघापाये सरितमिव ता विभ्रतीमेरुवर्णी
 दृष्ट्वा यावद् भगसि करणाशोकयोरेकपात्रम् ॥२॥१०१॥

नायिका की विरहानुस्थाओं को देखकर इस ही क्या, कोई भी सहृदय गिन
 दुःखी हुए नहीं रह सकता ।

जिस प्रकार कालिदास ने मेघदूत में यक्षसन्देश की भूमिका प्रस्तुत की है,
 उसी प्रकार वामनभट्ट याण भी अपने इसदूत में यक्ष सन्देश की प्रस्तानना करता
 है। इसदूत में भी यक्ष सर्वप्रथम यही कहता है—

गाढाश्लेषे तत्र किल पुरा य स्तनोत्तु गभूषा
 मन्योन्व्यागव्यतिकरत्रिधेगन्तराय विवेद ।
 सोऽयं दिष्ट्या सुतनु सुतरा दूरवर्ती पतिस्ते
 नातोत्कण्ठो वदति भगतीमित्थमस्मभ्युत्सेन ॥२॥१०४॥

वस्तु भेद होते हुए भी यह श्लोक मेघदूत के 'शब्दाश्लेषे यदपि किल से त्वत्स
 खीना पुरस्तात्' ॥२॥१००॥ इत्यादि पद्य से प्रभावित हो कर ही लिखा गया है ।

कालिदास का यज्ञ कम से कम अपनी प्रेयसी का चित्र तो बना लेता है
 लेकिन इस काव्य में यज्ञ चित्र में तो क्या, अपने चित्त में भी प्रेयसी की रूप रेखा
 स्थिर नहीं कर पाता है—

चित्रं कर्तुं व्यग्रसितमतिस्तुलिकाया घृताया
 भग्नारम्भो नयनसलिलैश्चेतसि त्या लियामि ।
 तत्रापि दालरतिरधिकोरलायिनी मे विदन्त्री
 यत् सत्य नो वरतनु विधि संगमे साभ्यसूय ॥२॥११२॥

यत्त अपनी प्रेयसी से कहता है—

स्वप्ने लब्धा कथमपि समाश्लिष्य सानन्दराग्य
त्यामुत्कण्ठागलपितयपुष याजदामन्त्रयामि ।
मिथ्या नेद पुनरिति मया तत्क्षण चिन्त्यमाने
तावद्दैव विघटयति नो तूर्णमुत्पाद्य बोधम् ॥२॥१७॥

यत्त के इस कथन में उसके धिरह की तीव्रता तथा असहायानस्था का कवि ने बड़ा मार्मिक चित्रण किया है ।

सदेश के अन्त में इस काव्य में भी यत्त अपनी प्रेयसी को शीघ्र मिलन का आश्वासन देता है—

सेयं दीर्घा विरहजरजनी हन्त किञ्चिद्विभाता
शापस्यान्त सपदि भविता वासरै कश्चिचदेव ।
मासायेतौ गमय तदनु प्राप्य भोक्ष्यायहे तान्
भोगानिष्टान् रजनिषु पर प्रोढचन्द्रातपासु ॥२॥१८॥

सदेश पहुचाने की प्रार्थना क याद यत्त ने इस को आशीर्वाद भी दिया है—

दृष्ट्या काय मम पुनरिदं पीतिमेना च लब्ध्वा
प्रत्यावृत्त पुनरपि तथा (दृष्ट्या) सगत संगत सन् ।
चेतोरम्ये विहर सलिले ह्येच्छया निम्नगाना-
मदवापन्ना विदग्ग युजयोरस्तु सयोगलक्ष्मी ॥२॥१९॥

यद्यपि यह सदेश काव्य मेघसदेश की कथा को ही लेकर लिखा गया है तथा भाव, छन्द और शैली में भी कवि ने मेघसदेश का ही अनुकरण किया है, फिर भी इस काव्य को मेघसदेश का अन्धानुकरण नहीं कहा जा सकता । स्थान स्थान पर भावपूर्ण रक्तिया और उदात्त वर्णन इस काव्य में दृष्टि गोरर होते हैं —

- १ को वा लोके विरहजनिता वेदना सोढुमीष्टे ॥१॥३॥
- २ पाशे न्यस्तं भवति हि परं यस्तु लोकाभिनन्द्यम् ॥१॥२॥
- ३ मित्रस्वार्थे विदितमनसा कालहानि कथं स्यात् ॥१॥३॥
- ४ किम्पाकाना फलमुपनतं येन वा यादनीयम् ॥१॥४॥

कवि ने अलका नगरी का भी बड़ा उदात्त चित्रण अंकित किया है । साथ में शृंगार रस की छटा भी दर्शनीय है । अलका की मित्रियों का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

यत्र स्त्रीणा वपुषि तनुता वरुता भ्रूलताया
 लौल्य दृष्ट्यो कुञ्जकलशयोरेव काठिन्यवार्ता ।
 मान्द्य लीलागतिषु सदसत्सशयो मध्यभागे
 भग केशेभ्यधररुचके रागयोगप्रसग ॥२॥६२॥

मेघसदेश की तरह इस काव्य में भी अभिसारिकाओं का उर्णन पाया जाता है—

निर्धौताया गिगिशभ्र कुट्टीचन्द्रम कौमुदीभि -
 यस्था रात्रौ रमणरसति यातुकामा रमगा ।
 सान्द्रस्निग्धै सपदि कवरीकलिपतैरन्धकारै-
 रन्या श्यामामभिसरणतो नूनमापादयन्ति ॥२॥६४॥

रमणियों के केशसौन्दर्य का तो कवि ने यहाँ पर बड़ा ही अपूर्व चमत्कार दिखाया है ।

यत्न के उद्यान का भी उदा उत्कृष्ट वर्णन किया गया है—

सीमा तत्तद्विटपिजनुषा सपदामार्नवीना
 योग्या भूमिर्मलयमहतामालय शीतलिम्नाम् ।
 गुञ्जाशाला मधुपसुदशा केलिसौध पिकानाम्
 उद्यान मे तत्र नयनोदरसर्ष तत्र कुर्वात् ॥२॥६३॥

काव्य में यत्र तत्र अनुभास की छटा भी दिखलाई पड़ती है—

- (१) पुण्ये प्राप्य पुरमुपसरे' पुण्डरीकाभिधानम् ॥१॥२४॥
 (२) माघन्माघन्मधुपमिथुना दीर्घिना दर्शनीया ॥२॥६६॥ इत्यादि

काव्य के परिशीलन से यह तो स्पष्ट ही है कि यह सन्देश काव्य प्रथम कौटि की एक साहित्यिक रचना है । कवि ने अनुकरण करते हुए भी अपनी उदात्त वर्णनशक्ति, भावप्रणता और सुकुमार कल्पना का परिचय दिया है । भाषा पर तो कवि का पूर्ण अधिकार है ही । इन सब तथ्यों को दृष्टि में रखते हुए वाचन भट्ट याण को एक सफल सन्देशकाव्यकार मानने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।

विष्णुदास का मनोदूत (विक्रम षोडश शतक का पुर्यार्ध)

सन्देशकाव्यों की परम्परा में इस मनोदूत काव्य का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि परम्पराप्राप्त शृंगार रस को छोड़कर शान्त रस ही इस काव्य में अपनाया गया है। इस काव्य का लेखक बंगाल के श्री चैतन्य महाप्रभु का मानुल था जैसा कि काव्य के प्रारम्भ में 'श्री चैतन्यदेव मानुल विष्णुदास विरचितम् मनोदूतम्' इस कथन से प्रतीत होता है। भारवि के किरातार्जुनीय के अनुकरण पर वृष्णार्जुनीय नामक महाकाव्य का लिखने वाला गोपीनाथ कविकण्ठाभरण इस मनोदूत के लेखक का जामाता था। पूर्ण बंगाल के धानुका प्रदेश में रहने वाले वैदिक वृष्णाग्रंथ गोत्र के कविकण्ठाभरण के वंशजों तथा रथीतर गोत्र के विष्णुदास के वंशजों में भी ऐसी प्रसिद्धि है कि विष्णुदास ने अपना यह काव्य अपने जामाता के लिए भेंट किया था। श्री चैतन्य महाप्रभु (जन्म शक सयत् १४०७ = ई० सन् १४८६, मृत्यु शक सयत् १४४८ = ई० स० १५२७) से सम्बन्ध होने तथा उसके पुत्र और पुत्री दोनों की तरफ से उपलभ्य वंशपरम्परा सबन्धी विवरण के आधार पर इस कवि को ईसवी पन्द्रहवीं शताब्दी में कहीं पर रचा जा सकता है। काव्य के अनुशीलन से यद्यपि कवि के पूर्ण वैष्णव होने का तो विश्वास नहीं होता है, फिर भी वैष्णव सम्प्रदाय की ओर कवि की दृढ़ प्रवृत्ति का परिचय अवश्य मिलता है। कवि के वंश में वैष्णव सम्प्रदाय से कुछ अनुराग रखने की परम्परा, ऐसा प्रतीत होता है, आगे भी कई पीढ़ियों तक चलती रही और उसी के वंशज किसी रामाराम कवि ने स्वयं भी मनोदूत नामक काव्य लिखा। इस काव्य का भी विषय विष्णुदास के मनोदूत जैसा ही है तथा विष्णुदास का उल्लेख भी इस काव्य में पाया जाता है। बंगीय समृत्त साहित्य परिषत् कलकत्ता में इस मनोदूत की बेचल एक संदित प्रति सुरक्षित है। संभव है कि श्री चैतन्य महाप्रभु के चरित्र तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को परिचित कराने में उनकी माता, मामा और नाना इत्यादि का अवश्य कुछ प्रभाव रहा हो। विष्णुदास के इस मनोदूत की बेचल तीन हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हुई हैं —

- (१) समृत्त साहित्य परिषत् कलकत्ता की संदित प्रति जिसमें बेचल २६ श्लोक हैं।
- (२) इतिहासी आफिस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित एक अन्य प्रति जिसका कालापररी के विस्तृत मूल्यांकन (सं० ७, पृ १४७०) में वर्णन किया गया है।
- (३) टाका विश्वविद्यालय में उपलब्ध एक अन्य प्रति।

इन तीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर समृत्त साहित्य परिषत् कलकत्ता ने यह काव्य श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती, एम० ए० द्वारा संपादित करा कर मूलभाष प्रकाशित किया है।

हाका विश्वविद्यालय से उपलब्ध हस्तलिखित पुस्तक में अन्त में निम्नलिखित दो श्लोक और भी पाए जाते हैं —

ऋग्वेदकालेन्दुमिते शकान्ने प्रणम्य भक्त्या हरिपादपदुम् ।
मासे तपस्ये तपनात्मजाहेऽलक्ष्मीदद काव्यमरागहेतु ॥

श्रीकृष्णचरणे भक्तिर्मतिस्तत्प्रतिपादके ।
ग्रन्थे यस्य दिवारात्र स मनुष्य इति भ्रम ॥

प्रथम श्लोक में कवि कहता है कि फाल्गुन मास शक स० १३=६ में उसने यह काव्य लिखा । तदनुसार (शक स १३=६ = वि० स० १४२१) वि० स० १४२१ इस काव्य का रचना काल निश्चित होता है ।

काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है । कवि विष्णुदास स्वयं एक भक्त के रूप में पाठकों के समक्ष इस काव्य में आते हैं । ससाग में लोगों के पापों और दुःखों की चिन्ता करते करते विकल होकर वे भगवान् कृष्ण की शरण में जाने का विचार करते हैं । मनुष्य स्वयं कर्मबन्धनों से बंधे होने के कारण भगवान् की भक्ति नहीं कर पाता है, अतः वे अपने मन को दूत बनाकर भगवान् के चरण कमलों में अपना नम्र निवेदन सन्देश के रूप में भेजने की चेष्टा करते हैं । इस प्रसंग में मन के लिये कुछ मार्ग भी बताया गया है तथा साध में शम, दम, क्षमा और दया इत्यादि गुणों को ले जाने और मात्सर्य, दम्भ, मद, मान, विमोह, लोभ, क्रोध और स्वयं इत्यादि को छोड़ कर जाने का परामर्श दिया गया है ।

यद्यपि भगवान् सर्वव्यापक है और ससाग से विरक्त भक्त पुर्यों के सामने तो सर्वदा ही उपस्थित रहता है, किन्तु भी उसकी सासारिक लीलाओं से सम्यक् स्थानों गोकुल, यमुना और वृन्दावन में मन की आने का परामर्श दिया गया है, क्योंकि इन स्थानों में भगवान् के साक्षात् दर्शन किए जा सकते हैं । सर्वप्रथम गोकुल और यदा की कृष्ण-लीलाओं का वर्णन किया गया है । तदनन्तर यमुना और वृन्दावन की प्राकृतिक शोभा वर्णन की गई है । इस प्रसंग में इन स्थानों से सम्यक् कृष्ण के जीवन चरित्र का भी वर्णन किया गया है ।

वृन्दावन में ही कहीं पर कृष्ण को गकर उचित अथवा देवकर अपना सदृश निवेदन करने की कवि ने मन से प्रार्थना की है ।

कवि ने अमर्य चिन्ताओं, दुःखों और सासारिक प्रलोभनों में फंसे हुए जीवों की हीन हीन अवस्था तथा भगवान् की महिमा का अपने सन्देश में संकेत किया

है। अपनी न्यूनताओं के होते हुए भी भगवान् की भक्ति में अवशिष्ट जीवन बिताने तथा भगवान् का ही गुणगान करते रहने की सन्देश में कवि के द्वारा वही उत्कट इच्छा व्यक्त की गई है।

अन्त में भगवान् के चरणों में निरन्तर वास करते रहने की मन के प्रति शुभ कामना प्रकट करते हुए कवि ने सन्देश समाप्त कर दिया है।

काव्य समीक्षा

काव्य की कथा से पाठरङ्गण यह तो अनुमान कर ही सकते हैं कि यह दूत-काव्य शान्तरसप्रधान है। मेघदूत से प्रेरणा लेकर भी कवि ने मेघदूत का त्रिपय, भाव और छन्द इत्यादि की दृष्टि से निकुल अनुसरण नहीं किया है। काव्य में पसन्ततिलसा छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कुल १०१ श्लोक ही काव्य में पाए जाते हैं। पूर्व भाग और उत्तर भाग जैसा काव्य में कोई कथावस्तु का विभाजन भी नहीं पाया जाता है। इस सदृश काव्य की प्रमुख विशेषता यह ही है कि सदृशकाव्यों के शृंगारसप्रधान वातावरण में शान्तरस का सञ्चार किया गया है। मन के लिए कोई मार्ग बनाना अनावश्यक ही है और भगवान् तो फिर सर्व व्यापक हैं, अतः इस काव्य में मार्ग वर्णन का न होना कोई दोष की बात नहीं है। फिर भी कवि ने भगवान् दृष्टि के पेट्रिक जीवन से सम्बद्ध स्थानों का बड़ा सरस और भक्तिपूर्ण वर्णन किया है। गोकुल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

गोगोपगोपतनुगोपसुतासुतेन
रम्येण सम्यगनुरञ्जितसविभागम् ।
दाममण्डलीमुकुटमण्डलरत्नमास्ते
जानीहि गोकुलमनाकुलसर्वलोकम् ॥२७॥
यत्र मयं वसति चन्द्रकिरीटमौलि-
रत्नाशुरञ्जितपदाम्यरुहो मुरारि ॥२८॥

पृथ्वी के मुकुट में रत्न के समान जो स्थान हो तथा भगवान् मयं अर्थात् निवास करते हों, वहा की जनता के सुखी और शान्त होने की बात ही क्या ?

गोकुल की प्रातःकालीन चदलपदल का बड़ा ही स्याभाविक वर्णन कवि ने निम्न पद्य में प्रस्तुत किया है—

प्रातर्मुकुन्दकलषणुनिनादभिन्ने—
(?) गांकाशयारितदपपर्येर्जनानाम् ।
धेनुं वनं नयत रे द्रजतेति घाल—
कोलाहलैश्च यधिग भुतिरेव यत्र ॥३०॥

इसी तरह गोकुल के सापकालीन दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

दोहारय क्वचन कुत्र च वत्सरोध,
 कीडानिमग्नसुतलालसमानसाया ।
 भाण्डस्य दाहरियये गृहिणा गृहियय
 कुत्रापि वृद्धकुलमृद्धसभ नियुक्तम् ॥३२॥

गोकुल में गोचारण करते हुए कृष्ण का कैसा सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में अंकित किया है—

कोऽप्येव नृयति दशो नटयन् जनाता
 मुद्गायतीन्द्रियगण जडयन् कुतोऽपि ।
 आलोकनैरुपरमान् विहगान् मृगाश्च
 कुर्वन् गजा वरचन चारयते कुलानि ॥४१॥

जिस तरह कृष्ण को गायों से बड़ा प्रेम था, उसी तरह नाए भी कृष्ण को बड़े प्रेम से देखती थीं। इसी बात को कवि कितनी सुन्दर रीति से कहता है—

गावश्च वत्सनिवहैस्तमुदीक्ष्य दूरा-
 दुत्पूरकर्णपुटक तरसाभिपत्य ।
 आलोक्यन्त्यनवलोकितरत् सदपि
 जिघ्रन्त्यपुर्षदस्त्रीद्वदलिहन्ति ॥४२॥

गायों की इन बेपुआओं में कितनी हजामाधिकता भरी हुई है ।

आगे चलकर कवि कहता है कि बड़े २ मुनि अपने मन तथा वाणी से जिसका ध्यान नहीं कर पाते हैं, वह भगवान गोकुल में गोपालों के घर आगम में धूल में लोटता फिरता है। श्रुति रूपा स्त्रिया जिसका ध्यान ही करती रहती हैं, गोपाग नाए उसको अपने नेत्रों से चारों तरफ घूमता हुआ देखती हैं—

दूरेऽपि वाङ्मनसयोर्मुनिपुङ्गवानाम्
 भूरेणुचुम्बिततनु पशुपाङ्गनेऽपि ।
 यो मृग्यते श्रुतिवधृभिरर्पाक्षणेन
 गोपाङ्गनाभिरभित परिपीयते स ॥४४॥

गोकुल तथा यदा की कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने यमुना का भी वर्णन किया है। अन्य नदियों से यमुना का विशिष्टता बतलाते हुए कवि कहता है—

यासा तरन्ति पुरुषा पयसापि सद्य
 ध्रुवामण्डलैकमहिता कति तां न नद्य ।
 अन्या पुनर्मिहिरजा यदिहोरकीर्ते
 स्नानान्नागाहनविनोदनपानचर्या ॥४७॥

यमुना के वाद कवि ने वृन्दावन का वर्णन किया है । वृन्दावन का वर्णन प्रारम्भ करत हुए ही कवि कहता है—

यागाङ्गनम्धलमिज्ज्वलकृष्णवत्स्र्म
 शास्त्राश्रितैर्द्विजगणैर्महित सुधोषै ।
 तस्यैव नानिशयदूरतरं प्रजस्य
 वृन्दावन रसमय वनमस्ति चेत् ॥५६॥

यज्ञभूमि में जिस तरह अग्नि प्रदीप्त रहती है और अपनी अपनी शाखाओं का उच्च स्वर से ब्राह्मण पाठ करते हैं उन्ही तरह वृन्दावन में भी उज्ज्वल और कृष्ण वर्ण के मार्ग (वन) हैं तथा वृक्षों की शाखाओं पर विभिन्न द्विज (पक्षी) कलरव करते रहते हैं । कवि ने श्लेष अलंकार की सहायता से यज्ञभूमि और वृन्दावन में कितना सुन्दर सादृश्य उपस्थित कर दिया है ।

वृन्दावन में धरती वजाते हुए कृष्ण का वडा सजीव और सुन्दर चित्र कवि ने निम्न पद्यों में प्रस्तुत किया है—

तस्मिन् क्षण शिथिलिष्यण्डवृतायतसम्
 वंशं मनागभरसीमनि सन्दधानम् ।
 गोरोचना पट्टपटीरवृताङ्गरागम्
 तं सानुरागमनिश हृदयावधेदि ॥६०॥

कृष्ण जब मुरली बजाते हैं तब पहाड़ों से सरिताएँ मानों फूट पड़ती हैं और हिरनों व मुँह से तो आधी चयार्ह हुई घास ही निकल पड़ती है—

तस्मिन्नायं मुरलिका मुधरीकरोति
 तत्राश्मनस्तत इत् सरिदायिरासीत् ।
 अर्धायलीट्गलितै प्रथमैर्मुंगाणा
 क्षीणीतलच वयत्तरिधिधीयन्ने म् ॥६१॥

हिरन गाने का तो प्रेमी होता ही है । फिर कृष्णजा जैसे मधुर धरती वजाने वाले की धरती प्यनि सुनकर हिरनों का मुग्ध हो जाना और मुख से घास को गिरा देना कोई बड़ी बात नहीं है ।

कृष्ण और राधा की परस्पर प्रेमलीलाओं का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लीलाधमाम्बुचयसुम्वित कृष्ण गौर-
तन्धोस्तयोरभिमुख्य हरिगोपवध्वो ।
अन्योऽन्यदेहरचिरप्रतिरिम्बयोगात्
गोरो हरि किमपि गोपवध्वश्च कृष्णा ॥६६॥

अनन्य प्रेम का इससे बढ़कर उत्कृष्ट उदाहरण और क्या हो सकता है ।

वृन्दावन का वर्णन करते हुए अन्त में कवि कहता है—

चेत कलिन्द दुहितु पुलिन नयीनम्
वृन्दावन रसमय समयो वसन्त ।
गोपाङ्गनाम्तरुणिमामृतपूरपूर्णा
कृष्ण कलाकुलगृहं किमहं व्रजीमि ॥६७॥

इतने सुन्दर दृश्य का कोई कवि पूरा पूरा वर्णन कर ही कैसे सकता है ?

वृन्दावन की गोपियों के विभिन्न चरितों को कवि वही भक्ति के साथ देखता है । यह कहता है—

तासा च मानस मुकुन्दपदारविन्द-
द्वन्द्वद्विद्वितमनस्तनुजीवितानाम् ।
प्रेमोत्तराणि चरितानि हरिप्रियाणा
नेयानि वरलवकुरगविलोचनानाम् ॥७०॥

जिन्होंने भगवान् के चरण कमलों में अपनी कामनाएँ, मन, तन, तथा जीवन लगा दिया हो, उन गोपियों के प्रेम पूर्ण चरित्र का कौन भक्त गायन नहीं करेगा ।

गोकुल, यमुना और वृन्दावन के प्राकृतिक सौन्दर्य तथा यहाँ की कृष्ण लीलाओं का वर्णन करने के बाद कवि ने भगवान् कृष्ण के चरण कमलों में निवेदनार्थ अपना सन्देश मन को सुनाया है । सन्देश में भक्त की दीनता, हीनता और असहायस्थता साफ़ हो उठी है । सन्देश के प्रारम्भ में ही कवि कहता है—

आपाद्मस्तवमय दुरितार्ग्यश्रान्त-
मंग्नश्चिर निगदितो हतयासनाभि ।
दत्तामयं चरणतामरस तवेद-
मुद्दिश्य कोऽपि मधुसूदन राट्टीति ॥७५॥

दीनं पयोधितनिजाचरणै विहीनम्
हीनं पर परमपापमहाधुरीणम्

एकं त्वदीयचरणं शरणं स्मरन्तम्
सीदन्तमन्तकभयादनुकम्पयेश ॥७६॥

आगे चलकर कवि कहता है—

ध्यात न तेऽटिग्रकमल कमलाङ्गुलम्
गीतं न वा निखिलमङ्गलधाम नाम ।
नास्मिन् जगदनर्घ्यतम चरित्रम्
किन्तु प्रभो विदितमार्त्तहिताय यत् स्यात् ॥७७॥

यात दिन किमिति यामवतीयमग्रे
साप्याजगाम विरतिं दिनमेति भूय ।
एव स्वयञ्चतपट्टमपुर्कटभारे
न तथा स्मरामि न भजामि न चाश्रयामि ॥७८॥

इन पद्यों में कवि का भक्त हृदय बड़े वेग से उमड़ रहा है। एक सच्चे भक्त की तरह कवि कहता है कि उसे महेन्द्रपदवी नहीं चाहिए। यह तो भगवान् के चरणों की सेवा का ही इच्छुक है। उसकी तो यही इच्छा है कि यह भगवान् के कोटि कोटि नामों को जपता रहे—

ईदामहे न हि महेन्द्रपदं मुकुन्द
स्वीकुर्महे चरणैर्न्यमुपागतं वा ।
आशा पुनस्तव पदाम्बु वृताधियाम्बु
आशास्महे चिरमियं न वृशा यथा स्यात् ॥७९॥

कोटि शिरासि मम सन्तु शिरोऽनुकोटि-
यंकृत्राणि यन्त्रमभितो रसनाञ्च कोटि ।
वाणीपतेऽनुरसनं परितस्तथैव
नामानि कोटिगुणोऽयुगं स्फुरन्तु ॥८०॥

अन्त में कवि अपनी प्रार्थना करता है एवं कहता है—

सूक्तिर्न कर्त्तापद्यमेति विमेव सिद्धिं
काटण्यपुण्यनिलयार्थनमेतन्त्रेय ।
तथा ध्यायत कथञ्चन कानासन्निवेशे
शेषं प्रयान्तु मम जन्मशताहतानि ॥८१॥

जन्मसंज्ञानमपि जन्म तथापि सान
यत्र कथयिन्मम सुगोचरं आपट्टित्तु ।

किन्तु श्रुति स्पृशतु काऽपि सुधाप्रवाह
सन्दोह निर्भर-पद्मर्भवदीयवार्ता ॥२२॥

इस प्रार्थना में सासारिक सुखों से नि स्पृहता तथा भगवत्प्रेम में ही कवि की अनुरक्ति स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है।

अपनी असहायावस्था का निवेदन करते हुए कवि कहता है—

दष्टोऽस्मि कालभुजगेन किमप्यपार-
ससारपांशुदवानलदह्यमान ।
निर्गमि तामरसनाम कदा तवाङ्घ्रि
लीला कथामृत महातटिनी प्रयाहे ॥६३॥

इस प्रकार कवि के सन्दर्श में भक्त की दीनता, हीनता, असहायावस्था और भगवान् से मिलने की आतुरता छिपी हुई है।

मन को अपना सन्दर्श सुनाने के बाद अन्त में उसकी शक्ति तथा गुणों की प्रशंसा की गई है और उसके प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त करने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है—

बन्धुस्त्वमेव हृदयार्थपथ प्रपन्न
सत्य रिपुर्निपथगामितया त्वमेव ।
तत् कातरे मयि विघेहि कृपा यदेत
दुक्त कुदृष्य मुरवेरिपदे रमस्य ॥१०१॥

काव्य के आद्योपान्त अनुशीलन से यह स्पष्ट ही हो जाता है कि यह सदेश काव्य शान्तरसप्रधान एक भक्ति काव्य है। गोकुल, यमुना और वृन्दावन का वर्णन यहाँ सरस तथा भक्तिपूर्ण है। भावों की सरलता तथा सरसता के साथ साथ भाषा भी बड़ी मधुर और ललित है। शान्तरस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति का ही अनुसरण किया गया है। कवि का शब्द विन्यास नैपुण्य भी दर्शनीय है। वृन्दावन-वर्णन में अनुप्रासपूर्ण मधुर कोमलपदों का कैसा सुन्दर विन्यास कवि ने किया है—

हिन्ताल-ताल-घट-शाल-रसाल जाल-
ताली-तमाल-कृतमाल-पियाल-कोल ।
जम्बीर-धीरतरु-विल्व-कदम्ब-जम्बू-
सर्जूर-निम्ब-हरिचन्दन-सिन्धुपार ॥४६॥

इस तरह दल, कुसुम और फल प्रधान वृत्तों का उल्लेख कर कवि कहता है कि वृन्दावन इन वृत्तों से हमेशा भगवद्गता है—

एतैर्दलानि कुसुमानि फलानि सम्यक्
 धी जानि पाणि कमल ग्रह-मानितानि ।
 रम्पाणि सर्वसमयेऽपि सम दधानै
 नीरन्ध्रमावृतमनावृतपुण्यपुञ्जै ॥५॥

इस तरह आदि से अन्त तक सभी श्लोक बड़े सरस और मधुर हैं और कवि के हृदय का बड़ा शुद्ध और उदात्त चित्र पाठकों के समक्ष उपस्थित कर हैं। वसन्ततिलका छन्द ने भी काव्य को बड़ा प्रयात्पूर्ण बना दिया है। इस छन्द से काव्य में भक्ति की मन्दाकिनी सी बहती जान पड़ती है। काव्य की कथा-वस्तु यों तो नितान्त काल्पनिक ही है, लेकिन कवि ने इस काव्य में मनुष्यमात्र के लिए एक बड़ा महत्त्वपूर्ण सन्देश दिया है। और यह सन्देश यह है कि यदि कोई मनुष्य पापों, दुःखों तथा जन्म मरण के बन्धन से छुटकारा पाना चाहता है, तो उसे अपना मन भगवान् की ओर लगाना चाहिए। मन में शम, दम, दया और क्षमा इत्यादि गुणों का विकास करना चाहिए तथा मात्सर्य, दम्भ, मद, मान, विमोह, लोभ, क्रोध और स्मय इत्यादि अशुभ गुणों को बिलकुल ही छोड़ देना चाहिए। इस तरह शुद्ध मन से जब मनुष्य भगवान् की भक्ति करेगा, तभी यह ससार रूपी दागानल से छुटकारा पा सकेगा। केवल भगवान् ही दीनों का सहायक है तथा पतितों का उद्धारक है। सन्देश काव्य के आचरण में कवि ने सतप्त मानवता के लिए यह शान्ति-पूर्ण सन्देश इस काव्य में दिया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि भाव, विषय, भाषा और छन्द की दृष्टि से काव्य सर्वथा सुन्दर है। कविता और भक्ति इन दोनों का इस काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है। मध्यकाल के वैष्णव साहित्य में इस सन्देश काव्य को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। मन को दूत बनाकर कवि ने दूतों की सूत्रा में एक और शीघ्रगामी तथा विद्य दूत की वृद्धि कर दी है। साहित्यिक तथा धार्मिक दोनों ही दृष्टि के पाठकों के लिए यह काव्य अत्यन्त उपादेय है।

विष्णुघात का कोक-सदेश (१० वीं शतक)

यह काव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से प्रकाशित हुआ है। काव्य के सम्पादक श्री रे० साम्बशिव शास्त्री हैं जिन्होंने कि सन्नेप में कुछ भूमिका भी लिख दी है। काव्य का लेखक विष्णुघात नामक कोई कवि है—

आसीद् विप्रो हरितिरत कोऽपि रम्भाविहारे
विष्णुघातो द्विजपरिवृद्धग्रहदत्तमित्र ।
तनैतस्मिन् सपदि रचित कोकसन्देशकार्थे
पूर्वस्तात् समजनि रसैश्चाप्यसौ पूर्वभागं ॥१॥२०॥

जैसा कि उपरिलिखित श्लोक से स्पष्ट है, विष्णुघात का ग्रहदत्त नामक कोई ब्राह्मण बड़ा धनिष्ठ मित्र था। यह ग्रहदत्त नामक ब्राह्मण श्री नारायण भट्टपाद का समकालीन था, यह तो सर्वसिद्धि ही है। अतः इस कवि का रचना काल भी ई० १६ वीं शताब्दी के आसपास ही होता चाहे (देखिए काव्य की भूमिका)। इससे अतिरिक्त इस लेखक के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है।

कथा मार

इस काव्य में एक राजकुमार ने श्रीविहारपुर से कामागम नामक नगर में अपनी प्रेयसी के पास कोक के द्वारा अपना प्रेमसन्देश भेजा है। कथा इस प्रकार है—

एक राजकुमार अपने नगर में अर्धा पत्नी के साथ सुखपूर्वक रहा करता था। एक दिन एक मन्त्रिक उसको उपहार स्वरूप एक ऐसा यन्त्र (तारीज) दे गया जिसके कि सिंग से लगाने पर ही लगाने वाला अपन श्श से दूर पहुँच जाता था। कुतूहलश राजकुमार ने एक दिन उस यन्त्र को अपने सिर से लगा लिया। घस पया था, इतने ही में वह अपने प्रासाद से दूर किसी स्थान पर पहुँच गया। प्रेयसी के प्रियोग में वह व्याकुल तो था ही कि एक चक्रवाक पक्षी उसे दिवलई पहा। चक्रवाक को श्रुते ही वह उसे अपना और अपनी प्रेयसी का विरह वृत्तान्त सुनाने लगता है तथा अन्त में चक्रवाक ने प्रेयसी के पास अपना सन्देश पहुँचाने की प्रार्थना करता है। इस प्रसंग में नायक के निवासस्थान श्री विहारपुर से प्रेयसी के निवासस्थान कामागम नगर तक के मार्ग का वर्णन किया गया है।

प्रातःकाल होने पर निकटवर्ती मन्दिर में विष्णु भगवान् के दर्शन करने के बाद श्री विहारपुर से चक्रवाक की यात्रा प्रारम्भ होती है। कुछ दूर पर स्थित वारणाण्यम्यली में गणेश मन्दिर में गणेशजी की पूजा करने के बाद आगे बढ़ने पर किन्नी पर्वत और उद्यान का उल्लेख किया गया है। इस उद्यान में स्थित मन्दिर में पार्श्वी की स्तुति करने के बाद करीब आधा कोस आगे चलने पर एक विशाल आघ्रवृक्ष तथा सुन्दर नामक सरोवर वतलाया गया है। मर्यादित हो जाने से कुछ

देर विधाम करने तथा निकटवर्ती शिवमंदिर में शिवजी की पूजा करने के बाद आगे चलने पर मन्चन्द्रा नामक राजधानी में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख है। इस नगरी की सुरभ्य वापियों और उद्यानों की शान्ति दृष्टकर आगे बढ़ने पर क्रमशः शान्ताकार नामका नगर, वहा का कृष्णमन्दिर, तदनन्तर कुछ दूर पर रम्या नदी के मिलने का वर्णन किया गया है। रम्या नदी से दक्षिण की ओर घन वनों को पार करत हुए तथा जाली तांगों से अपनी रक्षा करत हुए आगे बढ़ने पर लोकभद्र नामक शिवक्षेत्र में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। मन्ध्या होने से पहिल ही शिवजी के दर्शन कर लेने के बाद मन्दिर के किमी गोपुर में ही किसी तरह विरहपूर्ण रात्रि (क्योंकि रात्रि में चक्रवाक का अपनी सहचरी से वियोग हो जाता है) बिताकर प्रातः काल हात ही चक्रवाक को आगे बढ़ने का परामर्श दिया गया है। मार्ग में मुनियों के आश्रमों को देखत हुए अयोध्या नगरी (?) तथा अन्य देशों को पार कर मार्ग में आए हुए किसी अदृश्यवृक्ष की परिक्रमा करके आगे बढ़ने पर किसी जम्बू वृक्ष पर मन्ध्याहन में विधाम करने के बाद आगे बढ़ने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। तदनन्तर पूर्णानन्द नामक भूतनाथ के क्षेत्र में भूतनाथ (शिव) की पूजास्तुति करने के बाद उत्तर-पश्चिम दिशा की ओर चलने पर प्रेयसी के निवासस्थान कामाराम नामक नगर में चक्रवाक के पहुँचने का उल्लेख किया गया है।

इस तरह मार्ग वर्णन के बाद कामाराम नगरी का वर्णन किया गया है। वहा पर विष्णु भगवान् के मन्दिर में भगवान् की स्तुति करने के बाद पूर्व दिशा की ओर चलने पर एक बहुत बड़े बाजार में सँ होत हुए किसी घट वृक्ष पर पहुँचने तथा उसी पर रात्रि बिताने का चक्रवाक को परामर्श दिया गया है। सूर्योदय से पूर्व ही उत्तर दिशा की ओर चलने पर नायक ने अपने घर के मिलने का वर्णन किया है। (पार्वी, उद्यान, तमेदवृक्ष, घेतकी-वाटिका, त्रिपाता वृक्ष, बीजादर, अनाम) चम्पकवृक्ष, जाली नमेली), कीडाशैल, मोर के पटन की विद्रम की दासयष्टि, द्विनी के बाधने का स्थान तथा कुटज वृक्ष जैसे सुन्दर दृश्यों के दर्शन करने के बाद पूर्व दिशा में नायक का घर बतलाया गया है। घर के पास ही स्थित एक आध्रवृक्ष पर बैठ कर दातावन मार्ग से फिर घर का सारा वृत्तान्त वर्णने के लिए चक्रवाक से कहा गया है।

घर के वृत्तान्त का वर्णन करत हुए नायक ने अपनी प्रेयसी की विभिन्न विरहावस्थाएँ सन्नाहित की हैं। इस प्रसंग में नायिका के प्रत्येक अंग का पूर्व सोन्दर्य तथा विरहजन्य परिवर्तन वर्णित किया गया है। बाद में नायिका की विभिन्न कदम घेराएँ वर्णित की गई हैं। अन्त में किसी तरह नायिका द्वारा सुमरुक्षक चक्रवाक के इशारे जाने की संभावना करके चक्रवाक ने फिर अपना सन्तान सुनाने की म... ..

नायक का सन्देश सुनाने से पहिले चक्रवाक नायिका को उसके प्रिय का सारा वृत्तान्त सुनाता है। फिर नायक का सन्देश देता है। इस सन्देश में नायक की विरहावस्थाए, शीघ्र आने का आश्वासन तथा कुछ अभिमान भटनाए बतलाई गई हैं। अन्त में नायिका से अनुमति लेकर अपनी प्रेयसी के साथ इच्छानुसार देश देशान्तरों का भ्रमण करने की चक्रवाक के प्रति शुभकामना प्रकट की गई है।

वस, यही काव्य की कथा है।

साहित्यिक समीक्षा

उपर्युक्त कथानक से यह तो स्पष्ट ही है कि यह काव्य विप्रलम्भ शृ गार से पूर्ण एक सन्देश काव्य है। नायक का अपनी प्रेयसी से वियुक्त हो जाना इस काव्य में एक यन्त्र (कवच, तारीज) की शक्ति द्वारा प्रस्तुत किया गया है। अन्य प्रमुख सन्देश काव्यों की अपेक्षा इस काव्य में यह एक नवीनता है। मेघदूत के अनुकरण पर ही यह काव्य लिखा गया है। काव्य दो भागों में बटा हुआ है। पूर्वभाग में नायक का विरही के रूप में वर्णन, चक्रवाक से सन्देश प्रस्ताव और फिर मार्गवर्णन है। द्वितीय भाग में नायिका की नगरी, उसके गृह के आस पास के सुरम्य दृश्य, नायिका की विरहजन्य अवस्थाए और नायक का सन्देश है। पूर्वभाग में १०० और उत्तर भाग में १८६ श्लोक हैं। श्लोक सरया की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत से लगभग तिगुना है। कवि ने मन्दाक्रान्ता छन्द का ही व्यवहार किया है। वर्णनों की अधिकता से काव्य का आकार बहुत बड़ा गया है। कवि ने प्रेयसी के निवास-स्थान कामाराम नामक नगरी के वर्णन में ही ५० श्लोक लिखे हैं। इसी तरह प्रेयसी के गृह तथा आसपास की वस्तुओं के वर्णन में छोटी-छोटी बातों पर भी कवि का ध्यान गया है। इसके अनिरीक काव्य में विरहिणी नायिका के केशभार से लेकर पादयुग्म तक का वर्णन किया गया है। लेखक का भाषा पर पूर्ण अधिकार है। चक्रवाक से साथ में अपनी सहचरी को ले जाने का परामर्श देने से कवि की भावुकता और भी स्पष्ट हो जाता है। मार्ग में पड़ने वाले स्थानों और मन्दिरों में प्रतिष्ठित देवताओं के चित्रण में कवि ने यही सहृदयता से काम लिया है। मार्गवर्णन कोण भौगोलिक ही नहीं है। तत्त्व स्थान की रूपरेखा साहित्यिक और सरस ढंग से वर्णित की गई है। सचन्द्रा नामक राजधानी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

नैशोधान सुरत रचितं यत्र मृदु च यूनाम्
नैगमात्या ह्यनलसदृशो रत्नमभिर्षुं हारच ।
नो योद्धार परमसिचयोद्भूमासिता किञ्च योषा
स्तरपोषो नो मृदुलसितगुं किन्तु केलीशुकोऽपि ॥१॥५८॥

१. सुरत + रचितम्, सुरत + रचितम्। अनलस + दृशो। अनल + सदृशो। परम् + असिचयोद्भूमासिता। परम + सिचय + उद्भूमासिता। मृदुल + सित + गो-मृदुलसितगुं। गो = यार्थी, भूमि।

इस श्लोक में अण्डश्लेष की सहायता से कवि ने नगरी का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है ।

आगे चलकर बड़ा की युवतियों का वर्णन भी सरल भाषा में कवि ने यही सुन्दर रीति से किया है—

मन्द यात्य' सततमधिकं श्रोत्रिदेशे महत्य
काञ्चीमन्य वृथुकटितटे कुङ्कुम लितवत्य ।
शोभायत्य' प्रतिगलतल द्वारजालं सुदत्य'
सन्मालत्यश्चिकुरनिचये भान्ति यस्या युयत्य ॥१॥५६॥

रम्या नामक नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि उसके तट पर ब्राह्मणों का निवास है और वे ब्राह्मण बड़े आस्तिक तथा कर्मनिष्ठ हैं, अतः रम्या नदी गाँव समाप्त ही जानो—

चातुर्यैश्च पठिति सफलेऽप्यागमे यायजूक
धर्मप्राप्त बहुविधमल नित्यमर्चन्मुमुन्दम्
दीने सरक्षिति सिमजने धारय सदृष्टियज्ञम
ब्राह्मण्यं तत्त्वनिरतमवाक्तीरमास्ते द्वि यस्या' ॥

भूदेयाना समयविहितस्नानपुण्याम्बुपुरा
तरसन्तानैरधिकरुचिरै र्व्याप्तप्रप्रवेशा ।
पर्यन्तोद्यत्सफटिकसुपमासद्गता शुभ्ररूपा
गङ्गादेश्या जयति धरणीमण्डले या नितातम् ॥१॥७३॥७४॥

शान्ताकारा नामक नगरी में कृष्णजी की स्तुति करने के बाद चन्द्रयात्र के आगे बढ़ने के प्रसंग में कवि कहता है कि यह नगरी अथर्व्य ही तुम्हें रोचना चाहेंगी—

उद्यद्गता मणिगृहसरत्कान्तियादालताभि-
र्दीव्यन्तीभि छाणमिथ पुरी रोदुधुकामेय सा स्यात् ॥१॥७१

यहाँ पर नगरी में यही सुन्दर रीति से कवि ने अतुरत नायिका का माथ आरोपित कर दिया है ।

मेघदूत में अलकापुरी का जैसा वर्णन किया गया है, वैसे ही कामागम नगरी का भी इस काव्य में यहाँ उदात्त और शृंगारमय वर्णन किया गया है ।

• श्लोकों में कवि ने नगरी का ही वर्णन किया है । नगरी के राजमार्ग, राजा और प्रजा का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

रघूया यस्या गगनसदृशार्थी सदालोककान्ता
 पृथ्वीपाल सुरपतिसमश्चामरश्लिष्टपारर्ष ।
 सर्वे लोकास्त्रिदिवसमिताश्चारसन्तानरभ्या
 स्त्रीणा वक्षत्र रघुपतिनिभ ध्वस्ततारशगर्वम् ॥ २६ ॥

इस श्लोक में श्लिष्ट विशेषणों से कवि ने नगरी का बड़ा ही समृद्धिशाली वर्णन किया है ।

नगरी में किसी भी ऋतु में लोग कष्ट नहीं उठाते हैं । सुख और शान्ति बड़ा पर व्याप्त है—

सर्वाशोकोदयसुमधुरा भूमिपालप्रताप-
 व्याप्ता प्रोद्भासितवहुलजातिर्लसत्पद्मिनीका ।
 विश्वक्षोणीतलगमहिमा चन्द्रकान्तलयोद्य-
 च्छ्रेया यासौ लसति किल सर्वतुर्धर्माभिरामा ॥२॥४२॥

इस तरह विभिन्न भाव भंगिमाओं के साथ नगरी की समृद्धि का वर्णन किया गया है । नगरी में स्थान स्थान पर स्फटिकमणि का पर्श लगा हुआ है और नृत्य करती हुई रमणियों के मध्य में चंद्रमा का प्रतिबिम्ब जब उस पर्श पर पड़ता है तो ऐसा लगता है मानों चन्द्रमा बड़ा की रमणियों के चरणों में प्रणाम कर रहा हो—

यत्रत्याया स्फटिकधरणी विम्बित शीतभानु
 क्रीडन्तीनामिह मृगदशा निर्जितो वक्षत्रविन्धे ।
 भूयोऽप्येतत्परिभवसमाश्रया नृनमासा
 पादाभोजे प्रणमनविधिं त्रीतगर्भं करोति ॥२॥१८॥

नगरी के वर्णन के बाद प्रियसी ने गृह तथा निकटस्थ सुरभ्य दृश्यों का भी बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है । बापी में निरन्तर उठती हुई लहरों का कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

नायाता सा कमलनयना स्नानुमद्यात्र किं वा
 जान तस्या इति हि कलयन्ती तदालोकनाय ।

- १ सदा + आलोककान्ता, सत् + आलोककान्ता । अमरै आश्लिष्ट पाठ्यं यस्य स, अमराश्लिष्टपाठ्यं, आमरेण + आश्लिष्ट पाठ्य यस्य स ।
 ध्वस्त तारशम्य चन्द्रस्य बालिनो व । गर्भं येन तत् ।

भ्रयोभूयस्तटमुपगतैः स्यूलकरलोलमालै-
र्षां यान्तीय स्फुरति दयितायाससीधामदेशम् ॥२॥७५॥

पालतु हिरनी का भी निम्न पद्य में यहा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है-

म्याद्वीं मृद्वीमधिकहरिता यत्र वेदीधरण्या
तृणया हृग्यत्यपि विदधती चापि रोमन्यचेष्टाम् ।
सेय क्रीडाहरिणतृणया विम्भृतारण्यदेश-
स्यैरथासा निधमति सुरा प्रेमपाश्री प्रियाया ॥२॥७६॥

आगे चलकर नायक ने फिर अपनी प्रेयसी की विरहावस्था यहे भावुक ढंग में वर्णन का है। यह कहता है कि विरहताप को शान्त करने के लिए कोमल पशुओं से उसकी शय्या ढकी होगी तथा पास में शीतल जल, चन्दन, कमलपत्र और ताल वृक्ष इत्यादि रक्खे होंगे। फिर भी उसे शान्ति न मिलती होगी—

तरणे तस्मिन्नधिकमलसाङ्गी शयाना लुटन्ती
पाण्डुच्छाया वृशतनुताता नेत्रपीयूषधारा ।
द्रष्टव्या सा मम सदचरी नीतबन्धो । तत्र स्यात्
तोयोऽमुता मृदुविमलतयापस्त्रिणश्रुपा ॥२॥७७॥

'तोयोऽमुता विसलता' स प्रिय विरहित प्रेयसी की बितनी सुन्दर उपमा यहाँ दी गई है।

विरह में क्षीण तथा वृशकाय प्रेयसी का वर्णन करते हुए नायक कहता है कि उसके हाथों में सुरणकङ्क भी मानों इसीलिए गिर पड़े हैं कि यहाँ उनके पदिाने से उसे कुछ न हो—

मामा पीडा भवतु नितरा क्षीणसर्वाङ्गश्ले-
शस्या हस्मदहनवशतो नूतमिष्याफलम् ।
यादानालाद् विलुलितमृगालीलतालोभनीया
ममदं मद् कणकबलयैः प्रस्थितं मञ्जुशिखरैः ॥ ॥७८॥

कवि ने इस पद्य में यही सुन्दर दैर्घ्यप्रस्ता की है।

अपनी प्रेयसी की कुछ विरह-चेष्टाएँ भी चक्रवाक के सामने संभाषण के रूप में रखते हुए नायक कहता है कि आगस्त उसकी प्रेयसी यातायनमार्ग से काते काते यादलों को घरसत के लिए आकाश में उमरता हुआ स्वयंकर अच्युत रूप कृष्ण हो जाती होगी या चुपचाप परी वदत, होगी—

इत्थ ताभ्यस्तकलकरणस्वागका साम्प्रत सा
नीलाम्बोढान् नभसि निविडान् वर्षणायावरूढान् ।
यातावाप्त्यै त्रिघटितकघाटेन यातायनेन
प्रंक्ष प्रंक्ष क्षणमतितरा व्याकुला वा शयाना ॥२॥१५०॥

विरह दुःख से उसके नेत्र बन्द रहते होंगे, मुख झलान होगा, सारा शरीर उसका निश्चेष्ट हो गया होगा और अपनी परिचारिकाओं के द्वारा आवाज दिए जाने पर भी वह होश में न आती होगी तथा वे सब बड़ी शका के साथ उसकी ओर देखती होंगी—

विश्लेषार्तिप्रसरणघशाद् दूरमामीलिताक्षी
म्लायद्दकत्रा विरहितपरिस्पन्दनाशेषगात्रा ।
आहूताऽपि प्रियपरिजनैरात्मबोध न यान्ती
जातातक वत कृतमिथोरीक्षरौरीक्षिता वा ॥२॥१५४॥

प्रेयसी की विरहचेष्टाओं के वर्णन करने के बाद उचित समय देखकर चक्रवाक से सन्देश सुनाने के लिए कहा गया है । सर्वप्रथम नायक की विरहदशा वर्णित की गई है । मयूरों की नृत्यलीला तथा चमेली के फूलों पर मडराते हुए भौरों को देखकर नायक को प्रेयसी के खुले केशपाश तथा सुन्दर कटाक्षों की स्मृति आ जाती है और वह मूर्च्छित हो जाता है—

सोऽयं पश्यन् दिशि दिशि सर्तो बर्हिणा नृत्तलीला
जातीजाते तरलमधुपश्रेणिका चाभिरामाम् ।
धम्मिल ते गतिविगलित मञ्जुल वा कटाक्षम्
स्मार स्मार हृद्दह बहुशो मूर्च्छनामभ्युपैति ॥२॥१६६॥

फिर कहा गया है कि नायक विद्युरलेपा को भूल से अपनी प्रेयसी समझ लेता है और वार्तालाप करने लगता है, लेकिन फिर वहाँ उसे (प्रेयसी को) नपाकर उसे रोना आ जाता है—

विद्युरलेपा मुद्गरपि समुद्धीदय त्रिद्योतमानाम्
सद्य खिद्यन्नपि सदचरीत्यालपन्नुत्थितोऽहम्
त्यदुद्भया ता किमपि गदितु सम्प्रवृत्तस्तदानौ
तथादृष्ट्वा कमलनयने भूरिवाप्य यमपि ॥२॥१७३॥

यहाँ अनु में संयोगारस्था में जो दृश्य नायक को प्रसन्न किया करते थे वही विद्योगारस्था में उस को कष्ट पहुँचाते हैं—

तऽमी वैकारवजलधरारापविद्युरलताद्या
विश्लेषे ते सदचरि । पर दीदयत्यद्य कष्टम् ॥२॥१७४॥

अन्त में नायक कहता है कि विश्लेष रूपी अग्नि में मेरा शरीर जल रहा है और मैं केवल तेरे ध्यानरूपी अमृत की वषा से इस अग्नि को कुछ कम कर रहा हूँ—

लोलापाङ्गि स्मरशरमिपादिन्धन योजयित्वा
भूयो भूयो जलदपयनेनाशु सन्धुक्षितस्य ।
विश्लेषाग्नेर्मम तनुमिमा दग्धुमत्युन्मुखस्य
त्वत्कध्यानामृतविकिरणै स्तोक्रतामातनोमि ॥२॥७६॥

अपनी विरहावस्था के बताने के बाद नायक कहता है कि यह यद्यपि बड़ा दुःखी और विन्त है फिर भी धीरे धीरे पैदल आ रहा है और प्रेयसी को भी धैर्य रखना चाहिए तथा अपनी सन्धियों के साथ विभिन्न लीलाओं में समय काटत रहना चाहिए। अन्त में उनका मिलन तो होगा ही—

एष तान्ता ययमिह तथाप्यद्य धैर्यावलम्बा-
दापास्याम सत्रिधमपि त मन्दपाद्प्रचारे ।
तत् तावन्तं क्षपय समय त्वद्विनोदैकहेतो-
रालीवृन्दैरविरतरुर्नैश्चादलीलाविशेषं ॥२॥७७॥

पुनर्मिलन होने पर नायक कहता है कि हम दोनों दुःखने प्रेम के साथ अपने सीध में विरह क्लेश को भुलाकर विहार करेंगे—

प्राप्ते भूय प्रणयिनि मयि प्रेयसि त्वत्समीपं
प्रीतावाषा द्विगुणिततरप्रमभाञ्जी तदानीम् ।
क्रीडिष्याय सहचरि । यथाकाममुत्तुङ्गष्ट मे
सौधोत्सङ्गो विगतविरहकलशभाञ्जी चिरण ॥२॥७८॥

सदेश के अन्त में प्रेयसी को अपने सहुशल होने का विश्वास दिलाने के लिए नायक १ कुछ अभिमान घटनाएँ भी वर्णित की हैं। एक घटना की याद दिलाते हुए नायक कहता है—

यास पूर्यं अनु मणिमये नो निशान्त निशायाम्
प्राप्ता स्वीया तनुमपि ममोपान्तभित्तौ स्फुरन्तीम् ।
दृष्ट्या रोषाद् यलितवदनामून्मदाम्येत्य तूर्णं
गाढाश्लिष्टा कथमपि मया बोधितारं यथार्थम् ॥२॥७९॥

इस श्लोक में नायिका के मुग्धा और मानिनी होने की पूर्ण गूढ़ व्यञ्जना की गई है। इस तरह कई अभिमान घटनाएँ बताकर अन्त में नायक कहता है—

आज्ञायास्मानपि कुशलिनी यावदायाम तावत्
प्राणान् प्राणेशरि जिगमिषून् कण्ठनाले निरुन्धि ॥२॥१८३॥

फिर नायक चक्रपाक को अपनी शुभकामनाएँ भी देता है—

इष्टान्देशान् भुवनमहितान् प्राप्य तत्रेक्षकाणा
मोद तन्वन् विश्वर विहगध्रेष्ठ विश्वाधिकथ्री ॥२॥१८६॥

उपर्युक्त विवेचन से पाठकगण अनुमान कर सकते हैं कि यह सन्देश काव्य विप्रलम्भश्रु गारपूर्ण एक सरस सदेशकाव्य है। काव्य की कथा काल्पनिक ही है। मार्ग वर्णन में भी कवि ने कल्पना का सहारा लिया है। तत्तद् स्थानों का वर्णन श्रु गार रस पूर्ण है। विभिन्न मन्दिरोँ के देवी देवताओं की स्तुति भी साहित्यिक ढंग से की गई है। कवि का भावा पर पूर्ण अधिभार है। त्रिलोच और समस्त पद प्रायः नहीं ही है। काव्य में सर्वत्र प्रवाह पाया जाता है। चक्रपाक को दूत बनाने में भी कवि ने अपनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। चूंकि चक्रपाक हर रात्रि में अपनी प्रेयसी के विरह दुःख का अनुभव करता है, इसलिए वह विरहियों के कष्ट को अच्छी तरह समझ सकता है और एक दूसरे का सन्देश भी ठीक तरह पहुँचा सकता है। चक्रपाक भी विरहिणी नायिका को अपनी ओर से संघोधन करते हुए यही बात कहता है -

मा जानीथा कुशलिनि तव प्राणनाथेन तावत्
सायं सायं विदितदयितानिप्रयोगव्यथोऽयम् ।
ईदृग्दोत्ये समुचिततरो नूनमित्याकलयय
प्रोच्य स्वार्थान् प्रणपसरस प्रेषित चक्रपाकम् ॥२॥१६३॥

मेघदूत के अनुकरण पर तो यह काव्य लिखा ही गया है। विषय व्यवस्था, शैली, छन्द और भाव विन्यास सभी में मेघदूत का अनुकरण किया गया है। कहीं कहीं भावसाम्य साक्षात् स्पष्ट प्रतीत होता है। मेघदूत में हनूमान्जी और सीताजी का उल्लेख है ही। इस काव्य में भी कवि ने राम और हनूमान् का प्रसंग चक्रपाक को दूत बनाने के अवसर पर उपस्थित किया है—

सीताजानि स्वयमित्थं हनूमन्तमस्यन्तमाप्त
कोश दृष्ट्वा कमपि ललित सन्दिदेशेनमेवम् ॥१॥४॥

मेघदूत की—दान्तोदन्त सुहृदुपगत सङ्गमात् किञ्चिद्दूत ॥२॥३१॥

यह पति किस सहृदय पाठक के हृदय में एक दम प्रस्फुरित नहीं होगी, अब वह इस काव्य की निम्न पत्निया पढ़ेगा—

स्त्रीणा मोद नदि त्रिननुते किं त्रियोगातुराणाम्
दूततोक्तं प्रियतमत्रचोगुम्फमाधुर्यभूमा ॥१॥१६॥

प्रेयसी की नगरी कामारामपुरी का ध्यान करते हुए कवि ने लिखा है—

कन्दर्पेण प्रगुणधनुषा प्रेरिताना निशायाम्
सङ्केत प्रत्यधिकनिभूत कामिनीना गतानाम् ।
प्रातः काले कचभरमिलत्पुष्पसौरभ्यलोभ
भ्रान्ता सम्यग्भ्रमत्पटली यत्र माग द्यनक्ति ॥२॥६॥

इस श्लोक में मेघदूत क—

गत्युत्कम्पादलकपतिनैयंश्च मन्दारपुष्पै
नैशो मार्गं सप्रितुरुदये सूच्यत कामिनीनाम् ॥२॥११॥

पद्य की छाया स्पष्ट दीग्य पढती है ।

इसी तरह श्लोक स०१ का पद्य श्लोक—

उद्यद्दीपे नममणिकुचा रोचिते कलिगेहे
नीश्रीरन्ध्रश्रुत्नरसिके प्राणनाथे निशायाम् ।
लज्जाभाराद् विधुरमनसा यत्र मुग्धाङ्गनानाम्
काञ्चीनीलोपलरुचिरदो किञ्चिदाश्यासहेतु ॥२॥१॥

भी मेघदूत क इसी ही प्रसंग में लिगे गए श्लोक की प्रतिश्रवनि है ।

मेघदूत में प्रेयसी के वहा सुवर्णमय वासवष्टि पर मयूर के बैठने तथा प्रेयसी द्वारा उसके नचाए जाने का उल्लेख है । इस काव्य में भी नायिका को दमकर मयूर के नृत्य करने का धर्णन किया गया है तथा मयूर के बैठने की वासवष्टि भी विद्वान् निर्मित पतलाई गई है—

पुष्पोघानाद् यद्विरयगृहं काञ्चनोद्भासिताप्रा
मूले नीलोपलपटलिकापद्मवदिप्रदेशा
दश्याकाग लसति शिगिनो येंद्रमी वासवष्टि ॥२॥१०१॥

दृश्याप्रस्था मम सहचरौ विद्युदुल्लासिका या
नीलाम्मोद प्रतिमशिकुरा र्थादय यर्पानपेशम् ।
श्रीहावेकी प्रमदपरिपूर्णान्तराग कलापं
अश्रीकुर्वन् नयनतुभग यत्र नूत तनोति ॥२॥१०२॥

विश्वी क समान गौरवर्णशर्ला तथा नीले वादलों क समान काल कष्ट यामी

नायिका को देख कर वर्षा ऋतु के बिना भी मयूर का नृत्य करना कितना आकर्षक हो सकता है। मेघदूत में नायिका के द्वारा नचाए जाने पर मोर नाचता है लेकिन इस काव्य में वर्षा ऋतु के बिना भी केवल नायिका को देखकर ही मोर के नाच उठने का वर्णन किया गया है।

मेघदूत में नायिका कभी कभी पञ्जरस्थ शारिका से भी अपने प्रिय के सबन्ध में वार्तालाप करती हुई वर्णित की गई है। इस काव्य में भी नायिका को शुकी अथवा शारिका से अपने प्रिय के सबन्ध में वार्तालाप करते हुए वर्णित किया गया है—

अलीयगेंशिचरमिव पुरा पाठित नाम मत्क
भूयो भूय स्फुटतरमभिज्याहरन्तीं शुकीं ताम् ।
शारि । त्वाप्यहमिज सदा त पति स्नेहत किं
ध्यापस्यद्देत्वधिककटणु प्रोच्य खेदाकुला या ॥२॥१५३॥

कहीं कहीं कवि ने जीवनोपयोगी बड़े सुन्दर २ विचार भी व्यक्त किए हैं। पाठकों के अनुशीलन के लिए कुछ सूक्तियां काव्य से उद्धृत की जाती हैं—

(१) मित्रालोको विनुदति यथा खेदमन्यत् तथा नो
नृणा सम्पद्यपि त्रिपदि वा वस्तु किं वेत्सि नैतत् ॥१॥२॥

एको लाभो यदि खलु भवेत् क्वापि काप्येषु यत्न
कार्यं सर्वैरपि बहुफले तत्र किं वर्णनीयम् ॥१॥२३॥

(३) पुरणस्थलों के सबन्ध में कवि कहता है—

दत्ते मेमा द्वितमिह सरो साधु पुरणस्थलीनाम् ॥१॥३३॥

(४) परोपकारी लोगों के प्रार्थन्याग का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

लोकाना यद् त्रिधुरितधिया सौम्य । सन्मार्गयायी
मोद कर्तुं बहति दि रति नेन्द्रियाणा निजानाम् ॥१॥६०॥

(५) दूरदर्शी लोग आगामी त्रिपत्ति का पड़िले से ही प्रतीकार सोचते हैं—

लोको धीमानिह तु त्रिपट भाविनीं प्रेक्षमाण
सम्यक् पूर्वं नदि वितनुते किं प्रतीकारमस्या ॥१॥८३॥

काव्य की इस समीक्षा से पाठकों को काव्य के साहित्यिक महत्त्व का पूर्ण ज्ञान हो गया होगा। लेखक ने काव्य के प्रारम्भ में प्रसंगान्तर में—

सद्भिर्भृङ्गीरुतमपि सदैवाविलि द्योपनुद्धया ।

गगासङ्गात् वृत्तकसरिता धारि पुण्य न किं स्यात् ॥१॥२॥

यह पत्निया लिखी हैं। प्रकारान्तर में लोगक ने अपने काव्य की ओर ही दृष्टि किया है। विद्वानों ने लिए भले ही इस काव्य में यत्र-तत्र दोष दीख पड़े, लेकिन जिस तरह गंगा से निकली हुई नहर का जल भी पवित्र माना जाता है, उसी तरह मेघदूत ने अनुकरण पर लिखा गया यह काव्य भी उतना ही सरस और हृदयग्राही है। कहीं-कहीं मेघदूत में सक्षेप से व्यक्त कोई भाव इस काव्य में बड़े विशदरूप से वर्णित किया गया है। अतः काव्य का आकार कुछ अधिक घट गया है। अस्तु, सन्देशकाव्यों की परम्परा में दक्षिण भारत का यह सन्देशकाव्य कविता की दृष्टि से एक उत्कृष्ट रचना है और मेघदूत का एक सफल अनुकरण है।

रूप गोस्वामी का उद्भव-संदेश (वि० षोडश शतक का उत्तरार्ध)

धीरूपगोस्वामी श्रीचैतन्यमहाप्रभु के प्रधान अनुयायियों में से थे। इनका जन्म सन् १४६६ ई० में माना जाता है। इनके पिता का नाम कुमारन्य था और माता का नाम रेवती था। यह भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण थे। सनातनगोस्वामी इनके गुरु भाई थे और वरलभ गोस्वामी इनके छोटे भाई थे। इनके छूटे पूर्वज कोई अनिन्द्य शक स० १३३० व आस-पास कर्णाट के राजा थे। इनका वंश काफी समृद्ध था। रूप और सनातन गौड़ देश के राजा होशन सहाय के प्रधान मन्त्री भी रहे। यह दोनों भाई धार्मिक प्रवृत्ति के थे तथा श्रीचैतन्य महाप्रभु की शिराओं पर इन पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। अन्त में इन्होंने घर छोड़कर संन्यास ल लिया। बंगाल के वैष्णव साहित्य में धर्म परायेण विद्वान् और उपदेशक के रूप में इनको बड़ा महत्त्व दिया गया है। इनका धार्मिक मिजान्त अविश्वभेदाभेद है। सनातन गोस्वामी की मृत्यु स० १५५० ई० में और रूपगोस्वामी की मृत्यु स० १५६३ ई० में मानी जाती है।

कविता तथा साहित्य शास्त्र इन दोनों क्षेत्रों में ही रूपगोस्वामी का स्थान बड़ा ऊँचा है। कृष्ण के प्रेम अथवा भक्ति से समन्वित होकर इनकी कवि प्रतिभा ने विभिन्न प्रकार की साहित्यिक रचनाएँ हमारे लिए दी हैं। इन सब में कथा वस्तु कृष्ण के जीवन से ही ली गई है। विदग्धमाधव और ललितमाधव यह दो नाटक सत सत अर्थों के हैं। इन में भागवत का आधार लेकर कृष्ण और राधा के प्रेम का वर्णन किया गया है। दानकलिनीमुदी नामक एक भाण भी इनका लिखा हुआ है। इसके नायक भी कृष्ण ही हैं। पद्यावली नामक कविताओं का एक संग्रह भी इन का किया हुआ है। जिस किसी लेखक की रचना इस संग्रह में उद्धृत की गई है, उसका नामोल्लेख भी किया गया है।

उनके अन्य ग्रन्थों में उज्ज्वलचन्द्रिका (चैतन्य चन्द्र की वहिन राधा और उसकी सहेली में कृष्ण के सम्बन्ध में सगद), यमुनास्तोत्र, गन्धर्व प्रार्थनास्तोत्र, गौरागस्त्यकरपतर, कुसुमन्तक, मुकुन्दमुक्तावली, चतु पुष्पाञ्जलिस्तय, उ फलि कावचलरी, लघुभागवतामृत आनन्दमहोदधि और मथुरा महिमा इत्यादि हैं। इनका संग में अधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ उज्ज्वलनीलमणि है। साहित्य शास्त्र का यह एक सुन्दर ग्रन्थ है और इसमें नायक तथा नायिकाओं के भेद, उनकी दशाएँ तथा प्रेम की रीतियों का वर्णन किया गया है। उदाहरण स्वरूप जो भी पद्य दिए गए हैं, वे संग कृष्ण भक्ति से सम्बद्ध हैं। रूप-गोस्वामी ने भरतमुनि के नाट्य-शास्त्र के आधार पर नाटकचन्द्रिका नाम का एक ग्रन्थ नाट्य शास्त्र पर भी लिखा है। इस ग्रन्थ में उन्होंने विश्वनाथ और भरतमुनि के परस्पर मतभेद का भी उल्लेख किया है।

इसके अतिरिक्त और भी कई ग्रन्थ जैसे र्थी युगलकिशोराष्टकम्, उपशामृतम्, निकुञ्जरहस्यस्तोत्रम् और हरिभक्तिरसामृतसिन्धु इत्यादि भी इनका लिखे गताएँ जाते हैं।

श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर, फ्लासीकल पीरियड, प्रथम भाग' में लगभग ३२ ग्रन्थ इनका लिखे हुए गिनाएँ गए हैं। इनमें बहुत से स्तोत्र भी शामिल हैं (दे० पृ० ६६४)।

रूपगोस्वामी के दो भाई थे। सनातन गोस्वामी इनके बड़े भाई, ये और वटलभ गोस्वामी छोटे भाई। सनातनगोस्वामी ने उज्ज्वल नीलमणि पर टीका भी लिखी। उनके अन्य ग्रन्थों में हरिभक्तिविलास और भागवतामृत मुख्य हैं।

इन्हीं रूपगोस्वामी ने उद्भवसन्देश और इसदूत नामक दो सन्देश काव्य लिखे हैं। कवि ने स्पष्ट रूप से उद्भव सन्देश के आदि या अन्त में अपना नाम

१ विशेष विवरण के लिए र्थी डी० सी० सेन का 'हिस्ट्री आफ बंगाली लिटरेचर' पृ० १०३ देखिए। उज्ज्वलनीलमणि (काव्यमाला) की भूमिका भी देखिए।

लेखक के रूप में नहीं लिखा है। फिर भी कविता के स्तर से ऐसा अनुमान किया जाता है कि इस काव्य का लेखक कोई उत्कृष्ट कवि रहा होगा। कुछ लोग रूप-गोस्वामी को ही इसका लेखक मानते हैं। वैष्णवतोषिणी नामक ग्रन्थ में भी श्री रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक बताया गया है। इण्डिया आफ्फिम लायब्रेरी सर्चीपत्र, तृतीय भाग, पृ० २०१= में रूप गोस्वामी को ही इस सन्देश काव्य का लेखक माना गया है। इसका कारण यह है कि काव्य के उपा-न्तिम श्लोक में कवि ने प्रसंगान्तर में 'रूप' और 'स्वामी' इन दोनों पदों का प्रयोग किया है।

कवि कहता है—गोष्ठक्रीडोरलसितमनसो निर्व्यलीकानुरागात्
 कुर्वाणस्य प्रथितमथुरामण्डले ताण्डयानि ।
 भूयोरूपाश्रयपदमरोज्ज्वलन म्यामितोऽथ
 तस्योद्दाम घटनु हृदयानन्दपूर प्रथम ॥३०॥

इस श्लोक का अर्थ यह है कि निरञ्जल प्रेम से गौरुल में प्रीडा करने वाल, मथुरा में मरलसुद्ध इत्यादि का ताण्डर रचने वाल तथा प्रचुर ऐश्वर्यशाली चरण-कमलों वाले भगवान् श्रीकृष्ण के लिए मेरा यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुँचाए। प्रकारान्तर से इसका यह तात्पर्य भी निकलता है कि रूप गोस्वामी के आश्रयी-भूत चरणकमल वाले श्रीकृष्ण को यह काव्य अत्यन्त आनन्द पहुँचाए। "नामैक-देशे नामब्रह्मणम्" इस न्याय से रूप शब्द रूपगोस्वामी का वाचक हो ही सकता है।

कवि ने अपनी एक रचना का नाम तो दसदूत रखा, फिर अपने दूसरे काव्य का नाम उद्दयदूत ही क्यों न रक्खा। यह प्रश्न भी कुछ विचारणीय है। इस नामकरण के दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि उद्दय कृष्णजी के मित्र थे। इसलिए मित्रभाव से अथवा गोपियों के उत्कट प्रेम को साक्षात् रचने के विचार से ही उन्होंने यह दूतकार्य स्वीकार किया था। मित्र को दूत मानना कुछ अनुचित ना हो सकता है। कवि ने इसी भाव से प्रेरित होकर अपनी इस रचना का नाम उद्दय सन्देश रक्खा है। दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि समभवत माधव कर्वाण्ड के उद्दयदूत के बाद यह काव्य लिखा गया है और कवि ने जानबूझ कर अपने इस काव्य का नाम कुछ परिवर्तित कर दिया है।^१

उद्दयसन्देश की कथा

इस काव्य की कथा धीमदभागवत पर ही आधारित है। कवि ने अपनी कल्पना से मार्गवर्णा, मार्ग में द्रष्टव्य स्थानों का महत्त्व, गोपियों के चरित

१ डा० जे० बी० शोधरी का 'हिस्ट्री आफ् दि दूत काव्याज आफ् बंगाल (मैमून्त कलकत्ता-पृ० २३-२४) द्वाारा।

कीर्तन तथा अन्व रमणीय प्रसंग उपस्थित कर काव्य को बड़ा मधुर बना दिया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। मथुरा में रहते २ श्रीकृष्ण को अकस्मात् गाकुत्स की याद आ जाती है। उनके नेत्रों से अश्रुधारा बहने लगती है तथा गोपियों की प्रणय लीलाओं का स्मरण करते ५ वे विरकुल निस्तम्ब हो जाते हैं। अपने विरह दुःख को दूर करने के विचार से अपनी सारी कथा वे उद्धवजी को सुनाते हैं। इसी प्रसंग में गोपियों की विरहवेदना का वर्णन करने के बाद राधा की मनोव्यथा का वे विशेष रूप से उल्लेख करने लगते हैं तथा उसको सान्त्वना देने के लिए उद्धव से गोकुल जाने की प्रार्थना करते हैं। इस प्रसंग में उद्धवजी को मथुरा से गोकुल तक का मार्ग भी बतलाया गया है।

सर्वप्रथम उन्हें मथुरा नगरी में ही म्थिन गोकर्ण नामक शिरजी के मन्दिर में जाने का परामर्श दिया गया है। तदनन्तर क्रमशः यमुनासरस्वती सगम, अग्निजा-कानन, अहूर्तीर्थ, फोटिफार्य प्रस्थ, सट्टीकरवन, कालियहृद, मृगहरप्रदेश, बद्धन्वप्राम, शारमलकला, सादारप्राम, रहेला, प्रीतशाराख्य दश, गोकुल का विद्युत्कारी नामक दक्षिण भाग, सोयात्रिक तटी, श्वतगण्डशैल और पावन नामक सरोवर का उल्लेख किया गया है। गोकुल भूमि के वर्णन प्रसंग में बड़ा की गोपियों के प्रेम पूर्ण लीलालाप, कर्मठ नर्मगोष्ठी तथा कृष्णजी की यात्रा के अथस्त पर उनके विलाप का भी वर्णन किया गया है।

इस प्रकार गोकुल में उद्धव के पहुँचने की समाप्ता करने के बाद सर्वप्रथम उन्हें कृष्ण की ओर से वृन्दावन के वृत्तों को आशीर्वाद देने, गावों से उनकी कुशन पृष्ठने, वृद्ध गोपियों के चरणों में प्रणाम कइने, श्रीदामा इत्यादि मिय साधियों का आलिंगन करने और नन्द तथा यशोदा के चरणों में प्रणाम करने का आदेश दिया गया है।

इसके बाद गोपियों के पास पहुँच कर उन्हें अपना सन्देश सुनाने की वृष्ण ने उद्धव से प्रार्थना की है। सामूहिक रूप से गोपियों के लिए अपना कुछ सन्देश देकर चन्द्रालोक, विशाखा और ललिता के लिए कृष्ण ने अपना कुछ विशेषसन्देश दिया है। तदनन्तर उद्धवजी से राधा के पास जाने की प्रार्थना की गई है। संभव है कि विशेष में राधा मृतप्राय हो, इसलिए कृष्णजी अपनी पंचवर्ण वासन्तीमाला भी उद्धव को देते हैं ताकि उसके सौम्य मन वह जीवित बनी रहे। इस प्रकार माला ले कर शनैः शनैः राधा के पास पहुँच जान के बाद उद्धव स उसे अपना सन्देश सुनाने के लिए बड़ा गया है।

सन्देश में राधा की विरह विषयना और अपनी आनुरता के वर्णन के बाद राधा को पुनर्मिलन का आदेशस्तन दिया गया है।

अन्त में उद्धर से गोकुल में कुछ समय तक ठहरने की प्रार्थना की गई है तथा उन्हें ब्रजभूमि की यात्रा के लिए प्रोत्साहित भी किया गया है। अन्त कृष्णजी की प्रार्थना से कवि ने काव्य का उपसंहार कर दिया है।

काव्य समीक्षा

श्रीमद्भागवत से कथावस्तु लेकर मेघदूत के अनुकरण पर यह सन्देश काव्य लिखा गया है। कवि ने अपनी कल्पना से कृष्ण की विरहस्थान, उद्धर की दूत कार्य करने के लिये स्तुति, मार्गवर्णन, गोपियों और राधा के चरित्र का चित्रण तथा सन्देश-कथन द्वारा मूल कथावस्तु को एक सर्वांगपूर्ण सन्देश काव्य का रूप दे दिया है। मेघदूत के अनुकरण पर समग्र काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया गया है। काव्य में कुल १३१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य में कथावस्तु का कोई विभाजन नहीं किया गया है। जिस तरह मेघदूत में नायक की ओर से नायिका के लिए सन्देश भेजा गया है, इसी तरह इस काव्य में भी नायक की ओर से अपनी प्रेमिकाओं के लिये सन्देश भेजा गया है। काव्य का मुख्य रस विमलम्भ शृंगार ही है। कृष्ण और गोपियों की प्रणय क्रीडाओं के वर्णन से काव्य श्रोतप्रोत् है। मार्ग वर्णन के प्रसंग में भी जिन जिन स्थानों का वर्णन किया गया है, वे भी कृष्ण की विभिन्न लीलाओं से सम्बद्ध होने के कारण से ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार मार्ग में आने वाले रहेला नामक एक स्थान का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

गोपेन्द्रस्य प्रनपरिसरे लम्धनुष्टिर्भजेथा
ता विख्याता कलितमहिलाचारहेला रहेलाम् ।
यामासाध प्रद्वितमुरलीकाकलीदूतिकोऽहम्
सायं गोपीकुलमकरयं सामि नेपथ्यनरम् ॥२६॥

सादार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कहा गया है—

जङ्घालेन क्षितिपतिपुरीं स्पन्दनेनानुविन्दन्
यत्रादार प्रियमकरयं द्वारि द्वैयङ्गधीनम् ॥२७॥

प्रीतशार नामक स्थान का भी वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

यत्र प्रीतानहमकरयं मित्रभावेन शयान्
द्वारं द्वारं विदितसमयो पल्लवीना दधीनि ॥३०॥

कवि ने गोकुल का तो यदा ही स्वामायिक और सत्य चित्रण पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है—

सोऽयं दधना मथननिनडाक्रान्तद्रिचक्रवालो
घोषस्तोय तव जनयिता योजनद्वन्द्वचुम्बी ।
दिन्येनाल निखिलजगती सपिवा तर्पयन्ती
भ्रातर्भूम्ना त्रिलसति त्रिधेर्गोमयी यत्र सृष्टि ॥२६॥

स्थानान्तर पर गोकुल में दौड़ते हुए गोशिशुओं का भी कवि ने बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है—

धापद्वयालाघलिम्बरतलप्रोच्चलद्वयालधीनाम्
यत्रोत्तुङ्गस्फटिरुपटलस्पर्धिदेहद्युतीनाम् ।
घ्राय घ्राय नपत्णशिवामुचतीना बलन्ते
वरसालीना चट्टलचट्टल शश्वदाटीकतानि ॥३०॥

इतना सब कुछ होते हुए भी वन, शैल और कुञ्ज इत्यादि दृश्य जगत् के वर्णन में कवि ने उतनी निपुणता नहीं दिखलाई है जितनी कि त्रिरहिणी और कृष्णपरायण गोपियों के मानसिक भावों के चित्रण में। काव्य का अधिकांश तो गोपियों की त्रिभिन्न भावनाओं के चित्रण से ही भरा हुआ है। सन्ध्यासमय गोकुल में कृष्ण से मिलने के लिए उत्सुक गोपियों की मानसिक भावनाएँ बड़ी सरस रीति से वर्णित की गई हैं। ऐसे ही एक स्थल पर कवि ने लिखा है—

रेणुर्नाय प्रसरति गवा भ्रमधारा कृशानो
धणुर्नासो गहनकुहरे कीचको रोरधीति ।
पश्योन्मत्तं रविरभिययो नाधुनापि प्रतीचीं
मा चान्चल्य कलय कुचयो पद्मरत्नीं तनोमि ॥३६॥

सन्ध्या समय अग्नि की घुमराशि तथा कीचक वासों के रव को सुनकर किसी गोपी को गोधूलि तथा कृष्ण के चशी घसाने का भ्रम हो जाता है और वह अपने शृंगार को पूर्ण किए बिना ही बाहर निकल जाना चाहती है। ऐसे अवसर पर उसकी प्रसाधिका द्वारा उसकी अधीरता रोकने के लिए यह वचन कहे गए हैं। गोपी की उत्सुकता का कवि ने कितनी सुन्दर रीति से वर्णन किया है।

कृष्ण के सम्बन्ध में गोपियों में परस्पर जो प्रेमपूर्ण वार्तालाप करि ने अपनी कल्पना से प्रस्तुत किया है, उसमें कदा २ बड़े सुन्दर भाव चित्र दीप्त पढ़ते हैं इसी प्रसंग में एक गोपी दूसरी गोपी से कहती है—

शोरिर्गोष्ठाङ्गमनुसरन् शिञ्जितैरेव मुग्ध
किद्रिएपास्तं परिहर दशोम्नाण्डयं मण्डिताङ्गि ॥
आरादुगीते कलपरिमिलन्माधुरीकं कुरङ्गे
लम्बे सघं सखि त्रियशता पागुग वस्तनोति ॥४१॥

किंकरीणी के मधुर रव ने मुग्ध हुए कृष्ण पर पुन कटाक्ष द्वारा आघात करना व्यर्थ ही है। फिर न इष्टान्त भी उदा सुन्दर ही दिया है। हिरन का सर्गनप्रेम तो प्रसिद्ध ही है।

स्थानान्तर पर एक गोपी राधा से कहती है—

तिष्ठन् गोष्ठाङ्गणभुवि मुहुर्लोचनान्त रिधत्ते
जातोत्कण्ठमनस मयि हरिर्द्वैहलीवेदिकायाम् ।
मिथ्यामानोन्नतिकरलिते किं गयाक्षार्पिताक्षी
स्थान्त हन्त ग्लपयसि वदि प्रीणय प्राणनाथम् ॥४५॥

‘गयाक्षार्पिताक्षी’ विशेषण से राधा की कृष्ण से मिलने की उत्कण्ठा प्रतीत होती है। अत उसका मान को मिथ्या ही समझा जाना चाहिये। कृष्ण को प्रसन्न करने का उसकी सगी का आदेश उचित ही है।

गोकुल में गोपियों की प्रेमोत्साह से पूर्ण नर्म-गोष्ठी का कृष्ण के मुख से कवि ने उदा भावपूर्ण वर्णन कराया है। एक गोपी अपनी सगी से कहती है—

निर्माय त्व थितर फलकं द्वारि कसारिमूर्त्या
वार वार दिशसि वदि मा माननिर्वाहणाय ।
यत् पश्यन्ती भजनपुद्गर रुद्धकण्ठीभतराऽहम्
साहृद्भारा प्रियसयि सुषं यापयिष्यामि यामम् ॥४६॥

कृष्ण से मान तभी निभ सफला है जब पास में उनका चित्र हो और घर के किसी भीतरी भाग में कानों को बन्द करके बैठा जाए, ताकि वहाँ का शब्द वित्तुल ही न सुन पड़े। फिर भी यह मान केवल एक प्रह्वर ही टिक सकता है। गोपी के इस वचन से उसके कृष्ण प्रेम का सहृदय पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं।

एक स्थान पर दो गोपियों में परस्पर निम्न वार्तालाप चलता हुआ यतलाया गया है—

वारं वारं मज्जसि सलिलच्छद्मना पद्मवग्धो
पुत्रीं ज्ञातस्तय सगि । रम पुण्डरीकं क्षणेऽसौ ।
चेत वाग्या भयति विशदा सारसाली न वा मे
ते न श्मेरं मुहुरभिलषाम्यच्युतं रत्नपद्मम् ॥४७॥

१ इयेन कमल दर्शन, कमलनयन कृष्ण ।

२ साल कमल, लक्ष्मी में अचुरत कृष्ण ।

गोपियों की श्लेष से अनुप्राणित इन उक्ति प्रत्युक्तियों में कितना वाक्चतुर्थे छिपा हुआ है।

कहीं-कहीं करि ने अपह्नुति अलकार की सहायता से भी कृष्ण का चरित्र काव्य में प्रस्तुत किया है। एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

हस्तेनाद्य प्रियसखि लसत्पुष्कराभेन दूरात्
रुष्णेनाह मदकलदृशा कम्पिताङ्गी विहृष्टा ।

इस पर उसकी सखी उसे सावधान करती है—

नीवैर्जटप भ्रमति पुरतो भ्रान्तचित्ते गुदस्ते
तदनन्तर बह गोपी फौरन ही बात पलट देती है
हृङ्कालिन्दीपुलिनविपिने दीप्रदन्तीश्वरेण ॥६१॥

यहां पर दीप्रदन्तीश्वर (गज) के लिये ऐसे ही विशेषण प्रयुक्त किये गये हैं जो कृष्ण के लिये भी उपयुक्त हो सकें। वास्तव अर्थ तो सूक्ष्म दृष्टि वाले पाठक समझ ही सकते हैं।

कृष्ण की मथुरा-यात्रा के अवसर पर भावी विरह की आशका से व्याकुल गोपियों के विलापवचन बड़े ही भावपूर्ण और हृदयस्पर्शी हैं। कृष्णजी प्रभात होते ही गोकुल से मथुरा जाने वाले हैं। इस समाद को सुनकर एक गोपी प्रार्थना करती है कि रात्रि लम्बी हो जाय। लेकिन उसकी प्रार्थना कौन सुनता है—

प्रातर्यात्रा नगपतिपुरे तध्यमान्तर्यं शौरे
श्रायामाय प्रियसखि मया यामिनी प्रार्थिताऽभूत् ।
पश्य क्षिप्रं प्रथितलघिमा पापिनीय प्रभाता
जायन्ते हि प्रचुरतमसो नानुकूला परेषु ॥६२॥

कृष्ण के विरह में प्राणां को छोड़ने के लिये तत्पर एक गोपी अपने हाथ में तलवार लिये द्युते है। इसलिये उसकी सखी अकूर से शीघ्र ही कृष्ण को रथ से उतार देने की प्रार्थना करती है —

आरादमे कलय नृपतेर्दूत निधूँतलज्जा
सज्जा तन्वीं किमपि त्रिपमं सादस कर्तुं मिच्छु ।
यानाद्यायद्विसृजसि पुरश्चन्द्रदासं न कृष्णम्
दस्तात्तायद्विसृजति सखी चन्द्रदासं न कृष्णम् ॥६३॥

१ चन्द्रदासम् = चन्द्रमा के समान दासवाल, चन्द्रदास = तलवार । कृष्ण = काला ।

भारी विरह की आशका से ही प्राणों को त्यागने के लिये गोपों का तत्पर हो जाना उसके अगाध प्रेम का परिचायक है। यमक अलंकार के आचरण में कवि ने एक गम्भीर भाव को कितनी सरलता से व्यक्त किया है।

आगे चल कर कवि ने कृष्ण के मधुरा चले जाने पर विरह कातर गोपियों के भावों का बड़ा सुन्दर चित्रण किया है। एक गोपी अपनी सर्पों से कहती है।

खेलद्ध शीतलयिनमनालोप्य तद् वक्त्रप्रिम्बम्
ध्वस्तालम्या यद्दहमदह प्राणकीटं विभर्मि ॥२०॥

प्रिय के दर्शन न होने पर अपने को अनाथ समझना तथा प्राणों को कीट के समान श्वितुच्छु समझना प्रेम की अनन्यता व्यक्त करता है। इसी प्रसंग में एक और गोपी अपने मन का हाल बताते हुये कहती है—

आशापाशे सखि नवनवै कुर्वती प्राणबन्ध
जात्या भीरु कति पुनरह वासराणि क्षयिष्ये ।
एते वृन्दावनविटपिन स्मारयन्तो त्रिलासान्
उत्फुरन्नास्तामम किल बलान्मर्म निर्मूलयन्ति ॥२३॥

गोपियों का विरह त्रिलाप इतना तीव्र और कष्टोत्पादक है कि गोकुल के पाम से जाने वाले यात्रियों को भी रुला देता है। इसीलिये तो यात्रियों ने पानों को बन्द कर भी गोकुल की सीमा के पास से निकलना बन्द कर दिया है—

इत्युन्नद्धै पशुपरमणीमण्डलीना विलापे
भूयोभूय कक्षकक्षैरद्य कीर्णान्तरस्य ।
उद्यद्वाप्या त्यजति परितो रुद्धकर्णा कराभ्या
दूरात्पान्धावलिरपि सरो यस्य सीमोपकण्ठम् ॥६०॥

गोपियों की विरहावस्था के दर्शन के बाद कृष्ण ने उद्युक्त को अपना जो सन्देश सुनाया है, उससे गोपियों के प्रति कृष्ण के प्रेम की अगाधता तथा तीव्रता का बड़ा स्पष्ट परिचय मिलता है। कृष्णजी कहते हैं—

ध्याय ध्यायं नयनमद सौहृद् व मुक्कण्ड्य ।
गाढोत्कण्ठाफलमपरपश वासराणि क्षिपामि ॥१०४॥

विशाखा नाम की गोपी का मधुर और कोमल वार्तालाप तो कृष्ण को हमेशा ही याद आता रहता है —

गम्भीराणि प्रमदशुभ्रिगूँटनमप्रयथे
माप्यीकाना मधुरिप्रमदाकीर्णिविष्यसनानि ।
सोत्कण्ठं मे स्मरति हृदयं त्रयामले । कोमलानि

प्रेमोत्तङ्गस्मितपरिचितान्यद्य ते जटिपतामि ॥११८॥

ललिता नाम की गोपी की भी कृष्ण को कुछ कम चिन्ता नहीं है। ललिता से ये पूछते हैं—

न्यस्ताङ्गी मे सुगभिणि भुजन्तम्भयोरन्तगले
भूयोभिस्त्व रदसि ललिते केलिभिर्लालितासि ।
अन्तश्चिन्ताविधुरमधुना पाशुपु जे लुठन्ती
हन्त म्लाना रचपसि कथ प्राणसन्धारणानि ॥११३॥

प्रिय के त्रियोग में प्रेयसी का चिन्तित रहना, धूल में लोटना और मलिन रहना स्वाभाविक ही है। कभी कभी प्राणों पर भी सकट आ सकता है। इसलिये कृष्ण का उसके सम्बन्ध में यह प्रश्न पूछना नितान्त प्रासंगिक ही है।

गोपियों के लिये अपना सन्देश सुना कर कृष्ण ने राधा के प्रति अपना विशेष सन्देश भी दिया है। सर्व प्रथम राधा का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में कृष्ण जी उद्भव से कहते हैं—

त्व मच्छेतोभयनवडभीप्रीढपारायतीं ताम्
राधामन्त क्लमरुरलिता सम्भ्रमेणजिहीया ॥११६॥

राधा के लिए पारायती (कपोतिका) की वही ही सुन्दर उपमा कवि ने दी है।

राधा की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सा पत्यके विशलयद्रलं कटिपत तत्र मुप्ता
गुप्ता नीरस्त्रन्त्रितदशा चक्रवाले सखीनाम् ।
द्रष्टव्या ते क्कशिमकलिता कण्ठनालोपकण्ठ
स्पन्देनान्तरपुरनुमितप्राणसङ्गा वराङ्गी ॥११७॥

मुक्च्छाया मुद्गरमुमना क्षीणिपृष्ठे लुठन्ती
वद्वापेक्षम् विलसति गते माधवे माधवीयम् ॥११८॥

विरहिणी राधा के ताप, वृथाता, अग मालिन्य, उन्माद और जड़ता का कथन एक साथ वैसा भावपूर्ण चित्रण यदा प्रस्तुत किया है।

राधा की विरहावस्था का वर्णन का याद कृष्ण ने उद्भव को राधा के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश बताया है। सर्व-प्रथम ये कहते हैं कि राधा के कष्ट का उन्हें (कृष्ण को) ध्यान तो है, लेकिन कोई प्रतिकार करने में ये अपने को असमर्थ पाते हैं—

नीति शोष विरहरिणा सर्वतो हृत्तडागे
 जाने कण्ठस्थलत्रिलुटितप्राणमीनामि तन्वि ।
 दूरं सम्प्रायविरलसुहृन्मारुतैर्वारितोऽहम्
 तृष्णाम्भोधौ विलसदमृतालट्टित किं करिष्ये ॥१२३॥

उपर्युक्त पत्र में रूपक के द्वारा राधा की दयनीय अवस्था का कवि ने वक्र स्पष्ट निरूपण किया है। अन्त में कृष्ण राधा को सान्त्वना देते हैं—

विन्दन् यशोभ्रुरितपद्मो नेत्रधीधीमकम्मात्
 अन्तर्याधाकवलितधियो धातुभिर्धूमलोऽहम् ।
 फीटानु जे लुटितपुपुष आन्तमानन्दधारा-
 कटलोलेस्ते रदसि सदसोत्कुलमुत्लासयिष्ये ॥१२४॥

विरहरि से शुष्क हृदय प्राणी को आनन्द की धाराएँ ही तृप्त कर सकती हैं।

इसके बाद कृष्ण राधा को अन्तिम आशवासन देते हुए कहते हैं—

प्रोमोन्नाटादहमधियहन् याप्यधारामकाण्डे
 गण्डोत्सङ्गे स्मरपरिभरे पाण्डुरे दत्तसुम्य ।
 कुर्यन् कण्ठप्रट्टविलसित नन्दयिष्यामि सत्यम्
 मान्द्रेण त्वा सदचरि परिष्यटगरङ्गोत्सवे ॥१२५॥

विरहिणी नायिका के लिए इस सन्देश से यह कर सुरदायक और क्या बात हो सकती है।

सन्देश के बाद उदय को गोकुल में कुछ काल ठहरने का परामर्श देने के साथ साथ काव्य भी समाप्त हो जाता है।

काव्य के आघोषात् अनुशीलन से यह कहा जा सकता है कि कवि की वर्णन शैली बड़ी समशील है। विषय विस्तार होत हुए भी काव्य से श्रोताओं अथवा पाठकों को विरक्ति नहीं होती है। राधा और कृष्ण तथा गोपियों के विरह वर्णन में कवि ने बड़ी कुशलता दिखलाई है। स्थान स्थान पर कृष्ण की गस-लीला का वक्र सरस वर्णन पाया जाता है।^१ यद्यपि इन सब बातों में भी मद्भाग-

१. वेयं श्यामा स्फुरति सरले । गोपक्या विमर्शम्
 प्राप्ता सत्यं तथ मृगपते निर्मितासौ वषण्या ।
 आलिङ्गामु मुञ्चति तथा कुर्यन्ती मा विदित्या
 नारीयश द्विपमुपवपी मानिनी यत्र राधा ॥६४॥ इत्यादि

वत् का प्रभाव स्पष्ट है, फिर भी कोमल और नवीनतम पद विन्यास द्वारा कवि ने यह सब विषय नरिन से बना दिए हैं ।^१

जैसा कि प्रथम कहा जा चुका है कि कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर काव्य में भन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है, इसलिए कहीं २ पर भाषा तथा दोनो ही में मेघदूत की छाया स्पष्ट दीख पड़ती है । यथा अक्रूरतीर्थ के वर्णन प्रसंग में इस काव्य में कहा गया है—

यज्वानस्ते यदपि भगतो विप्रिया हेलनान्मे
नम्रस्तेषां तदपि भग्नद्वाररथ्या जिहीथा ।
गायन्तीनां मदनुचरितं तत्र त्रिप्राङ्गनानाम्
आलोकाय स्पृहयसि न चेदीक्षणीर्वञ्चितोऽसि ॥१७॥

इस पद्य में मेघदूत का अनुकरण स्पष्ट ही है ।

ललिता नामक गोपी को अपने सन्देश में सान्त्वना देते हुए कृष्णजी कहते हैं—

सौदव्य ते कथमपि बलाच्चक्षुषी मुद्रयित्वा
तीक्ष्णोत्ताप हतमनसिजीहामविक्रान्तचक्रम् ॥११४॥

यदा पर—शेषान् मासान् गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ॥मे० २ ॥४६॥

पक्ति का प्रभाव जिस पाठक स्वयं जान सकते हैं ।

एक अन्य स्थल पर एक गोपी के अपनी सखी के प्रति इस कथन में—

आशापाशे सखि नग्नरै कुर्वती प्रणवन्धम्
जात्या भीरु कति पुनरह वासराणि क्षयिष्ये ॥८३॥

मेघदूत के—आशाबन्धं कुसुमसदृशं प्रायशो हृद्यङ्गनानाम्
सद्य पाति प्रणयि हृदयं विप्रयोगं दण्डि ॥१॥१०॥ की ही प्रतिध्वनि है ।

कहाँ कहीं कवि ने अपने अनुभव के आधार पर बहुत सी व्यावहारिक उपयोगी बातें भी काव्य में समाविष्ट कर दी हैं । यथा—

१ तत्तत्तन्व्य स्मरसि विपिने फुल्लशशे विशाये
कर्पन्तीर्थी तथ मुहुरह वीक्ष्य वृद्धा मिलन्तीम् ।

कल्याणी मे वितर कित्थे हन्त खेत्तान्तराल
गुप्ता गुञ्जावलिमिति यदन् यद्विलसस्तदासम् ॥१०६॥

- (१) न्यस्त साधीयसि सफलतामर्थभारो हि धत्ते ॥३॥
 (२) सन्तस्तुष्टे सुहृदि हि निजा तुष्टिमेयामनन्ति ॥११॥
 (३) मन्दाक्रान्ता न खलु पदवीं साधय शीलयन्ति ॥१५॥
 (४) भर्तुर्दायादपि हि कुशला हन्त दुप्यन्ति भृत्या ॥१००॥

कृष्णजी की अपने साधियों के साथ बाललीलायें, गोपियों के साथ प्रणय-क्रीडायें तथा दुष्ट दैत्यों के दमन की पराक्रम कथायें स्थान स्थान पर इस काव्य में वर्णित की गई हैं। अतः कृष्ण भक्तों के लिये भी यह काव्य बड़ा ही आदरणीय है।

रूपगोस्वामी का हंसदूत

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा यों तो कार्पनिक ही है, लेकिन श्रीमद्भागवत से प्रेरणा लेकर ही यह काव्य लिखा गया है। श्रीमद्भागवत में वर्णित मूल घटना में अपनी प्रतिभा से कवि ने एक और चमत्कारपूर्ण घटना का समावेश कर दिया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। भगवान् श्रीकृष्ण जब अक्रूर के साथ मथुरा चले जाते हैं, तब राधा उनके विरह में बड़ी चिन्तित रहने लगती है। किसी दिन अपने खिन्न मन को बहलाने के लिये वह अपनी सखियों के साथ यमुना तट पर जाती है, लेकिन वहाँ पूर्व परिचित स्थानों को देखकर कृष्ण की स्मृति के आ जाने से वह तत्काल मूर्च्छित हो जाती है। उसकी सखियाँ कमल के पत्रों से उसका उपचार करती हैं। इस तरह जब वह होश में आ जाती है, तब ललिता नाम की उसकी एक सखी यमुना के घाट पर कमलपत्रों के ऊपर उसको लिटा देती है। इसी अवसर पर ललिता को एक हंस दिखाई पड़ जाता है। वह उसे ही अपना दूत बनाकर कृष्ण की सभा में मथुरा भेजती है।

जिस मार्ग से अक्रूर कृष्ण को मथुरा ले गया था, इस के लिये भी मथुरा जाने ही मार्ग बतलाया गया है। यमुना तट से आगे बढ़ने पर सर्व प्रथम मार्ग में कदम्ब वृक्ष बतलाया गया है। यह वही कदम्ब वृक्ष है, जिस पर कि यमुना में स्नान करती हुई गोपियों के वस्त्र अपहरण कर भगवान् कृष्ण जा बैठे थे। इस वृक्ष

के वाद गोपियों के साथ विहार करने की कृष्ण की रासस्थली, फिर वासन्ती लता से विग हुआ कृष्ण का चतु शाल सदन और तदनन्तर गोवर्धन पर्वत बतलाया गया है। इसके बाद कदम्बरन-वाटी में से होते हुए तथा अरिष्ट नामक असुर के पर्वत के समान बड़े और चिरशुष्क सिर की मार्ग में देखत हुए आगे बढ़ने पर भाण्डीरवन (अजोर व पेड़ों का वन) और ब्रह्मा के मोहनस्थान पर इस के पहुचने का उल्लेख किया गया है। तदनन्तर कालियहृद के मधुर जल को पीकर तथा उसके निकट ही विराजमान वृन्दा देवी की वन्दना करके आगे बढ़ते हुए एकादश तथा द्वादश वन को पार करने के बाद इस के मधुरा पहुच जाने का वर्णन किया गया है। मधुरा नगरी तथा कृष्ण के अन्त पुर और क्रीडागृह का भी इस प्रसंग में कुछ वर्णन किया गया है। तदनन्तर कृष्ण के मधुर स्वरूप का कुछ दिग्दर्शन कराने के बाद उचित अरसर देखकर, कृष्ण की अपना सदेश सुनाने की ललिता ने इस से प्रार्थना की है। सदेश में सर्व प्रथम ललिता ने कपिला गाय, वासन्ती लता, गोकुल और गोपियों की दैन दशा का वर्णन किया है। तदनन्तर राधा की कृष्णविरहजन्य विभिन्न भावनायें, चेष्टायें और अस्थायी वर्णित की गई हैं।

अन्त में इस से भगवान् कृष्ण की वनमाला, मकर कुण्डल, कीस्तुभमणि और पाञ्चजन्य शूल की प्रशंसा करने के लिये कहा गया है ताकि वे भी इस के अनुकूल हो जायं। इसके बाद ललिता ने इस से कृष्ण की दश अवतारों की कथा सुनाने का परामर्श दिया है। इस प्रसंग में कृष्णाजी को मीन, कूर्म, वराह, बृसिंह, वामन, परशु राम, राम, बलदेव, बुद्ध और कल्कि इन अवतारों की कथा के द्वारा विविध आक्षेप दिये गये हैं तथा कहीं-० उनकी प्रार्थना भी की गई है।

इस तरह सन्देश सुनाने के बाद अन्त में इस को मधुरा जाने के लिये प्रोत्साहित किया गया है। यहा पर ही काव्य की कथा भी समाप्त हो जाती है।

काव्य समीक्षा

श्रीमद्भागवत के आधार पर लिखे गये दूतकाव्यों में यह काव्य अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। काव्य की कथा यों तो कार्पणिक ही है, फिर भी कवि ने प्रेरणा श्रीमद्भागवत से ही प्राप्त की है। इस को दूत बनाने का विचार भी श्रीमद्भागवत से ही लिया गया है। श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध में ६० वें अध्याय में श्रीकृष्ण के चरित का वर्णन किया गया है। इस प्रसंग में भागवत कार ने कृष्ण के सम्यन्ध में लिखा है कि उनकी रानिया उनके प्रेम में मग्न रहती थी और उनका ही चिन्तन करती रहती थी। किसी समय कमलनयन श्रीकृष्ण का चिन्तन करते-करते उन्मत्त की तरह वे कुछ प्रलाप करने लगीं। उस प्रलाप में उन्होंने कुररी (टिटिहरी), चकवाकी, चन्द्रमा, मलयानिल, मेघ, कोकिल, गोवर्धनपर्वत और नदियों को सम्बोधन किया तथा उनसे भी कृष्ण के सम्यन्ध में वार्तालाप किया। अन्त में उन्होंने इस को सम्बोधन किया—

हस स्यागतमास्यना पित्र पयो ब्रूह्यङ्ग शीरे कथाम् ।
 दूतं त्वा नु रिदाम कच्चिदजित स्वस्त्यास्त उक्त पुरा ।
 किं वा नश्चलसौहृद स्मरति त कस्माद्भजामो वयम् ।
 सौद्रालापय कामद श्रियमृते सेवैकनिष्ठा स्त्रियाम् ॥२४॥

इस पद्य में स्पष्टत ही हंस के दूत होने का उल्लेख पाया जाता है। अतः यह कहना असंगत न होगा कि लेखक ने इस अवतरण के आधार पर ही हंस को दूत बनाने की कल्पना की है तथा अपने काव्य का नाम भी हंसदूत रख दिया है।

सन्देश काव्यों में प्रायः मगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस कवि ने काव्य के आदि में कृष्ण की स्तुति में मगलाचरण भी किया है—

दुकूल विभ्राणो दलितहरितालद्युतिहर
 जवापुष्पभ्रंणीरचिरचिरपादाम्बुजतल ।
 तमालश्यामाङ्गो दरदसितलीलाञ्चिनमुप
 परानन्दाभोग स्फुरन्तु हृदि मे कोऽपि पुरप (कृष्ण) ॥१॥

कृष्ण काव्य में कृष्ण की प्रार्थना उचित ही है। मेघदूत से भी कवि ने इस काव्य के लिखने की प्रेरणा कुछ अशों में अवश्य ली होगी। फिर भी काव्य के बाह्य विधान में मेघदूत का प्रभाव स्पष्ट दिखनाई नहीं पड़ता है। काव्य में कुल १४२ श्लोक हैं। कलकत्ता के धनुमती सस्करण में केवल १०१ ही श्लोक पाए जाते हैं। समग्र काव्य में शिपरिणी छन्द का ही प्रयोग किया गया है। कथा को पूर्व भाग और उत्तर भाग के रूप में न बांट कर एक साथ ही रखा गया है। सन्देश भा नायक की ओर से नायिका को नहीं भेजा गया है, वरिक्त नायिका की सखी ने नायिका की ओर से उसके प्रेमी के पास भेजा है।

यद्यपि भौगोलिक दृष्टि से इस काव्य का मार्गदर्शन कुछ भी महत्त्वपूर्ण नहीं है, फिर भी जिन स्थानों का कवि ने काव्य में वर्णन किया है, वे पाठकों के हृदय को आकर्षित किये बिना नहीं रह सकते। कुछ तो उनका प्राकृतिक सौन्दर्य ही चित्त कर्षक है। कुछ कृष्ण की लीलास्थली होने के कारण वे भक्तों के लिये स्वयं ही अतीव आनन्ददायक हैं। ऐसे ही स्थलों में सब प्रथम गोवर्धन गिरि आता है। गोवर्धन गिरि का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

सकृद्दृशीनादध्रजणमिलिताभीरवनिता—
 रह क्रीडासाक्षी प्रतिपदलतासदमसुभग ।
 स धेनूना धन्धुर्धुमथनखट्वावितशिल'
 करिष्यत्यानन्द सपदि तत्र गोवर्धनगिरि ॥२१॥

प्राकृतिक सुषमा ने साथ साथ कृष्ण की प्रणयलीलाओं के केन्द्र होने के कारण अरश्य ही गोवर्धन पर्वत दर्शकों को आनन्द दे सकता है ।

कालियहृद के वर्णन में भी कवि ने गोपियों की आनुरता, उत्कराग्र और चिन्ता का बड़ा ही सुन्दर चित्र अंकित किया है । ललिता कहती है—

उदञ्चन्नेत्राम्भ प्रसरलहरी पिच्छिलपथ—
स्दलत्पादन्यासप्रणहितविलम्बाकुलधिय ।
हरी यस्मिन्मग्ने त्वरितयमुनाकूलगमन—
स्पृहाक्षिता गोप्यो ययुरनुपद कामपि दशाम् ॥२६॥

एक तरफ गोपियों को शीघ्रता भी है । दूसरी ओर नेत्र जल से मार्ग के पिच्छिल हो जाने से पैर फिसलने का डर भी है । अतः विवश हो उन्हें विलम्ब करना पड़ रहा है । ऐसे अरसर पर उनकी मानसिक अवस्था का अनुमान सहृदय पाठक ही कर सकते हैं ।

मथुरा नगरी भी कम सुन्दर नहीं बतलाई गई है । ऊँचे २ मकान, फूलों से भरे हुए उद्यान तथा यमुना का तट और यादव लोग तो उसकी शोभा बढ़ाते ही हैं—

पुरी यस्मिन्नास्ते यदुकुलभुजा निर्मलयशो—
भराणा धारामिर्धवलितधरित्रीपरिसरा ॥३२॥
निकेतैराकीर्णा गिरिशगिरिडिम्भप्रतिभट्टे—
रवप्रभस्तम्भारलिपिलसितै पुष्पिनधना ।
निविष्टा कालिन्दीतट भुवि तथाधास्यति सखे
समन्तादानन्द मधुरजनवृन्दा मधुपुरी ॥३३॥

लेकिन मथुरा का सौन्दर्य किसी और बात में ही है । कृष्णजी जब मथुरा गये थे, तब वहाँ की स्त्रियों की कृष्णदर्शन लालसा का जो सुन्दर चित्र कवि ने अंकित किया है, वह बड़ा ही भावपूर्ण है । मथुरा को एक स्त्री का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

असद्य विभ्राणा पदमधृतलाक्षारसमसौ
प्रयाताऽह मुग्धे विरम मम वेशे किमधुना ।
श्रमन्दादशरु सभि पुरपुरन्धीकलकलाद्
अलिन्दामे धृन्दावतकुसुमधन्या विजयते ॥३६॥

कृष्ण के दर्शन के लिये यह स्त्री कितनी उत्सुक है । उसे अपने शृंगार की विरहूल चिन्ता नहीं है । यह डरती है कि कृष्ण कहीं आगे न निकल जाय और उसे फिर उनके दर्शन का अरसर ही न मिले ।

इसी प्रकार एक स्त्री ने कृष्ण के दर्शन कर लिये हैं। उसकी भी विचित्र अवस्था हो गई है। उसकी सखी अनुमान लगाती है कि हो न हो, कृष्ण के दर्शनों से ही उसकी यह अवस्था हुई है—

मुहु शून्या दृष्टिं वहसि रहसि ध्यापसि सदा
शृणोपि प्रत्यक्ष न परिजनविद्यापनशतम् ।
अत शके पङ्क्तेरुहमुखि ययो श्यामलरुचि
स यूनामुत्ससस्तव नयनवीथीपथिकताम् ॥३८॥

उपर्युक्त पद्य में कृष्ण के प्रति मथुरा की किसी नारी के पूर्वराग वा कवि ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। इसी प्रसंग में आगे चलकर कहा गया है कि कोई स्त्री कृष्ण के वियोग में रोने लगती है। उसकी सखी उसे सान्त्वना देती है कि उसे कृष्ण अवश्य ही फिर मिलेगा—

विलज्ज मा रोदीरिह सपि पुनर्यास्यति हरि—
स्तवापाङ्गक्रीडानिविडपरिचर्युर्ग्रहिलताम् ॥३९॥

कवि ने ललिता के द्वारा कृष्ण के स्वरूप की जो भाफी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की है, वह भक्तों तथा भावुक पाठकों दोनों ही के लिए आनन्ददायक है। ललिता हस से कहती है—

उदञ्चत्कालिन्दीसलिलसुभगम्भावुकरुचि'
फपोलान्ते प्रेङ्गन्मणिमकरमुद्रामधुरिमा ।
घसान कौपेय जितकनकलक्ष्मीपरिमल
मुकुन्दस्ते साक्षात् प्रमदसुधया सेदयति दशो ॥४०॥

आगे चलकर कृष्ण के अग प्रत्यग के सौन्दर्य का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया गया है। कृष्ण के विशाल वक्ष स्थल का वर्णन करते हुए कहा गया है—

उरो यस्य स्फार स्फुरति घनमालावलयितम्
धितन्यानं तन्वीजनमतसि सद्यो मनसिजम् ।
मरीचीभिर्यस्मिन् रविनिवद्धतुल्योऽपि यहते
सदा खद्योताभा भुवनमधुर कौस्तुभमणि ॥४१॥

कृष्ण के विशाल तथा घनमाला से शोभायमान वक्ष स्थल को देखकर कौन मुग्ध नहीं होगा ?

उनकी भुजाओं का भी सौन्दर्य कम नहीं है। ललिता कहती है—

समन्तादुन्मीलद्वजलभिदुपलस्तम्भयुगल-
प्रभाजैत्र शेशिद्विजलुलितवेयूरललितम् ।
स्मरकलाम्यदुगोपीपटलहठकण्ठग्रहपर
भुजद्वन्द्व यस्य स्फुटसुरभिगन्ध विजयते ॥६०॥

कृष्ण के मुखारविन्द का वर्णन करते हुए कहा गया है—

जिह्वीते साम्राज्यं जगति नखलाण्यलहरी-
परीपाकस्थान्तमुदितमदनावेशमधुरम् ।
नटदुभ्रधूरलीकस्मितनखसुधाकेलिसदनम्
स्फुरन्मुक्तापङ्क्तिप्रतिमरत्न यस्य वदनम् ॥६१॥

कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर कवि ने उनके हृदय में आनन्द की लहर उमड़ा दी है। इस को कृष्ण के स्वरूप का कुछ परिचय देकर ललिता कहती है कि गोपियों का सन्देश कृष्ण को तब न सुनाया जाय, जब वे मथुरा की परिष्कृत बधि वाली रमणियों के पास बैठे हों, हो सकता है तब वे गोकुल की ग्रामीण स्त्रियों की बात बिरकुल ही न सुनें—

त्रिलोकेश्या कृष्णमदकलमरालीरतिकला-
विदग्धव्यामुग्धयदि पुरवधूविभ्रमभरै ।
तदा नास्मान् ग्राम्या श्रवणपदमीं तस्य गमये
सुधापूण्ये चेत कथमपि न तक मृगयते ॥६२॥

उचिन अस्मिन् देख कर ही इस को अपना सन्देश कृष्ण के लिए सुनाना चाहिए। जब कोयल झुक रही हो और सुरभिन हराए चल रही हों, तब कृष्ण को अवश्य ही वृन्दावन का स्मरण होगा। वन, ऐसे ही अस्मिन् पर ललिता इस से सन्देश सुनाने की प्रार्थना करती है—

यदा वृन्दाण्यस्मर्यालहरीहेतुरमल
पिकाना वेवेष्टि प्रतिहरितमुञ्चै कुट्टुगतम् ।
यदन्ते वा याता स्फुरितगिरिमल्लीप्रिमल्ला-
स्तदैवास्माकीना गिरमुपहरेया मुरभिदि ॥६३॥

इसके बाद सन्देश प्रारम्भ होता है। कृष्ण के प्रियोग में माधवीजना तक को रोता हुआ बतलाया गया है—

समीपे नीपाना त्रिचतुरदला हन्त गमिता
स्थया मारुन्दस्य प्रियसद्वचरीभावनियतिम् ।

इय सा दासन्ती गलदमलमाध्वीकपटली-
मिपादप्रे गोपीरमया रदती रोदयति न ॥६७॥

कृष्ण-प्रियोग में गोपियों के स्त्रय रोने का कवि ने कैसे चमत्कार पूर्ण ढंग से यद्दा वर्णन किया है। आगे चलकर ललिता कृष्ण से वृन्दावन में आने के लिये मना ही कर देती है। यह कहती है कि वृन्दावन की लतायें आजकल प्रियमय हो गई हैं, तभी तो गोपियाँ उनके पुष्पों को सूँघ कर एरुदम मूर्छित हो जाती हैं—

त्वया नामन्तव्य कथमिह हरे गोष्ठमधुना
लताश्रेणी वृन्दावनभुवि यतोऽभूष्णिपमयी ।
प्रसूनाना गन्ध कथमितरथा वातनिहितम्
भजन् सद्यो मूर्छा बहति निवहो गोपसुदशाम् ॥७०॥

कवि ने इस पद्य में गोपियों की कृष्ण विरहजन्य मूर्छा तो बतलाई ही है, साथ में वृन्दावन की लतायें भी उनके विरह में वदलती हुई दिखलाई गई हैं।

ललिता कृष्ण को उपालम्भ देने में भी नहीं हिचकती है—

कथ सङ्गोऽस्माभि सद्द समुचित सम्प्रति हरे
वय ग्राम्या नार्यस्त्वमसि नृपकन्याचितपद ।
गत कालो यस्मिन् पशुपरमणीसङ्गमकृते
भयान् व्यग्रस्तस्थो तमसि गृहवापीविटपिन ॥७१॥

फिर वह कहती है कि कृष्ण जो हम को छोड़ कर चले गए हैं, इसमें उनका कोई दोष नहीं है। श्याम वर्ण वालों (मलिन आत्माओं) का तो पैसा स्वभाव ही होता है—

वय त्यक्ता स्वामिन् यदिह तव किं दूषणमिदं
निसर्गं श्यामानामयमतितरा दुष्परिहर ।
कुहकण्ठैरण्डावधिसहनिवासात् परिचिता
रिसृज्यन्ते सद्य कलितनयपक्षैर्वलिभुज ॥७२॥

कोयल और कौश्रों के दृष्टान्त को देकर कवि ने कृष्ण द्वारा गोपियों के मूल जाने का यद्दा यथार्थ चित्रण किया है।

आगे चलकर ललिता कृष्ण से कहती है कि तुमने गोपियों को मुला दया इसकी कोई चिन्ता नहीं, पर यह तो बताओ कि राधा को क्यों मुला दिया है—

मया प्रष्टव्योऽसि प्रथममिति वृन्दावनपते ।
किमादो राधेति स्मरसि कृष्ण कर्ण युगलम् ॥७३॥

राधा की विरहवस्था का वर्णन करते हुए यह कहती है—

तरङ्गै कुर्वाणा शमनभगिनीलाघवमसौ
नदीं काञ्चिद्गोष्ठे नयनजलपूरैरजनयत् ।
इतीयास्या ह्येपाद्भिमतदशाप्रार्थनप्रयीं
मुगारे । विद्यति निश्चयति मानी न शमन ॥७६॥

राधा के लगातार रोते रहने से जो नदी बनी है, उसके सामने यमुना भी तुच्छ जान पड़ती है। अपनी बहिन के इस तिरस्कार से यमराज भी राधा से हृष्य करने लगा है और उसकी मृत्यु प्रार्थना को विल्कुल सुनता ही नहीं है। कवि ने कृष्ण वियोग में राधा के लगातार रोते रहने और मृत्यु के चाहने का कौसी भाव भगिनी के साथ वर्णन किया है।

ललिता फिर कहती है कि राधा के प्राणरूपी हरिश्च आजकल में उसके शरीर रूपी वन से निकलने वाले ही हैं, क्योंकि उसके शरीररूपी वन में कृष्ण के विरह की आग लगी हुई है तथा कामदेवरूपी शिकारी अपने बाणों से उसे निरन्तर पीड़ा पहुँचा रहा है—

समन्तादुत्ततस्तत्र विरहटावाम्निशिक्षया
कृतोद्देग पञ्चाशुगमृगयुवेधन्यतिकरै ।
तनूभूत सधस्तनुजनमिदं हास्यति हरे
दृढादध श्वो वा मम सहचरीप्राणहरिण ॥८६॥

रूपक के आचरण में कवि ने राधा की विरहवेदना का बड़ा मार्मिक चित्र यहाँ पर अन्त किया है।

राधा की दशा बताने के बाद ललिता कहती है—

त्रिशीर्षाङ्गीमन्त्रं णविलुठनादुत्कलिषया
परीता भूयस्या सततमपरागव्यतिकराम् ।
परिष्पन्नामोदा विरमितसमस्तालिङ्गुफाम्
विधो ! पादस्पर्शादपि सुखय राधाकुमुदिनीम् ॥८७॥

पादस्पर्श की प्रार्थना से कम और क्या प्रार्थना हो सकती है? राधा को कुमुदिनी तथा कृष्ण को चन्द्रमा का रूपक देकर कवि ने राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की भी व्यंजना की है। अन्त में ललिता कृष्ण से कहती है कि तुम्हारे वियोग में राधा जो-जो विलाप करती है, यह सब ठीक-ठीक कौन पतला सकता है। उसकी मनोव्यथा का अनुमान मेरे प्रति बड़े हुए निम्न वचनों से आप म्थय लगा सकते हैं। कर्मा ? यह मुझसे कहती है—

मनो मे ह्य कष्ट ज्वलति किमह हन्त करधै
 न पार नावार किमपि कलयाम्यस्य जलधे ।
 इय जन्दे मूर्ध्ना सपदि तमुपाय कथय मे
 परामृश्ये यस्माद्धृतिकणिकयापि क्षणिकया ॥१०४॥

असीम विरह वेदना में अत्र केवल मृत्यु ही उसका एक सहारा रह गया है—

प्रयातो मा हित्वा यदि विबुधचूडामणिरसौ
 प्रयातु मञ्जुन्द मम समयधर्म (मृत्यु) किल गति ॥१०५॥

अत किसी और के लिये नहीं, तो राधा के लिए तो कम से कम कृष्ण को वृन्दावन वापिस आना चाहिए ही। मुत्पतया सन्देश में यही बातें कही गई हैं।

यद्यपि ग्राह्य रूप से कान्य में मेघदूत का प्रभाव दिखलाई नहीं पड़ता है, फिर भी कहीं कहीं मेघदूत की झलक काव्य में विद्य पाठक पा ही सकते हैं। ललिता हम को दूत मनाती है। इस अरसर पर हंस के दूत बनाए जाने का समर्थन करते हुए कवि कहता है—

न तस्या द्रोपोऽय यदिह विहग प्रार्थितवती
 न कम्मिन् विश्रम्भ दिशति हरिभक्तिप्रणयिता ॥॥

कालिदास ने भी मेघ के दूत बनाए जाने पर अपनी ओर से उचित समर्थन प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त हंस से सन्देश ले जाने की प्रार्थना करने के बाद उसकी स्तुति करते हुए ललिता कहती है—

पवित्रेषु प्रायो विरचयसि तोयेषु वसति
 प्रमोद नालीके (न अलीके) बहसि विशदात्मा स्वयमसि ।
 अतोऽह दु खार्ता शरणमग्ला त्वा गतवती
 न भिक्षा सत्पक्षे व्रजति हि कदाचिद्धिफलताम् ॥६॥

इस स्थल में भी मेघदूत का ही अनुकरण किया गया है।

कृष्ण के केलिनिलय का वर्णन करते हुए ललिता कहती है—

भगान् द्रष्टा हेमोल्लिपितदशमस्कन्धचरितै-
 लंसङ्घित्तिप्रान्त भुरविजयिन केलिनिलयम् ॥८६॥

समय है कि कवि ने कृष्ण के क्रीडागृह की भित्तियों के भाग्यत के दशम स्कन्ध की घटनाओं से अित्रित होने का विचार मेघदूत में यज्ञगृह के वर्णनप्रसंग में आई हुई—द्वारोपान्ते लिपितवपुषी शङ्खपत्नी च दृष्ट्वा—पंक्ति से लिया हो।

कृष्ण के क्रीडागृह के अलिन्द में मरकतरचित र्याष्ट्र पर रात्रि में मयूर को निधाम करता हुआ बताया गया है--

अलिन्दे यस्यास्ते मरकतमयी यष्टिरमला
श्यालुर्या रात्रौ मदकलकलापी कलयति ॥४७॥

कवि ने यह भाग अग्रण्य ही मेघदूत से ग्रहण किया है। वहाँ भी इस प्रसंग में ऐसा ही वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार राधा के विरह वर्णन प्रसंग में एक स्थल पर इस काव्य में कहा गया है कि राधा तमाल के रस से पृथ्वी पर कृष्ण का चित्र बनाती है और उसका साक्षात् कर्ण की तरह ही आलिंगन भी करती है--

मग्नन्त सन्तप्ता विदलिततमालाट्क्षुररसै-
रिलित्य भ्रमङ्गीकृतमदनकोण्डकदनम् ।
निधास्यन्ती कण्ठे तव निजभुजावत्तरिमसौ
धरण्यामुन्मीलज्जडिमनिविडाङ्गी विलुडति ॥८४॥

इस पद्य में भी मेघदूत के 'दयामालित्य प्रणयकुपिताम्' इत्यादि प्रसिद्ध पद्य की छाया स्पष्ट विद्यमान है।

श्री रूप गोस्वामी ने उद्भव सन्देश और हसदूत यह दो दूत काव्य लिखे हैं। श्रीकृष्णमाचारियर ने अपने 'कलासिकल सस्कृत लिटरेचर के इतिहास' में भी ऐसा ही माना है।^१ श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'सस्कृत साहित्य का इतिहास, कलासिकल पीरियड, भाग प्रथम (कलकत्ता)' में श्री एस० के० १ ने भी इन दोनों दूत काव्यों को रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना है।^२ अब प्रश्न यह है कि इन दोनों सन्देशकाव्यों में कौन सा काव्य कवि की प्रथम रचना है। यदि इन दोनों दूत काव्यों की रूप गोस्वामी का ही लिखा हुआ माना जाय, तो हसदूत को उनकी उद्भव सन्देश के बाद की रचना मानना पड़ेगा। हसदूत में कृष्ण के अन्त पुर का वर्णन करते हुए ४४ वें श्लोक में गोपियों द्वारा उद्भव को दिए गए शुभ मिथुन के परस्पर वार्तालाप का उल्लेख किया गया है।^३ इसके अतिरिक्त ६२

१ वे० पृ० २८८ तथा ३६६-३६७।

२ वे० पृ० ३७७ पादटिप्पणी, पृ० ३७३ पा० टि०, पृ० ७४१ भी।

३ विषाद् मा कार्पाट्टं तमरितधव्याद्धतिरसौ
समागन्ता राधे घृतनयशिलण्डस्तव सया ।
इति दूत यस्या शुभमिथुनमिन्द्रानुजट्टत
यदाभीरीधृन्दैरुपसृतमभूदुद्भवकरे ॥४४॥

बे श्लोक में ललिता कृष्ण से कहती है कि उद्धव तो तुम्हारे ही मन्त्री हैं, वे राधा की ओर से तुम्हारा अनुनय क्यों करने लगे। इन सब प्रसंगों से यह निश्चय होता है कि गोपियों का उद्धव से पूर्ण परिचय हो चुका है। अत उद्धव सन्देश को ही कवि की प्रथम रचना मानना चाहिए। श्री डा० जे० वी० चौधरी ने (वगाल के दूत काव्यों का इतिहास— संस्कृत पृ० २६) में अपनी ओर से यही मत प्रकट किया है। लेकिन यह विषय नितान्त निर्विवाद नहीं है। कवि ने उद्धव सन्देश में कहां भी गोपियों द्वारा उद्धव को शुक्रमिथुन के देने का उल्लेख नहीं किया है। श्रीमद्विभागवत में भी गोपियों की ओर से उद्धव को शुक्रमिथुन के देने का कहां भी उल्लेख नहीं मिलता है।^१ समय है कि भागवत के मूल वृत्तान्त के आधार पर तथा मेघदूत के अनुकरण पर पहिले कवि ने उद्धव सन्देश ही लिखा हो और बाद में अपनी कठरना से स्तम्भ कथायस्तु का सृजन कर इसदूत लिखा हो। हमदूत का शिखरिणी छंद भी कवि की उत्तर-कालीन स्तम्भ प्रतिभा का परिचायक है।

इन दोनों दूत काव्यों के परस्पर उत्कर्ष के विषय में कुछ भी निश्चय देना, दुष्कर ही नहीं, नितान्त असंभव है। कथायस्तु की दृष्टि से दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। भाव, भाव और शैली दोनों में एक सी ही है। केवल छन्दभेद से ही कुछ गह्य भेद दोनों में पाया जाता है। इस अरसर पर दोनों काव्यों के परस्पर भाव-सादृश्य का ज्ञान कराने के लिए कतिपय उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा। राधा अपने नेद का उर्णन करते हुए इसदूत में कहती है—

अमी कुजा पूर्णमम न दधिरे कामपि मुद
द्रुमालीय चेन सखि न कतिशो नन्दितरती ।
इदानीं पश्यैते युगपदुपताप विदधते
प्रभी मुक्तापेक्षे भजति न हि को वा विमुखताम् ॥६६॥

उद्धवसन्देश में भी एक गोपी अपनी सखी से कहती है—

आशापाशै सखि नरनरै कुर्यती प्राणग्रन्ध
जात्या मीरु कति पुनरिह वासराणि क्षयिष्ये ।

१ गुरोरन्तेगासी स भजति यदूना सचियता
सखी कालिन्दीय किल भजति फालस्य भगिनी ।
भवेदन्य को वा नरपतिपुरे मत्परिचितो
वशामस्या शसन् यदुतिलक यस्त्रामनुनयेत् ॥६२॥

२ दे० भागवत, दशमस्कन्ध ६६ या उद्धवप्रतिपान अध्याय ।

एते वृन्दावनविटपिन स्मारयन्तो विलासान्
उत्फुल्लास्तान् मम किल बलान्मम निर्मूलयन्ति ॥८३॥

दोनों अत्रतरणों का भावसाम्य स्पष्ट ही है ।

दोनों काव्यों में अन्त में भगवद्दर्शण निमित्त जो श्लोक आए हैं, उनमें भी भाव साम्य तथा पदसाम्य पाया जाता है । इसदृष्ट में कहा गया है—

रसानामाधारैरपिचिन्तयोप सहृदये
मुं गरातिक्रीडानिषिद्धघटनारूपसहित ।
प्रबन्धोऽथ बन्धोरखिलजगता तस्य (कवे) सरसा
प्रभोरन्तस्त्रा प्रमदलहरौ पल्लवयतु ॥१४७॥

उद्धवसन्देश में भी इसी प्रकार के भाव व्यक्त किए गए हैं—(दे० श्लोक सं० १३०, इसी पुस्तक के पृष्ठ ३७५ पर उल्लिखित) ।

दोनों पद्यों में भावसाम्य और पदसाम्य तो है ही । 'रूप' शब्द के उल्लेख से दोनों प्रबन्धों के एक ही लेखक द्वारा लिखे जाने का भी प्रमाण मिलता है ।

साहित्यिक दृष्टिकोण से दोनों काव्य बड़े ही मधुर और सरस हैं । वैदर्भी रीति तथा माधुर्य गुण दोनों में ही समान रूप से पाए जाते हैं । शब्दालंकार और अर्था लंकार दोनों ही दोनों काव्यों में उचित अत्रतर पर प्रयोग किए गए हैं । दोनों काव्यों से कवि की गम्भीर वृष्ण भक्ति का भक्त जन सहज ही अनुमान कर सकते हैं । कवि ने केवल कृष्णभक्त ही है, बल्कि गोकुल और वृन्दावन भी उसके लिए अत्यन्त प्रिय हैं । उद्धवसन्देश में वृष्ण के 'भूरन्या मे हृदि सुखकरी गोष्ठन' का विनास्ति ॥८॥' इस कथन में कवि की आत्मा प्रतिघ्नित हो रही है । दोनों काव्यों में कवि ने भक्ति की जो पवित्र धारा बहाई है, उसमें मज्जन कर कौन अपने को वृत्तार्थ में समझेगा । अपने को सर्वथा नारी मानते हुए कवि जन गोपी मुख से कहता है—

न निर्यस्तु दामोदरपदरुनिष्ठाङ्गुलिनख-
धृतीना लाघण्य भवति चतुरास्योऽपि चतुर ।
तथापि स्त्रीप्रणामुलमतत्त्वाद्दमसौ
प्रवृत्ता तन्मूर्तिस्वरतिमटासाहसरसे ॥ इसदृष्ट ॥५३॥

तभी पाठक भक्तकवि की गम्भीर भगवद्भक्ति का अनुमान कर सकते हैं ।

इस प्रकार दूत काव्यों की परम्परा में भाव तथा रस का नया दृष्टिकोण उपस्थित करने में इन दोनों काव्यों का बड़ा महत्त्व है । शृंगार रस में भक्ति का पुष्ट देकर कवि ने अपनी रचनाओं को रसिक तथा भक्तजन दोनों के ही हृदय का द्वार बना दिया है । दोनों काव्य वृष्ण भक्ति के अमर सन्देश को पाठकों के समस्त उपस्थित करत हैं ।

माधव कवीन्द्र का उद्धवदूत (वि० सप्तदश शतक)

उद्धवदूत के रचयिता श्री माधव-कवीन्द्र भट्टाचार्य के सम्बन्ध में विशेष कुछ बात नहीं है। काव्य के अन्तलेख से केवल इतना निश्चित होता है कि यह कवि किसी तालितनगर नामक स्थान का रहने वाला था^१। श्री कृष्णमाचारियर ने इस कवि को ई० १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ का माना है^२ और श्री एस० वें० दे इस कवि को ई० १७वीं शताब्दी का मानते हैं^३। काव्य के भाग्य प्रवाह से कवि की प्रगाढ़ कृष्ण-भक्ति का परिचय मिलता है। कवि ने अपने प्रबन्ध को श्रीकृष्ण के लिए भेंट करते हुए लिखा है—

नानाराम प्रणयि सुमनसद्गुणसौभाग्यभाजा
जाड्यापाये सुरभिसमयस्थापिना माधवेन ।
राधाबन्धोरुपहनमिति प्रेममाधीकमेतन्-
निर्यिष्नेन श्रवणपुटके पुण्यवन्त पियन्तु ॥१४०॥

इस उद्धरण से माधव नामक किसी कवि के उद्धवदूत का लेखक होने तथा उसके उत्कट कृष्णभक्त होने का दृढ़ प्रमाण मिलता है।

मध्यकाल में बंगाल के कृष्णभक्त कवियों द्वारा लिखे गये सस्कृत के दूत काव्यों में इस दूत काव्य का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

उद्धवदूत काव्य का लेखक तालितनगरनिवासी यह माधव कवीन्द्र, पद्यावली में उल्लिखित माधव और माधवपुरी, सुभद्राहरण, श्रीगदित और प्रणयिमाधवचम्पू का लेखक माधव, दानलीलाकाव्य का लेखक तथा लक्ष्मण का पुत्र माधव और श्रीधरदास के सदुक्तिकर्णामृत में उल्लिखित माधवसेन यह सब भिन्नभिन्न व्यक्ति हैं^४।

काव्य की कथा

जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में उद्धव को दूत बनाया गया है। श्री कृष्ण गोपियों के लिये अपना सन्देश देकर उद्धव को मथुरा से गोकुल

१ दे० अन्तलेख इति तालितनगरनिवासि श्रीमाधवकवीन्द्र भट्टाचार्यविरचित-मुद्धवदूत खण्डकाव्य सम्पूर्णम् ।

२ दे० हिस्ट्री आफ क्लासिकल सस्कृत लिटरेचर पृ० २६६, पा० टि० ।

३ दे० ए हिस्ट्री आफ सस्कृत लिटरेचर, क्लासिकल पीरियड, प्रथम भाग, कलकत्ता पृ० ७५२ ।

४ दे० कृष्णमाचारियर का सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० २१७, पा० टि० ।

भेजा है। उद्धर क गोकुल में पहुँचते ही राधा उन्हें कृष्ण का भेजा हुआ दूत समझ कर अपनी तथा अन्य गोपियों की विरहव्यथा उन्हें सुनाना प्रारम्भ कर देती है और कृष्ण की उपालम्भ भी देने लगती है। तदनन्तर उद्धर को कृष्ण के लिये अपना सम्बन्ध सुनाती है।

सम्बन्ध में सर्वप्रथम पशोदा, नन्द, गोपालगृहों, गायों, बैलों, कैलिन्दम्ब, मयूर, कदम्बवृक्ष, वृन्दावन व अन्य वृक्ष, गालवाल और गोपियों की कृष्ण विरहजन्य दुःखव्यथा वर्णित की गई है। तदनन्तर राधा ने अपनी विरहव्यथा के घर्षण के साथ साथ कृष्ण की गोपियों क भूल जाने पर विविध आक्षेप भी दिये हैं। कृष्ण के कु-जाप्रेम की भी स्थान स्थान पर भर्त्सना की गई है, अक्रूर को भी कगरी फटकारनाई गई है। विविध भाव भगिमात्रों के साथ कृष्ण की तरह तरह के आक्षेप फिर भी दिये गए हैं। राजा अपने मानसिक क्षोभ तथा आगा और निराशा का बड़ा रुद्धण वर्णन करती है। निरीह गोपियों क सन्तान में कृष्ण के कठोर चरित्र की निन्दा भी करती है। कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी अमहाय अवस्था तथा अन्य गोपियों क विविध उपालम्भों का वर्णन करने के बाद राधा कृष्ण से कहती है कि वे या तो शत्रु की वृन्दावन आज्ञाय या ब्रह्मा ही लायों पर रहें। वह चाहे स्वर्ग जाये या नरक, मरे या जिये, उसका तो कृष्ण क अतिरिक्त और कोई प्रिय नहीं है। अन्त में वह कहती है कि यदि प्रियोग में उसके प्राण निकल जात हैं, तो कृष्ण को अपने हावों से ही उसे जनदान देना चाहिये। वह फिर कहती है कि प्रियोग में उसका शरीर पड़ा जा रहा है, हृदय फटा जा रहा है और उसके मर जाने का पाप कृष्ण पर ही पड़ेगा। इतना कहते कहते 'हा हा हा हरि हरि हरि' पुकारती हुई मूर्च्छित होकर वह जमीन पर गिर पड़ती है।

शीघ्र ही शीतल जन तथा अपने उत्तरीय के पतन से उद्धर उसका उपचार करने लगत है। वोही वर बाद ही राधा को कुछ हेश में आना हुआ देखकर उद्धर उसका कान में अपना परिवन्ध न्त है। कृष्ण का नाम सुनते ही राधा उठ बैठती है। उद्धर को इस बात का पश्चात्ताप भा होता है कि उन्होंने पूर्ण ही अपने आने का उद्देश्य राधा को क्यों न बताया। बाद में वे फिर राधा की कृष्ण का सम्बन्ध सुनाते हैं।

कृष्ण ने मंश में उनके मनस्वाप तथा राधा की सतत स्मृति इत्यादि का वर्णन किया गया है। अन्त में राधा को मिलने की आशा बधाई गई है।

सम्बन्ध सुनाने के बाद उद्धर क्या देवत हैं कि राधा क नेत्रों से आसुओं की झरती लगी हुई है। उसका अनन्य कृष्ण प्रेम को दम कर थका और भक्ति स पुलकित होकर उद्धर उसका चरणों में प्रणाम करत हैं और श्रीकृष्ण का उत्तरीय उनके प्रेम के प्रतीकस्वरूप राधा को भेंट में दते हैं। राधा की महिमा

गाते हुए बार बार उसके चरणों में फिर भी प्रणाम करते हैं। जब वे गोकुल से जाने लगते हैं तो उनके तथा राधा दोनों के नेत्रों में आसू आ जाते हैं, फण्ट गदगद हो जाता है और किसी के भी मुख से कोई बात ठीक नहीं निकलने पाती है। अन्त में गोकुल की सारी जनता स विदाई लेकर व मथुरा के लिए चल पड़ते हैं। इधर राधा भी कृष्ण के प्रेम सन्देश का ध्यान करती हुई आनन्दमग्न हो जाती है।

बस, इस प्रकार काव्य की कथा भी यहा पर ही समाप्त हो जाती है।

काव्यसमीक्षा

धर्मदुभागवत के प्रसिद्ध कथानक का आधार लेकर यह काव्य लिखा गया है। गोकुल की गोपियों को सान्त्वना देने के लिए कृष्ण का मथुरा से उद्ध्य को अपने सन्देश के साथ गोकुल भेजना सर्व विदित ही है। कृष्ण के द्वारा भेजे हुए उद्ध्य को ही इस काव्य में अपना दूत बनाकर राधा कृष्ण के पास भेजती है। अतः इस काव्य में उद्ध्य दोनों तरफ से ही दूत का कार्य करते हैं। काव्य का नाम 'उद्ध्यदूत' सार्थक ही है। कवि ने मेघदूत के अनुकरण पर इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का ही प्रयोग किया है। केवल अन्त का एक श्लोक ही अनुष्टुप् छन्द में है। काव्य में कुल १४१ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कथावस्तु का विभाजन भी नहीं किया गया है।

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि कवि ने कृष्ण के पास से आए हुए उद्ध्य को ही राधा का दूत बनाकर मथुरा भेजा है, इसलिए इस काव्य में मार्गदर्शन का नितान्त अभाव है। फिर भी कवि ने राधा के सन्देश को इतना विस्तृत रूप दिया है कि यह दूत-काव्य भी अन्य सर्वांगपूर्ण दूत काव्यों की तरह ही विस्तृत और भावपूर्ण हो गया है। कवि ने स्थान स्थान पर बड़े कोमलभास व्यक्त किए हैं और राधा तथा अन्य गोपियों की विरहवेदना का बड़ा सजीव चित्र उपस्थित किया है। गोपियों की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सिंहच्याघ्नप्रभृतिभिरपि प्रेक्ष्यमाणा प्रतरपै-
 गान्देषु प्रखरकुररीससद शिद्ययन्त्य ।
 पकाकिन्यस्तरणतिमिरास्तपदस्पर्शपुगयं
 वृन्दारण्ये कति युवतयो यामिनीर्वापयन्ति ॥२॥

कृष्ण विरह में गोपियों को लगातार रोता हुआ देखकर हिंस्रपशु भी डरीभूत हो जाते हैं और कुम्भी (टिटिहरी) जैसा छोटा पत्ती भी उन्नी और नेसता रह जाता है। गोपियों के कष्ट कन्दन का इससे घटकर और क्या निदर्शन हो सकता है।

कृष्ण के विरह में न केवल गोपियों ही व्यथित हैं बल्कि गोकुल का सारा जीवन ही अस्तव्यस्त हो गया है। राधा गोपालों के प्रेयों का वर्णन करती हुई कहती है—

दोह प्रायो न भवति गरा दोहन वेग्न पारु
क्षीराणा स्यात् स भवति यदा दुर्लभ तद्वधित्वम् ।
दध्न' सिद्धौ नृ खलु मधन मन्थने फत्रोपयोग-
स्तकादीनामिति गतिरभूद्ध गोधुग्गृहेषु ॥२७॥

किसी भी प्रिय के वियोग में लोगों की अपने काम में अरुचि हो जाना स्वाभाविक ही है ।

न केवल स्त्री पुरुष ही कृष्ण के विरह में व्याकुल हैं, बल्कि गाए भी कृष्ण की खोज करती रहती हैं और अपने दाल के ही ध्याए हुए बछड़ों तक को दूध नहीं पिलाती हैं—

वत्सालोकस्मरण सुलभप्रसन्नप्लावनीयम्
भ्रूलीजाल नानसलिलैरधस्तु प्लावयन्त्य ।
त्वामन्विष्य मजपुरसरिच्छीरभूपु भ्रमन्त्य
सद्योजातानपि सुरभयो नार्भकान् पाययन्ति ॥२६॥

जिन गावों की कृष्ण स्वयं परिचर्या क्रिया करते थे, वे अब घास खाने में विरतुल निस्पृह हैं और हर तरफ कृष्ण की खोज में उनकी आँखें भगी रहती हैं। जिस कदम्ब के वृक्ष के नीचे कृष्णजी बैठ करके थे, उसको भी वे सूघती रहती हैं और अपने आसुओं से उसको सींचती रहती हैं—

नि प्रमाणा ललितपयसश्यामसीमन्परणये
न्यस्य न्यस्य त्वदनुसृतये चक्षुषी दिक्षु दिक्षु ।
आजिग्रन्ति व्यथितमनस किं च सिचन्ति याप्यै
व्रीहानीप तथ यदुपते वत्सला वत्सतपर्य ॥३०॥

कथि ने कृष्ण प्रेम का कैसा अद्वितीय प्रभाव दिखलाया है। पशु भी उनके विरह को अनुभव करते हैं।

उन के विरह में न केवल चेतन प्राणी ही बल्कि वृन्दावन के वृक्ष भी दुःखित हैं। उनका स्वरूप से ऐसा लगता है मानों वे योगी हो गए हों। राधा कहती है—

पाण्डुच्छाया कुसुमरजसा भृगमालाजटाला
सयीताङ्गा किशलयदचा पाटलेनाम्बरेषु ।

भोगाभावाद्पगतश्च पात्रनाभ्यासभाज
सर्वे वृन्दावनविटपिना योगिचर्या चरन्ति ॥३४॥

कवि ने वृक्षों को योगियों का रूपक कितनी सुन्दर रीति से दिया है।
धियोभिर्ना गोपिषा भी एक स्थान पर योगिनों की तरह वर्णित की गई हैं—

धीतासङ्गा शयनवसनस्नानपानाशनादौ
गायन्त्यन्तरुचरितगुणिता सन्तत गीतगाथा ।
श्रोदासीन्य किमपि सकला बन्धुवृन्दे बहन्त्यो
गोप्यो लीलाक्षितिषु भवतो योगिनीयस् भ्रमन्ति ॥३७॥

उपर्युक्त पद्य में कवि ने गोपियों की विरहकालीन स्मृति, गुणकथन, उद्वेग
और चिन्ता इत्यादि दशाश्रों का एक साथ बड़ा सुन्दर वर्णन किया है।

आगे चल कर गद्या कहती है—

कूलकोडे तपनदुहितु श्यानपङ्के निमग्न
यत्नादुन्वापितमथ क्तोपस्क्रिय कौशलेन ।
न्यत पीठे तत्र चरणायोरच्यत्रचिह्न पद् तत्
शालग्रामोपलमित्र सदा मद्भिधा पूजयन्ति ॥४०॥

यमुना के तट पर सूते हुए एक में से कृष्ण के चरणा-चिह्नों को निकाल कर
तथा उन्हें सिंहासन पर रखकर शालग्राम की तरह उनकी पूजा करना गोपियों के
परित्र प्रेम का बड़ा ही प्रमाण-पूर्ण उदाहरण कवि ने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया
है। धन्य है कवि की करपना।

राधा फिर कृष्ण के लिये कुछ उपालम्भ भी देती है—

भक्तिप्रीतिप्रणयसहित मानदग्माद्यपेत
चेतोऽस्माक गुणान्दगुणा मोदुदा देहमेतत् ।
विक्रीत ते युगपदुभय स्त्रीकृत च त्वयाधो
हृदगृह्णासि त्यजसि च वपुर्नाथ कोऽय विचार ॥४८॥

जब दो वस्तुओं का एक साथ विक्रय किया जाये और उन्हें कोई स्वीकार
भी करले, तो उनमें से फिर किसी एक मद्दत्त्वपूर्ण वस्तु का तो रखना तथा अन्य
तुच्छ वस्तु का छोड़ देना बड़ा तर्क उचित हो सकता है। फिर गोपियों को एकदम
छोड़ देने तथा उनकी कुछ भी सुध न लेने की बात पर राधा कृष्ण को बड़ा लज्जित
भी करती है—

स त्व दोषेऽप्यसति कुरुपे किं करीणाममद्र
वक्तु नास्ते जग इति न भो वस्तु मेवं युनक्ति ॥५०॥

करण के बश, पिता माता और चरित्र की प्रशंसा करने के बाद राधा कृष्ण पूछती है—

एकैकन्ते जयति जगदानन्दि चित्र चरित्रम्
कस्मादेव विरहदहने देव ! दासीर्जु होषि ॥१३॥

इस तरह विभिन्न उपालम्भ देने के बाद राधा कृष्ण को अपना सन्देश पत्र हुये कहती है—

तरङ्गज्ञानं कथय शतधा प्रेपय प्रेष्यलक्षम्
चिन्तारत्नं त्रितरं कुरु वा सानुतापप्रसङ्गान् ।
या-दोर्ध्यां तव नयघनश्यामलं धाम गाढम्
नाश्लिष्यामि शुटति न हि मे ताजदेवैष ताप ॥६६॥

राधा जी विरह-व्यग्रता का पाठक उसके इन वचनों से सहज ही अनुमान लगा सकते हैं ।

इसके बाद यह कहती है कि कोई तो तुम्हें लक्ष्मीकान्त कहता है, कोई चिदानन्द कहता है और कोई साधक तुम्हें सिद्धिस्वरूप बतलाता है, लेकिन मैं तो तुम्हारे उसी मुरलीधर श्यामरूप की ही दासी हूँ और सब रूप तो मेरे लिए व्यर्थ हैं—

यो वाऽन्यो वा भव नयघनश्याम तस्यैव धाम्नो
दासीभूता वयमिति पने बन्ध्यकरपा विकरपा ॥७०॥

राधा फिर कृष्ण से कहती है—

नायासि त्व न च नयसि मामात्मन पादमूलम्
नो वा दूत त्रिस्तुजसि न वा लेखलेश ददासि ।
नि श्यासाग्निनिपतति न ते वाचिदाश्यासरातां
कस्मिन्नास्थामुपहितवती जीवितं धारयामि ॥७१॥

राधा की विरहभावनाओं का बड़ा ही स्वाभाविक विप्रण इस पद्य में प्रस्तुत किया गया है । अपनी विग्रहता का वर्णन करते हुए राधा कहती है—

यान्त्रि प्राणा नहि बहिर्गमी युद्यमानाश्च गाढ
सत्यं गत्यन्तरमपि न मे किञ्चिद्भ्रमि श्रसत्या ।
मग्न चेत् कुलिशकठिने त्वय्यनुद्वार्यमेतत्
तेनैवाहं भयदनुगतिं सञ्चिता किं करोमि ॥८६॥

जिस राधा को कृष्ण निमेषमात्र के लिये भी अपनी आँखों से दूर नहीं करते थे, वह राधा युग युगान्तरो से कृष्ण का वियोग सह रही है—

दत्तो यस्यै न यत्न निमिषो दृष्टिचिह्नोऽपि तस्यै
दूरस्वित्यै विलसि रिभो । योगपद्याद् युगानि ॥६०॥

राधा को कृष्ण के विरह में समय कितना भारी जान पड़ता है। कुछ पत्त या मास युग जैसे मालूम पड़ते हैं। कृष्ण के द्वारा भुला दिये जाने पर अपनी निरुपाय अवस्था का वर्णन करती हुई फिर वह कहती है—

रूक्षा लोका कटुकत्रचस ह्यालये सर्व एव
क्षीणासि त्व कथमिति बहिर्ग्राभ्ययाचोदहन्ति ।
ग्रामस्यान्ते तपनतनयाकूलमुद्यानमूल
शून्य लीलाशरणमपि ते कुत्र तन्निवृत्तौमि ॥६६॥

वैमुरय ते किमपि मदनो माद्यति क्रूरकर्मा
नर्मात्तापेष्वपि कुत्रचनै र्वाधते बन्धुवर्ग ।
चेतो नाथ त्वयि विनिहित वाचमुत्तलङ्घ्य यासा
।।रु।मुक्ति श्मितकलुषिता कल्पते किं करोमि ॥१००॥

उपर्युक्त पद्यों में राधा की मानसिक व्यथा का बड़ा भावपूर्ण चित्र अंकित किया गया है।

सन्देश के अन्त में राधा कहती है—

अत्रागच्छु तरितमथवा तिष्ठ तत्रान्दलक्षम्
शृण्वन्तेते जनपदजना मुक्तकण्ठा ध्रुवीमि ।
यामि स्वग निरयमथवा प्राण्णिमीह त्रिये वा
श्यामादन्यो नहि नहि नहि प्राणनाथो ममास्ते ॥१०४॥

राधा के इस सन्देश में कवि ने उसके प्रेम की कैसी गूढ व्यञ्जना की है। इस प्रकार अपना सन्देश बतते २ फिर राधा एक साथ कह उठती है—

श्याम श्याम स्मर सहचरीं मन्दकारीकृत मे
वेनाकस्माद् भ्रमति भुवन मज्जति घोरवन्याम् ।
काहं कथाहं क्व मम दयित कुत्र तस्यैव दासी
हा हा हा हा । हरि हरि हरि । क्षीणमध्य प्रसीद ॥१०८॥

कवि ने राधा की प्रिय वियोग जन्य उन्माद अवस्था का बड़ा भावपूर्ण वर्णन

यहाँ पर किया है। ज्योंही राधा अपना सन्देश समाप्त करती है, त्योंही यह मूर्च्छित हो जाती है—

इत्युद्गाहृर्मिलपुलका कम्पनासन्नरुण्टी
छिन्ना मूले पतनि भुवि सा हैमजल्लीय यावत् ॥१०६॥

कवि ने राधा के जमीन पर गिरने की बड़ी ही उपयुक्त उपमा यहाँ पर दी है।

उद्धव जब राधा के मूर्च्छित हो जाने पर शीतोपचार के द्वारा उसे कुछ कुछ होश में आता हुआ देखते है, तब उसके कान में कृष्ण के दूत होने का प्रपना परिचय बड़े जोर से देते हैं। इन शब्दों को सुनकर राधा एक दम उठ बैठती है। कवि ने इस दृश्य का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—

सातिस्त्रादुर्दधधुदमनी तुर्यपीयूषवाणी—
वर्णध्रेणि श्रयणपुट्रेनान्तरस्या विशन्ती।
को जानीते किमकृत पर सत्वर सापि तन्वी
किङ्कि किङ्कि कथय कथयेत्युत्थिता कौतुकेन ॥११४॥

कृष्ण का नाम सुनते ही राधा की उत्सुकता का बड़ जाना स्वाभाविक ही है। कवि ने इस पद्य में राधा के श्रोतस्सुप्त का कितने अनुरूप शब्दों में वर्णन किया है। भावों के अनुरूप ही भाषा का प्रयोग किया गया है।

राधा के होश में आते ही उद्धव उसे कृष्ण का सन्देश सुनाना प्रारम्भ कर देते हैं ताकि राधा फिर बेहोश न हो जाय। सर्व प्रथम राधा को कृष्ण के शीघ्र ही अपने मिलने का आश्वासन दिया गया है—

साक्षादीक्षा न भवतु चिर विन्निता तेन मामू—
दंशधीनो गमयति जन कोऽपि कुत्रापि कालम् ।
वन्दीभूत मयि तव मनस्त्वग्यपीद ममेति
ह्याभ्यामाभ्या मिलनमचिरादाययो साधनीयम् ॥११५॥

इसके बाद कृष्ण गोपियों के अपूर्व प्रेम तथा साहस का वर्णन करत हुए अपने रामा होने की निन्दा भी करत हैं—

छन्दा बन्धुमण्यपदवी लट्टिन्ना लोक्तरजा
मूर्ध्नि न्यस्तं पदप्रयशान शट्टिन्तो नापमृत्यु ।
मामारादुधु किमिय न वृत्तं दुस्कर एवादर्शभि-
रुयस्त्वा युष्मान् मम यदुपतरथ राज्व धिगस्तु ॥११६॥

मथुरा में कृष्ण के लिए भले ही सय सुग हा, लेकिन गोपियों के साथ रहने का आनन्द कदा मिल सकता है। इसी बात को लेकर कृष्णजी कहते हैं—

रम्या हर्म्यालिखियममी घन्धव सानुगन्धा
निवेरेय जयति नगरी गुम्फिता नागरीभि ।
एषा सम्पत् किमिह न सुरा किन्तु कान्तारकुक्षी
युष्माभिर्ष समजनि स मे दुर्लभो हृद्विनोद् ॥१२४॥

कृष्ण के लिय सारी सृष्टि ही राधामय जान पड़ती है—

सर्वत्रैव स्फुरति मम तु त्वन्मयी सृष्टिरेव ॥१२५॥

कृष्ण ने इन प्रसंगों से कृष्ण का भी गोपियों के प्रति अनन्य प्रेम दर्शाया है। आगे चलकर कृष्णजी राधा से कहते हैं कि मैंने तुम्हारे प्रेम को छिपाने के लिये अपनी एक सारिका का नाम 'राधा' रख छोड़ा है लेकिन प्रसंग के बिना ही मैं उससे—हे राधे ! क्या तुमने मेरी मुरली ली है—बार बार पृष्ठ घँटना है। इस तरह तुम्हारा नाम छिपाने का मेरा प्रयास व्यर्थ ही चला जाता है और मेरे साथी भी मुझ पर हसते हैं—

उद्यद्गोत्रस्खलनमनिश गोपि । ते गोपयिष्यन्
राधानाम्नीमकरवमह सारिकामन्तिकस्थाम् ।
गीता राधे मम मुरलित्रेत्यवमादीन्यकारुहे
वक्तु सभ्यस्मितजनपितुस्तम्मासीत् वृथैव ॥१२६॥

कृष्ण ने इस पद्य में कृष्ण के हमेशा राधा को स्मरण करते रहने का वैसी भाव भंगिमा के साथ वर्णन किया है।

अपने सन्देश के अन्त में कृष्ण राधा को पुन शीघ्र ही मिलने की आशा देते हैं—

जाने प्राणेश्ररि । मम यथा निर्विवाद तथा ते
सन्तप्ताया युगपद्भियान्त्यद्यतन्यो रजन्य ।
यास्यन्त्येता दिनकतिपरैरङ्ग । पत्यङ्गभाजो
सत्यं सत्य निमिषनिभृता आरयो सुस्थिता स्या ॥१२७॥

जिस प्रकार राधा ने कृष्ण विरह में अपनी व्याकुलता बतलाई है, उसी प्रकार कृष्ण भी राधा के विरह में उतने ही व्याकुल हैं। कृष्ण ने दोनों की मनोव्यथा का समान रूप से वर्णन कर राधा और कृष्ण के प्रेम को आदर्श रूप में पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

उद्धर कृष्ण के सन्देश को समाप्त करते ही हैं कि उन्हें राधा के नेत्रों से तीव्र अध्वारा प्रवाहित होती हुई टिखलाई देती है। राधा के तीव्र प्रेम को देखकर श्रद्धा और भक्ति से पुलकित हो वे फिर उमें सान्त्वना देते हैं तथा कृष्ण के उत्तरीय को उनकी स्मृतिस्वरूप उसे भेंट करते हैं—

इत्याचख्यौ विरमनु पर निष्फलो देवि खेद ।
एतद्भासो नयति । हरे श्रीमदगाधिरूढम्
चेतो मूढ न कुव करुणासागरे सद्गताऽसि ॥१३०॥

उद्धर के उपर्युक्त वचनों में वही आत्म-यता मरी हुई है। अन्त में उद्धर राधा की प्रार्थना करते हैं—

मातर्मातर्जय जय जगन्मोहन मोहयन्त्या
कस्ति तस्य कलयतु न यद्वेदगर्भोऽपि वेद ।
मनयोऽसौ परिजनतया वरलभस्येति तस्यै
वार वार तदनु दधिरे तेन दण्डप्रणामा ॥१३७॥

उद्धर की इस श्रद्धा और भक्ति का ही यह परिणाम था कि गोकुल से उनके जाते समय दोनों (राधा और उद्धर) की वही ही भावपूर्ण स्थिति थी। कवि ने इस स्थिति का बरा ही सजीव चित्र उपस्थित किया है—

सर्वाङ्गीन पुलकमुद्भूद्भुमग्ने च दृष्टी
कण्ठो भग्नस्वर इव वच पर्यन्स्थानशून्यम् ।
तस्यास्तस्याप्यजनि युगपद्यानकाले तदानीम्
सुग्धा मूर्धन्वभरदुभयोरदुभुता पुष्पवृष्टि ॥१३८॥

इस तरह मारे गोकुल को अपने मृदु भाषण तथा सद्गु व्यवहार से यशीभू। कर उद्धवजी कृष्ण के पास लौट आते हैं—

आमन्त्र्यैकस्तदनु सकल धोपमुकण्ठमात
सद्यो राधारमणचरणमेक्षणाय प्रतस्थे ॥१३९॥

काव्य क इस विस्तृत अनुशीलन से पाठक जान सकते हैं कि कवि की वर्णन शैली वही ही रमणीय है। काव्य में दो सन्देशों का समावेश कर कवि ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया है। नायक तथा नायिका दोनों की विरहभाव नाशों और चेष्टाओं का सर्वांगपूर्ण चित्रण हम काव्य में पाया जाता है। नायक की ओर न आये हुए दूत से उसका सन्देश सुनने से पहिले ही नायिका इस काव्य में अपना सन्देश कहना प्रारम्भ करती है। यद्यपि यह वान कुच्छ विषम सी मालूम पड़ती है, लेकिन कवि ने इस तरह गोपियों की भावप्रणवता का परिचय दिया है।

प्रिय के पास से आये हुए दूत को देखकर ही गोपियों के हृदय का बाध टूट जाता है और बरबस ही उनके मुख से निरह तथा उपालम्भ के वचन निकलने लगते हैं। सभय है कि कवि ने जान बूझ कर अपने काव्य में यह वैषम्य उपस्थित किया हो क्योंकि कृष्ण की तरफ से कुब्जा के सम्बन्ध में निम्न पद्य में दी गई सफाई—

कुब्जामृज्वीमकरत्रमुरीकृत्य यन्निर्घृणत्व
तत्तात्पर्य त्रिपुलमतयो नापयन्ति क्षति का ।
हित्वा वेश कुशलवदशा वेशमक्षिभ्रुव वा
धन्तव्य मे नहि कुटिलतरेयेतदुन्नायक तत् ॥१०६॥

राधा के—सट्कोचो यस्तव गुहजने यच्च पौराङ्गनासु
व्यक्तीभूत तदुभयमभूत् कुब्जिकोपप्रहेण ॥१०७॥

इत्यादि व्यंग्य के वाद ही सगत हो सकती है। इसके अतिरिक्त—

रद्धा यन्नुप्रणयपदवी लट्घिता लोकलज्जा
मूर्ध्नि न्यस्त पदमपशस शकितो नापमृत्यु ।
मामाराद् किमिदं न कृत दुष्कर त्वाद्दर्शीभि-
स्त्यक्त्वा युष्मान् मम यदुपतेरद्य राज्य धिगस्तु ॥१०८॥

इत्यादि कृष्ण के प्रेमपूर्णा वचनों को सुनकर प्रणयिनी राधा का मन स्वत ही सोभरहित हो जाता, तदनन्तर—

त्वञ्चेदानो नगरतरणी सार्धसर्स्त्रभूत—
स्ता अप्येय तव त्रिमितरास्तुभ्यमथ स्वदन्ते ।
अत्योत्सुक्यात्तदपि भवत समुखी वा यदि स्या
किं स्यादेतन्न खलु निपुण भावयन्त्यप्यत्रैमि ॥१०९॥

इस प्रकार के ईर्ष्या युक्त वचन राधा के मुख से निकलते ही नहीं तथा पाठकों को अच्छे भी नहीं लगते। स्थान-स्थान पर गोपियों ने कृष्ण को जो उपालम्भ दिये हैं, वे कृष्ण के सन्देश के सुनने से पूर्व ही अच्छे लगते हैं। कृष्ण के प्रेमपूर्णा तथा आश्रासन युक्त सन्देश को सुनकर गोपियों के मन में ईर्ष्या तथा क्रोध ठहर ही कैसे सकते हैं। राधा के मूर्च्छित होने का जो हृदय काय में उपस्थित किया गया है, वह कृष्ण के सन्देश को उद्भव द्वारा पहिले न सुनाये जाने के कारण से ही उपस्थित हो सका है। अतः दोनों सन्देशों को कवि ने अपने पूर्व निश्चय से ही इस क्रम से रखा है।

काव्य की कथा का आधार तो श्रीमद्भागवत की कथायस्तु है ही। कवि ने प्रायः भागवत के भावों को ही प्रकारान्तर से अपने काव्य में उपनिबद्ध किया है।

भागवत से कथारम्भु को लेकर फिर उसके भागों से करि दूर ही कैसे गृह सकता है। भागवत में उद्धव से कृष्ण के सन्देश को सुनने के बाद यशोदा का वर्णन करते हुए कहा गया है—

यशोदा वर्णयमानानि पुत्रस्य चरिणानि च
शृण्वन्त्यश्रूययास्त्राक्षीत् स्नेहस्तुतपयोधरा ॥१०॥४६॥२८॥

इसी प्रकार इस काव्य में भी प्रसंगान्तर में यशोदा के सम्बन्ध में—

नीति नामन्यपि च भरत (कृष्णस्य) प्रस्तुवाना म्त्तनाभ्याम् ॥२५॥

कहा गया है। भागवत में गोपियों उद्धव से कृष्ण का वृत्तान्त पूछती हुई कहती हैं—

अपि स्मरति न साधो गोविन्द प्रस्तुते क्वचित्।
गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां श्राम्या स्मैरुवाचान्तरे ॥१०॥२७॥४७॥

इसी से मिलते जुलते भाव—

दन्ताभीरी स्मरतु स कथं सवृतो नागरीभि ॥१६॥

इत्यादि पद्य में पाप जाते हैं।

कहाँ कहीं भाषा साम्य भी स्पष्ट ही दिखलाई देता है। भागवत में गोपियों के प्रगाढ़ कृष्ण प्रेम को देखकर उद्धव परमप्रसन्न हो जाते हैं। उनके मुख से बरबस गोपियों की प्रशंसा म यह बचन निकल पड़ते हैं—

कथमा स्त्रियो वनचरी-र्यभिचारदुष्टा,
कृष्णे क्व खैप परमात्मनि रुढमार ॥१०॥२७॥४६॥ इत्यादि

उद्धवदूत में राधा उद्धव को दूत बनाते समय कहती है—

कथं पा योपित् प्रकृतिचपला पामरी कातरा च
ज्यापान् यातो यदुकुलपतेर्यत्तलमत्वं क्व च त्वम् ॥१५॥

यद्यपि दोनों स्थलों में प्रसंग भिन्न है, फिर भी भाषासाम्य तो स्पष्ट ही है।

१ 'वनचरी' के स्थान में 'वनचर्य' होना चाहिये। श्रापप्रयोग होने से ठीक माना जा सकता है।

उपर्युक्त कतिपय अमतरणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवि ने श्रीमद्भागवत के गम्भीर अनुशीलन के बाद यह काव्य लिखा है। भागवत के अतिरिक्त मेघदूत से भी कवि ने इस दूत काव्य के लिखने की प्रेरणा अवश्य ली होगी। तभी तो इस काव्य में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग पाया जाता है। लेकिन भाव तथा भाषा दोनों में ही यह काव्य मेघदूत से वितकुल प्रभावित नहीं है। मार्गदर्शन को दूतकाव्य में स्थान न देकर कवि ने दूतकाव्य के पराम्परागत शिल्पपरिधान की उपेक्षा की है। लेकिन नायक और नायिका दोनों के ही सन्देश को काव्य में प्रथम दूर कवि ने काव्य की साहित्यिक महत्ता और भी बढ़ा दी है। मार्गदर्शन के न होने से काव्य की समाहित नीरसता को कवि ने राधा और कृष्ण के विरह की विविधभासपूर्ण व्यञ्जना द्वारा वितकुल तिरोहित कर दिया है। प्रायः दूतकाव्यों में अभिज्ञानस्वरूप कोई व्यक्तिगत घटना बताई जाती है, लेकिन इस काव्य में कृष्ण का उत्तरीय ही राधा को अभिज्ञानस्वरूप दिया गया है। यह भी कवि की अपनी मौलिकता है।

रूपगोस्वामी का उद्भवसन्देश तथा यह उद्भवदूत दोनों ही यद्यपि समान-विषयक रचनाएँ हैं और दोनों ही लेखक उरुचकोटि के हैं, फिर भी दोनों काव्यों में महान् भेद है। उद्भवसन्देश में कवि ने उद्भव को एकान्तरूप से कृष्ण का ही दूत बनाकर गोपियों के पास भेजा है। दूत का गोपियों के साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं दिखलाया गया है। इतना सब कुछ होते हुए भी विरही कृष्ण के मुख से ही विरहिणी गोपियों की तत्तत् अग्रस्थाओं का बड़ा करुण चित्रण कवि ने प्रस्तुत किया है। समझ है कि गोपिया भी अपनी मनोव्यथा को ऐसे प्रभासपूर्ण ढंग से नहीं कह पातीं। इसके विपरीत उद्भवदूत में विरही नायक तथा विरहिणी नायिका दोनों के ही दूत कार्य में उद्भव को नियुक्त किया गया है। भाषा, भाव और शैली के दृष्टिकोण से दोनों ही काव्य उरुचकोटि के हैं। दोनों काव्यों में तारतम्य का निश्चय करना सहृदय पाठकों के लिए अतीव दुष्कर है। दोनों ही काव्यों में कृष्णभक्ति का पुट भी समान रूप से पाया जाता है। अतः यह दोनों दूत काव्य समान रूप से साहित्यिक तथा कृष्णभक्त पाठकों की प्रशंसा तथा धृष्टा के पात्र हैं।

काव्य में विप्रलम्भ शृंगार का मुख्य रूप से चित्रण किया गया है। तदनुसार मायुर्यगुण और वैदर्भी रीति यह दोनों ही काव्य में भरपूर पाए जाते हैं।

बंगाल के मध्यकालीन भक्तिपरक सस्कृतसाहित्य में इस काव्य का प्रमुख स्थान है।

रुद्र न्यायपञ्चानन का अमरदूत (वि० सप्तदश शतक का उत्तरार्ध)

रुद्र न्यायपञ्चानन नवद्वीप (बंगाल) निवासी श्री रत्नाकर विद्यानाचस्पति^१ का पौत्र तथा काशीनाथ विद्यानिवास^२ का पुत्र था। ईसा की सत्रहवीं शताब्दी

१ रत्नाकर विद्यानाचस्पति को कहीं-कहीं भावानन्द पंडित या भावानन्द सिद्धान्तशास्त्री भी कहा गया है। इन्होंने कारकाद्यर्थनिर्याय नामक एक व्याकरण ग्रन्थ भी लिखा, जिस पर कि बाद में उनके पौत्र रुद्र ने अपनी टीका लिखी। जयानन्द के चैतन्य-मंगल के नदिया-खंड में (१, २, पृ० १२, नगेन्द्रनाथ वसु तथा फालिदास नाथ, फलकत्ता संस्करण, वर्गीय-साहित्य परिपट्ट व० सं० १३१२ अर्थात् १६०५-१६०६ ई०) रत्नाकर विद्यानाचस्पति के सन्धि में यह कहा गया है कि मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के अन्त्यन्त सताये जाने पर भी यह बंगाल में ही रहे जब कि रुद्र के प्रपितामह नरहरि विशारद वहा से भागकर बनारस चले गये और रत्नाकर के भाई वासुदेव सार्वभौम उड़ीसा चले गये थे।

२ यह काशीनाथ सुप्रतिष्ठित राष्ट्रीय आखण्डल परिवार से ही सम्बन्ध था। इसका मूल निवास-स्थान मध्यम-ग्राम (भाकेरगाम) था, फिर भी नवद्वीप में इसकी चतुष्पाटी थी। कविवन्द नामक कायस्थ इसका लिपि कर्ता था और लक्ष्मीधर के कृत्य करपतर (हस्तलिखित प्रति आजकल इण्डिया आफिस लायब्रेरी में है) के कुछ भाग की सं० १४८८ ई० में उसने इसके लिये नकल की। काशीनाथ ने ही योपदेव के मुग्धबोध को बंगाल में लोकप्रिय बनाया जैसा कि मुग्धबोध की विभिन्न टीकाओं में उनके नाम तथा कार्यों के उल्लेख से प्रतीत होना है (राम तर्कशास्त्री की मुग्धबोध की टीका — पारेऽत्र पाणिनीयज्ञा केचित् कालापकोविदा । एके विद्यानिवासा स्युरन्ये सक्षितसारका)। मुग्धबोध पर काशीनाथ के भी टीका लिखने की खबर है (देखिये, आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय हस्तलिखित पुस्तकें '७३ व में दुर्गादास का उद्धरण)। रामचन्द्र शर्मा ने मध्य कौमुदी पर मध्यमनोरमा नामक टीका में विद्यानिवास के सम्बन्ध में लिखा है—कण्ठे विद्यानिवासस्य स्थिता मध्य मनोरमा। सिद्धान्तकौमुदी पर प्रौढमनोरमा नामक टीका लिखने वाले और विद्या निवास के समकालीन श्री भट्टोजी दीक्षित ने अपनी टीका में मुग्धबोध के तर्कों का खण्डन किया है। इस तरह योपदेव के विचारों का समर्थक होने के कारण विद्यानिवास भट्टोजी का प्रतिद्वन्द्वी हो गया था। भारतवर्ष के पंडितों की विभिन्न सभाओं में विद्यानिवास वषे सम्मान के साथ बुलाया जाता था। रामकृष्ण के पौत्र तथा नारायणभट्ट के पुत्र शंकर भट्ट ने अपन शोधिशानुचरित में लिखा है कि दिल्ली में बुलाई गई ऐसी दो सभाओं में यह विद्यानिवास उपस्थित था। विद्यानिवास ने जगन्नाथजी की प्रतिमा को भूलने में रखने की कथा लेकर दोलारोहणपद्धति (राजेन्द्र लाल मिश्र का खूबोपप सं० ४१३ देखिये) और जगन्नाथजी की पुजाविधि पर द्वादश

इसका कार्य काल है। यह भाषा परिच्छेद, तत्त्वचिन्तामणिदीधिति इत्यादि के रचयिता श्री विश्वनाथ न्यायपचानन भट्टाचार्य^१ का बड़ा भाई था। रद्रनाथ न्यायपचानन के पितामह श्री त्रिद्यानाचस्पति बगाल के प्रसिद्ध नैयायिक, तत्त्वचिन्तामणि व्याख्या, समासवाद और सार्वभौमनिवृत्ति के रचयिता श्री वासुदेव सार्वभौम^२ के छोटे भाई थे। रद्र न्यायपचानन, जैसा कि उसके नाम से प्रकट होता है, एक प्रसिद्ध नैयायिक तथा महान् लेखक था। इनके लिखे हुये निम्नलिखित ग्रन्थ बताये जाते हैं —

- | | | |
|---------------------|--------------------------------|-----------------------------|
| १ अधिकरण-चन्द्रिका, | ५ उदाहरण लक्षण टीका, | ६ न्यायसिद्धान्त मुक्तावली |
| २ कारक-परिच्छेद, | ६ उपाधिपूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका, | टीका, |
| ३ कारक चक्र, | ७ केवलान्वयिटीका, | १० व्याप्यनुगमटीका, |
| ४ विधिरूप निरूपण, | ८ पक्षता पूर्वपक्षग्रन्थ टीका, | ११ कारकाद्यर्थ निर्णय टीका, |

यात्रा पद्धति (श्री हरप्रसाद शास्त्री की सूची दूसरा भाग) यह दो ग्रन्थ और भी लिखे हैं। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के अन्त तक यह साहित्यिक क्षेत्र में कार्य करते रहे। ईसवी सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सुप्रसिद्ध मानसिंह (जो कि स० १६०५ ई० तक शासन करने वाले सम्राट् अकबर का समकालीन था) के पुत्र भागसिंह के कहने से इन्होंने भागविलास नामक ग्रन्थ लिखा (दे० कायमना, द्वितीय गुच्छक, द्वि० संस्करण, १९३२ पृ० १११-१२८)।

१ विश्वनाथ न्याय पचानन ने स० १६३५ ई० में न्यायसूत्रवृत्ति की रचना की। सिद्धान्त मुक्तावली में अन्त में इन्होंने लिखा है - इति महामहोपाध्याय त्रिद्यानिवासा भट्टाचार्य सुत श्रीविश्वनाथपचाननभट्टाचार्यत्रिरचितायाम् सिद्धान्तमुक्तावत्याम् (देखिये० कु जयिहारिन् तर्क सिद्धान्त, गोरधन प्रेस, फलकत्ता संस्करण १९१३-१४ ई० पृ० २३६)। विश्वनाथ की और दूसरी रचनाये (प्रायः हस्तलिखित रूप में ही उपलब्ध) इस प्रकार हैं - अहेतु-सम्प्रकरण, न्याय तत्त्वबोधिनी अथवा न्याय बोधिनी, न्यायसूत्रवृत्ति, पदार्थतत्त्वालोक (रघुनाथ के पदार्थ-एण्डन पर टीका), उपपत्ति सम्प्रकरण, कारकवाद, जातिशतकप्रकरण, तत्त्वज्ञान विवृतिप्रकरण, पिङ्गलमतप्रकाश, सुवर्धतत्त्वालोक, तर्कभाषा, मन्वाद्टीका, पदार्थ निरूपण, प्राप्यप्राप्तिसमजातिचयप्रकरण, बाह्यार्थभग निराकरण, सञ्चय-सम-प्रकरण, सप्ततिपक्षदेशनाभासप्रकरण और अलकार-परिष्कार।

२ ऐसी जनश्रुति है कि इनके पिता श्री महेश्वर विशारद भट्टाचार्य स्मृतियों के प्रवाहक विद्वान् थे। अपने पिता से काव्य और अलकार शास्त्र इत्यदि पढ़ने के बाद यह मिथिला गये और वहा पक्षधर मिश्र के शिष्य हो गये। मिश्रजी ने ही इन्हें सार्वभौम की पदवी दी।

१० सव्यभिचार-सिद्धान्त टीका,	२२ प्रतिज्ञा लक्षण-टीका,	३३ कुसुमाञ्जलि-कारिका-व्याख्या
१३ भाग्यप्रकाशिका,	२३ सप्तप्रतिपक्ष-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका	३४ प्रथमचक्रवर्ति लक्षणटीका,
१४ भाग्यप्रिलासकाव्य ।	२४ सामान्यनिरुक्ति-टीका	३५ विशेषवाद टीका,
१५ अनुमिति टीका,	२५ परामर्श पूर्वपक्ष ग्रन्थ टीका	३६ सव्यभिचार-पूर्वपक्ष ग्रन्थ-टीका,
१६ कारक-वाद,	२६ आख्या-वाद-व्याख्या	३७ द्रव्य-किरणारली परीक्षा,
१७ तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-टीका,	२७ कारक-व्यूह,	३८ गुणप्रकाश विवृति,
१८ द्वितीयस्वलक्षण टीका,	२८ वाद-परिच्छेद,	३९ वृन्दावन विनोद काव्य इत्यादि ।
१९ विरह-पूर्वपक्षग्रन्थ टीका,	२९ शब्द-परिच्छेद,	
२० तर्कग्रन्थ टीका,	३० उपनय-लक्षण-टीका	
२१ पक्षता-सिद्धान्त-ग्रन्थ टीका,	३१ विरह-सिद्धान्त-ग्रन्थ-टीका	
	३२ द्वितीयचक्रवर्ति-लक्षण-टीका,	

बंगाल के एक प्रमुख नैयायिक तथा कवि के रूप में रुद्रन्यायपचानन ने ई० सप्तदश शतक के संस्कृत साहित्य को बड़ा समृद्ध बनाया है। कवि ने भ्रमर-दूत के अन्त में अपना थोड़ा सा परिचय भी दिया है—

योऽभूद् गोडक्षितिपतिशिखारत्नघृष्टाङ्गिरेण
त्रिधात्राचस्पतिरिति जगद्गीतकीर्तिप्रपञ्च ।
तस्मादासीद् भुवनप्रदित श्रील विद्यानिवास-
स्तत्पुत्रेण त्रिभुवन गुरो प्रीतये राघवस्य ॥१०६॥

रुद्रैषा समरच्चि मया कापि वाचा मतलि-
र्वातफलेशा रसिकहृदयाह्लादिनी कल्पयलि ।
शश्वत्पुत्र्याद् व्यसन अनित्यशेषपापोपशान्ति
तन्मे कुर्वाण्निजगुणकयाराधितो रामचन्द्र ॥१०७॥

रुद्र न्यायपचानन महाराचार्य का पुत्र गोविन्द महाराचार्य बनारस में ही रहता था। उसने स० १६५७ ई० में एक व्यवस्थापत्र पर हस्ताक्षर किए (इन्डियन हिस्टोरिकल फार्टर्ली, २१, पृ० ६४ ६५)। स० १६२०-२६ ई० के आस पास उसने न्यायप्रहस्य नामक ग्रन्थ भी लिखा। डा० जे० धी० चौधरी (फलफत्ता) द्वारा भ्रमरदूतकाव्य प्रकाशित किया जा चुका है। उन्होंने काशीनाथ विद्यानिवास के पुत्र रुद्र न्यायपचानन को ही इस काव्य का लेखक माना है। लेकिन प्रो० डी० सी० महाराचार्य अपनी 'धनेर न्यायचर्चा' में (पृ० ०७५, पाद टिप्पणी) इस रुद्रन्याय

पचानन को भ्रमरदूत काज्य का लेखक नहीं मानते हैं। कुछ लोगों का विचार है कि न्याय सिद्धान्त मुक्तामली की टीका इस रत्नन्यायपचानन ने महा लिखी है, यतिक नवद्वीप के ही रुद्र तर्कवागीश ने लिखी है। संभव है कि दोनों विद्वानों के नामसाम्य से कहीं ० मतिभ्रम हो गया है।

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा रामायण की कथा से सम्बद्ध है। कवि ने अपनी कल्पना से मूल कथा में एक और घटना बढा दी है। रावण जब सीताजी को हर कर लका ले जाता है तब सीताजी की खोज करते ० रामचन्द्रजी माल्यवान् पर्वत पर पहुचते हैं। वहा से सीताजी की खोज के लिए हनुमान्जी को लका भेजते हैं। लका से सीताजी का पूरा पता लगाकर तथा उनकी चूडामणि लेकर हनुमान्जी एक दिन वापिस आ जाते हैं। इधर रामचन्द्रजी सीताजी के विरह में व्याकुल तो रहते ही हैं कि निकट के एक सरोवर में एक भ्रमर मिथुन उन्हें दिखलाई पढ जाता है। उस के भ्रमर को ही दूत बनाकर लका में अशोक वाटिका में स्थित सीताजी के पास अपना प्रेम सन्देश देकर भेज देते हैं।

सर्वप्रथम उन्होंने भ्रमर को अपना परिचय, अपने दुःख का कारण तथा अपनी दयनीय दशा बतलाई है। तदनन्तर माल्यवान् पर्वत से लका तक मार्ग बतलाया गया है। माल्यवान् पर्वत से लका तक के सीधे मार्ग में चित्रकूट, नर्मदा और विन्ध्याचल इत्यादि स्थान बिल्कुल नहीं पढते हैं, फिर भी भ्रमर को इन सुन्दर और महत्त्वपूर्ण स्थानों की यात्रा कराने के लिए चञ्करदार रास्ते से लका जाने का निर्देश किया गया है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत से चित्रकूट और फिर वहा से नर्मदा तथा विन्ध्याचल को पार कर कर्णाट (कर्नाटक) देश जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा पर करल एक रात्रि ठहरने के बाद कावेरी नदी तथा उसके तट प्रदेश को पार कर आगे बढ़ने पर भ्रमर के काञ्चीनगरी पहुचने का वर्णन किया गया है। पहिले शिवकाञ्ची का दर्शन किया गया है। वहा पर शिवजी के मन्दिर में शिवजी की स्तुति करने के बाद त्रिष्णु काञ्ची जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वहा त्रिष्णु भगवान् के दर्शन करने के बाद मार्ग में विभिन्न नद नदी और पर्वतों को पार करते हुए समुद्र तट पर स्थित किम्बी विन्ध्य पर्वत-श्रेणी पर भ्रमर के पहुचने का वर्णन किया गया है। इस विन्ध्य-श्रेणी से थोड़ी दूर पर ही समुद्र बतया गया है। समुद्र को पार करने के बाद लका नगरी तथा वहाँ पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने का उल्लेख किया गया है।

इस प्रकार सीताजी के पास भ्रमर के पहुँच जाने की संभावना करते हुए रामचन्द्रजी ने प्रथम तो सीताजी की कष्टमय अवस्था का वर्णन किया है।

तदनन्तर भ्रमर से सीताजी के प्रति अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। सन्देश कथन के बाद अन्त में भ्रमर के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त की गई हैं।

वस, काव्य में यही कथा है।

साहित्यिक समीक्षा

- यगल के संस्कृत दूत काव्यों में यह काव्य एक सरस तथा सुन्दर रचना है। कवि ने मेघदूत से ही प्रेरणा लेकर यह काव्य लिखा है। यद्यपि विषय, भाव तथा भाषा और शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत का अनुकरण ही है, फिर भी काव्य में अनेक स्वतन्त्र कल्पनाएँ पाई जाती हैं और रिप्रलम्भ शृंगार का तो बड़ा ही भावपूर्ण चित्रण किया गया है। काव्य की भाषा बड़ी मधुर तथा प्रसाद-पूर्ण है। समग्र काव्य में १२३ श्लोक हैं। पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन काव्य का नहीं किया गया है। अन्त में दो श्लोकों में कवि ने अपना परिचय भी दे दिया है। समग्र काव्य मन्दाक्रान्ता छन्द में ही लिखा हुआ है।

मार्गवर्णन के प्रसंग में कवि ने प्राकृतिक दृश्यों, नगरों तथा नगरनिरासियों का बड़ा भावपूर्ण और सरस चित्र प्रस्तुत किया है। नर्मदा नदी का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

तस्मादायात् सुभग भवता द्रक्ष्यते प्रेक्षणीया
रेवा विन्ध्याचलपरिसरे भर्तु रङ्गे प्रियेय ।
याऽसौ मन्दानिलपरिचयादुच्छ्रलद्वीचिरेखा
पश्यन्तीय प्रियमनिभृतभ्रूलता सन्नतभ्रू ॥१८॥

नर्मदा और विन्ध्याचल को प्रियसी और प्रिय के रूप में बड़ी सुन्दर रीति से वर्णित किया गया है। नर्मदा में स्नान करती हुई रमणियों का भी कवि ने बड़ा सुन्दर शब्दचित्र अंकित किया है—

तस्या प्रस्यह्नमृगदशो दर्शिताद्रंस्ननान्ता
तोपक्षेपरम्परिणतलय पाणिमभ्युत्क्षिपन्त्य ।
लीलापत्यो रतिपतिधनुर्विभ्रमैर्भ्रू विभ्रङ्गै
लोलापाङ्गै पथिकतदणानन्तरा तापयन्ति ॥१९॥

इस प्रकार की लीलापती रमणियों को देखकर तदणुपथिकों का हृदय अग्रश्य ही विचलित और सन्नत होजाता होगा। इसी प्रकार विन्ध्यपर्यत के वर्णन में भी शृंगार रस की छटा पाई जाती है। भ्रमर को विन्ध्यपर्यत जाने का परामर्श दते हुए कहा गया है—

याया' प्रवर्तयन् सुभगान् नर्मदातीचि भिन्नान्
दानाम्भोभि सुरमितशिलान् गन्धनागेन्द्र यूथै ।
स्रस्तापीडै सुरतपिशुनान् किन्नरी केलितरपान्
पश्यन् पश्यन् वनचरवधूवान्धरान् विन्ध्यपादान् ॥२४॥

विन्ध्य पर्वत के बाद कर्णाट देश (कर्नाटक) का वर्णन किया गया है । यहाँ की स्त्रियों को अत्यन्त सुन्दर, विलासमय तथा आकर्षक बताया गया है । ऐसे ही एक स्थल पर भ्रमर को सरोधन करके कहा गया है—

कुर्वाणाना किमपि कुतुक मन्दमन्द्राक्षमासाम्
सौधे सौधे मद्परिचमस्रस्त-चीनाशुकानाम्
स्निग्धस्निग्धान् प्रणयमधुरान् मन्मथोन्मादिनीना
कर्णाटीना रहसि रहसि द्रक्ष्यसि त्वं विलासान् ॥२६॥

इसके बाद कावेरी नदी तथा उसके तटवर्ती स्थानों का वर्णन किया गया है । यहाँ की विरहिणी स्त्रियों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है—

त्व कावेरीतटपरिसरे पान्थसीमन्तिनीना
मम्भोराहस्तनित अनितामोहलुप्त स्मृतीनाम् ।
उद्यद्वाप्पापिहित नयनान्धाकुलाप्रालकानि
प्रातश्चन्द्रप्रतिमजदनाम्यम्यरादेव पश्ये ॥३६॥

मेघ के गर्जन को सुनकर प्रोदितभर्तृकाओं की स्मृति का लुप्त हो जाना, नेत्रों से निरन्तर आसुओं का बहना तथा उनके मुख का प्रिय हो जाना स्वाभाविक ही है ।

कावेरी के तटप्रदेश के बाद शिवकाची नगरी का बड़ा उत्सव और सरस वर्णन कवि ने किया है । काचीनगरी की स्त्रियों के सम्बन्ध में कवि कहता है कि वे शिव जी तक को मुग्ध करती हैं और वहाँ की लड़कियाँ हुईं पताकाएँ तो सुरपुरी तक का भी उपहास करती हुईं बतलाएँ गईं हैं—

कान्ची काञ्चीमणिमिव भुयो यत्र लारण्ययत्यो
लोलापाङ्गुरपि पशुपते मोहमुत्पादयन्ति ।
एव धीक्षेथा प्रलपन्तोत्कम्पिताप्रा पताका
पस्या पुष्पन्धय सुरपुरीसम्पद तर्जयन्ति ॥४१॥

फिर मार्ग चलते चलते भ्रमर को धक जाने की समावना कर उसके मनो विनोद का भी बड़ा सरस साधन बताया गया है—

स्थाने स्थाने नखरिलिखितैरर्धचन्द्रावतसान्
 छस्तक्षीमान्मृगमदरसस्तिग्धपीतस्तनन्तान् ।
 मन्दस्मेरान् परिमलभुध कामिनीनां मुखेन्दून्
 पश्यन् पश्यन् स्मरसि न पुरा दुर्वहानध्वखेदान् ॥६२॥

ऐसे सुन्दर दृश्यों को देखकर किस अधिक की श्रान्ति दूर नहीं होगी। वहाँ की स्त्रियों का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

काश्चित्तस्या सरसधचनै सारिका पाठयन्त्यस-
 तालैरन्यास्तरलवलय नर्तयन्त्यो मयूरम् ।
 काश्चित् कीर करकिशलयेर्दाडिमौ-बीजदानै-
 रापुष्यन्त्य सुभग नयने नन्दयिष्यन्ति भूय ॥६३॥

मधुरचर्चनों से सारिका को पढाती हुई, सुन्दर ताल के साथ मयूर को नचाती हुई तथा अपने कोमल करों से तोते को अनार के बीज खिलाती हुई क्लिया किसके मन को मुग्ध न करेगी। स्त्रियों के कोमल स्वभाव तथा सहृदयता का इन क्रियाओं से बढ़कर और कौन सा उत्कृष्ट उदाहरण हो सकता है ?

शिवकाची के गढ़ विष्णुकाची नगरी का वर्णन किया गया है। इस नगरी की अट्टालिकाएँ इतनी ऊँची बतलाई गई हैं कि उनके पास से निकलते हुए बादल स्त्रियों के घु घराले केशों के समान दीख पड़ते हैं तथा अट्टालिका से बुतूहलवश गिराए हुए पुष्प को भी देखकर स्त्रियों को उरकापात का भ्रम हो जाता है—

यत्र स्त्रीणां कुटिलकररीभारलक्ष्मी प्रपेदे
 सौधप्रान्ते प्रतिविचरता नूतनेनाम्बुदत ।
 यस्या सौधान् कमलउदना केलिकौतूहलिन्या
 क्षिप्नात् पुष्पादपि विदधते तारकापातशकाम् ॥६६॥

विष्णु भगवान् की प्रतिमा का माहात्म्य वर्णित करते हुए कवि कहता है—

तस्या किञ्चित् तरुणतिमिराकारमालोकयेस्त्व
 ज्योतीरूपं परिणमति यद् योगिना मानसेपु ।
 ध्यायन्तो यत् कश्चन गहने कन्दरे भूधराणाम्
 युक्तात्मानस्तृणमिव जगन्नीर्गधि निस्तरन्ति ॥७०॥

ऐसे स्थान पर विना, आराधना किए कोई आगे कैसे बढ़ सकता है। इसीलिए भ्रमर को निम्न आदेश दिया गया है—

आराध्य त्वं दनुजदयितावर्गवैधव्य शीला-
 तत्तवाचाय तमुपसि ततो धर्म-सीमामुपेया ॥७६॥

विष्णु काची नगरी से आगे बढ़कर विभिन्न नद-नदी और पर्वतों को पार कर समुद्र-तट पर स्थित किसी विन्ध्यपर्वतमाला पर भ्रमर के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। इस पर्वत से आगे चल कर समुद्र पार करने के बाद लका नगरी आती है। वहाँ पर अशोक वाटिका में सीताजी के मिलने की संभावना की गई है। सन्देश बताने से पहिले रामचन्द्रजी ने सीताजी का वर्णन किया है। सीताजी की दयनीय अवस्था का वर्णन करते हुए रामचन्द्रजी भ्रमर से कहते हैं—

स्निग्धाशोकद्रमपरिसरे तत्र त्रिविच्चरीभिः
व्यग्रामेना प्रकृतिकृपणा मित्र जाया प्रपश्ये ।
बापासारस्नयितनयना पाणिलीताननेन्दु
यूथभ्रष्टामिव मृगवधू मद्गतप्रोद्वरागाम् ॥६६॥

शार्दूलीनामभिमुञ्जगता यूथहीतामिवैणीं
राहुभासादित्र निपतितामम्वरादिन्दुलेखाम् ।
नागेनाऽरादिषु कमलिनीमुदधृतासुग्मदेत
स्य वीक्षेभ्य प्रणयनगरीं प्राणभूता प्रिया मे ॥६७॥

कवि ने उपर्युक्त उपमाएँ देकर सीताजी की दयनीय अवस्था का पाठकों के समक्ष चित्र सा उपस्थित कर दिया है। रामचन्द्रजी के 'प्रणयनगरीं प्राणभूता प्रिया मे' इन शब्दों में कितना प्रेम छिपा हुआ है। आगे चलकर सीताजी की विभिन्न विरहावस्थाएँ बखित की गई हैं। उनकी विरह जन्म पाएहुता का वर्णन करते हुए कहा गया है—

यस्याश्छायामित्र तुलयितु मानसाम्भोनिवासै-
म्लान-म्लानैः क्रनक कमलैस्तप्तमुच्चैस्तपोऽपि ।
नून तस्या स्मरपरिभवग्लानमङ्ग प्रियाया
काले काल जरठलयलीपाण्डमानन्दधाति ॥६८॥

विरह में नितान्त रोते रहने का कवि ने कौसी भाव भगिमा के साथ निम्न पद्य में वर्णन किया है—

याऽसौ पूर्वं कनककमलवृन्दमौभाग्यभाजो-
मुंका जाले स्तनकलशयोर्निर्ममे निर्मलश्रीम् ।
मुकास्थूला कुचलयदशो भूरिशो वाण्यलेशास्
तामेरास्या सुभग सुपमामघ सन्धुक्षयन्ति ॥६९॥

सीताजी की विरहावस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने भ्रमर को सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश में सर्वप्रथम

उन्होंने अपनी दशा वर्णित की है । वे कहते हैं—हे मैथिलि ! हृग्ण का शिकार करने के बाद जब मैं कुटी पर लौटा, तब दूर से ही कुटी को खाली देखकर मेरा धीरज जाता रहा और घबराहट से मुझे कापता हुआ देख कर किमी तरह लज्जण ने मुझे जग सहारा दिया तब मैं कुटी में पहुँचा—

यातस्तम्भ प्रचलितधृति सम्भ्रमोत्पन्नकम्पो
दत्तालम्भ कथमपि तदा देवि त देवरेण ।
स्मार स्मार स्मरपरिमलोद्गारगर्भा गिरस्ते
यष्ट्येयान्ध प्रणयिनि जन प्राप दीन कुटीरम् ॥६६॥

सीताजी के विरह में एकदम रामचन्द्रजी के मन तथा शरीर का निश्चेष्ट हो जाना उनके प्रेम की तीव्रता व्यक्त करता है । आगे चलकर वे फिर कहते हैं—

आर्द्रैरेव प्रणयिनि भवत्पादपाथोज्ज्विह्वै—
ह्यारोपान्ते पुनरधिकया चिन्तया दूयमान ।
लोलापाङ्गप्रणयमधुरैर्जटिपनैर्जीवयैत
जल्पमित्य त्वरितमविश दधि मुग्ध कुटीरम् ॥१०१॥

इस श्लोक में प्रेयसी के विरह में उनको प्रलाप करता हुआ भी बताया गया है । कुटी में फिर आधी गुथी हुई बकुलमाला, कान से गिरा हुआ कर्ण पुष्प तथा मोन धारण किए हुए सारिका की देखकर रामचन्द्रजी के एकदम रो पड़ने का भी उल्लेख किया गया है—

तस्मिन्नर्धम शितवकुल दाम धामोद्य पश्यन्
दृष्ट्वा कर्णच्युतमपि च ते कर्णिकान्कर्णिकारम् ।
निर्व्यापारा सपदि शुभग सारिका चात्रलोभ्य
म्रीडेनाऽस्य प्रणयिनि तदा धाप्पपूरेण पूर्ण ॥१०२॥

सीताजी के विरह में कदम्ब के वृक्ष तक को रोता हुआ बताया गया है—

योऽसौ लीलापति चिरदिनैर्धृतो धारिसेकै
फाले फाले निजकरतलनेव दत्तालयाल ।
जगतोन्मेष प्रथमसितैरेव धाराधराणाम्
नीप स त्या नमधुलनच्छुद्धमना रोदिवीर ॥१०३॥

इसी तरह पालित मयूर और हिरन को भी उनके विरह में व्याकुल और निश्चेष्ट वर्णित किया गया है—

सोऽथ (मयूर) नाच मियसद्वचरि व्याधुर्नीते कलापम् ॥१०४॥

सोऽय (हरिण) दर्भाङ्कुरकबलने नि स्पृहो रङ्कुशाव-
स्त्वत्पादाङ्के त्रिलुठतितरा कजल कुञ्जगर्भे ॥१०६॥

यह भ्रमर जो पहिले सीताजी के कर्ण पुष्पों का रस ग्रहण किया करता था, अब उस सौरभ की याद में डूबा हुआ मालती पुष्पों के रस को भी ग्रहण नहीं करता है—

भूय स त्वन्मुखपरिमलानायतानायताक्षि
स्मार स्मार न यत्तु भजते मालतीना मधूनि ॥१०७॥

सीताजी के वियोग में बेचारी हसिनी की भी यही दयनीय अवस्था बतलाई गई है। यह भी सीताजी की खोजकर रही है तथा कुछ खाती पीती नहीं है—

सेथ मुग्धे विकलहृदया त्वामिहान्वेपयन्ती
कूले कूले चरति सरसो हन्त लीलामराली ॥१०८॥
नोपादत्ते विसकिसलय किन्तु चनूपुटेन
त्वद्विश्लेषव्यथितहृदया केवल रोदितीव ॥१०९॥

इस तरह सीताजी के वियोग में अपनी तथा अन्य आश्रम वासियों की चिन्ता और व्याकुलता का वर्णन करने के बाद रामचन्द्रजी फिर अपने सन्ध में कहते हैं कि सीताजी की स्मृति में बन की एक एक कुञ्ज 'जानकी जानकी' चिल्लाते हुए उन्होंने खोज डाली है। परंतों की ऐसी कोई भी गुफा नहीं बची जिसको उन्होंने देखा न हो तथा हर रात्रि रोत हुए और प्रलाप करते हुए ही बीती है और ऐसा कोई भी दुःख न बचा जो उन्होंने अब तक न उठाया हो—

कुञ्जे कुञ्जे गलितगरिमा जानकी जानकीति
क्षामक्षामस्त्व सहचरो दुर्भरो रोरवीति ॥११०॥

कस्मिन्न त्व गृहिणि गहने भूरिशो मार्गिताऽसि
त्वत्सन्देहान्न खलु त्रिचिता का दरी वा गिरीणाम् ।
का वा रात्रिर्न परिगमिता वाप्यगम प्रलापै
किं वा तन्त्रि व्यसनमपि तद् यन्मया नान्वभावि ॥११३॥

आगे चलकर फिर रामचन्द्रजी कहते हैं —

को नारण्य विशति मृगयाकोतुकी कामु कक्ष
को वा रङ्कोरनुसरति नो वर्त्म निस्फारितज्य ।
आहतुं या वत मृगयते क त्रियं न प्रियाया
को जानीते यदिह विधिना राघवो यञ्जनीय ॥११६॥

रामचन्द्रजी के इस कथन में बड़ी निराशा और ग्लानि छिपी हुई है।

सन्देश के अन्त में सीताजी को आशा बधाते हुए कहा गया है—

हत्वा मत्तञ्चरपुरपति त्वामुपादाय सीते
 प्राप्योत्कण्ठाकुलपुरजना कोशला कौशलेन ।
 आधाप्य त्वामुरसि मुदिरामोगमाद्वान्धकारा (मेघ = मुदिर)
 धारासारस्नपितकंकुभी थापनीयास्त्रियोगे ॥१२२॥

सीताजी के पास सन्देश पहुँचाने के कष्ट को ध्यान में रखकर भ्रमर के लिए अन्त में आशीर्वाद भी देना सुन्दर ही दिया गया है—

पाय पायं मधु सुमधुर पुष्पिताना लताना
 भागा भागा नक्तकोसिन्धुसिन्धुगणैर्नक्तनेर्ति ।

॥१२३॥

भ्रमर के लिए मधुर पुष्परस का पान, कमलिनी-गर्भ में निवास तथा अपनी सहचरी का निरन्तर संसर्ग इनसे बढ़कर अनैन्द-दायक और कौनसी बात हो सकती है।

समग्र काव्य के अंशुरीजन से हम यह कह सकते हैं कि यह सन्देश-काव्य एक सरस और सुन्दर काव्य है। विप्रलम्भ शृंगार का इस काव्य में बड़ा सुन्दर चित्रण किया गया है। राम और सीता के विप्रलम्भ का वर्णन तो है ही, मार्ग वर्णन के प्रसंग में भी विरहिणी स्त्रियों की विभिन्न चेष्टाएँ वर्णित की गई हैं। विप्रलम्भ शृंगार के अनुकूल ही काव्य में मौर्ध्यगुण तथा वैदर्भी रीति पाई जाती है। उपर्युक्त अनेकों अवतरणों से पताचक माल सुन्य इस बात का अनुभव कर सकते हैं।

मार्ग वर्णन, सन्देश कथन, रिस, भाव, प्रिय तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत का एक सफल अनुकरण तो है ही, कहीं रे मावसाम्य तथा शब्द-साम्य भी इतना स्पष्ट है कि इस काव्य के पदों ही मेघदूत की पदावली एक दम ध्यान में आ जाती है। उदाहरणार्थ कतिपय स्थलों की तुलना अप्रासंगिक न होगी—

- १ आपृच्छस्य प्रियसहचरी त्वद्गुतप्रोदरागाम् ॥१४॥ भ्रमरदूत
 आपृच्छस्य प्रियसखमसु नुरूमालिङ्ग्य शैलम् ॥१॥२६॥ मेघ०
- २ पुञ्जीमृतानि यशुपतेराकेतनिदृष्टासन्ति ॥२७॥ भ्रमर०
 राशीभूतं प्रतिदिनाप्रियं यमेवकेस्यादृष्टासं ॥१॥२६॥ मेघ०

३ यक्रः पन्था यदपि भरत^१ प्रस्थितस्योत्तराशाम्
सौधोत्संगप्रणयविमुखो मा स्म भूर्जजयिन्या ॥ मेघ०
द्रष्टु देशानतिशयगुरून् श्रोत्र नेत्राभिरामान्
न त्व भ्रातर्भ्रमर गणयेरध्वनो जिह्वाभावम् ।
आसन्नच्छो क्षणमतिथयो यस्य ते ते न देशा
सृष्टा दृष्टि सुमग विधिना तस्य मन्ये मुधैव ॥१७॥ भ्रमर०

४ नीता रात्रि^२ क्षणमिदं मया सार्धमिच्छार्त्तैर्यो
तमेवोष्णै विरहमहतीमश्रुभि र्यापयन्तीम् ॥२॥२॥ मेघ०
मघश्यामा स्फुरिततंडितो यामिनीर्या निमेवात्
पूयं रामो गृहिणि गृह्णे त्वत्सनाथो निनाय ।
ता एवाद्य प्रलेपजलेदध्वानधारगेर्मा^३
करुणयन्ते कमलवदने दीर्घयामा रजन्य ॥११॥ भ्रमर०

५ न्वामारूढ परनपदवीमुद्गृहीतालकान्ता
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिता प्रत्ययादाश्वसत्य ॥१॥२॥ मेघ०
त्वामुधान्तं विधति विकसन्नेत्रोलालकाप्रो
प्रेक्षिष्यन्ते विरहवनिता कोपरकर्त्तरेपाङ्ग ॥३॥ भ्रमर०

६ नूनं तस्या स्मरपरिभवगतानमङ्ग प्रियाया
काले काले जरठलवलीपाण्डिमानन्दधाति ॥२॥६॥ भ्रमर०

नूनं तस्या प्रयलरुदितोच्छूननेत्र प्रियाया (मुखम्)
इन्दोर्द-यं त्वदनुसरणक्लिष्ट कान्ते विभर्ति ॥२॥४॥ मेघ०

इस तरह दोनों काव्यों में समानान्तर भाव तथा पद अनेक स्थलों पर पाए जाते हैं ।^१

कवि ने काव्य में यथास्थान अलंकारों का भी उचित प्रयोग किया है । काव्य लिंग, अर्थान्तरन्यास और भाविक इत्यादि अर्थालंकार स्थान २ पर पाए जाते हैं । अवतरण शब्द का अर्थ में ग्रन्थ का क्लेशर यद्वा अनुचित ही होगा । शब्दालंकारों के एक दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

१ दे० काव्य की भूमिका, पृष्ठ २०-२१ । डा० जे० वी० चौधरी ने ऐसे अन्य स्थलों का भी निर्देश किया है ।

१ लीलोधान ललितलवलीलमिरोलम्प्रमाल
मन्दोन्मीलद्वकुलमुकुलामोदमेदस्त्रि पश्य ॥२०॥ (चुस्वनुप्रास)

२ अग्रेकृत्य प्रियसख दयादक्षिणी दक्षिणाशाम् ॥२६॥ (यमक)

कहीं-कहीं कवि ने बड़ी सुन्दर सूक्तिया भी पाठकों के सामने रखी हैं। यथा-

१ प्राय प्राणाधिकयुजतयो न मृतन्त्रा युजान् ॥२४॥

२ काव्य केया न खलु युजतीपाणिसस्पर्शहर्ष ॥२१॥ इत्यादि

इस तरह मेघदूत के अनुकरण पर लिखे जाने पर भी यह काव्य स्वतन्त्र उद्भावनाओं तथा सुन्दर कल्पनाओं से परिपूर्ण है। मारयमान् परंत से लजा तरु का जो मार्ग दम् काव्य में वर्णित किया गया है, भौगोलिक दृष्टि से वह असंगत ही है। लेकिन जब हमें यह मालूम होता है कि कवि ने जान बूझ कर यह मार्ग अपनाया है, तब हमारा भ्रम दूर हो जाता है। सभ्य है कि रमणीयस्वलों के वर्णन के प्रलोभन को कवि सरण नहीं कर सका हो। अतः ऐसा चक्करदार मार्ग इस काव्य में वर्णित किया गया है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि ईसा की सत्रहवीं शताब्दी (त्रि० सप्तदश शतक का उत्तरार्द्ध) में बंगाल में लिखी गई संस्कृत कविता का यह काव्य एक उत्कृष्ट निदर्शन है तथा सुन्दर और ललित भाषा में लिखा गया एक सरस सन्दशकाव्य है।

रुद्रन्यायज्ञानन का रूपिदूत

यह रूपिदूत एक बहुत छोटा सा दूत काव्य है। प्राच्यराणी मन्दिर, बलकृष्ण की पत्रिका प्राच्यराणी, जित० २, अंक ३-४, १९४५ में मूलमंत्र यह काव्य प्रकाशित हुआ है। इस दूत काव्य की एक हस्तलिखित प्रति कलकत्ते के प्रो० चिन्ता हरण चक्रवर्ती, एम० ए० के निजी पुस्तकालय में है। एक प्रति ढाका विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में भी पाई गई है। ढाका विश्वविद्यालय की हस्त लिखित प्रति का अन्त में 'इति श्री रुद्रनाथ (? न्याय) पञ्चाननभट्टाचार्य विरचित रूपिदूत नाम काव्य समाप्तम्।' ऐसा लिखा हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि इस लघु सन्दश काव्य का रचयिता तथा भ्रमरदूत का रचयिता दोनों एक ही व्यक्ति हैं। श्री कृष्णमाधव ने

अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में पृष्ठ ३६२ पर इस काव्य को किसी अनिज्ञात लेखक का बताया है। उनके लिए सभ्यत ढाका विश्वविद्यालय की हस्तलिखित पुस्तक का ज्ञान नहीं रहा होगा। भ्रमर-दूत नाट्य के प्रसंग में श्री रुद्रन्यायपञ्चानन का समय तथा उश इत्यादि विशद रूप से वर्णित किया जा चुका है। तदनुसार इस काव्य को भी विक्रम सप्तदश शतक के उत्तरार्ध में ही लिखा हुआ मानना चाहिए।

काव्यसार

इस काव्य में मथुरा में स्थित श्रीकृष्णजी के पास राजा ने वृन्दावन से पिक को अपना दूत बना कर भेजा है। कृष्ण के निरह में व्याकुल राधा वन में इधर उधर घूमती होती है कि उसे एक कोकिल दिखलाई पड़ती है। अपनी उन्मत्त अवस्था में यह कोकिल से श्रीकृष्ण के पास अपना सन्देश ले जाने की प्रार्थना करती है। अन्य सन्देशवाहकों की अपेक्षा कोकिल की उत्कृष्टता ज्ञाकर उसकी यात्रा के लिए उपयुक्त यान, अश्व और सागधि इत्यादि का भी वर्णन किया गया है। वृन्दावन से मथुरा निकट ही है, अतः काव्य में मार्गवर्णन निकुल ही नहीं है। मथुरा में श्रीकृष्णजी के पास कोकिल के पहुँचने की समावना कर राधा ने उसे अपना सन्देश बताया है। सन्देश कथन के बाद काव्य समाप्त हो जाता है।

साहित्यिक समीक्षा

जैसा कि प्रारंभ में कहा जा चुका है, यह काव्य अत्यन्त ही छोटा है। इस काव्य में केवल ३१ श्लोक हैं। मेघदूत से प्रेरणा लेकर तो यह काव्य लिखा ही गया होगा, लेकिन इसमें और मेघदूत में विप्रलम्भ शृंगार की समानता के अतिरिक्त और कोई समानता नहीं है। मेघदूत में नायक अपनी नायिका के पास दूत भेजा है, इसमें नायिका ने नायक के पास दूत भेजा है। काव्य में छन्द भी भिन्न ही है। शार्दूल विकीर्णित छन्द में यह काव्य लिखा गया है। काव्य में मार्गवर्णन निकुल ही नहीं है तथा पूर्व भाग और उत्तरभाग जैसा कोई विभाजन भी काव्य का नहीं किया गया है।

अत्यन्त छोटा होते हुए भी यह काव्य सरस और सुन्दर है। कवि ने यही सुन्दर उद्भाषनाएँ काव्य में प्रस्तुत की हैं। कोकिल को दूत बनाने का कारण बताते हुए राधा कहती है—

सर्वास्थेय सभासु कोकिल भगान् यता यतस्त्वद्भव
श्रुत्वा सर्वानृणां मनोऽपि रमते त्वं चापि लोकप्रिय ॥४॥

अन्य द्विरेफ इत्यादिकों के दूत न बनाने का भी कारण मुनिप—

तिष्ठन्त्येव हि दौत्यकर्मणि रता अन्ये द्विरेकादयः
किन्त्वस्माभिरिमे हरेर्निकटतो न प्रेयणीया क्वचित् ।
ते यस्मान्मधुलोभिनो मधुरिपो प्राप्याद्भिषपज्ञ ततो
नो चेत्तन्मधुलोभतो मधुपुरादायासुस्मिन् पुन ॥१॥

अपने मन को दूत बनाने के प्रश्न का राधा ने कितना सुन्दर उत्तर निम्न श्लोक में दिया है—

चेतस्तत्र समीरित यदुपतेरासाद्य पादाभ्युजम्
तस्मिन्नेव विपजत पिक मुदा तस्मात् पुनर्नागतम् ॥६॥

इसलिए किसी और को दूत न बनाकर पिक को ही राधा ने अपना दूत बनाया है और उस के सम्बन्ध में कहा भी है—

युक्त सर्वगुणान्वितस्य विदुषो दूतस्य सप्रेरणम् ॥४॥

तत् क्वचित् हि गच्छ गच्छ मधुरामन्यं मुहुस्त्वा विना
को वाऽस्ति ब्रह्मयोविता मनसिजा बाञ्छा समापूरयेत् ॥६॥

इस प्रकार पिक को दूत-कार्य में नियुक्त कर मार्ग में उसके कष्ट का ध्यान रखते हुए यान इत्यादि की भी वही सुन्दर व्यवस्था की गई है—

चित्त मत्तमतङ्गमाशु पिक मे प्रारह्य नाथान्तिकम्
हेः कृष्णेति श्रवोऽङ्क शेत गमयन् गच्छानिर्वायं (?) मुदा ।
एतेनापि तस्मात्नेत जनित दुःख न भूयात् सखे
तावत् कृष्णपद तथापि च पुनर्गोपाङ्गना प्रश्यतु ॥१३॥

चित्त को मत्तमतङ्ग तथा 'हे कृष्ण' इस ध्वन को अकृश का कितना सुन्दर रूपक दिया गया है । इसके अतिरिक्त एक और यान बताते हुए फिर राधा कहती है—

अस्माकं च मनोरथोपरचित यानं समाह्वय वा
तस्मिन् सत्यरग नियोज्य महसा तावन्मनोयाजितम् ।
यन्तार परिकृत्य कृष्णविरह मत्प्राणनायान्तिकम्
गच्छानेत तदैव ते न भविता कष्टं महत्सागेजम् ॥१४॥

इस श्लोक में मनोरथ को रथ वा, मन को अश्व वा तथा कृष्णविरह को सारथि का रूपक देकर कृष्ण ने अपनी प्रीति काटना शक्ति का परिचय दिया है ।

आगे चल कर फिर कोकिल से कहा गया है कि यदि उसे धूप लगे, तो वृक्षों की छाया में उसे विश्राम कर लेना चाहिये, व्यास लगे, तो धी कृष्ण के नामा-

मृत को पी लेना चाहिए और यदि भूख लगे, तो श्रीकृष्ण के दर्शन करने का फल तो उसक लिए मिल ही जायगा—

मन्तव्योऽसि यदातपैरिन्दुपिनो मूल समासाद्य वा
विश्राम रचयन् मुहुर्मधुपुरी गन्ताऽसि मारप्रिय ।
कृष्णा त्वा यदि गधते मधुरिपोर्नामामृत सपिन्न्
भुक्त्वा दर्शनपुण्यज फलमहो त्व चेत् चुधापीडित ॥१५॥

इस प्रकार यात्रा पूर्ण करने के बाद कोकिल को राधा ने कृष्णजी के लिए दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। राधा कोकिल को कृष्णजी के प्रति अपना सन्देश बताते हुए सर्वप्रथम कहती है—

राधा माधव ते त्रियोगकणिना सदशिता तद्विषै-
राञ्छन्ना तत्र सन्निधौ त्रिभुमुली मा प्रेरयन्ती क्षणात् ।
मुग्धाऽभूदधुना किमस्ति नहि वा तन्नैव जाने सखे
गत्या तत्र समुच्यतामिति मुहुर्गापीश्वारायणे ॥१८॥

आगे चलकर वह फिर कोकिल से कहती है कि तू कृष्ण से इस प्रकार कहना—

यावत् त्वत्पदसन्निधे पुनरह यास्यामि वृन्दावन्तं
सा तावन्न जहाति माधव तनु ते दर्शनाकाटिच्छणी ।
मत्तस्त्वद्वचन निशम्य च शुभ किं वाशुभ तत्क्षणात्
कर्ता यदि हित तदेव सुतरामित्युच्यता कोकिल ॥१६॥

इन पद्यों में कृष्णविरह में राधा की अचेतनावस्था और कृष्णदर्शन की उत्सुकता का कवि ने बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया है।

राधा ने फिर कोकिल से कहा है कि तू जरा कृष्ण से यह तो पूछना कि जिसने अपना पति, मान, गुरुओं के वचन, धर्म, कर्म और कुल की लाज को छोड़ कर तुम्हारे लिए अपना जीवन अर्पित किया तथा जो तुम्हारी धरी के स्वर को सुनकर पागल की तरह अपने पति के घर से निकल पड़ती थी, उसे किसके हाथ सौंप कर तुम यहाँ मथुरा में रहने लगे हो। अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुए राधा फिर कहती है—

गौरी कोकिल मे परा तनुरियं कृष्णेन कृष्णीकृता
सुस्थ शुद्धमुद्गरमेव परमं चित्तञ्च मत्त कृतम् ।
किञ्चास्यात्मपथादिनी परिहृता गोपालपुर्यामहम्
नो तद्दंष्ट्रिम तथापि यन्मम मनस्तं चैव सचिन्तयेत् ॥२०॥

कृष्ण के प्रेम में राधा के शरीर का कृष्णमय हो जाना तथा उसके चित्त का

मत्त हो जाना उसके प्रेम की अनन्यता का परिचायक है। अपनी मनोव्यथा को पुनः प्रकट करते हुए राधा कहती है—

मह्य यानि समर्पितानि हरिणा दुःखान्यसह्यानि वै
सहान्ते खलु तानि कोकिल हरेर्नाम स्मरन्त्या मया ।
किन्त्वस्मिन् प्रजमण्डले भवति यो लोकापवादो महान् ।
दित्वा मामिति माधवो मधुपुरे यात स नो सहते ॥२६॥

किसी के प्रेम में कोई कितना भी दुःख उठा सकता है, लेकिन अपने प्रेम की अवहेलना बड़ी कठिनार्थ से नहीं जाती है। इसी प्रकार राधा फिर कहती है कि कृष्ण के मधुरा खले जाने पर घृन्दावन में रहने वाली किस स्त्री ने कृष्ण के गुणों का स्मरण नहीं किया, कौन उनके विरह में दुःखित नहीं हुई तथा 'कृष्ण कहा गए' ऐसा विलख कर कौन नहीं रोई, लेकिन फिर भी लोग न जाने मुझे ही क्यों कृष्ण विरहिणी कहते हैं। अन्त में वह कहती है कि श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल मेरे प्राण ठहरना भी नहीं चाहते हैं और उनके आने की आशा से निकलना भी नहीं चाहते हैं। हे पिक! तू ही बता मैं कैसे मरूँ और कैसे जिऊँ। तुझे मैं अपना दुःख क्या बताऊँ—

तिष्ठासन्ति न मेऽसवो मधुरिपोर्विच्छेददुःखार्दिता
नाथस्यागमनाशया पुनरमी नो वा विद्यासन्ति वै ।
तस्मान्मम मृतिजीवने पिक कथं स्याता तदेवोच्यताम्
किन्ते दुःखमनन्तमच्युतकृत सवच्चिन्मेतोऽधिकम् ॥३१॥

इस प्रकार श्रीकृष्णजी के लिए सन्देश्य बातें बताकर कुछ ऐसी बातें भी कोकिल से कही गई हैं जिनको कि कृष्णजी से कहने के लिए स्पष्ट रूप से कोकिल को मना कर दिया गया है। इस प्रसंग में राधा कोकिल से कहती है—

नाथे गच्छति पटपदा सुमधुर नादं न कुर्वन्त्यहो
नो मृत्यन्ति घनागमेऽपि शिखिनो नो धान्ति याता शुभाः ।
नो पुण्यन्ति कदम्ब-चम्पक जया-सप्तच्छत्रादीनि च
श्रेष्ठ्य नैव जनार्दनान्तिक इदं रे चक्रपाणिमिय ॥२४॥

संभव है कि इन बातों को सुनकर कृष्णजी का हृदय और अधिक दुःखी हो जाये और वे यदा आने का विचार ही छोड़ दें। इसी प्रसंग में राधा ने फिर कहा है—

श्री घृन्दावन इन्दुरत्र नलिनीनाथापते यामिनी
तापसु कालनिशायतेऽपि च मरुदुबहनीयते सूरजा ।
तसा यैतरणीयते पिक सदा मालाऽपि सर्पायने
पक्षय्य न वदापि नाथ इदमप्यसन्नमनोऽमीष्टके ॥२४॥

इस पद्य में प्रकारान्तर से राधा की विरहावस्था ही वर्णित की गई है। प्रिय ससर्ग में जो वस्तुये रमणीय और सुखकर होती हैं, प्रियविरह में वे ही दुःपद प्रतीत होने लगती हैं। लेकिन इन सत्र वातों को राधा अपने कृष्ण से छिपाना चाहती है ताकि उसकी विरहव्यथा से उन्हें कोई कष्ट न हो।

इस प्रकार इस सन्देश काव्य में राधा का विरह-वर्णन तथा कृष्ण के लिये उसका प्रेमसन्देश पाया जाता है। यद्यपि सन्देश भेजने के समय का उल्लेख नहीं किया गया है, फिर भी कोकिल के साहचर्य से वसन्त ऋतु का अनुमान किया जा सकता है, क्योंकि अन्य ऋतु में कोकिल पाई ही नहीं जाती है। यदि मिल भी जाये, तो उसका कण्ठ बन्द रहता है। इसके अतिरिक्त कवि ने प्रथम श्लोक में स्वयं ही लिखा है—

शुश्रावेन्दुमुखी वनप्रियरव राधा कुरङ्गेक्षणा ॥१॥

अतः सन्देश भेजने का समय वसन्त ऋतु ही है।

भ्रमर-दूत और पिक दूत यह दोनों ही काव्य श्री रुद्र न्याय-पञ्चानन के लिखे हुये हैं। इन दोनों में कौन पहिले लिखा गया है और कौन बाद में—यह निर्णय करना कुछ कठिन ही है। पिकदूत की कविता उतनी सरस तथा प्रसाद-पूर्ण नहीं है जितनी कि भ्रमरदूत की। कहीं-कहीं पिकदूत में कुछ क्लिष्ट कल्पना भी पाई जाती है। दूसरे इस काव्य में मार्गवर्णन तो है ही नहीं और सन्देश के अन्त में कोकिल को आशीर्वाद इत्यादि भी नहीं दिया गया है। इस दृष्टि से यह काव्य कुछ अपूर्ण सा ही लगता है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रथम यही सन्देशकाव्य कवि ने लिखा होगा। यदि भ्रमर-दूत के बाद इस काव्य की रचना हुई होती, तो यह काव्य आकार तथा प्रकार दोनों में ही भ्रमरदूत से उत्कृष्ट होता।

कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि कवि ने इस काव्य में (श्लोक सं० ५, इसी ग्रन्थ के पृष्ठ २४ पर उल्लिखित) भ्रमर को दूत बनाने में अपनी उदासीनता प्रकट की है। ऐसा तभी हो सकता है जब कि भ्रमरदूत को लिखने के बाद यह काव्य लिखा गया हो। कृष्ण के संग्रन्थ में श्रीमद्भागवत में भी भ्रमर को दूत बनाया गया है, अतः इस काव्य में भ्रमर के दूत बनाये जाने का प्रश्न स्वभावतः ही उठता था, उसी का कवि ने उचित अरसर पाकर समाधान कर दिया है। इसलिये यह पिकदूत भ्रमर-दूत के बाद की ही रचना है।

लेकिन यह विचार भी नितान्त सत्य नहीं है। इस काव्य में भ्रमर के प्रति जो उदासीनता व्यक्त की गई है, वह कवि की स्वाभाविक उदासीनता नहीं है, बल्कि कार्यवश ही भ्रमर को दूत नहीं बनाया गया है। अतः भ्रमर दूत को कवि की उत्तरकालीन रचना मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

काव्य में अप्रत्यक्ष रूप से देया और सत्य इत्यादि गुणों की प्रशंसा भी कवि ने की है। कोकिल से दूत कार्य करने की प्रार्थना करते हुये राधा कहती है—

सन्तो यद्वितरन्ति कोकिल कृपा दीनातिर्दाने जने
नो तत् कारणत सतामिदमहो शील च तेपा पुन ।
किं कुर्यान्नलिन खेरपि विधो किं वा सखे करैर
सूर्य पद्ममपीन्दुरत्पलमल सफुरलयैदेव यत् ॥१८॥

इसी तरह सज्जनों के सत्यभावण की भी प्रशंसा निम्न पक्ति में पाई जाती है—

प्राणान्तेऽपि चदन्ति सत्यरचन सन्त पुनर्नानृतम् ॥२७॥

यह काव्य एक लघुतम सन्देशकाव्य होते हुए भी राधा और कृष्ण के अनन्य प्रेम की अनुपम भावकी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। सन्देश काव्यों की शिल्प योजना में शार्दूलनिकीटित छन्द का प्रयोग कर कवि ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। मेघदूत के अनुकरण का इस काव्य में कहीं भी कोई प्रभाव नहीं पाया जाता है। विरह-वर्णन में तीव्रता होते हुये भी श्रु गारिकता सयत रूप में ही काव्य में पाई जाती है। अपनी विरहव्यथा का वर्णन करते हुए राधा ने कोकिल के समक्ष बड़े गम्भीर विचार व्यक्त किये हैं। यथा—

दैत्यारैर्विरहानल परतरो दावानलो वाऽभवत्
गोपीना नयनाश्रुपत्तिरधुना नो वृष्टिरैवाभवत् ।
कालोऽयं मम दुर्विपाकघणत वरपान्तकालोऽभवत्
मन्ये सहरणाय कोकिल हरिर्ना रुद्ररूपोऽभवत् ॥७॥

इस पद्य से विरह की उग्रता तथा राधा की व्यग्रता का पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं। भाव तथा रस के अनुकूल काव्य में माधुर्य गुण और वैदर्भी रीति सर्वत्र पाई जाती है। राधा और कृष्ण के भक्तों के लिये यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

शतावधानकवि श्रीकृष्णदेव का भृंगदूत (वि० अष्टादश शतक)

— यह गणुच विश्वविद्यालय पत्रिका' सं० ३ दिसम्बर, १९३७ में प्रकाशित हुआ है। मैसूरपुरी (उत्तर प्रदेश) के पं० सुरजमल चतुर्वेदी से इस काव्य की हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। 'काव्य के अन्त में 'इति शतावधान कवि

कलित भ्रमरसन्देश समाप्तम्' ऐसा लेख है। इससे ज्ञात होना है कि इस काव्य का नाम 'भ्रमरसन्देश' है और उसके लेखक का नाम शताग्रधान कवि। लेकिन 'शताग्रधान कवि' यह नाम वास्तविक नामसा नहीं लगता। समझ है कि एक साथ सी विषयों पर ध्यान देने की शक्ति रखने के कारण कवि की यह उपाधि पड़ गई हो। काव्य का अन्तिम श्लोक इस प्रकार है—

श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधान शताग्रधान परमाभिधानम् ।
श्रीभृङ्गदूत श्रुतिसारभूत व्यधादतिप्रेमकथानुभूतम् ॥

इस श्लोक से ऐसा ज्ञात होता है कि कवि का नाम कृष्णदेव है। 'श्री' शब्द केवल आदर-सूचक है। यद्यपि इस नाम के मानने में समाप्त की कठिनाई ही रहनी है, क्योंकि 'श्रीकृष्णदेवस्मरणाभिधान' में श्रीकृष्णदेव इति स्मरण योग्यम् अभिधानम् यस्य रु — इस प्रकार मध्यमपदलोपिसमास अथवा 'श्रीकृष्णदेवस्य स्मरणे अभिधान यस्य स — इस प्रकार व्यधिकरण बहुव्रीहि समास ही बनता है, फिर भी यह मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि कवि का नाम शताग्रधान श्रीकृष्णदेव है। यद्यपि इस काव्य के अन्त में 'भ्रमर सन्देश' यह नाम दिया हुआ है, लेकिन काव्य के अन्तिम श्लोक में 'भृङ्गदूत' शब्द के आने से इस रचना का नाम 'भृङ्गदूत' ही समझना चाहिये। लिपिकार के इस कथन—

••• अलेखि रामकृष्णो न सूकरक्षेत्रमासिना
पुस्तक भृङ्गदूतस्य धर्मकामार्थसिद्धये ॥

में 'भृङ्गदूत' शब्द के उल्लेख से भी इस रचना का नाम भृङ्गदूत ही उचित प्रतीत होता है।

शताग्रधान कवि श्रीकृष्णदेव के समय के सग्रन्थ में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। केवल इतना निश्चित है कि यह स० १७४० वि० (स० १६६६ ई०) से पूर्व के हैं, क्योंकि लिपिकार ने अपनी लिपि का समय 'स० १७४० वर्षे फारगुल यदि अष्टम्या रविवासरे' ऐसा दिया है। पूर्णिमान्त मास की पद्धति से यह तिथि १६ फरवरी स० १६६६ ई० रविवार निकलती है। प्रो० वि० वि० मिराशि (नागपुर) इस गणना की पुष्टि भी कर चुके हैं। अतः वि० अष्टादश शतक का प्रथम भाग ही कवि का समय निश्चित होता है।

यह पुस्तक सूकरक्षेत्र (सोरो, उत्तरप्रदेश) में लिखी गई है तथा ब्रजभूमि के अनेक विवरण इस काव्य में पाये जाते हैं और हस्तलिखित प्रति का स्वामी अपने को लेखक (कवि) का वंशधर बतलाता है। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि इस काव्य का रचयिता सोरो या मैनपुरी का निवासी है। इसके अतिरिक्त इस कवि के सग्रन्थ में और कुछ ज्ञात नहीं है।

काव्य की कथा

पूर्वानन्द, परमपुरष, कमलनयन श्रीकृष्ण भगवान् के विरह में एक गोपी अत्यन्त व्याकुल रहती है। सादनी रात भी करप के समान उसे प्रतीत होती है। एक दिन सूर्यादय होने पर मधुर मधुर गुजता हुआ एक भौरा उसे दिखलाई पड़ जाता है। वस, कृष्ण के पास अपना सन्देश भेजने के लिए वह उसे ही दूत बनाती है और उससे वृन्दावन जाने की प्रार्थना करती है। इस प्रसंग में वृन्दावन, नन्द-गृह, नन्द के उद्यान, यशोदा के पुत्रप्रेम और वृन्दावन की राजवीथियों में होने वाली गोपियों की विलासप्रय चेष्टायें बड़े सरस ढंग से वर्णित की गई हैं। स्थान-स्थान पर नृत्य और गीत का प्रदर्शन करती हुई गोपिकाओं के देखने का भी भ्रमर को परामर्श दिया गया है। यमुना के मार्ग में आने वाले सरस्वती और शिवजी के मन्दिर का भी वर्णन पाया जाता है। मार्ग स्थित कदम्ब वृक्ष पर गोपिकाओं के वस्त्रों को झीन कर बैठे हुये कृष्ण की लीलाओं के भी बड़े सरस चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। यमुना के वाद फिर वृन्दावन जाने का भ्रमर को परामर्श दिया गया है। वृन्दावन के द्वार और अन्तर्वाथियों इत्यादि के वर्णन के बाद गोवर्धन पर्वत का वर्णन किया गया है। इस पर्वत की ही किसी ऊँची चोटी पर चढ़ कर कृष्णजी की क्रीडामूर्ति देखने का भ्रमर को आदेश दिया गया है। क्रीडामूर्ति में गोपिकाओं और गोपालों के बीच में ही कहीं पर कृष्णजी के मिल जाने पर उन्हें प्रसन्नचित्त तथा उपयुक्त अपसर देखकर अपना सन्देश सुनाने के लिये गोपिका ने भृगु से अनुरोध किया है। सर्व प्रथम भृगु से कृष्ण की स्तुति करने के लिये कहा गया है। तदनन्तर भृगु से कृष्ण को निम्नलिखित सन्देश सुनाने की प्रार्थना की गई है।

हे करुणासागर, अनन्तशक्ते, गोपीरम्भा, वासुदेव भगवन् ! एक गोपी इस समय आपके विरह में बड़ी व्याकुल है। अपनी विरहद्वयथा आपको सुनाने के लिए उसने मुझे दूत रूप से आपके पास भेजा है। हे देव ! आपके विरह में चन्द्रिका उसके लिये अग्नि के समान है, पत्रों की शय्या अगर तुल्य है, पुष्पों का हार भार सा लगता है, कमल के पत्ते धाणों की तरह चुमते हैं, मदिरा विष के समान है और वशी का स्वर तो उसे मूर्च्छित सा करता है। हे देव ! तुम्हारे ध्यान में उसका एक २ दिन करप के समान बीतता है। हे माधव ! हाथ जोड़ कर उसने तुम्हारे लिये यह सन्देश भेजा है कि तुम सर्वदा चित्त में रहते हो। अनेक भायों से बालक जगत् में तुम्हारा प्रकाश हो रहा है। पेसी कोई वस्तु नहीं जिसमें तुम्हारा विलास न हो। सारे प्राणी तुम्हारी माया के वश में हैं। मैंने लहजा, कुल, शील और मान मर्यादा छोड़ दी है। मुझे किसी का डर नहीं है। धर्मबन्धन को मैंने दूर कर दिया है। जो जो प्रिय था, वह सब मैंने छोड़ दिया है। अथ निर्वाण हेतु केवल तुम्हें ही मेरे रक्षक हो। मेरी केवल यही प्रार्थना है कि तुम्हारे चरणकमलों को अपने हृदय में सर्वदा धारण किये रहें तथा मेरी वाणी, मन और काया अल्प विषयों से

विरत होकर तुम्हारे ही ध्यान में लगी रहे । हे कृपावास ! मुझ पर कृपा करो । यदि मेरा कोई अपराध हो, तो उसे क्षमा करो ।'

भृगु को इतना सन्देश बताने के बाद गोपी उसे वृन्दावन में ही पुष्पसमूह में विहार करने तथा कृष्ण भगवान् की वैजयन्ती माला में निजास प्राप्त करने का आशीर्वाद देती है ।

सन्देश के समाप्त होते होते ही दीनों के रक्तक, विश्वात्मा, आनन्द मूर्ति कृष्ण भगवान् साक्षात् प्रकट हो जाते हैं और उस गोपी को अपने धाम ले जाते हैं ।

यस, यही काव्य की कथा है ।

साहित्यिक समीक्षा

यह काव्य पूर्णतया मेघदूत की शैली पर ही लिखा गया है । मन्दान्तान्ता छन्द का ही काव्य में प्रयोग हुआ है । काव्य में कुल १२६ श्लोक हैं । पूर्व भाग और उत्तर-भाग जैसा काव्य में कोई विभाजन नहीं किया गया है । प्रायः विचार-तारतम्य मेघदूत जैसा ही है । कहीं-कहीं पर तो मेघदूत की पदावली का भी प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है । निम्नलिखित उदाहरणों से यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है—

(१) कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त (मे० दू० १)

(१) एना प्रीत्या निशमय निशासकुचत्पंकजान्तस्
ताम्यत्कान्ताविरहगुरुताभिश्च विज्ञापना मे । (भृ० दू० ६)

(२) सतप्ताना त्वमसि शरणं तत् पयोद प्रियाया । (मे० दू० ७)

(२) सतप्तया मयि कर्णया याद्वि तूर्णं तथापि । (भृ० दू० २२)

मेघदूत में सन्देशकथन के बाद यस्य मेघ को आशीर्वाद देता है । इसी प्रकार गोपी भी भृगु को अन्त में आशीर्वाद देती है—

एतत्कृत्वा मधुकर भवानीप्सितं मे दयावान्
धृन्दे वृन्दावनसुमनसा नित्यमानन्दमेतु ।
अप्यामोदप्रसरसुभगामच्युतस्यानुवेलं
यत्तद्भृङ्गीरक्षितमुखरा वैजयन्तीमुपास्ताम् ॥२२५॥

अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये यत् अपनी प्रेयसी के प्रति कहता है—

श्यामास्थनं चकितहृदिरुण्मिदिते दृष्टिपातम्
ययन्नच्छाया शशिनि शिखिना यदंभारंपु केशान् । इत्यादि

भृगुदूत में भी गोपिका अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये कृष्ण से कहती है—

शोणाब्जानां ततिषु चरणाकारमिन्द्रीजरेषु
छायामागीमधरसुपमा ऽम्बुजीवारलीषु ।
नेत्रालोकश्रियमपि च ते पुण्डरीकेषु बाला
निध्यायन्ती कथमपि बलाज्जीवित सा विभर्ति ॥११३॥

काव्य की भाषा भी प्रसाद गुणयुक्त है। केवल ब्रजभूमि के ही वर्णन होने से भौगोलिक ज्ञान की बातें इस काव्य में बहुत कम पाई जाती हैं। मेघदूत में प्रधान रस विप्रलम्भ शृंगार है। लेकिन इस काव्य में प्रेम अपने द्वितीय स्वरूप में प्रतिष्ठित है। गोपिका के प्रेम का आलम्बन स्वयं श्रीकृष्ण भगवान् हैं और उ हैं परमपुरुष तथा विश्वात्मा के रूप में ही माना गया है। वैष्णवों के भक्ति साहित्य में भी इस काव्य का विशिष्ट स्थान है।

यद्यपि मेघदूत के अनुकरण पर ही इसकी रचना हुई है, फिर भी इस काव्य में मौलिकता की कमी नहीं है। मेघदूत में एक प्रेमी अपनी प्रियसी के पास सन्देश भेजता है। इस काव्य में एक भक्त स्त्री ने अपने भगवान् के पास सन्देश भेजा है। सरलभाषा में सरस वर्णनों की भी काव्य में कमी नहीं है। वृन्दावन की राजरीधी में चलती हुई स्त्रियों का बाड़ा ही सरस वर्णन कवि ने किया है।

हैमन्कुम्भानुरसिजभरैर्दोषणालि कपोलै
भृगान्पुष्पप्रकरमुखान्पादभूपानिनादै ।
तन्त्रीनादान्मुद्गुभिरुदितै कुकुमान्यगकान्त्या
कर्पूर च स्मितरचनया यत्र नायों हसन्ति ॥११६॥

यमुना के वर्णन में भी कवि ने बड़ी उपयुक्त उपमाएँ प्रयुक्त की हैं—

अनन्दैत द्र त इव हरेरगलाशरशूर-
कृष्णस्पर्शान्निज इव भुवो रोमराजीविलास ।
दानस्यन्दोदय इव कलिन्दाद्रिदन्तागलाभ्य
स्त्रीतोभार सुभगसलिल शोभते साधु यस्या ॥११७॥

यमुना की चढ़ती हुई लहरों को लेकर भी कवि ने बड़ी सरस वर्णना की है—

आशामन्त पुलककलिकाशालिनीमूर्धसिमां
मारोहन्तस्त्रिपलिपदवीं नाभिमास्फालयन्त ।
आलिगन्त कुचकलशकानंगनाना प्रिदार
यत्कल्लोला विस्म मुरजित कुर्यते दोषिलासान् ॥११८॥

इसके बाद गोवर्धन पर्वत का कवि ने बड़ा सजीव चित्र अंकित किया है-

शंदायन्ते समद्गतय शाकरा (= धृपभा) यत्र धीर
वत्सा स्तन्यस्तयकितमुखा स्पैरमुत्पुच्छयन्ते ।
आह्वयन्ते मुटुरनुगिर धेनयो नामधेयै
श्रूयन्ते च श्रुतिसुखकरा क्षीरधारानिनादा ॥८६॥

गोवर्धन पर्वत पर किन्नरिया गान करती रहती हैं और हिरनिया बड़े अचल-
भाज से उसे सुनती हैं-

उदयद्वाप्यैर्गलितकवलैरनुपैरुर्ध्वरुणं-
रेणीयूदैरचलननुभि श्रूयमाण समन्तात् ।
कुञ्जे कुञ्जे कृतप्रसतिभि कोमल किन्नरीभि-
स्तन्त्रीतालध्वनिसहचर तायते यत्र गानम् ॥८२॥

कण्वजी के स्वरूप का भी कवि ने बड़ा ही वास्तविक चित्र अंकित किया है-

यस्तन्मध्ये त्रिलसति युवा गोकुलाम्भोधिरत्नम्
त्रिस्तीर्णार स्थलकृतदृष्टि वैजयन्तीं दधान ।
पिच्छापीड पृथुभुजयुग पीतकौशेययासा,
कम्बुश्रीय कमलनयन कान्तिसीमान्तरेखा ॥६३॥

कण्वजी के गोपालन प्रेम का निम्न श्लोक में कवि ने बड़ा ही स्पष्ट परिचय
दिया है—

काले तस्मिन्स तत्र भविता नूनमालोकमार्गे
माहेयीना मुदितमनसा दोहन कारयित्वा ।
वत्साना वा कुलमनुकुल वटगुता वटगु पश्यन्
कुर्वन्नुदणा गुहतर ककुत्कूट कण्डूयन वा ॥६५॥

कण्व के विरह में गोपिका की दशा का बड़ा ही भावपूर्ण वर्णन किया
गया है—

ज्योत्स्ना यद्दिन किशलयमय तत्पमगार-वृटम्
हारो भर कुत्रलयदलश्रेण्य क्रूरयाणा ।
हाला हालादलनिपरसो मूर्च्छुं वल्लकीना
मूर्च्छामन्त्रस्तत्र दि विरहे साम्प्रत देय तस्या ॥११०॥

गोपिका के प्रेम की तीव्रता, सरलता और सात्विकता का भी कवि ने बड़ा
ही उत्कृष्ट चित्र प्रस्तुत किया है । गोपिका कहती है—

लज्जा लूना कुलमगणितं लघिता मानमुद्रा
भग्न शील भयमपहृत धिःकृतो धर्मसेतु ।
यदुयद् दृष्ट प्रियमिति मया तत्तद्व्याजि सर्व
त्वामेवैक शरणमधुना यामि निर्वाणहेतुम् ॥१२०॥

विरह विह्वल गोपी भगवान् से प्रार्थना करती है—

कामं कल्पद्रुम इव भवानाश्रिताना जनाना
कामा नैरे फलतु ममतु प्रार्थनेय निसर्गात् ।
अश्रान्त ते चरणमदृणाभोजसीभाग्यचौर
नित्यासगे हृदि पुलकिते निर्भर धारयेयम् ॥१२१॥

एतावन्मे कुतुकमतसीसूनभासि त्वदगे
कुर्या नित्य विषयविरता वाङ्मन कायवृत्ती ॥१२२॥

इस प्रकार इस काव्य में अनेक भावपूर्ण स्थल देखने में आते हैं । कहीं कहीं पर अनुप्रास की भी छुटा दर्शनीय है—

- १ मार्गस्थाने मलयमरुता मन्दमान्दोलितासु
माकन्दान्ता मधुप विहरन्मजरीषु प्रकामम् ॥३६॥
- २ कुञ्जे कुञ्जे कलितकुसुमे करपयन्नगरागम् ॥३४॥

कवि ने कहीं कहीं पर बड़ी मार्मिक उक्तिया भी काव्य में दी हैं—

- १ अत्युत्करुटाकलितमतय' कर्तुं मर्थे परेषा-
मुदुयच्छन्ति स्वकसुखमनादत्य नित्य महान्त ॥२६॥
- २ अत्यौत्सुक्यादभिनवरसानगनाना विशेषा-
नन्त श्लाघो न तु भयति यस्त्यक्तभोग स एव ॥३८॥
- ३ ससारोऽस्मिन् विकसति सुख यत्सजातीयसगा—
कस्यावर्षं न लल सवशं जन्यते कैश्चिदन्वै ॥५८॥

इस प्रकार सम्पूर्ण काव्य के परिशीलन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यह काव्य किसी सहृदय भक्त कवि की बड़ी ही सरस रचना है । भावों की कोमलता के साथ साथ भाषा भी बड़ी कोमल और मधुर है । स्थान १ पर कोकिल, शुक और भौरों के मधुर रव तथा संगीत की मधुर धारा का प्रवाह सा काव्य में छूटा हुआ देखा पड़ता है । साथ में भक्ति भाव की प्रधानता होने के कारण काव्य में पूत-मायनाओं की सरिता सी उमड़ती जान पड़ती है । साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण-भक्तों दोनों के लिये ही समान रूप से यह सन्देश काव्य उपाद्य है ।

कृष्णसार्वभौम का पदाङ्कदूत (वि० सं० १७००)

वगाल के संस्कृत दूत-काव्यों में पदाङ्कदूत एक छोटा सा महत्त्वपूर्ण दूत काव्य है। यह महामहोपाध्याय श्रीकृष्णसार्वभौम का लिखा हुआ है। ग्रन्थकार ने काव्य के अन्त में लिखा है—

शाके सायक-वेद पौडशमिते श्रीकृष्णशार्पण्यन्
आमन्दप्रदन्दमन्दनपदद्वन्द्वारविन्द हृदि ।
चक्रे कृष्णपदाङ्क-दूतमखिल प्रीतिप्रद शृण्वता
धीरश्रीरघुरामरायनृपतेराज्ञा गुहीत्वादरात् ॥४६॥

इस पद्य से इतना तो निश्चित हो ही जाता है कि ग्रन्थकार न १६४५ शक सप्तसर में इस काव्य की रचना की। शक सप्त १६४५ वि० सं० १७०० से मिलता है। अतः ग्रन्थनिर्माण का समय तो निरङ्कुल निश्चित ही है।

यह श्रीकृष्णसार्वभौम वगाल के शान्तिपुर नामक किसी स्थान के निवासी थे। बाद में इन्होंने नवद्वीप में अपनी एक पाठशाला स्थापित कर ली थी और वहीं रहने लगे थे। नवद्वीप के राजा श्री रघुरामराय के कहने से इनका यह दूत-काव्य लिखना स्वाभाविक ही था। त्रितीशशशवली नामक ग्रन्थ के अध्ययन से पता चलता है कि यह रघुरामराय नामक राजा शक सवत् १६३७ से शक सप्त १६५० तक राज्य करता रहा था। अतः रघुरामराय नृपति के शासन काल में यह ग्रन्थ लिखा गया— इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी असंगति नहीं है।

लेकिन कहीं कहीं कुछ ऐसा पाठभेद पाया जाता है जिससे समय के सम्बन्ध में सन्देह न होते हुये भी कवि के आश्रयदाता राजा के सम्बन्ध में मतभेद अत्यन्त उत्पन्न हो जाता है। किसी किसी पुस्तक में पूर्वोक्त श्लोक का उत्तरार्थ इस तरह है—

चक्रे कृष्णपदाङ्कदूतरचन विद्वन्मनोरञ्जनम्
श्रील धीयुत रामजीवन महाराजाधिराजादत्त ॥

यह रामजीवन नामक राजा रघुरामराय का पिता था। शक सं० १६३७ में इसका स्वर्गवास हो गया था। श्रीकृष्ण सार्वभौम के राजा रामजीवन के आदरपात्र होने में क ई सन्देह नहीं हो सकता। इसलिये इन दोनों पाठों में घटुत कोई विरोध नहीं है।

प्रश्न यह है कि यह पाठभेद हो कैसे गया? इसका उत्तर यही समझमें आता है कि यह कवि पहिले से ही राजसभा में प्रतिष्ठित रहा होगा और वृद्ध राजा के स्वर्गवास के बाद उसके पुत्र के आदेश से उसने यह काव्य लिखा होगा। अपने आश्रयदाता जीवित नृपति रघुरामराय के आदेश की तरह अपने पूर्वनृपति रामजीवन

के प्रेम का भी सम्मान करते हुए कवि ने स्वयं ही पाठ भेदयुक्त यह पद्य लिखा है ।
पिता का नामोल्लेख करना रघुरामराय के लिये भी प्रसन्नता का कारण
सकता है ।

अथवा ऐसी भी सम्भावना हो सकती है कि पहिले कवि ने 'धीर श्री रघुराम
रायनृपतेराज्ञा गृह्णात्वादरात्' ऐसा ही केवल एक पाठ रक्खा हो । तदनन्तर रघुराम-
राय ने काव्य की विशेष उपादेयता देखकर और स्थिरता समझ कर पिता के नाम
को भी चिरस्थिर बनाने की दृष्ट्या से कवि के द्वारा मध्य पाठान्तर करा दिया हो ।

इसके अतिरिक्त यह बात भी यद्वा विशेष रूप से विचारणीय है कि शक
संवत् १६४५ में बंगाल के 'राजसाहि' मण्डल के अन्तर्गत 'नाटोर' नामक स्थान में
भी रामजीवन नामक कोई राजा राज्य करता था । यद्वा पर ऐसी किम्बदन्ती है कि
इस नाटोर के राजा रामजीवन के आदेश से ही कवि ने इस काव्य की रचना की ।
नाटोर में उपलब्ध पुस्तक में 'रामजीवन' नाम से युक्त एक ही पाठ पाया जाता है
न कि दो ।

नाटोर निवासी ऐसा भी कहते हैं कि नाटोरपति ही राजाधिराज था न कि
नगद्वीपपति भी । लेकिन यह जनश्रुति निराधार ही मालूम पड़ती है । किसी भी
मूल पुस्तक में 'धीलश्रीयुतरामजीवन महाराजाधिराजाज्ञया' ऐसा लिखा हुआ नहीं
मिलता है । लेकिन इस जनश्रुति के निर्मूल होने पर भी यह बात असंभव नहीं हो
सकती कि नगद्वीप के राजा की सभा का परिद्वत होत हुए भी यह कवि नाटोर के
राजा का भी सम्मान का पात्र रहा हो और नाटोरनृपति को प्रसन्न करने के लिये
कवि ने अन्तिम श्लोक कुछ पाठान्तर के साथ उसकी सभा में पढ़ दिया हो (इस
विषय पर विस्तृत विचार के लिये डा० जे० वी० चौधरी का चट्ठीय द्रुत
वाक्येतिहास(सस्कृत) पृ० ४६-५० देखिये) ।

काव्य के अनुशीलन से कवि के कृष्ण भक्त होन का तो परिचय मिलता ही
है, उसके नयन्याय सम्बन्धी गम्भीर ज्ञान का भी हमें पूर्ण विश्वास करना पड़ता
है । स्थान स्थान पर कवि ने नयन्याय के सिद्धान्तों का काव्य में उल्लेख किया
है । यथा—

- (१) प्राय सत्यं मनमिद्रमहो कारणं कार्यमेव ॥७॥
- (२) अप्रामाण्यं जतयति सदा नन्दस्तनोर्वियोगो
व्याप्यज्ञात् प्रजकुलभुवा व्यापकस्यापि सिद्धौ ॥२१॥
- (३) सामग्री चेन्न फलविरहो व्याप्तिरेवेति तद्वचम् ॥३१॥
- (४) नाप्रत्यक्षम् प्रमितिकरणं याक्यमेतन्न युक्तम् ॥४३॥ इत्यादि ।

इस प्रकार यह दूत काव्य एक परमनैयायिक तथा कृष्ण भक्त कवि की रही सुन्दर रचना है।

काव्य की कथा

कृष्ण के विरह में व्याकुल तथा उन्मत्त हो घूमती हुई कोई गोपी अपने घर से यमुना के तट पर स्थित किसी कुज में जाती है। वहाँ कृष्ण को न पाकर उसे मूर्च्छा आ जाती है। मूर्च्छा के चले जाने पर कुज के निकट ही कुलिश, कमल, और रथ इत्यादि के विह्न से युक्त श्रीकृष्ण के चरण का चिह्न उसे दिखल ई पढ़ जाता है। उसी समय मेघों के घोर गर्जन को सुनकर विरह वेदना से वह उन्मत्त हो जाती है और श्रीकृष्ण के चरणचिह्न से दूत के रूप में कृष्ण के पास मथुरा जाने की प्रार्थना करती है।

इस प्रसंग में कृष्ण के चरणचिह्न की विविध प्रकार से प्रशंसा की गई है ताकि वह गोपी का सन्देश कृष्ण के पास लेजाने के लिये उद्यत हो जाये। यमुना के तट से मथुरा तक के मार्ग की रमणीयता, स्थान-स्थान पर जनता द्वारा चरण चिह्न का स्नागत करना, सुगन्धित और शीतल वायु द्वारा मार्ग में उसकी सेवा करना, उसकी निर्भयता तथा सामर्थ्य का विविध भावभंगिमाओं के साथ गोपी द्वारा वर्णन किया गया है। कोस भर चलने के बाद यमुना में चरणों को धोकर किसी वृक्ष के नीचे विधाम करने का भी चरणचिह्न को परामर्श दिया गया है। यदि पैदल जाने में कोई-कष्ट हो, तो अपना मनरूपी अश्व भी देने के लिये गोपी प्रस्तुत हो जाती है।

इस प्रकार विविध प्रलोभनों से चरणचिह्न को मथुरा जाने के लिये प्रोत्साहित कर गोपी उससे अपनी विरहव्यथा का बड़ा भावपूर्ण निवेदन करती है। अन्त में कृष्ण के पास उसके पहुँचने की सभायना करते हुए उसे अपना सन्देश सुनाती है।

सन्देश में कृष्ण को केवल वृन्दावन की स्मृति ही दिलाई गई है तथा कुजा प्रेम पर उन्हें उपालम्भ भी दिया गया है। अन्त में कृष्ण विरह से उत्पन्न अपनी मनोव्यथा का निवेदन कर गोपी सन्तुष्ट हो जाती है।

यस, काव्य की कथास्तु केवल इतनी सी ही है।

काव्य-समीक्षा

जैसा कि काव्य की कथा से स्पष्ट है, इस में कृष्ण के पदाङ्क की गोपियों द्वारा दूत बनाया गया है। अतः काव्य का पदाङ्कदूत नाम उपयुक्त ही है। धीमदुभाग्यत के दशम स्कन्ध के तीसरे अध्याय के २४, २५ और २६ वें श्लोक के आधार पर इस

दूतकाव्य की रचना की गई है। रासक्रीडा के प्रसंग में भगवान् कृष्ण के प्रेम को पाकर गोपियों को कुछ अभिमान होने लगता है। उनके अभिमान को दूर करने की भावना से कृष्णजी यमुना के तट पर ही कहीं अन्तर्धान हो जाते हैं। यकायक अपने मध्य में कृष्ण को न पाकर गोपिया बड़ी दुःखी होनी हैं और उन्मत्त की तरह अश्रुतप्लव, न्यमोध, तुलसी, महिलाका, यूथिका और अश्रु इत्यादि वृक्षों से कृष्ण का पता पूछती फिरती हैं। इसी प्रसंग को लेकर तीसरा अध्याय प्रारम्भ होता है। इस अध्याय के निम्न श्लोकों में—

एवं कृष्ण पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरुन् ।

व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मन ॥२४॥

पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनीर्महात्मनः ।

लक्ष्यन्ते हि ध्वजाभोजवज्राङ्कुशयवादिभि ॥२५॥

तैस्तै पदैस्तत्पद्रीमन्विच्छन्त्योऽप्रतोऽथला

वध्या पदै सुपृक्तानि विलोक्यार्ता समज्रुवन् ॥२६॥

कृष्ण तथा किसी गोपी के पदचिहनों का स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। इसी प्रसंग से कवि ने कृष्ण के पदाङ्क को गोपी का दूत बनाकर पदाङ्कदूत लिखने की प्रेरणा प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त मेरुदूत से भी कवि को इस काव्य के लिखने में प्रेरणा प्राप्त हुई है। काव्य में कुल ४६ श्लोक हैं। जिनमें अन्त का एक श्लोक ही शार्दूललिपिक्रीडित छन्द में है। अवशिष्ट सर मन्दाक्रान्ता छन्द में ही हैं। छन्द तथा शैली में ही मेघदूत का प्रभाव दीखता है। अन्य अर्थों में तो कवि ने अपनी स्वतन्त्र कल्पना शक्ति से ही काम लिया है। मार्गवर्णन तो काव्य में है ही नहीं तथा कथा वस्तु भी बड़ी अल्प ही है। पूर्व-भाग और उत्तरभाग जैसा विभाजन भी काव्य में नहीं किया गया है। मार्गवर्णन के न होने से प्राकृतिक दृश्यों का मनोमुग्धकारी वर्णन यद्यपि काव्य में नहीं है, फिर भी यह काव्य बड़ा सरस और मोहनीय है। कवि ने अपने कल्पना-चातुर्य से गोपियों की भक्तिभावना का बड़ा प्रभावपूर्ण चित्र उपस्थित किया है। मन या आकाङ्क्षा को ही दूत बनाकर क्यों नहीं भेजा जाए, इस बात का उत्तर गोपी कितनी प्रयत्न युक्ति के साथ देती है—

चेत प्रस्थापितमण्डनया दीत्यङ्गप्रपियुक्तम्

तत्रैवास्ते मुरहरपदस्पर्शमासाद्य मुग्धम् ।

आकाङ्क्षेय तनुगुरुतया नैव गन्तु समर्था

कोऽन्यो गच्छेद्गद मधुपुरीं गोपिकाना दिताय ॥६॥

मन को कृष्ण के पास पहिले भेजी गया हुआ तथा आकाङ्क्षा को अत्यन्त भारी धतकर कवि ने गोपियों के गम्भीर कृष्ण प्रेम का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। कृष्ण के पदाङ्क की विशिष्टता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

पस्यासङ्गादलभत तनु मानुषीं गौतमस्त्री
 ध्यानेनैव प्रथितमहिमा श्रीपते नारदादि ।
 तस्माज्जाते त्वयि मधुरिपोरद्भिर्पद्माद्विचित्र
 किं दीनानामुपरि कदखालिगितो दृष्टिपात ॥१६॥

जब पिता दयालु हो, तो पुत्र का दबाव होना कोई आश्चर्य की बात नहीं । गोपी के इन शब्दों में कर्म की भक्ति-भावना भी अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्फुटित हो रही है । इसी प्रसंग में आगे कहा गया है—

एक चिह्न हरिपदभयं पन्नगस्योत्तमाङ्गे
 तादृक्शोभामपि खगपतेर्निर्भयत्य चकार ।
 पितृदेनान्यस्तरणिरभयद् घोरससारसिन्धौ
 ध्यात तादृक् स्वमपि महता जन्म त्रिश्वोपवृत्त्यै ॥१७॥

इसी प्रकार कृष्ण के पदाक की निर्भीकता का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

उक्तप्राय तरणितनयानागयोस्तत्कथायाम्
 आस्ते को वा जगति भयता भीतिहेतु कमाङ्क ।
 किं च स्वान्ते क्षणमपि भयत्सगमे याति दूरम्
 भीतिमृत्योरपि किमशनिं लोकरीत्या दधासि ॥२२॥

उत्पन्नस्य प्रियतमपदा तेन भीतिस्तवास्ते
 को वा भ्रूयादिति हि सदृश कारणेनैव कार्यम् ॥२३॥

इस प्रकार के शब्दों से न केवल गोपियों की ही भक्ति प्रवणता बरिफ कर्म के भी परम कृष्णभक्त होने का परिचय मिलता है ।

कृष्ण के पदाक को मथुरा जाने के लिए प्रोत्साहित करने के बाद गोपी अपनी विरहव्यथा का निवेदन प्रारम्भ करते हुए कहती है—

स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृत नैव शक्य विहातुम्
 याच्चेऽतस्तथा किल मधुपुरीं चङ्कमाय क्रमाक ।
 दग्धेनापि द्यधितदृदया पञ्चयाणेन धाणे
 क्रूरैरुच्चैर्मन्दनरमणी तत्कृते रोदिति स्म ॥२४॥

उपर्युक्त पद्य में 'स्त्रीभि प्रेम प्रियतमकृत नैव शक्य विहातुम्' इस कथन द्वारा गोपी के प्रेम की सरलता और पवित्रता व्यक्त की गई है । आगे चल कर मञ्जुशुओं के विरह-सन्ताप का वर्णन करते हुए गोपी कहती है—

आस्ते चित्ते किल कलयितुं रासना शम्भारै-
रेकैकेन ब्रज कुलवधूप्राणमेकैकमटङ्क ।
बाणेनात सततमतनुर्जातकोपाहितुरयै
कूरैस्मान् दहति कुसुमै शायकै पञ्चसख्यै ॥३१॥

कामदेव के पाच बाण तो प्रसिद्ध हैं ही^१ । शरीर में प्राण भी पाच बतलाये गये हैं^२ । अपने एक एक बाण से गोपियों के एक एक प्राण को नष्ट करने की कामदेव की इच्छा है । इसलिये कामदेव भी कुपित सर्प की तरह पाचों बाण एक साथ ही गोपियों पर चलाता है । सम्मोहन इत्यादि पाच बाणों में से प्रत्येक का एक एक प्राण पर आघात करना कवि की निजी कल्पना का ही चमत्कार है ।

अन्त में अपनी विरहावस्था का वर्णन करते हुये गोपी कहती है—

उत्तापोऽय मदनजनितो वर्धते नित्यमुच्चै-
वृन्दारण्ये घसतिरधुना केवल दु पठेतु
किञ्चास्माक नयनसलिलैर्वर्धते चेन्नदीय
वेन स्थेय द्रु तगतिजलैराचिते कुञ्जमध्ये ॥३२॥

गोपिका के इस विरह वर्णन में उसकी मनो-यथा साकार हो उठी है । वृन्दावन की लतायें और कुञ्जों को देखकर कृष्ण की स्मृति आ ही जाती है । अतः विरहिली गोपियों के लिये वृन्दावन दुःख का ही कारण बन गया है ।

अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद गोपी ने पदाङ्क को अपना सन्देश सुनाया है । काव्य के आकार के अनुसार सन्देश यार्ता बहुत ही कम है । लेकिन सन्देश-रूप से जो कुछ भी कहा गया है, वह हृदय के अन्तरतम की पुकार है । अपने सन्देश को प्रारम्भ करते हुये गोपी कहती है—

यक्तय च स्फुटमिति यदा निर्जनस्थो मुकुन्द
पद्माय कैरतिसुललितैरङ्कितं तत् पदाब्जै ।
वृन्दारण्य स्मरसि न कथं धीपत ! मञ्जुकृञ्जम्
घात घात यदिह न परीरम्भण कुञ्जिकाया ॥३३॥

१ अरविन्दमशोकं च सहकारं नयमल्लिके ।
रक्तोत्पलं च पञ्चैतं पुष्पशालम्य सायका ॥
सम्मोहनो मादनी च शोषणस्तापनस्तथा ।
स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्च बाणा प्रकीर्तिता ॥

२ प्राणोऽपान समानश्चोदानव्यानी च वायव ।

वृन्दावन के नाम से गोपी ने कृष्ण को अपनी ही याद दिलाई है। अन्त में कृष्ण पर व्यङ्ग्य करना भी वह नहीं भूली है।

गोपी पदाङ्क को कृष्ण के लिये अपना सन्देश इस तरह सुनाने का परामर्श देती है कि सन्देश के सुनने के बाद कृष्णजी अवश्य ही मथुरा से वृन्दावन चले आवें—

आकाङ्क्षा या ग्लपयति मनो मादशा वासना सा
शाब्दे धर्मे सति न भविता हानिरेव क्रमाटक ।
साकाङ्क्षोन्वया मुग्धरपदे सर्वमेतन्निवेद्यम्
नोचेत्तस्य प्रमितिजनने केन हेतुस्तपोक्ति ॥४२॥

गोपी का कहना है कि उसकी कृष्ण से मिलने की आकाङ्क्षा मानसिक है, फोरी शाब्दी नहीं है। यदि केवल शाब्दिक होती, तो उसे कोई फल न होता, क्योंकि शाब्दी आकाङ्क्षा तो केवल कृष्ण शब्द से भी पूर्ण हो सकती है। अतः पदाङ्क को चाहिये कि शाब्दिक और मानसिक दोनों आकाङ्क्षाओं को ध्यान में रखकर कृष्ण को सन्देश सुनाये ताकि सन्देश को सुनने के बाद कृष्णजी अवश्य आ जायें—

आगन्तव्य सरसिजदशा बोधितेन त्वदुक्त्या ॥४३॥

गोपी की भावनाओं को कवि ने दार्शनिकता के आवरण में यही सुन्दर रीति से अभिव्यक्त किया है।

अपने सन्देश का उपसंहार करते हुए गोपी कहती है—

मूर्खा एव क्षणिकमनिश विश्रमाहुर्न धीरा
तापोऽस्माक हरिविरहज सर्वदैवास्ति चित्तं ।
नान्य शब्दो वचनमपि यत्तादृश तस्य किन्तु
प्रेमैवात्मत्प्रियतमकृत तच्च गोपाङ्गनासु ॥४२॥

संसार को क्षणिक यताने वाले लोग वास्तव में मूर्ख ही हैं। कोई धीर पुरुष कभी भी संसार को क्षणिक नहीं यतलायिगा, क्योंकि कृष्णविरह का दुःख तो हमेशा ही हमारे चित्त में बना रहता है। शब्द को भी नाशवान् यताना मिथ्या ही है, क्योंकि कृष्ण के वचन अथवा भी हमारे मन में ऐसे हुए हैं। यदि संसार में कोई वस्तु क्षणिक है, तो कृष्ण का प्रेम ही क्षणिक समझो और वह भी उनका गोपिकाओं के प्रति किया गया नकि कुम्भा और रुन्मिणी के प्रति। गोपिका ने इस पद्य में अपने दुःख की गम्भीरता तथा हमेशा कृष्ण को याद करते रहने का बड़े भावपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। अन्त में वह कृष्ण को उपालम्भ देना भी नहीं भूलती है। कवि ने इस पद्य में भी दार्शनिकता का सहारा लिया है। शब्दों के क्षणिकवाद तथा शब्द की

नक्षत्रता के सिद्धान्त का कितने कोमल और अकाट्य तर्क से खण्डन किया गया है ।

यद्यपि यह काव्य बहुत छोटा सा है, फिर भी कवि की कल्पना कहीं कहीं यही मुखर हो उठी है । गोपिका पदाङ्क को सम्बोधन करते हुए कहती है—

कर्पूरादे सलिलमभव पैतरण्यखुतुरयम्
वास्यागम्य नदति कठिन कोकिल पट्पदोऽपि ।
वृन्दारण्ये किरति गरल दु सह शीतरश्मि-
नैतद् वाच्य सद्दपि सखे ! सन्निधी केशवस्य ॥२०॥

कृष्ण को वृन्दावन की बदली हुई स्थिति इसीलिये नहीं बताई जा रही है कि कहीं वे इस स्थान को क्लेश जनक समझ कर यहाँ फिर आब ही नहीं । वास्तव में देखा जाये, तो वृन्दावन नहीं बदला है, बल्कि कृष्णविरह में गोपिका के लिये पड़िले सुख देने वाली वस्तुयें ही अब दुःस्वायक प्रतीत हो रही हैं । कवि ने भागभगिना के साथ गोपिका के विरह जन्य ताप तथा उद्वेग का ही यहाँ पर वर्णन किया है ।

कृष्ण के पदका अरु कृष्ण का पुत्र ही हुआ । संभव है कि पुत्र को देव कर पिता का मन आनन्द मग्न हो जाये और फिर सन्देशवार्ता की ओर ध्यान ही न रहे, इसलिये गोपी कहती है—

यक्तव्य यन्मदनजनित दुःखमस्माकमेतद्
भूयोभूय प्रियतमपदे गोपयित्वा स्वदेहम् ।
दृष्टे तेन स्वयि नयनयोर्निस्तुलप्रतिहेतो
यास्यत्येव क्षणमपि मनस्तरकथाया न तस्य ॥४०॥

पदाक को अपनी देह के छिपाने का परामर्श उचित ही दिया गया है ।

मेषदूत का यद्यपि काव्य में पूर्णतया अनुकरण नहीं किया गया है, फिर भी भाव और शैली में कहीं कहीं परंपरसादृश्य दृष्टि गोचर होता ही है । उदाहरणार्थ दोनों काव्यों से कुछ स्थल उद्धृत किये जा रहे हैं—

कश्चित्कान्ताविरहगुहणा स्वाधिक्रारात्प्रमत्त
यक्षदचक्रे जनकतनयास्तान पुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसति रामगिर्याश्रमेषु ॥१॥१॥ मे२०
गोपीमर्तुर्विरहविधुरा काचिद्विन्दीवराक्षी
उन्मत्तेश स्वलितकजरी निःश्वसन्ती विशालम् ।
अश्रैवास्त मुररिपुरिति भ्रान्तिदृतीसदाया
त्यक्त्वा गेहं भटिति यमुनामन्हुङ्गजं जगाम ॥१॥ पदाक०

२ धूमज्योति सलिलमरुता सन्निपात फन मेघ
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणश्चेतनाचेतनेषु ॥१॥५॥ मेघ०

तस्मिन्नुद्यन्नजलधरध्यानमाकर्ण्य भूय
कन्दर्पेण व्यथितहृदयोन्मत्ततुर्या ययात्वे ।
प्रज्ञाहीन वचनरहित निश्चल श्रोत्रहीनम्
दीप्त्य कर्तुं मुरहरपदो लक्ष्मण पद्मलाक्ष्मी ॥३॥ पदाक०

३ I सेरिप्यन्ते नयनसुभग खे भ्रमन्त वलाका ॥१॥१०॥ मेघ०
II सपत्स्यन्ते नभसि भ्रमती राजहसा सहाया ॥१॥११॥ मेघ०

उत्फुरलानामतिसुरभय सौरभैरभ्युजानाम्
अम्भोलेशैर्भ्रमरशिदुहितु शीतलै शीतलाश्च ।
अद्यावश्य सततगतय, स्वैरमाधूतवर्हा
वर्तिप्यन्ते भ्रमद्भिमतप्रीतये लाञ्छनाग्र ॥१८॥ पदाक०

४ I प्रत्युघात कथमपि भ्रमान् गन्तुमाशु व्यस्येत् ॥१॥२३॥ मेघ०
II मन्दाप्यन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्या ॥१॥२४॥ मेघ०

सम्पर्कात्ते तरणितनयातीरसोपानवृन्दम्
राक्ष पन्थास्तलमपि तरोराचित पद्मरामै ।
शोभा यास्पत्यखिरमनुला स्वीयकार्यानुरोधात्
उकैरैतैर्मुं हरपि सरो तत्र न स्थेपमेव ॥१४॥ पदाक०

कहाँ कहीं कायि ने अपने पूर्ववर्ती कपियों के विचारों का अपनी नयीन करपना से खण्डन भी किया है । श्रीरूपगोस्वामी ने अपने हंसदूत में लिखा है—

शीर्णां गोकुलमण्डली पशुकुल शप्पाय न स्पन्दते
भूका फोकिलपक्तय शिखिकुल न व्याकुल नृस्यति
सर्पे त्वद्विरहानलेनत्रिकला गोविन्द दैन्य गता
किन्त्वेका यमुना कुरङ्गनयनानेत्राम्नुभिर्यैर्धते ॥

कृष्ण के विरह में गोकुल के नरनारी और पशुपक्षी सब हीन दशा में पतये गये हैं । लेकिन यमुना गोपियों के नेत्रगारि से बढी हुई बतलाई गई है । इस कथन का खण्डन करते हुए पदाकृत में कहा गया है—

अदिभस्ताभिन्तरणितनया पीनता नैव लघ्वा
गोपीभर्तुर्विरहदहनै प्रत्युत क्षीणता च ॥२६॥

शीलैरास्ते तरणिनया वस्तुतस्तद्वियोगे
 का वा पीना भरति वचन कस्यचिन्नेति युक्तम् ।
 गोपस्त्रीणा नयन सलिलैर्धृत सा विशीर्णा
 अन्ये नन्दमजपुरजना नूनमत्यर्थक यत् ॥३०॥

जिस तरह गोकुल के अन्य नरनारी और पशुपक्षी दीन हैं, उसी तरह यमुना भी दीन और क्षीण होनी चाहिये, क्योंकि यमुना के लिये भी तो कृष्ण उतने ही प्रिय हैं जितने कि औरों के लिये ।

काव्य के इस अनुशीलन से मर्मज्ञ पाठक स्वयं जान सकते हैं कि सरस करपना, सुमधुर भावप्रवाह, ललित भाषा और कृष्णभक्ति से युक्त यह काव्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है । यद्यपि कृष्ण के पदांक का धीमद्भागवत में कुछ उर्ध्वन आता है, लेकिन इस को द्रुत बनाने का विचार कवि की अपनी मौलिक करपना है । काव्य का मुख्य रस विप्रलम्भ श्रृंगार है । माधुर्यगुण और वैदर्भी रीति का काव्य में व्यवहार पाया जाता है काव्य की नायिका तो विरहोत्कण्ठिता कोई गोपी है ही । कवि ने अपनी भक्तिभावना को भी गोपी द्वारा स्थान-स्थान पर काव्य में व्यक्त किया है । कृष्ण और उनके पदांक के सम्बन्ध में कवि के—

(I) (कृष्णस्य) यस्य ध्यान जनयति सुख यादृश तादृश न
 स्वर्लोकादावपि किमपर ब्रह्मसाक्षात्कृती च ॥२६॥

(II) (पदाकस्य) ससाराब्धि तरति सहसा यत् क्षण चिन्तयित्वा ।
 तस्यासाध्यं भरति किमहो पारयान तटिन्या (यमुनाया) ॥१७॥

इत्यादि विचार उसकी अनन्य कृष्ण भक्ति का परिचय देते हैं । स्थान स्थान पर दार्शनिक प्रसंगों की सहायता से कवि ने गोपियाँ के कथन को और भी प्रभावपूर्ण बना दिया है । इस प्रकार साहित्य, भक्ति और दर्शन इन तीनों धाराओं का काव्य में अपूर्व संगम हो रहा है । बौद्ध दर्शन का खण्डन भी कवि ने खूब ही किया है (दे० श्लोक सं० ४४-५) । कवि ने अन्तिम श्लोक में अपने काव्य को 'विद्वन्मनो रञ्जनम्' बतलाया है । उसकी यह उक्ति कोई गद्योक्ति नहीं है । धस्तुत भक्त और विद्वान् दोनों ही प्रकार के पाठकों के लिये यह काव्य आदर का वस्तु है ।

तैलग ब्रजनाथ का मनोदूत (वि० सं० १२१४)

इस काव्य का लेखक तैलग वंश के श्री मूधर भट्ट का पौत्र तथा श्री रामकृष्ण का पुत्र है और पचनद का रहने वाला है । धृन्दायन में यमुना के तट पर निवास करते हुये वि० सं० १२१४ (सं० १७५८ ई०) में कवि ने यह काव्य लिखा है ।

लेखक ने अपने गुरु का नाम श्री हरिदत्त बनाया है। पाठकों के परिचय के लिये काव्य के अन्त से निम्न उद्धरण दिये जाते हैं—

स्थिताद् वृन्दारण्ये तरुखिननयातीरलहरी-
परीरम्भादम्भ पृथतयुजि वशीवटतले ।
सकान्तान्द्वीकान्तादधिगतवती सगमनघा
मतिमें प्रासूत ध्रुवमिह मनोदूततनयम् ॥२००॥

वेदेन्दुवसुशीताशु (१८१४) मितेऽदे मार्गशीर्षके ।
सिताष्टम्यामिदं काव्यमपिंत हरिपादयो ॥
नराणा धीरेयं सकलविदुषा शेषरमणि-
र्वदान्यानामग्रेसर ढह महाभाग्यसुभग ।
कलाना सर्वासा सदनमतिस्वीजन्यललितो
गुणानामागारो जयति हरिदत्त प्रभुरसी ॥

तदीयाया निष्काण्य शुभदयाया परिणमत्
प्रकृष्टोदकाया जगति विदितं पात्रमिह य ।
ततो योगक्षेमावधिगतवतस्तस्य च कवे
कृतिर्विद्वद्गुणद्वयान् सुखयतु दयान् मयि जडे ।

इति श्रीमत्सैलगान्धय श्री भूधर भट्टात्मज श्रीरामकृष्णतनय पञ्चनदान्य प्रज
नाथविरचित मनोदूताभिध सहृदयहृदयाह्लादादानपरनामधेय काव्य स्वकृतमजुभा-
पिया टीकया समेत समाप्तम् ।

सकाव्य का दूसरा नाम 'सहृदय हृदया ह्लादान' है और कवि ने स्वयं इस
काव्य पर अपनी टीका भी लिखी है। निर्णयमागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला के
प्रबोधशुच्यक में यहकाव्य प्रकाशित हुआ है।

कथा-सार

इस काव्य की कथा महाभारत की द्रौपदीचीरहरण घटना पर आधित है।
द्रिगिजय के बाद पाण्डव राजसूय यज्ञ करते हैं। इस यज्ञ में पाण्डवों की अतुल
सम्पत्ति तथा यज्ञसभा की अलौकिक शोभा देखकर दुर्योधन को बड़ी ईर्ष्या होती
है। मखियों की कान्ति से भ्रमवश द्वार को यह भित्ति समझ बैठता है तथा अन्यत्र
रत्नों की ज्योति से भित्ति को यह द्वार समझ बैठता है। इसी प्रकार गहड़मणियों
से निर्मित स्थल को भ्रमवश जल समझकर यह अपने वस्त्रों को समेटने लगता है
तथा कमल इत्यादि से युक्त जल-सहित सरोवर को स्फटिक शिलाओं से निर्मित
स्थल समझ कर यह वहाँ पानी में गिर पड़ता है। वहाँ स्फटिक निर्मित प्रदेश में

भ्रम वश द्वार समझ कर उसे रोलने की चेष्टा करता हुआ वह गिर पड़ता है। दुर्योधन की इन भ्रान्तिपूर्ण चेष्टाओं को देखकर भीम उसका उपहास करने लगता है तथा द्रौपदी उसे 'अन्धपुत्र' कहती है। इस प्रकार यक्षसभा से तिरस्कृत हो और मन में ईर्ष्या का भाव लिये दुर्योधन अपने घर लौटता है तथा शकुनि को यक्ष का सारा वृत्तान्त और अपने तिरस्कार की घटना सुनाता है। शकुनि दुर्योधन को भी एक महान् यक्ष द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करने का परामर्श देता है। दुर्योधन द्वारा पाण्डवों की पराजय के किसी सरल उपाय के पूछे जाने पर शकुनि कहता है कि यदि धर्मराज युधिष्ठिर किसी प्रकार घृतक्रीडा के लिये तैयार हो जायें तो वह उनका राज्य, कोश, गज और श्वादि सब अपहरण कर सकता है। शकुनि के इस प्रस्ताव को सुन कर दुर्योधन अपने पिता धृतराष्ट्र के पास जाता है और उन्हें पाण्डवों के राजसूय यज्ञ तथा अपने तिरस्कार और उपहास का सारा वृत्तान्त सुनाता है। धृतराष्ट्र सुख दुःख तथा आदर निरादर को दैव तथा कर्मों का फल बता कर दुर्योधन को शान्त करने की चेष्टा करता है और उसे भी एक विशाल यज्ञ करने का परामर्श देता है। दुर्योधन के विशेष आग्रह से धृतराष्ट्र धृतसभा के आयोजित करने तथा उसमें पाण्डवों के निमन्त्रित करने की भी अनुमति दे देता है।

दुर्योधन के आदेश से विदुर पाण्डवों के पास घृतक्रीडा का निमन्त्रण लेकर जाते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर बड़े विचार विमर्श के बाद निमन्त्रण स्वीकार कर लेते हैं और सपरिवार हस्तिनापुर आ जाते हैं। उचित स्वागत सत्कार के बाद दूसरे दिन घृतक्रीडा प्रारम्भ होती है। उसमें युधिष्ठिर धीरे-२ अपनी सब सम्पत्ति हार जाते हैं। फिर अपने भाइयों और अपने को भी हार जाते हैं। अन्त में शकुनि के कहने से वे द्रौपदी को दाव पर लगाते हैं और उसे भी हार जाते हैं। इस पर दुर्योधन अपनी दासी बनाने के विचार से द्रौपदी को सभा में लायें जान की आज्ञा देता है। महाराज विदुर दुर्योधन को बहुत फटकारते हैं, लेकिन फिर भी कर्ण इत्यादि क अनुरोध से दुर्योधन अपने दूत को द्रौपदी के पास भेजता ही है। दूत द्रौपदी को सारा वृत्तान्त सुनाता है। 'दरयं जुग में हार जाने पर धर्मराज का मुँह पर कुछ भी स्वत्य नहीं रहता है, अतः मैं नहीं जा सकती—पेसा बढ़कर द्रौपदी दूत को वापिस कर देती है। दूत के लौट आने पर दुर्योधन दुःशासन को भेजता है। वह बेश पकड़ कर द्रौपदी को घलपूर्वक अन्त पुर से राजसभा में रॉच लाता है। वहा कर्ण उसका बड़ा तिरस्कार करता है और दुःशासन को उसके बस्थ उतारने का आदेश देता है।

इस असहाय अवस्था में द्रौपदी भगवान् कृष्ण को याद करती है तथा किसी और को अपने समीप न पाकर अपने मन की ही दूत बनाकर कृष्णजी के पास द्वारिका भेजती है। जिस प्रकार अन्य सन्देश कार्यों में किसी को सन्देशवाहक नियुक्त करत समय उसकी शक्ति और महत्ता का ध्यान किया जाता है, उसी प्रकार इस काव्य में भी मन की बड़ी प्रशंसा की गई है। तदनन्तर द्वारिका नगरी का घर्णन किया गया है। द्वारिका पहुँच कर वहा भगवान् कृष्ण के चरणों में प्रणाम

पर और अपने प्रेम की भेंट देकर फिर अपना सन्देश सुनाने के लिये द्रौपदी ने मन से कहा है। मन को अपना सन्देश बताते हुए द्रौपदी कृष्ण क प्रति कहती है— दया के सागर, समग्र ससार के रक्षक, दैत्यों और राक्षसों के सहारक, हे कृष्ण, मैं इन दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन जैसे दुर्यों के द्वारा सताई जा रही हूँ। मैं अग्राध दुःशासन में पड़ी हुई हूँ। हे दुष्टदलन, क्या तुम मेरा उद्धार नहीं कर सकते ? हे व्यालो, तुम्हे छोड़कर मैं किसकी शरण में जाऊँ ? तुम सर्वज्ञ हो। मुझ पर महान् सकट आया हुआ है। मुझ पर दया करो। तुम्हारे अतिरिक्त और कोई मेरा रक्षक नहीं है।

द्रौपदी के इस सन्देश को लेकर मन ज्यों ही द्वारिका की ओर चलने को उद्यत होता है, त्यों ही उधर द्वारिका में कृष्णजी भी चिन्तित होने लगते हैं और द्रौपदी के सकट का ध्यान आते ही शीघ्र ही गरुड पर आरूढ हो हस्तिनापुर आते हैं। उधर दुःशासन द्रौपदी के वस्त्र उतारना प्रारम्भ करता ही है कि भगवान् कृष्ण वा पहुंच जाते हैं और अपनी अनन्त शक्ति के द्वारा नाना वर्ण तथा नाना प्रकार के वस्त्रों से द्रौपदी को ढकते जाते हैं। अन्त में दुःशासन वस्त्र खींचते २ द्वार जाता है और घबड़ा कर वहाँ सभा में गिर पड़ता है। इस तरह भगवान् कृष्ण द्रौपदी के शरीर की रक्षा करते हैं। पाण्डवों पर भी कृष्णजी की अनन्त शक्ति का प्रभाव पड़ता है।

वस, काव्य की मुख्य कथा यह ही है।

समीचा

यों तो मेघदूत के अनुकरण पर ही यह सन्देश नाय लिखा गया है, फिर भी कवि की यह मौलिक रचना है। सम्पूर्ण काव्य में कुल २०० शिखरिणी छन्द हैं। सन्देश काव्यों की परम्परा में छन्द की दृष्टि से यह सर्वथा नवीन प्रयोग है। साथ ही काव्य का विषय भी नवीन है। काव्य में समस्त पद प्राय नहीं ही हैं। रचना प्रसादशुण्य है। भाषा में सर्वत्र प्रवाद पाया जाता है। सन्देशकाव्यों में प्रायः मगलाचरण नहीं होता है, लेकिन इस काव्य में मगलाचरण में ही कई श्लोक लिखे गये हैं। कृष्णभक्ति का पवित्र स्रोत इस काव्य में सर्वत्र उमड़ रहा है। कवि ने मनोदून नाम के अतिरिक्त इस काव्य का 'सहृदय हृदयाह्लादान' नाम भी रक्खा है। यस्तु त यह रचना यही ही सुन्दर और सरस है। साहित्य प्रेमियों तथा कृष्ण भक्त दोनों ही के लिये यह काव्य समान रूप से उपादेय है।

द्यत सभा में लार्ई हुई तथा दुर्यों से पिरी हुई द्रौपदी का कवि ने यथा ही कव्य चित्र अंकित किया है—

अधासी दु खार्ता द्रु पदतनया धीर्य दयिता-
परिभ्रातु योग्यानपि समवषट्धान् विधियशात् ।

सभायामानीना शङ्करहिता जालपतिना
 कुरगीन् वासाद्भृशतरमसो कम्पमभजत् ॥१८०॥

द्रौपदी के लिए ' जाल में फंसी हुई हिम्नी ' की उपमा बड़ी ही उपयुक्त है ।
 द्रौपदी भागवान् कृष्ण से अपने दुःख का निवेदन करते हुए फिर कहती है—

उदासीना दीना मुद्गुहसितहीना नतमुषी
 निलीना स्त्रेप्यगोघ्रहृष्ट सुखहीना यदुपत ।
 निहीना कीनाशाविक्रमयकरैरन्धतनये
 सभायामासीना द्रुपदतनया पीडयत इह ॥१८०॥

कृष्ण ने अनुप्रासयुक्त पदारली के साथ बड़े ही भागपूर्ण ढंग से द्रौपदी की
 वशा इस पद्यमें चित्रित की है । इसी प्रकार कृष्णजी द्वारा रुक्मिणी को जब द्रौपदी
 को दुरवस्था बताई जाती है, तब—

समानीता भीता दशत्रननीना परबशा
 यथा सीना तद्वत्परिममभुज साऽद्य गमिता ॥१८१॥

इन पक्तियाँ में दुर्याधन द्वारा सताई हुई द्रौपदी के लिये रावण द्वारा सताई हुई
 सीताजी की बड़ी ही सार्यक उपमा दी गई है ।

दुःशासन द्वारा चीरहरण किये जाने पर भागवान् कृष्ण ने त्रिभिध प्रकार के
 यन्त्रों द्वारा जो द्रौपदी की रक्षा की, उसका वर्णन करते हुए भी कृष्ण ने द्रौपदी
 के लिये बड़ी ही सुन्दर उपमा प्रयुक्त की है—

समाच्छन्नान्तैरपि त्रिभिधवासोविरचिता
 तदा पाञ्चालीय ध्रुवमजनि पाञ्चालतनया ॥१८२॥

कहीं कृष्ण ने यमक और अनुप्रास का बड़ा चमत्कार दिखाया है । द्रौपदी
 भागवान् कृष्ण से प्रार्थना करते द्रुपे कहती है—

अगाधापद्मधाकुलहंससाधारणरुता-
 पराधा गान्धारापिमदितराधासुनयशाम् ।
 तुदन्नी मे धाराधर तुलिन कान्त दय धरा-
 धराद्रराधार प्लवधरण राधारमण माम् ॥१८३॥

कहीं कृष्ण ने अलंकार व अभाव में भी लययुक्त मधुर शब्द विन्यास द्वारा कवि ने
 सुन्दर पद्यों की सृष्टि की है । यथा -

प्रिना दीनोद्धारं भयजलधितार व्रजवधू-
 हृदो हार रूपद्रयिणजितमार नरवरम् ।

कृपापापारामरं क इह दयिता रक्षितुमल
पृथापुत्रैरेव मनसि नियत तर्कितमभूत् ॥१६१॥

द्रौपदी ने मन के द्वारा कृष्ण के पास अपना जो सन्देश भेजा है, उसमें आर्त भक्त की वरुण पुकार साकार हो उठी है। इस प्रकार द्रौपदी के इन वचनों को-

अगाधे दुःखाब्धी घत निरयलम्बेऽस्मि पतिता
भगाम्मोधेरुदुधारक कथमुदासोऽसि भगवन् ।
विलम्ब नाकार्पांरघहर गजाजामिलकृते
मदुदुधारे शक किमसि न विभो दुष्टदलन ॥१७३॥

दयालो त्या दित्वा कतममुपयामीह शरणम् ॥१७७॥

अये सर्वेऽस्त्य व्यसनमिदमरुपेतरमहो
विदित्वाऽपि स्वामिन्मयि कथमुदासोऽसि भगवन् ।
भृशार्ताऽहं रोदिम्यतिशयितदुःखाब्धिपतिता-
ऽविता श्रीमन्तान्यस्त्वमिह मृदुभावं भज मयि ॥१७८॥

हम किसी भी आर्त भक्त की विनम्र प्रार्थना कह सकते हैं। इस काव्य में द्रौपदी ने ही कृष्ण के पास सन्देश भेजा हो, केवल यह बात नहीं है, प्रत्युत कवि ने यह भी उपदेश दिया है कि हर एक को अपना मन कृष्ण के पास भेजना चाहिये। इसी भाव को लेकर कवि ने लिखा है-

इति स्मारं स्मारं तव गुणगणान्यादयपते
मनोदूतं योऽन्यस्त्वयि निजट्टते प्रेययति चेत् ।
न मुञ्चस्थेनं तत्प्रणयरशनाधृष्टलितह-
द्विभो भक्ताधीन धृतिशिखरमृगयोऽपि भगवन् ॥१६४॥

कहण रस के साथ-साथ इस काव्य में कृष्णभक्ति की भावना सर्वत्र ओत प्रोत है। मगलान्तरण में तो कृष्णजी की स्तुति की गई है। काव्य के अन्त में भी कृष्ण भक्ति की महिमा प्रतिपादित की गई है। कृष्णभक्ति की महिमा बताते हुये कवि कहता है-

अविद्येयं विद्या भवति भगवदुभक्तिरहिता
न चेद्विषणो प्रेमप्रसृमरमदानन्दमहिता ।
न तावच्चान्दल्यं त्यजति च मनोवृत्तिविहगी
न याथच्छ्रीकृष्णस्मरणरससिन्धी निपतति ॥१६४॥
स कोऽपि श्रीगोपीजनहृदयदारी प्रतिदिनं
सदा ध्येयो नान्य प्लव इह भगाम्मोधितरणे ।

यदीय नामेद् जगदधभिदादीदितमहो
 मरन्मत प्रेमाभूतरसनिप्रग्नो विजयते ॥१८६॥

इस प्रकार विभिन्न रूप में कवि ने कृष्ण भक्ति का सन्देश अपने पाठकों को दिया है। पाण्ड्यों की राजसभा में उपस्थित तत्तद् विषय के विद्वानों का धर्षण करते हुये कवि ने वेद, व्याकरण, मीमांसा, ज्योतिष, तर्कशास्त्र, स्मृति, साख्य, योग, सर्गात और वेदान्त इन सब विषयों का उल्लेख कर अपनी उद्वृत्ता का परिचय दिया है।

संदेशकाव्यों की परम्परा में यह सद्यः काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। विषय, भाव, भाषा और छन्द इन सब की दृष्टि में यह काव्य एक नवीन रचना है। जेम्सनेट ने सुबुत्तलिक में भवभूति के शिखरिणी वृत्त की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

भवभूत शिखरिणी निर्गलतरङ्गिणी ।
 चकिता घनसन्दर्भेण या मयूरीष नृत्यति ॥

यही उक्ति इस काव्य के शिखरिणी छन्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। भवभूति की रचनाओं के समान शिखरिणी छन्द के साथ-२ इस काव्य में भी कवण रस प्रधान है। जैसा कि काव्य के नाम से स्पष्ट है, इस काव्य में मन को दूत बनाया गया है और मन के लिये हस्तिनापुर से हारिका कुछ भी दूर नहीं है, अतः इस काव्य में मार्ग-वर्णन विरहूल नहीं है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि एक भक्त कवि का कवण रसपूर्ण कृष्ण-भक्तिपरक यह सरस सन्देशकाव्य है। इसका 'सहृदय हृदयाह्लादन' अपर नाम सार्थक ही है। कृष्णभक्ति साहित्य में भी यह काव्य विशिष्ट स्थान पाने का अधिकारी है।

श्री कृष्णनाथ न्याय-पञ्चानन का चातदूत (वि० सं० १९००)

महामनोवाक्यस्य श्री कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन भट्टाचार्य का आधुनिक काल के बंगाली सम्प्रति विद्वानों में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य, नाटक, धर्मशास्त्र, पदान्त, व्याकरण, मीमांसा तथा न्याय इत्यादि सभी शास्त्रों में चाप पारगत थे।

अभिज्ञानशाकुन्तल तथा रत्नावली, मलमासतत्त्व और दायभाग, वदान्त परिभाषा, मुग्धप्रोध व्याकरण, अर्यसप्रद, तथा न्यायप्रकाश इत्यादि विभिन्न विषयों के ग्रन्थों पर इन्होंने टीकाएँ लिखी हैं। कर्पूरदिस्तोत्र, श्यामासतोप और श्यामापूजाकाल निर्णय पत्र उनकी धार्मिक रचनाएँ हैं। जातदूत नामक सन्देश काव्य इनकी मूल-रचना है। इस पर इन्होंने अपनी टीका भी लिख दी है। टीका के अन्त में इन्होंने लिखा है—

सप्ताष्टसप्तशुभ्राशुप्रमाणे शाकहायने ।
 अपाढशुक्लसप्तम्या टीकेय पूर्णता गता ॥
 नवद्वीपासन्नभूमौ श्रीमद्भागीरथीतटे ।
 ग्राम पूर्वस्थलां नाम विद्धि वासस्थलीं मम ॥

इससे ज्ञात होता है कि सप्ताष्ट सप्त शुभ्राशु प्रमाणे = १७८७ शकसंवत् की अपाढ शुक्ल सप्तमी को यह टीका पूर्ण हुई। शकसंवत् १७८७ वि० सं० १६२२ से मिलता है। अतः वि० सं० १६२० या इससे कुछ पूर्व का समय ग्रन्थ का रचना काल हो सकता है। पुस्तक के मुद्रणकाल शकाब्दा १८२२ लिखा हुआ है। समझ है ग्रन्थकार ने बहुत दिनों के बाद अपनी रचना प्रकाशित कराई हो।

काव्य की भूमिका में कवि ने महारानी विक्टोरिया के विद्याप्रेम, प्रजापालन, अनन्त शक्ति तथा शासनकुशलता इत्यादि गुणों की प्रशंसा की है तथा उनके शासन में सस्टुत विद्या की उन्नति होने का भी उल्लेख किया है। अतः यह निश्चित ही है कि महारानी विक्टोरिया के हिन्दुस्तान का शासन सभालने के बाद यह काव्य लिखा गया है। अतः शक संवत् १७८७ = वि० सं० १६२२ = ई० सं० [१८६५ ही काव्य का रचनानाल है।

वगल में भागीरथी के तट पर नवद्वीप के पास पूर्वस्थली नामक किसी ग्राम में कवि का निवास स्थान था। ग्रन्थ के अन्त में कवि ने स्वयं यह बात लिखी है।

कथा सार

इस काव्य की कथा रामायण से सम्यक् है। दण्डकारण्य में पद्मवती से सीताजी को हर कर जब रावण लका ले जाता है, तब यह उन्हें यहा अशोक वाटिका में उठरा देता है। पतिप्रियोग में सीताजी का हृदय व्याकुल हो रहता ही है, उधर राक्षसों का भय भी उन्हें चिन्तित किये रहता है। इसी परिस्थिति में धीरे धीरे वसन्त ऋतु आ जाती है और दक्षिण से उत्तर की ओर वायु चलने लगती है। शीतल वायु के सुखद स्पर्श से कुछ शान्ति का अनुभव करते हुए सीताजी उस वायु को ही दूत बनाकर उरुके साथ धीरे रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के पास अपना विरह सन्देश भेजती है।

इस प्रसंग में अशोक वाटिका से पञ्चवटी तक के मार्ग का वर्णन किया गया है। अशोक वाटिका से समुद्र के तट पर स्थित सुवेल (त्रिकूट) पर्वत और वहा से फिर उत्तर की ओर समुद्र पार करने के बाद जगलों में से होते हुए तथा आस पास के पर्वतों पर भिल्ल और उनकी स्त्रियों को देखते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर वायु के पहुँचने का उल्लेख किया गया है। ऋष्यमूक पर्वत से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर पम्पा सरोवर तदनन्तर दण्डकारण्य और वहा से पूर्व की ओर थोड़ी दूर चलने पर जनस्थान में पास ही कुछ दूर पर पञ्चवटी और फिर गोदावरी नदी के तट पर ही सीताजी ने अपना आश्रम बतलाया है।

इस तरह अपने आश्रम तक के मार्ग का वर्णन करने के बाद आश्रम में ही रामचन्द्रजी के मिल जाने की संभावना की गई है। सर्व प्रथम उनके प्रकृतस्वरूप का वर्णन किया गया है। तदनन्तर उनकी सम्भावित विग्रहावस्थाएँ वर्णित की गई हैं।

संभव है कि विरह में व्याकुल होने के कारण वे आश्रम में न मिलें तथा इधर उधर घूम रहे हों। इसलिये वायु को और भी कई स्थानों में उनकी खोज करने का परामर्श दिया गया है। इसके बाद उसी प्रदेश में स्थित वन देवता से भी वार्तालाप करने तथा उसे सीताजी का समाचार देने के बाद खोज करते करते जीमूत पर्वत के आस पास कहीं पर अपने छोटे भाई के साथ घूमते हुए रामचन्द्रजी के मिल जाने की संभावना की गई है। तदनन्तर अपनी विरहावस्था के वर्णन के बाद सीताजी ने वायु से रामचन्द्रजी के लिये अपना सन्देश सुनाने की प्रार्थना की है। कुछ सन्देश बैल लक्ष्मणजी के लिये ही दिया गया है तथा रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी दोनों के लिये सर्वसाधारण रूप से दिया जाने वाला भी कुछ सन्देश है। इसके अतिरिक्त दोनों भाईयों द्वारा अपनी बहिनों के लिये भी उन्होंने कुछ सन्देश कहलाया है।

अन्त में कुछ प्रत्यभिज्ञान देकर मंगलकामना के साथ वायु को विदा कर दिया गया है।

काव्य समीक्षा

मेघदूत से प्रेरणा लेकर ही यह सन्देश काव्य लिखा गया है। समग्र काव्य में केवल १०० श्लोक हैं और सभी मन्दावन्ता छन्द में हैं। काव्य में पूरेभाग और उत्तर भाग जैसा कोई विभाजन नहीं किया गया है, लेकिन ५७ व श्लोक पर ग्रन्थकार ने ही टीका में 'इतिपूर्वगतटीका समाप्ता' ऐसा लिखा है। इससे यह प्रतीत होता है कि कवि ने अपने मन में काव्य को विषय की दृष्टि से दो भागों में अवश्य विभक्त कर रखा होगा। छन्द, मार्गवर्णन तथा नायक और नायिका की विरहावस्थाओं का चित्रण इत्यादि बातों में समानता होते हुए भी काव्य में मेघदूत का किसी और पाठ में अनुकारण नहीं पाया जाता है। मेघदूत और इस काव्य में एक प्रमुख भेद

यह तो है ही कि इसमें प्रेयसी की ओर से प्रिय के लिए प्रेम-सन्देश भेजा गया है। इसके अतिरिक्त इस काव्य के पात्र भी (नायिका और नायक) बड़े धीर और उदात्त हैं।

यदि पवनपुत्र हनुमान् रामचन्द्रजी का सन्देश लेकर सीताजी के पास लका जा सकते हैं, तो सीताजी का सन्देश लेकर वायु का रामचन्द्रजी के पास आना और भी स्वाभाविक है। जिस कार्य को पुत्र कर सके, उसको पिता तो अग्र्य ही कर सकता है। रामायण में भी हनुमान्जी का वर्णन करते हुए कहा गया है—'माहृतस्यो रस पुत्रो गमने चापि तत्सम'। अतः हम यह कह सकते हैं कि वायु को दूत बनाने में कवि ने वात्मीकि रामायण से ही प्रेरणा प्राप्त की है। दूतकार्य में वायु की उपयुक्तता का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं—

चन्द्राकांक्षा नियतगतयो नेतराशा श्रयन्ते
त्रिशन्चारा अपि जलधरा नुद्यमानास्त्रयैव
इत्युज्ज्वला निरलसगते तानह त्वा प्रपन्ता ॥६॥

चन्द्र, सूर्य और मेघ इत्यादि की अपेक्षा वायु के सब विशाओं में जा सकने के कारण वायु को दूत बनाना उचित ही है।

अशोक वाटिका से पञ्चवट्टी तक के मार्ग वर्णन में किसी नगरी अथवा ग्राम इत्यादि का कोई प्रसंग नहीं आया है। अतः मार्ग वर्णन में सरस स्थल कम ही हैं। फिर भी कवि ने स्थान-स्थान पर सरस कल्पना द्वारा मार्ग वर्णन नीरस नहीं होने दिया है। सर्वप्रथम वायु को यात्रा के लिये उत्साहित करते हुए कहा गया है—

त्यत्सम्पर्काच्चलति रुचिरे धारिजाना कद्रुये
गुञ्जन्मत्तभ्रमरमुपरे दीर्घिका धीक्षमाणा ।
मोदिष्यन्ते रसिकपुरुषा नृत्यगीताभिरामै-
मन्वा नूनं नटशिशुबुलैः सकुला रगभूमिम् ॥१०॥

कवि ने यहा पर यही चमत्कारपूर्ण कल्पना प्रस्तुत की है। फिर पद्मा सरोवर का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

पद्मा नाम प्रथितसरसीं नातिदूरेऽथ याया'
स्वच्छ साधोर्मन इव पयो विभ्रतीं निश्चलञ्च ॥२२॥

सत्पुरुष के प्रसन्न और निश्चल मन की उपमा द्वारा सरोवर के जल की स्वच्छता और शान्तता का कवि ने बड़ा सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। कवि ने जनस्थान बन की धर्मारण्य कहा है, क्योंकि यहा घृष्टों पर बैठे हुये शुक भी निरन्तर सुनते रहने से वेदों के स्वरों के ऐसे विशेषण हो गये हैं कि घृष्टों के नीचे घेदपाठ करने वाले ब्रह्मचारियों को भी वे उनकी अशुद्धिया बतलाते रहते हैं—

प्रज्ञाभ्यासाकुलबद्धवदून् चस्तरेऽधस्तकला
 स कीरणाभुपरि वसना व्यक्ततत्त्वहोक्ति ।
 यस्मिन् शक्ति म्बलितमसकृदुधोधयन्ती स्वगणा
 जुष्टान् वृद्धप्रचलितगुणा गायनान् धरलकीय ॥२७॥

रुग्णा जहाँ कवि ने उही सुन्दर उद्भाषनायें पाठकों के समक्ष रखी हैं । मीताजी अपने आश्रम के रक्ताशोक वृक्षों को लेकर कहती हैं—

स्फन्धालम्बैर्धनुरिपुधिभी गन्धिमिलब्धसाम्ये
 रक्ताशोकैर्दशशतकर प्रागनाहारयदभि ।
 यन्नामारि द्विदशकरभृत्तेऽत्र नार्हन्ति गर्हाम्
 पादाघातान्मम विटपिनस्ते हि सञ्जातरागा ॥३६॥

रक्ताशोक वृक्ष आश्रम में प्रहरी का कार्य करते थे । सहस्र-कर वाला सूर्य भी उनके शरण से आश्रम के प्राण से प्रवेश नहीं कर पाता था । फिर बीस भुजाओं वाले रागण को उन्होंने क्यों नहीं रोका । इस पर मीताजी कहती हैं कि मेरे पाद प्रहार करते रहने से उन्हें मुझ से ड़ेय हो गया होगा ।

रामचन्द्रजी के स्वरूप का वर्णन तो कवि ने ऐसा किया है कि पाठकों के हृदय में उनका चित्र भा खिंच जाता है । जटाधारी और तपस्वी राम का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि वे अटायें इस तरह प्रसन्नता से धारण किये हुये हैं मानों पिता की जनवास की आशा को शिरोधार्य कर रहे हों—

तस्मिन्नहूँ मरकत मणिच्छायमाच्छाद्यद्विभ
 सम्बद्ध गत् तरणिजकुल तेजसा द्योतयन्तम् ।
 यन्या वृत्ति सपदि ददतो दित्सिते राज्यभारे
 शीर्षेणाशा पितुरिज अटा मुक्तरोद बहन्तम् ॥३७॥

इसी तरह उनके वक्ष स्थल तथा मध्यभाग का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि उनका मध्यभाग बड़ा स्त्रीण तथा वक्ष स्थल बड़ा विस्तीर्ण है । सभय है कि प्रज्ञा ने उनके शरीर को मध्यभाग से एक छ कर उनके अग प्रत्यग के सौन्दर्य को सभला है । ऐसे सुन्दर और सुदृीत शरीर पर वक्षल वस्त्र धारण किये हुये घ घटे सुन्दर लगते होंग—

प्रत्यगना विरचनविधौ वेधसा याममुष्टी
 मध्यनेत्र दृष्टतयेयाससस्त्रीणभाये ।
 विस्तीर्णादृष्ट्याश्रययदनाग्रान्ततावपन्मारे
 यन्याकरपोचितनियसनं वद्वल सधयन्तम् ॥४०॥

आगे चलकर कवि ने रामचन्द्रजी की विरहाग्नि का वर्णन प्रस्तुत किया है। सीताजी कहती हैं कि मेरे वियोग में रामचन्द्रजी को निद्रा नहीं आती होगी, उनके नश्वों से निरन्तर अधुंधारा बहती होगी तथा मेरी अनुपस्थिति में भी वे मुझ से पूछते होंगे कि कहा चली गई हो—

तीजोत्तापद्रु ततरमनोद्वारवद्दर्शयन्तम्
दृग्युग्म वा निमिपत्रिमुल सान्द्रवाप्यायमाणम् ।
मा मुन्यान्त करणमिष धी प्रस्थिता क्वासि बाल
सौलीकितुं श्रितमतितरामित्यल वा उदन्तम् ॥४३॥

इस श्लोक में चिन्ता, उन्माद और प्रलाप अग्नि-आगों का वर्णन किया गया है। इसके बाद सीताजी के वियोग में रामचन्द्रजी के मूर्च्छित हो जाने तथा इस दृश्य को देखकर विरह की अन्तिम दशा समझ कर लक्ष्मणजी के रोने का वर्णन किया गया है—

दाधिक् पुत्रेध्वनपरगत शोकजिन्द्स्त्रमेतत्
ज्येष्ठस्नेहात् किमिह गुरुणा शिक्षितो राम पय ।
इत्यस्त्रीधैरुपरि रुदता शान्तमोहीकृत वा
शेषानस्थाभ्रमगुदशुचा लक्ष्मणोनानुजेत ॥४४॥

विरह से व्याकुल होने के कारण, संभव है, रामचन्द्रजी आश्रम में स्थिर रूप से न बैठने हों, अतः सीताजी प्रच्छन्न गिरि (सुरचिरगिरि) की विस्तृत अधित्यका में उनकी खोज करने के लिये कहती हैं —

तत्रालम्ब कथमपि भवन् ! सानुजो राघवेन्द्र
सोऽन्वेष्टय सुरचिरगिरेरापताधित्यकायाम् ।
गोदारव्यां प्रचलपयसा शीकरध्यानरम्या
या सायाह्नप्रचरणरिधौ भूमिरासीत् प्रिया न ॥४५॥

विरहावस्था में प्रेमीजन प्रेयसियों द्वारा संकेत स्थानों में घूमते फिरते ही हैं। इसमें उनके मन की व्यथा कुछ शान्त हो जाती है।

रामचन्द्रजी की खोज के प्रसंग में वन दयता से भी वायु के मिलने का उल्लेख किया गया है। वनदेयता के वर्णन में कवि ने उसकी सहृदयता और भावुकता का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। ऐसे ही एक स्थल पर कहा गया है—

यं सेमन्तीतरमणितस्वागभगम्पयोभि
स्नेहादुधस्तार्जित इति मया प्रागण्ये वर्द्धितोऽस्ति ।

सा पश्यन्ती गतरसतया शुष्कपुष्पाणि नूनं
वाष्पोत्सेकैश्चरति मदनुष्ठेयकमथ तस्मिन् ॥५२॥

सीताजी ने अपने आधम के प्राण में सेमन्ती (सेउती) का वृक्ष लगा रक्खा था और अपने कष्ट की परवाह न करके स्वयं अपने हाथों से ही उसे सींचती थीं। वे कहती हैं कि उनकी अनुपस्थिति में जल न मिलने से उस वृक्ष के सूखे हुए फूलों को देखकर वनदेवता अवश्य ही अपने आसुओं से उसको सींचती होगी। मित्रता का कैसा सुन्दर आदर्श कवि ने यहाँ पर उपस्थित किया है।

आगे चल कर सीताजी कहती हैं कि मेरी अनुपस्थिति में कातर होते हुए तथा वीणा के स्वर को सुनकर एक दम पास आये हुए मेरे पालतू हिरण पर वन देवता वीणा छोड़कर हाथ फिराती हुई तुम्हें (वायु को) दिखाई पड़ेगी—

वीणातन्त्रीमधुररणिताहृतशारग यूथा—
दायान्त वा नयपशुसभासङ्गमिर्वेदीनम् ।
मुन्त्वा वीणामशिलगुणामञ्जसोपेत्य गात्रे
सस्नेह मत्कृतकतनय पाणिना व्यामृशन्तीम् ॥५३॥

वीणा बजाती हुई वनदेवता का सीताजी के पाले हुये हिरण के पास आने पर तारों को ढीला किये बिना ही वीणा का रख देना तथा हिरण पर अपना हाथ फेरना उसके भावुक हृदय का सजीव निदर्शन है। सखी के कृतक पुत्र को अपने पुत्रवत् समझना उसका स्नेहातिरेक प्रकट करता है।

वायु के द्वारा वनदेवता के लिये जो सन्देश कहलाया गया है उसमें सीताजी के हृदय के सच्चे भाव छिपे हुए हैं। वायु वनदेवता से सीताजी के सन्देश को सुनाते हुये कहता है—

भर्तुं प्राणैरनणु भजता सन्धिमात्मान्प्रमाणम्
भ्यप्राणाना बलपदगिणोऽर्षणभर्तुं पीडाम् ।
सम्भाव्येषा धदति ददती त्वा परिष्वगपूर्वम्
तत्कार्ये ते लघु लघु यथा राक्षसान् सोऽभियाति ॥५६॥

राणु व द्वारा सीताजी के प्राणों को कष्ट दिये जाने पर रामचन्द्रजी के भी प्राणों के कष्ट की समाधना कर सीताजी का रोना नितान्त स्थायीक है। भारतीय दाम्पत्यसम्वन्ध में पति-पत्नी की अनन्यता तो बतलाई ही गई है। इसके अतिरिक्त इस सन्देश में वे ही बातें कही गई हैं, जिन्हें सीताजी रामचन्द्रजी से कहना तो चाहतीं, लेकिन सकोचवश शायद कह नहीं पातीं।

आगे चल कर वन और पर्यंतों में कहीं ही रामचन्द्रजी के मिल जाने पर उन्हें

सन्देश सुनाने की वायु से प्रार्थना की गई है। सन्देश में सर्वप्रथम सीताजी की दशा का वर्णन किया गया है—

लक्ष्मणमोनिधिपरिगता राक्षसेण नीता
जीरत्येषा तत्र सहचरी विप्रयोगाञ्ज्वलन्ती ।
पातिव्रत्यं प्रहति च दशाशेषतान्प्रस्य नून
स्पर्शादप्यन्यद्दह पयसम्नत्स्पर्णाह्नीपिकेन ॥७३॥

रावण के स्पर्श से ही सीताजी के निधन की संभावना में उनके दृढ़ पातिव्रत्य की गूढ़ व्यञ्जना की गई है। 'जीरत्येषा तत्र सहचरी विप्रयोगाञ्ज्वलन्ती' इस पंक्ति में सीताजी के प्रेम तथा वियोग-दुःख को एक साथ बड़ी सुन्दरता से व्यक्त किया गया है। उनकी विरहावस्थाओं का वर्णन करते हुए आगे फिर कहा गया है—

सा सिञ्चन्ती नयनसलिलैर्गर्भमूलं कदाचित्
त्वा पश्यन्ती नगरलिपितं क्वचिद्भूमिपृष्ठे ।
जगत्तु व्यस्तं सलसद् इवाद्यष्टदोषं लपन्ती
दुःस्थां बालं नयति रक्षसि व्यालुठन्ती क्वचिच्च ॥७४॥

इस पद्य में प्रिय विरह में सीताजी के रोने, प्रिय का चित्र बनाने, असबद्ध प्रलाप करने तथा धूल में लोटने इत्यादि विरह-चेष्टाओं का बड़ा भावपूर्ण वर्णन किया गया है।

इसके बाद सीताजी का मुख्य सन्देश प्रारम्भ होता है। सर्वप्रथम सीताजी ने रामचन्द्रजी के पाद-पद्म को प्रणम किया है—

तत्ते नाथाद्भुतविलसित पादपद्मं नमामि ॥७५॥

पातिव्रता स्त्री का अपने पति के चरणों को नमस्कार करना उचित ही है। फिर सीताजी ने अपनी प्रार्थना बड़े प्रभावपूर्ण ढंग से रामचन्द्रजी के सामने रखी है। वे कहती हैं—

रज्जुं कृपादुघटमिव भुजं दुर्गतेर्दीर्घमतीनाम्
मृगद्वारं मनुजमिव च स्त्रीपसत्कर्मधर्मं ।
उदुघृत्य त्वा नयतु भद्रिति स्नेहमारोऽतिरज्जु
दुःखाम्मोघैर्जनग्निमित प्रार्थनेना हताया ॥७६॥

प्रार्थना को सरल बनाने के लिये कवि ने कौसी उपयुक्त उपमाएँ दी हैं। 'जगते चल' और अपने चित्त की दशा का वर्णन करते हुये सीताजी कहती हैं—

विभ्यद्विभ्यत् क्वचिद्विभ्यं भूतं गूढमास्ते कदाचिद्
यानि र्मैर्यं न रक्षरणाद्विभ्यन्त्यञ्जनं यतत् ।

तीर्णाम्मोधि कश्चिदपि निजोदन्तमावेदयिष्यत्
त्वत्पादान्त द्रुतमहह मे याति किंकार्यमूढम् ॥२५॥

प्रिय के प्रियोग में चित्त का डरते रहना, व्याकुल होना, अस्थिर रहना तथा बार बार प्रिय क चरणों में पहुँचने की इच्छा करना स्वाभाविक ही है ।

स्वप्नावस्था में कभी कभी प्रिय के दर्शन हो जाते हैं, इसलिये सीताजी सोने की बहुत चेष्टा करती हैं, लेकिन राक्षसों के भय से उन्हें नींद नहीं आती है—

निद्रामत्पामपि गुरुतरोद्द्वारायत्येव भीति
स्वप्नोपायै कथमपि भवत्सङ्गमापादयित्रीम् ॥२६॥

रामचन्द्रजी से सन्देश सुनाने के बाद लक्ष्मणजी के लिये भी कुछ सन्देश दिया गया है । इस सन्देश में लक्ष्मणजी की बड़ी भावपूर्ण प्रार्थना और प्रशंसा की गई है । सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

हा नारण्यामृतजलनित्रे हा महारण्यबन्धो
हा रक्षिन् हा सुविनयरसामृष्टाह्वान्तरामन् ।
हा मत्कमारिगणिततनूपात हा पक्षपातिन्-
क्वेदानो ते मद्रुपरि दयास्नेहदाक्षिण्ययत्न ॥२७॥

अपने हृदय के भागों को सीताजी ने इस पद्य में बड़ी भावप्रवणता के साथ व्यक्त किया है ।

सीताजी लक्ष्मणजी से फिर कहती हैं कि तुम पहिल तो मुझ पर बड़ी दया करते थे, लेकिन आश्चर्य है आजकल तुम्हारा मन न जाने क्यों व्याकुल नहीं होता है—

सन्तप्ताया मयि पथि भृश मन्धरत्य तवासीदु
वाप्पोद्ग्रेकस्तत्र मयि धने पाक्धूमाकुलायाम् ।
स्थैर्यं चेतोऽलभत रजनो मत्तनुपुप्ती तत्रैत-
च्चिन्नन्त्वस्या निपदि मम यत्तन्मनो नाकुलं स्यात् ॥२८॥

अन्त में सीताजी लक्ष्मणजी से कहती हैं—

मामुद्धतुं कुरु परिकर वैमुलीं मा एम यासी ॥२९॥

फिर दोनों भाइयों को सम्बोधन करके कहा गया है—

सप्रत्याश पुनरपगमे जीवितं धारयन्त्याम्
पयंकान्तं मयि तत्र युया नि सपृही तन्न शोभयम् ।

चेत् लभानलमिदं समुत्सृज्य सद्व्योऽविपद्यम्
सजापपद्यतिकरमिदं जीवितं निर्मुक्ता स्याम् ॥६३॥

इस कथन में सीताजी के त्रिपाद और नैराश्य की पराकाष्ठा छिपी हुई है। अग्रिम श्लोक में सीताजी फिर कहती हैं कि इस जन्म में यदि तुम न मिलते तो अगले जन्म में ही तुम्हारा साथ हो जाये। वस, मेरी यही प्रार्थना है—

एव तावत् खलु हितकरीमाशिव सम्प्रशासे
लभ्येऽन्यस्मिन् जनुपि च भगव्यन्नुभायी लभेय ।
देह लब्धा पुनरपि यथा पद्मिनी शैशिराते
तत् सौहादं दिनमिद्विरयो पौरुमेकान्तमेति ॥६४॥

जिस तरह पद्मिनी शिशिर ऋतु के बाद सूर्य और दिन के अपने पूर्व प्रेम की पुनः प्राप्ति जानी है, इसी तरह सीताजी को भी यह आशा है कि इस जन्म के बाद अश्वत्थ ही इन्हें राम और लक्ष्मण का पूर्व प्रेम प्राप्त हो जाये। सीताजी की इस आशा में भारतीय नारी के चिरन्तन और शाश्वत पति-प्रेम का आदर्श छिपा हुआ है।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी के सीताजी को छोड़ कर अयोध्या चले जाने की सभारना लेकर अपनी यद्दिनों के प्रति भी सीताजी ने निम्नलिखित सन्देश उनके द्वारा दिया है—

आकीमार जनकभयने योजने भर्तृगहेऽ
व्यस्तक्रोधप्रसरविधिना लम्बितकारोधा ।
सर्वा एव क्षणमपि वयं नान्वभूमाक्षिदुःखम्
जानैपाद्यप्रभृति खलु व स्वप्नमात्राः लोक्ष्या ॥६६॥

अपनी यद्दिनों के लिये द्विये गये इस सन्देश में सीताजी के भगिनी प्रेम की कौसी अटूट स्मृति छिपी हुई है।

सन्देश सुनाने के बाद सशयनिवारण के लिये सीताजी ने वायु को एक प्रत्यभिज्ञान भी दिया है—

वेशन्यस्तातिसुरभिरजोगन्धमीशाभिनन्दुयम्
गन्धोद्गाहिन ! धरत्य परमप्रत्यभिज्ञानमेहि ॥६७॥

गन्धोद्गाही वायु के लिये प्रत्यभिज्ञानस्वरूप सुगन्ध का ले जाना कोई दुष्कर कार्य नहीं है। अन्त में वायु के प्रति—

पन्धानोऽमी प्रतिगति शिवा सन्वितो गच्छन्तस्ते
मूर्तावस्था त्यपि छतसदासन्निधानोऽष्टमूर्ति ।

अध्वर्यान्ति तत्र परिहरेत्—इत्यादि ॥१००॥

मग्न-कामना से काव्य समाप्त हो जाता है ।

काव्य के पतारण्यन्त अनुशीलन से प्रत्यक्ष है कि यह काव्य एक सुन्दर सन्देश काव्य है । विप्रलम्भ शृंगार होते हुये भी काव्य में समयसमे काम लिया गया है । सीता और राम जैसे धीर और उत्तम नायकों के प्रसंग में होना भी यही चाहिये था । मेघदूत क अनुकरण पर लिये होने पर भी मेघदूत की पदावली अथवा भाषों का प्रभाव काव्य में प्राय नहीं ही है । केवल प्रकिया का साम्य ही दृष्टिगोचर होता है । भाषा की दृष्टि से काव्य कृत्रु बुरह ही है । माधुर्य तथा प्रसाद गुण का काव्य में न्यूनता है और गौडी रीति का ही काव्य में अनुसरण किया गया है । उदाहरण के लिये निम्नलिखित श्लोक पयाप्त होगा—

चञ्चच्चञ्चुत्तशतगलद्रकधाराकुलाङ्ग
पक्षक्षेपप्रखरनखरारुर्णैर्लुप्तसञ्ज
मदुभाग्यान्तान्मृतवदपि स (रावण) प्रातधी शौर्यचण्ड
खङ्गं पिङ्गो दलितगहन तत्र त सजिगाय ॥२६॥

रावण और जटायु क युद्ध का इम श्लोक में वर्णन किया गया है ।

कवि ने कहीं कहीं काव्य में नैतिकता तथा सञ्चाई स भरे हुए सुन्दर वाक्यों का भी समावेश कर दिया है । यथा—

(१) स्वायेंपन्य रुजति खलु य प्राकृतो ह्येव लोक ॥४॥

(२) नोपकृष्ट ह्यनृत्तमृषिभिर्नागसा जीरमूलम् ॥१७॥

(३) प्रायो धर्मात् स्वलति हि जन सर्वसम्पद् यपाये ॥२४॥

(४) नानिर्णति भ्रष्टिति हि जनो यानि धैमुत्थमर्थं
नापत्पात प्रथमपति वा साइसै पौरुषाद्ध्य ॥६६॥

कहीं-कहीं वही सुन्दर और प्रभावपूर्ण उपमाये भी कवि न दी हैं । येमे ही एक स्थल पर राक्षसों से धिरी हुई सीताजी क लिए—श्रयनाकान्तामिन् कलरथीम् ॥२०॥ कहा गया है । वनदेवता क वर्णन में दी गई उपमाये भी दर्शनीय हैं—

तत्रोद्देशे वसति नियतं देवता तद्वनाना
भूमेरनूडागत इव मणिर्देहिनीवानुष्मपा ।
यद्वायुष्मन् म्थितिमविदिता तस्यतो क्षातुकाम-
स्ता मीमासा बुध इव तयो र्दयो संश्रयेथा ॥४०॥

इस प्रकार काव्य के अनुशीलन से हम यह कह सकते हैं कि यह काव्य सस्कृत के सन्देश काव्यों में एक विशिष्ट स्थान रखता है। रामायण की कथास्तु को अपनी कल्पना से कवि ने और भी अधिक उरुष्ट बना दिया है। प्रसंगान्तर में आई हुई काव्य की यह पक्तिया—

नोपेक्षेथा कुरु परिचय गगया सङ्गमात् किम्
नो माहात्म्य समधिकतर पावनोऽप्यविवरेति ॥३३॥

यदि काव्य के सम्बन्ध में मान ली जाये तो अनुचित न होगा। रामायण रूपी समुद्र में यह काव्य गंगा की तरह ही मिल रहा है। साहित्यिक अभिन्निक के पाठकों के साथ-साथ भक्ति प्रवण पाठकों के लिये भी यह काव्य सर्वथा उपादेय है।

भोजानाथ का पान्थदूत (आधुनिक काल)

इस सन्देश काव्य की कल एक ही हस्तलिखित प्रति (स० ३८६०) इण्डिया आफिस लायप्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है। उसी के आधार पर डा० जे० वी० चौधरी, कलकत्ता ने यह काव्य अंग्रेजी में सक्षिप्त भूमिका के साथ मूल मात्र प्रकाशित किया है। प्रस्तुत सम्करण में कहीं कहीं बड़ी अशुद्धियाँ हैं और बहुत सी पक्तियों का तो अर्थ ही कुछ समझ में नहीं आता है। काव्य के अन्त में कवि ने लिखा है—

श्री सीतापतिसंययेन टिफरीयासेन काव्यं मुदा
भोजानाथधरामरेण रचितं यत् पान्थदूताह्वयम् ।
राधाकृष्णपदारविन्दविगलन्मध्यादरा सादरा
सन्तस्तत् परिशीलयन्तु सतत सन्तोषसंप्राप्तये ॥१०५॥

इससे यह प्रतीत होता है कि पगल में गंगा के तट पर स्थित टिफरी ग्राम निवासी ब्राह्मण कुलोत्पन्न भोजानाथ नामक किसी आधुनिक कवि ने यह काव्य लिखा है। इस कवि का एक अन्य दूत काव्य-पदाकदूत भी इण्डिया आफिस लायप्रेरी लन्दन (सूची स० ७, १४६७) में सुरक्षित है। भोजानाथ (टिफरी) ने मुग्ध-बोध पर सन्दर्भामृत तोषिणी नामक टीका भी लिखी है। इसकी भी हस्त लिखित प्रति (सं० ८७१) इण्डिया आफिस, लायप्रेरी, लन्दन में सुरक्षित है।

काव्य-सार

इस काव्य की कथाप्रस्तुती श्रीमद्भागवत से सख्त है। कृष्ण और गोपियों के प्रेम को ही लेकर यह काव्य लिखा गया है। काव्य की कथा इस प्रकार है। यमुना के किनारे कोई गोपी कृष्ण को याद करते करते मूर्च्छित हो कर गिर पड़ती है। उसकी सेविकायें जल इत्यादि से उसे होश में ले आती हैं। इसी अथर्व पर मथुरा की ओर जाता हुआ एक पयिक दिखलाई पड़ जाता है। वस, गोपिया उसी को अपना दूत बना कर कृष्ण के पास अपना प्रेम सन्देश भेजती हैं। सर्व प्रथम पयिक का वर्णन किया गया है। कण्ठ में तुलसी की माला धारण किये हुये, शिष्ट, सदा चारी और दक्ष इत्यादि प्रकार से पयिक का परिचय दिया गया है। चू कि वृन्दावन से मधुग निकट ही है, अतः काव्य में मार्ग वर्णन बिलकुल नहीं है। सर्वप्रथम एक गोपी अपना सन्देश पयिक को सुनाती है। अपना सन्देश कहते कहते जय यह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है, तब दूसरी गोपी अपना सन्देश प्रारम्भ कर देती है। इस दूसरी गोपी के सन्देश की समाप्ति के साथ साथ काव्य समाप्त हो जाता है।

समीक्षा

इस काव्य में गोपियों के सन्देश में प्रेम और विरह का वर्णन तो थोड़ा ही है, स्थान स्थान पर कृष्ण को तरह तरह के उपालम्भ दिये गये हैं। पहिली गोपी कृष्ण की इसी बात पर निन्दा करती है कि वह मथुरा जाकर ब्रज की सारी गोपियों को भूल गये हैं। मथुरा की सुन्दर रमणियों का सम्पर्क कितना ही आनन्ददायक क्यों न हो, ब्रज की गोपियों को छोखा देना कृष्ण के लिये जरा भी शोभायमान नहीं है। कृष्ण के विषय में ब्रज की गोपियों ने जो कुछ भी दुःख उठाये हैं, उनमें साक्षी रूप से कात्यायनी अथवा दुर्गा का प्रमाण दिया गया है। गोपी कहती है—

राम रुद्धविनिर्गमा निरपमास्तास्तापशेषा मृता
 प्रेमाय मरणाय नो यदि पुरा क्षात कथ स्त्रीरृत ।
 यच्छिन्न कुलशीलशृङ्खलमल यदुपरगद् ग हृतम्
 तस्मिन् धर्मणि मर्मकर्तिनि पुन कात्यायनी साक्षिणी ॥२८॥

आग चलकर गोपी कहती है कि कृष्ण को प्रेम करना आता ही नहीं है। इस विषय में उन्हें अर्धनारीश्वर भगवान् शंकर से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—

ता योवा यथमाक्षिपाम न पर सीमन्तिनीगोरयम्
 न स्य धेस्मि तयास्ति चेद्विदिपिा तं चार्धनारीश्वरम् ।
 गंगाधारिणमेत्य विजि नगरीनारीमनोऽ त्वया
 शुद्धा धूर्त वय पर परिचिता नानञ्चिता यञ्चिता ॥२९॥

कृष्णजी की वर्या क स्वर को सुनकर ही तो गोपिया अपने घरों से लोक

लज्जा इत्यादि का भय छोड़कर कृष्णजी के पास आ जाया करती थीं। इसी बात का, समस्त उन्हें यह फल मिला है कि कृष्णजी ने उन्हें इस तरह भुला दिया है—

पूर्वं यद्वभ्रता वनेऽपि अनिताशसी स्वशशीस्वन्—
श्चक्रे चक्रपते तथा निजपते पीडा स्वपित्रोस्त्रया ।
स्वासा लोकरुलकिता नृपभय तच्छापदाच्चापद-
स्तुच्छ्रीकृत्य सकाशमैव भवता दत्त पुनस्तत्कलम् ॥२५॥

इसी प्रकार कृष्ण जी वशी तथा उसके गीत को भी उपालम्ब दिया गया है। गोपी कहती है—

क मन्त्र श्रवणे निधाय हृदय याऽच्युत्तलीलया
पश्चादेवमभूमुहत् कुलपतीरस्मानकस्मात् सती ।
त्वत्सग विपिनेऽप्यचीकरद्दिद नाजिह्वपत् सैव ता
यशीगीतिरपाकृती कृतवती दूतीर ते दुष्कृते ॥२६॥

आगे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण तो प्रेम की अपनी सय पुगानी बातें भूल गये हैं—

स्यात् प्रेमेदमकृत्रिम तदुभयो सान्निध्यमास्ता सदा
यावज्जीवमिदं वदन्तु वचनं प्रत्यर्धिनी मे मुदा ।
अद्य स्यात् समय परस्परपरप्रेमाद्र्योरावयो-
स्त्यं मेऽहं तव चेति निश्चितमिदं यत्तत्त्रया विस्मृतम् ॥२६॥

अन्त में अपनी विरहवस्था का वर्णन करते हुये यह गोपी कहती है—

ता सर्वा स्मर शर्वरी क्षणनिभा नीतास्वया त्वा त्रिना
दग्दार्धं कतिकोटिकोटि युगवज्जात पर वा सागसा ।
नाम्नाकं हृदि तापशान्तिवृत्तपाटीरपाथोरय
सन्ततायसपिण्डकोपरि यत कीलाललशोपम ॥३०॥

इस प्रकार अपनी विरहवस्था बताते बताते यह गोपी मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। तदनन्तर दूसरी गोपी इसी कथासूत्र को लेकर आग बढ़ती है और मथुरा में कुंजा के साथ कृष्ण के सम्पर्क को लेकर उनकी निन्दा करने लगती है। यह कहती है—

सा कुंजा परमा तत्रैव सविधे स्याता त्रिभामिधा
विरयातस्त्यमपि त्रियक इति ससक्तोऽसि यस्या सदा ।
इत्थ योग्यसमागमो विधिहित स्यादेव किन्तुत्तमा
राधायास्तुलनाविधौ श्लनिधे कन्या न धन्यापते ॥३३॥

मथुरा में जाकर कृष्ण को भले ही कुब्जा का माय अन्त्रा लगे, लेकिन राधा और कुब्जा की तुलना ही स्या। राधा के समग्र शरीर की कांति का तो कहना ही क्या, उनके पैर की एक अंगुली की भी उपमा ससार में नहा मिल सकती—

आम्ना सर्वशरीरकांति तुलना यत्पादपद्मागुली—
लेशस्यापि जगत्त्रयेऽस्ति न तुलति स्याद्वर्तं किन्तु यत् ॥३५॥

तदनन्तर यह गोपी कहती है कि जिस राधा का बचनों को कृष्ण अमृत के समान समझते थे, जिसके मार्ग में किसी न किसी बहाने पड़े हो जाते थे तथा जिसके नेत्रों के सामने ससार की भी उन्हें सुध न रहती थी, हाय, उस राधिका को उहोंने एक म भुला दिया है—

कामापहनुति यद्वच श्रुतिपुटे पीयूषवन्निर्घृतम्
यद् गत्यागतिपद्धतौ कित्तु केनाऽपि चञ्चुलेन स्थितम् ।
यन्नेत्रान्तनिरीक्षणार्पितपरानन्देन तस्मिन् क्षणे
विश्वं त्रिस्मृतमद्य सापि भवता कालन हा त्रिस्मृता ॥३७॥

जामे चलकर यह गोपी कहती है कि कृष्ण केवल गोपालक ही हैं। समस्त विश्व का पालक गोपालक कैसे हो सकता है। कृष्ण तो केवल चोर हैं। उनकी माता यशोदा ने उन्हें देवता बना दिया है—

नादत्ते स्वयमीश्वर किमपि तद् गृह्णाति भाग्योदया-
दृमकृत्या यत् प्रतिपादित त्रिजगता पालो न गोपालक ।
भक्ताभीष्टमपि प्रभु प्रकुरुते न कदापि चोरीदिकम्
चौरभ्यात्र यशोदया तत्र पुनदेवत्वमाग्यापिनम् ॥४०॥

तदनन्तर यह कहती है कि कम को मार कर दुर्बल और वृद्ध उग्रसेन को कृष्ण ने मथुरा का राजा बना दिया है, ताकि यह मथुरा की सुरा रमणियों के साथ विहार करते रहें—

कंस द्रमपय नयन गतमयो राज्ये च राजा भय-
न्नास्त्राकारिण्यमातुर प्रथयस नाम्नोप्रसेन नृपम् ।
कुर्वन्गु शशुन्य सप्रति सुखी ध्याय-नपुष्यानि ? ता
नारैरियमरीरमोऽनारत दण्ड्योऽसि कैर्दण्ड्यसे ॥४३॥

राधा की विरहायस्था और व्यग्रता का वर्णन करते छुये यह गोपी कहती है कि दुष्टात्मा कृष्ण ने उसके वियोग में नरपत्नी हुए राधा को चिरतुल ही भुला दिया है—

प्रातः प्रातरिय पुरीपथमनु त्वद्दर्शनाकाक्षिणी
 प्रेयानेति न धेति पश्यत जलज्याप्तं प्रदक्षिण्यम् ।
 द्रष्टुं न क्षममद्यदीदिति ततो नीनाऽनुसार्यं व्रज
 याऽसून् मुच्यते ते कृते कितय सा दृष्टा न दुष्टात्मना ॥४४॥

राधा की मूर्च्छाजस्र्या को देखकर लोगों के निरन्तर आसू बहने लगते हैं और वे लोग हा हा करते करते जमीन पर लोट जाते हैं । कृष्ण को इस घात के सुनाने का पथिक के लिये परामर्श देते हुए गोपी कहती है —

अश्रान्तस्त्रयदश्रयो घत गतप्राण्यमित्याकुला
 जग्मलै किल सकुल क्षितितल कुर्वन्ति के नानिशम् ।
 श्रीराधापदधूलिशालिवपुषो दुर्गरहाक्षारवा
 के वा नेद लुठन्ति चेति सदय एव त शठ आनये ॥४५॥

कृष्ण और गोपियों की आत्मीयता का इसी से पाठक गण अनुमान लगा सकते हैं कि कृष्ण को शठ कहने में भी गोपी जरा नहीं द्विचकती है । इस प्रकार कृष्ण की विविध उपालम्भ देने के बाद पथिक से कहा गया है—

इष्टो घोरतरत्यदीयविरहोत्सापक्षयैकक्षमो
 गगासागरसगमे मम पुन काययय कामट ।
 स स्याद्विष्टनम सुखाय सुतरा तत्तात्मना मादृशा
 नो तापाय कदापि पान्य मधुरानाथस्त्वया कथ्यताम् ॥४६॥

विरह ताप से व्याकुल गोपी का गगासागर के सगम में अपने शरीर को छोड़ देने का विचार करना उसकी निराशा और अघृति को व्यक्त करता है । अन्त में गोपी यह प्रार्थना करती है कि कृष्ण चाहे कृपा करे, चाहें हेप करें, उसकी तो यही प्रार्थना है कि जन्म जन्मान्तर में यह गोपाल कृष्ण ही उसका प्राणेश्वर रहें—

घात सकातरमिदं प्रणिपत्य याचे
 हेप करोतु कङ्कणमथवा तनोतु ।
 गोपाल एव पशुपालकपालपाल
 प्राणेश्वरो भवभवेऽपि समैव भूयात् ॥१००॥

इस सम्प्रेष में इस प्रकार उपालम्भ और निन्दा की अधिपता के होते हुये भी कहीं ० कवि ने यही सुन्दर कल्पनायें की हैं और भावयोजना यही सरस तथा हृदयप्रादिणी है । पान्य को दग्धर गोपियों के हृदय में जो आनन्द होता है, उसका निम्नश्लोकों से पाठक स्वयं अनुमान लगा सकते हैं । गोपिया कहती हैं—

सूर्यम्येव निरस्तदुच्छतमस प्राप्तोदयस्याद्य ते
 राग प्रापितया गवा मधुरया सद्य परामर्षणात् ।
 पद्मानीव मुखानि नस्तदधिक पान्थ स्फुटानि स्फुट
 पश्यारादपि सन्निधातुपङ्क्तिमां सा हि भिन्नेयते ॥८॥

पथिक के रूप, मन, शील, प्रीति, यश और वाणी का बड़ा सुन्दर बर्णन
 नग्नश्लोक में पाया जाता है—

रूप चन्द्रति मानस द्रवति ते शील सुविद्यस्तति
 प्रीति पर्वतति प्रवीतमहिमा श्रोतस्वतीपालति ।
 प्रेलोक्यैकपलक्षरस्त्रति यश पीयूषति व्याहृतम्
 यो योऽय स गुण सुहेमगुणरत्कार्येऽत्र वर्द्धिष्यते ॥९॥

कवि ने अप्रत्यक्ष रूप से रूप और मन इत्यादि के कैसे सुन्दर उपमान यद्वा
 पर दिये हैं ।

सन्देश देते समय प्रथम गोपी कहती है कि विरह ताप के उपचार-स्वरूप
 काम में आने वाले शौगल, नलिनीदल, चन्दन और केतकी इत्यादि पदार्थ ब्रज में
 दुर्लभ से हो गये हैं । अतः कृष्ण से कहना कि शीघ्र ही इनको मेरे लिये भेज दें—

शौगल नलिनीदल मलयज जम्बालक शीतलम्
 नूतन पटलवमत्र नो जनपदे शौलैभ्यभेतानि यत् ।
 अद्यास्तानि पुरातनप्रणयत सप्रार्थयामो ययम्
 शीघ्र प्रेषयित्वा मदर्थमिति त साधो बुध बोधय ॥१०॥

विरहताप की उग्रता के साथ-साथ कृष्ण व गोपियों को भूल जाने की भी
 इस पद्य में बड़े गूढ़ ढंग से व्यञ्जना की गई है ।

दूसरी गोपी अपने सन्देश में कहती है कि कृष्ण के साथ होने पर जो जो
 बातें क्वचिकर लगती थीं, वे सब उनका धियोग हो जाने पर बड़ी दुःखदारी प्रतीत
 हो रही हैं —

शिष्टो दुष्ट इषाटयीव सदन घाटीव मुजाटवी
 हारो भार इव प्रसूनरचिता मालापि जालोपमा ।
 व्याघ्राद्या परिवारवत् परिजना व्याघ्रादिहिंस्रोपमा-
 स्तयत्सगे पिहिते पुरा मम न किं किं वैपरीय गतम् ॥११॥

आगे चल कर यह गोपी कहती है कि कृष्ण के विरह में उसकी शानेन्द्रियों
 तथा कर्मेन्द्रियों दोनों ने ही अपना कार्य छोड़ दिया है—

भाव्यो नापमसम्भ्रमो यदधुना नान्यो दशा दृश्यते
नीलालोकभिया पर कटुतया घ्राणेन करेण वा ।
शीतो वायुरपि त्वचा रसनया नैव सुधा गृह्यते
शैविल्य चलिता क्रिया स्वविरहात् कमेन्द्रियाणामपि ॥५६॥

इस पद्य में गोपी की विरह-शालीन जड़ता का वर्णन किया गया है । इसी प्रसंग में अपनी मन स्थिति का वर्णन करते हुये गोपी फिर कहती है-

चित्त सुस्थयितु र्दुर्धरचितारामे यदा स्थीयते
हा हा हन्त तदा मदीयनयनद्रोणीस्रवहारिभि ।
यथापूरितमालमालपटल निष्कर्मणाञ्चाद्य न-
स्तु किं साहित किं न सेचनमिदं कर्म स्वय सिद्धयति ॥५६॥

अपने चित्त को प्रसन्न करने के लिये गोपी किसी घाटिका में जाती है । वहा भी कृष्ण की स्मृति उसे आ घेरती है और उसके नेत्रों से लगातार आसू वदने लगते हैं । इस तरह वृत्त के सँचने का काम अपने आप ही हो जाता है । प्रिय की स्मृति में प्रेमिका के रोने को कौन रोक सकता है ।

कृष्ण के विरह रूपी सागर में भारी मिलन की नौका लेकर किसी तरह अपने प्राणों की रक्षा करती हुई गोपिया कृष्ण ने केवल अपना वृत्तान्त भेजकर नौका सहित डुबा दी हैं । इस भाव को कवि ने यही अच्छी तरह निम्न पद्य में व्यक्त किया है । गोपी कहती है-

नाथ त्वद्विरहाम्बुधो निरवधो त्वद्भारनासेत्रधो
पूरेण्डक्षिप्रवृत्त निर्भरजलैर्गशापगासगमे ।
भास्वित्प्रमिलनप्लवा अपि घृतप्राणा कथञ्चिद्व्ययं
वात्प्रियेण तत्परेण भयता किं सप्लवा प्लाविता ॥६१॥

अनुप्रसाद की छुटा के साथ साथ रूपक का भी चमत्कार इस पद्य में दर्शनीय है । साथ ही भाव योजना भी यही सरस तथा हृदय द्रायक है ।

गोपियों की विभिन्न विरह चेष्टाओं का वर्णन करते हुए कहा गया है-

का निन्दन्ति रुदन्ति का द्विमज्जन्ते सिन्धुमिति पाषोडिनी-
पत्रे का मृदु धीमयन्त्यपि परा कुर्वन्ति यातागतम् ।
काश्चिन् फरापि पदन्ति गोकुलधभ्रुवृन्द मृतं वारच नो
नासान्यन्तफराच सशयपरा निघन्ति हाटारयम् ॥६२॥

इस पद्य में गोपियों के रोने, विरहताप, उद्वेग और चिन्ता इत्यादि का कवि ने एक साथ ही चित्र उपस्थित कर दिया है ।

वृष्ण के विरह में डूबी हुई गोपी कहती है कि उसका मन अत्यन्त खिन्न रहता है और थोड़ा सा समय भी कल्प के समान बड़ी कठिनार्थ से कटता है—

न द्रक्ष्यामि पुनर्हरे तत्र मुखं काये न गन्धार्पणम्
 कण्ठे माल्यसमर्पणं न च करिष्यामीति खिन्नम् मनः ।
 पौन पुन्यमथो मया कठिनया ससान्त्वयमानं च तत्
 स्वर्गोऽयं समयोऽपि कल्पमम इत्येव सदा मन्यते ॥६८॥

इस प्रकार गोपियों की विरह-कालीन विभिन्न अनुभूतियां तथा चेष्टायें कवि ने बड़ी सुन्दर शैली के साथ काव्य में वर्णित की हैं ।

मेघदूत से प्रेरण लेकर भी इस काव्य में मेघदूत का अनुकरण नहीं किया गया है । इस काव्य में कुल १०५ श्लोक हैं । जिनमें केवल श्लोक सं० १०० और १०३ वसन्त तिलना छन्द में हैं । अन्य सब शार्दूलपिकीडित छन्द में हैं । पूर्वभाग और उत्तरभाग जैसा काव्य का विभाज भी नहीं किया गया है और न काव्य में मार्गवर्णन ही दिया गया है । आम तौर से सन्देशकाव्यों में विरही नायक या नायिका का वर्णन प्रारम्भ में दिया जाता है । तदनन्तर किसी के दूत कार्य करने का उल्लेख किया जाता है और भगलाचरण प्रायः नहीं ही होता है, पर इस काव्य में सर्वप्रथम दो पद्यों में भगलाचरण किया गया है और प्रसंगानुसार वृष्ण की स्तुति की गई है । इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी मन्देश-याहक को आशीर्वाद या शुभसामनायें नहीं दी गई हैं । काव्य में मुख्यतया विप्रलम्भ शृंगार ही है । गोपियों के विरह वर्णन के साथ-साथ वृष्ण की निन्दा तथा उनके लिये अनेक उपालम्भ भी काव्य में दिये गये हैं । विभिन्न उपालम्भों से गोपियों के वृष्णप्रेम की अनन्यता तथा प्रगाढ़ता का ही परिचय मिलता है, क्योंकि उपालम्भ उसी को दिया जा सकता है जिस पर अपना कुछ अधिकार हो । भावों के अनुकूल करि ने भावा भी सरल और सरस ही प्रयुक्त की है । माधुर्यगुण के साथ साथ वैदर्भी रीति का काव्य में प्रभाव स्पष्ट ही दिखलाई पड़ता है, लेकिन फिर भी काव्य में प्रसाद गुण की कमी है । निम्ना-कित श्लोक से पाठक गण काव्य की कुछ कमियों का स्वयं अनुमान लगा सकते हैं—

यो भूपोपरि बोधशीति भुवनानुल्लालसीन्यद्वय—
 न्तत्साकृत्कमसाधु किं परिमृपन् धारगिध तस्मै तथा ।
 नो रोरोगि न जामर्माति स यथा बोधोदि शोधोत्यथो
 नानन्धीनि दर्शधरीति च वचदबर्कति चेन्मतिप्रयम् ॥१०॥

पद्यिक को दूत बनाते समय यह श्लोक आया है । इसका अर्थ जो कुछ हो सकता है, यह पाठक गण स्वयं समझ सकते हैं । इसी तरह के दुरुह भाव-यात्ने कई पद्य काव्य में यत्र तत्र दृश्यने में आते हैं ।

विप्रलम्भ शृंगार के साथ साँध कवियों में राधाकृष्ण के प्रति अपने प्रेम और भक्ति का भी कवि ने परिचय दिया है। समस्त काव्य कवि की धार्मिक भावना से श्रोतप्रोत है। राधा और कृष्ण को करल प्रेमी और प्रेयसी के रूप में ही कवि नहीं जानता है, बल्कि उन्हें अवतार स्वरूप मान कर ही यह काव्य लिखता है। मगला चरण में आया हुआ यह श्लोक कवि की कृष्णभक्ति को स्पष्ट रूप से बता रहा है—

भक्तोद्धारणकारणादवतरिष्यन्त्या स्वशापच्छ्रुत्वात्
स्वच्छन्द सनयस्यया सकृपया गोलोकतो गोकुले ।
इलादिन्या परकीपयेत् सहितो हृष्टोऽवतारीह य
श्री कृष्णोऽवततार व स रसिक स्थान्त समुल्लासयेत् ॥१॥

इसी प्रकार काव्य के अन्त में भी कवि कहता है—

मालाकृतेः कुसुमोत्थमिराक्षमेण
प्रेम्णा गुणेऽ च मया प्रथित हि हारम् ।
राधोत्थितप्रमदसारपर पवित्रम्
कुर्षन्ति के सहृदया हृदये न मोदात् ॥१०३॥

जिस तरह कोई माली पुष्पों का हार बनाता है, उसी तरह इस कवि ने भी प्रेम रूपी सूत्र के आधार पर राधा की प्रसन्नता के लिये यह पवित्र काव्य लिखा है। इस प्रकार इस काव्य में कवि की धार्मिक भावना भी अन्तर्निहित है।

सन्देश काव्यों में जितने भी सन्देश याहक कवियों ने अपनी प्रतिमा से कल्पित किये हैं, वे या तो पशु पक्षी हैं या कोई निर्जीव पदार्थ हैं। लेकिन इस काव्य में घृन्दासन से मधुरा जाते हुये एक पथिन को गोपियों का दूत कल्पित करके कवि ने काव्य में कुछ वास्तविकता ला दी है और कथास्तु कल्पित होते हुये भी यही चतुरता के साथ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की गई है।

अन्त में इतना कहना पर्याप्त होगा कि विषय, शैली और छन्द की दृष्टि से यह काव्य एक अभिनय रचना है। सन्देश-याहक का चुनाव करने में कवि ने वास्तविकता से काम लिया है और काव्य को नितान्त मौलिक बना दिया है।

नित्यानन्द शास्त्री का हनुमद्भूत (वि० सं० १६८५)

आधुनिक सृशकाव्यों में इस सदेश-काव्य का एक विशिष्ट स्थान है। इस काव्य में मेघदूत के प्रत्येक पद की चतुर्थ पंक्ति को लेकर समस्यापूर्ति की गई है। जोधपुरनिवासी, दाधीचकासल्यगोत्रीय, कविराज तथा आशुकरि श्री नित्यानन्द शास्त्री द्वारा यह काव्य लिखा गया है। लेखक ने काव्य की प्रस्तावना में आपाठ शुक्ल एकादशी वि० सं० १६८५ (ता० २८-६-७८) ग्रन्थ का रचनाकाल दिया है। काव्य के अन्त में ग्रन्थकार ने अपना परिचय देते हुये लिखा है—

जात धीरगुरुरन्धरात्कविमहेन्द्रान्नाधगाद् भ्रातृजाद्
राधाकृष्ण समाह्वय यमकून श्री वैद्यनाथ सुतम् ।
सोऽयं योधपुरेन्द्रमाश्रित इमं दाधीचकासल्यको
नित्यानन्दकवि र्यधत्त हनुमद्भूत द्विभाषात्मकम् ॥ २॥५८॥

इति श्री जोधपुर महाराजाश्रितेन माधयकरिन्द्रतनुजनुपा व्यासश्री-
वैद्यनाथनन्दनेन कविधराजशुकविना दाधीचकासल्योपाख्येन
श्रीनित्यानन्दशास्त्रिणा रचितं श्री हनुमद्भूतौत्तरार्धं समाप्तम् ।

लेखक को जोधपुर का एक विशिष्ट साहित्यिक माना जाता है। चौपासनी हाई स्कूल जोधपुर में अध्यापन कार्य करने के बाद जोधपुर स्टेट लाइब्रेरी के अध्यक्ष के पद पर भी इन्होंने कार्य किया। हिन्दी और संस्कृत में समस्यापूर्ति के साथ बहुत सी फुटकर कवितायें भी इन्होंने लिखी हैं। संस्कृत में गगाएपदी और लक्ष्मीपदपदी इत्यादि मुकक कवितायें इनकी लिखी हुई हैं। जैन आत्मनिन्द ममा भावनगर में प्रकाशित चेतोदूत और मेघदूत समस्यालेख इत्यादि समस्यापूर्तिपरक कतिपय सन्देश काव्यों का इन्होंने सशोधन तथा सपादन किया है। समग्र है कि इस सशोधन तथा सपादन कार्य से ही इन्हें भी मेघदूत की समस्यापूर्ति के आधार पर इस सदेशकाव्य के लिखने की प्रेरणा मिली हो। अपने काव्य की प्रस्तावना में इन्होंने लिखा है—

प्रणीतयानमि महनि मुक्तकान्यद्द समस्यापरिपूर्तिमाधयन् ।
कवीन्द्रयशस्यकर्मिभ्रमन्तपि परं निबन्धं वृत्तान्तं तादृशम् ॥ ३ ॥

इत्याकल्प्य किल चेतसि कालिदासजीमूतदूत-वग्गपथं चतुर्थपादान्
विन्यस्य नृपंचरणमथलसथयेषु काव्यं नत्रं व्यधिवि रघवदूतदूतम् ॥ ७ ॥

इन पद्यों में कवि ने मेघदूत के पदों के चतुर्थ पाद को लेकर समस्या पूर्ति परक किसी नयीन सन्शकाव्य के लिखने की अपनी ठकट इच्छा व्यक्त की है। उसी के परिणामस्वरूप यह सन्शकाव्य लिखा गया है।

काव्य की कथा

इस काव्य की कथा वात्मीकि रामायण से सम्बद्ध है। रामचन्द्रजी के द्वारा हनुमानजी को सीताजी की खोज में लका भेजने की घटना के आधार पर इस सन्देश काव्य की रचना की गई है। काव्य की कथा इस प्रकार है। प्रचलण गिरि पर सुग्रीव इत्यादि के सहित रामचन्द्रजी ठहरे हुए हैं। सीताजी की खोज के लिये विभिन्न दिशाओं में वानरों का दल भेजा जा रहा है। लका की ओर भेजे जाते हुए हनुमानजी को विशेष बलशाली तथा कुशल देगकर रामचन्द्रजी उनका विशेष स्वागत करते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप अपनी अगुठी देकर उन्हें सीताजी के प्रति दिया जाने वाला अपना सन्देश भी सुनाते हैं। सन्देश सुनाने से पूर्व लका तक का मार्ग वर्णित किया गया है। सर्वप्रथम प्रचलणगिरि से विन्ध्यपर्वत, वहा से फिर नर्मदा और गोदावरी नदी, तदनन्तर मेघल, उत्कल और दशार्ण देशों में से होते हुये घेनवती नदी को पार कर आम्रवन्ती (आश्वयन्ती) नगरी और फिर अघन्ति-नगरी पहुचने का हनुमानजी को परामर्श दिया गया है। वहा से फिर त्रिदम देश और कुण्डिनपुर तथा ऋष्टिक (ऋषिक), माद्रिप, मत्स्य और कलिग देशों को देखते हुये कौशिक देश जाने का हनुमानजी को आदेश दिया गया है। तदनन्तर दण्ड कारण्य और गोदावरी नदी को पार कर आन्ध्र, पुण्ड्र, चोल, पाण्ड्य, केरल इत्यादि देशों में से होते हुये मलयपर्वत (अबोमुय), कावेरी नदी और ताम्रपर्णी नदी पर हनुमानजी के पहुचने का उल्लेख किया गया है। ताम्रपर्णी नदी के बाद महेन्द्र-पर्वत तथा उसके किसी उच्च शिखर पर चढकर वहाँ से समुद्र को लाघ कर लग्न नामक पर्वत पर उतरने और वहा से फिर हनुमानजी के लका पहुचने का वर्णन किया गया है।

इस प्रसंग में लका नगरी का कुछ वर्णन भी दिया गया है। तदनन्तर नगरी के बाहर ही उद्यान में विशेषतया अशोक या मदार वृक्ष के निकट सीताजी की खोज करने का हनुमानजी को परामर्श दिया गया है। उद्यान में एक ओर तडाग, क्रीडा गिरि, अशोक और यकुल वृक्ष घताये गये हैं तथा मध्य में शिशपा वृक्ष घतलाया गया है। इस शिशपा वृक्ष के नीचे अथवा नगरी में वहाँ पर सीताजी के मिलने की सम्भावना करते हुये उनकी विभिन्न धिरह चेष्टाओं और अवस्थाओं के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमानजी को सीताजी के लिये दिया जाने वाला अपना सन्देश सुनाया है। सन्देश सुनने के बाद हनुमानजी निर्दिष्ट मार्ग से लका पहुच कर सीताजी को रामचन्द्रजी का सन्देश सुनाते हैं तथा अभिज्ञान स्वरूप रामचन्द्रजी की अगुठी भेंट करने हैं। इसके बाद लौटते समय सीताजी का सन्देश और चूडामणि लाकर रामचन्द्रजी की सेवा में उपस्थित होते हैं। तदनन्तर रामचन्द्रजी वानर सेना लेकर लका पहुचते हैं और रावण को मार कर सीताजी के साथ अयोध्या पापिस लौट आते हैं।

वस, यहा पर ही काव्य समाप्त हो जाता है।

काव्य समीक्षा

यह काव्य गाल्मीकि गमायण और मेघदूत से प्रेरणा लेकर लिखा गया है। कालिदास ने मेघदूत में हनुमान्जी और सीताजी का मय उल्लेख किया है। इसी उद्धारण के आधार पर कवि ने हनुमद्दूत लिखने की प्रेरणा पाई है। इसके अतिरिक्त इस काव्य में मेघदूत के पद्यों के चतुर्थ चरण को लेकर समस्यापूर्ति भी की गई है। अतः मौलिक सन्देश काव्य होने के साथ-साथ मेघदूत की समस्यापूर्ति होने के कारण आधुनिक सन्देश काव्यों में यह काव्य एक विशिष्ट स्थान रखता है। समस्यापूर्ति के कारण, मेघदूतका मन्दाक्रान्ता छन्द ही काव्य में प्रयुक्त हुआ है। काव्य दो भागों में बटा हुआ है। पूर्वभाग में ६८ तथा उत्तरभाग में ५८ श्लोक हैं। पूर्व भाग में मार्गशीर्ष तथा दूसरे भाग में लका नगरी का वर्णन, सीताजी की विरह चेष्टायें और निरहायस्थायें तथा अन्त में सन्देश कथन है। काव्य में त्रिप्रलम्भ शृंगार ही प्रधान है। त्रिपय, भाव तथा शैली इत्यादि की दृष्टि से यह काव्य मेघदूत जैसा ही है। इसमें भी एक प्रेमी का अपनी प्रेयसी के लिये प्रणयमन्त्रेश पाया जाता है। मार्गशीर्ष इत्यादि सब कुछ मेघदूत जैसा ही है। जिस तरह मेघदूत में प्रत्येक स्थान का शृंगार रस-युक्त वर्णन पाया जाता है, उसी तरह इस काव्य में भी तत्सत् स्थानों के वर्णन में शृंगार रस का पुष्ट स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। कुण्डिनपुर का वर्णन करते हुए कवि कहता है-

यथ प्रोन्वैरतिघनरसाभ्यन्तर पुष्करिण्या
मीमन्त्रीडासरसिजवर्नीभारतो मादतीज ।
रत्यां खेद हरति सुदशा द्राम् यथा ह्युत्तजयिण्या
सिप्रायात प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकार ॥३३॥

इसी प्रकार अवन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर हनुमान्जी की विभिन्न क्रीडायें देखकर यहा की स्थियों की चेष्टाओं का कवि ने बड़ा मधुर वर्णन किया है-

कापेयेभ्य कपि कुलपते । कौतुकात्करिपतेभ्य -
स्तेभ्यस्त्रस्ता रहसि हसितास्याम्बुजा मानजय ।
यूनां चिन्त मनविचरणैरां कटाक्षैर्दरेयु
म्प्रीणामाद्य प्रणयवचन विभ्रमो हि प्रियेषु ॥१॥३०॥

जिस प्रकार मेघदूत में अलका नगरी को शृंगार रस का केन्द्र सा वर्णित किया गया है, उसी प्रकार लका नगरी भी शृंगार रस के दृष्टिकोण से ही वर्णित की गई है। लका के वर्णन प्रसंग में कवि लिखता है-

सिप्रक्षिप्राभिस्तुतिवशत ध्योणित स्मन्वद्विभ्र
काट्चीसएद स्तनविदलितै रत्नमालीयरत्नै ।

धम्मिल्लाञ्च प्रपतिततरैर्यथ सन्तानपुष्पै—
नशो मार्गं सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥२॥११॥

कैलासाद्राविध सुखरुर रात्रापूर्वभक्ति—
वश्योऽपश्य बहिरुपपन्नं यत्र तिष्ठत्युमेश ।
तदुर्भात्या मा धरतु मदनो धन्व, यत् सत्कटाक्षै—
स्तस्यारम्भश्चतुरधनिताविभ्रमैरेव सिद्ध ॥२॥१२॥

इन पद्यों में मंत्रदूत का अनुकरण स्पष्ट ही दृष्टिगोचर हो रहा है। मेघदूत में पक्ष के घर में वापी का वर्णन किया ही गया है। इसी प्रकार इस काव्य में भी लका नगरी के बाहर उपवन में एक तटाक का उल्लेख किया गया है—

तत्रैकोऽस्ति स्फटिकरचिताखण्डसोपानपंडक्ति
सफुरलाम्भोरुहसुरभितस्त्रच्छेनीरस्तटाक ।
यदुवास्तव्या इदमपि सखे । मानस मानसोको
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्यामपि प्रेक्ष्य हसा ॥२॥१५॥

समन्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने मूल श्लोक के भाग को भी वहाँ सुन्दर रीति से सुरक्षित रखा है।

सीताजी की विरह चेष्टाओं के वर्णन में कवि ने अपनी भानुकता और सवेदन-शीलता का अद्भुत परिचय दिया है। रामचन्द्रजी सीताजी का वर्णन करते हुये कहते हैं—

ता मे प्राणान् परिचिनु बहिश्चारिणो माम्कौन—
ध्यानिकाप्रा कमपि न पर प्रेक्षमाणं मृगाक्षान् ।
मद्विश्लेषामयश्चुरिता प्राणनीमाशयेन
जाता मन्ये शिशिरमधिता पविनीं वाऽन्यरूपाम् ॥२॥२०॥

सीताजी को रामचन्द्रजी के 'बहिश्चारिण्य प्राणान्' बताकर कवि ने इन दोनों के प्रेम की पराकाष्ठा व्यक्त कर दी है। सीताजी की चिन्ता और उत्कण्ठा को कवि ने एक साथ ही इस श्लोक में बटा ही सश्लेष वर्णन किया है। प्रिय विरह में सीताजी किस प्रकार अपने दिन काटती हैं। तनिफ इसका भी वर्णन देखिये—

संख्याती-याऽङ्गुलिमिरलिलान् धीतविश्लेषमासा—
नाकारं मे घटजपयसा याऽलिखन्त्यन्जपत्रे ।
ध्यायन्ती धर्त्यभिकप्रहितं शोऽध वा दूतं पयात्
प्रायेणैतं रमणयिरहेध्वगतानां विनोदा ॥२॥२६॥

घट के दूध से कमल के पत्र पर चित्र बनाने का विचार बड़ा ही सुन्दर है। आगे चल कर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन आता है। इस प्रसंग में रामचन्द्रजी कहते हैं—

क्षाम काय खलु तत इत स्थखिडले लोटयन्ती
दीना हसीमिन् मितजले पञ्शेषे तडागे ।
मेमालापैरजनि रजनि प्राक् समाप्ता मयाया
तामेवोष्णैरिरहमहतीमध्रुमिर्वापयन्तीम् ॥२॥२८॥

सीताजी को 'दीना हसीमिन्' उपमा देकर कवि ने उनकी सुकुमारता और कृपाता की बड़ी सूक्ष्म व्यञ्जना की है। एक अन्य स्थल पर सीताजी की विरहावस्था का वर्णन करते हुए कहा गया है—

सा तन्वगी कुसुमभृदुल स्वर्णगौर शरीर
भूयाद्दीन धरणिशयनाद्भूषित धारयन्ती ।
त्वामस्य ह्याक् सदयहृदय । आशयिष्यत्यवश्य
प्राय सर्वो भवति करुणावृत्तिराद्रान्तरात्मा ॥२॥३२॥

कुसुम-समान कोमल तथा स्वर्ण ममान गौरि शरीर को घूँल घूसरित देखकर किस सहृदय के नेत्रों में अधुधारा प्रवाहित न होगी।

सीताजी की विरहावस्था के वर्णन के बाद रामचन्द्रजी ने हनुमान्जी को अपना सम्देश सुनाया है। यज्ञ की तरह रामचन्द्रजी भी सीताजी के शर्मों की छटा विभिन्न सुन्दर वस्तुओं में देखने की चेष्टा करते हैं, लेकिन खेद है कि वहाँ भी उन्हें सीता जैसा सौन्दर्य नहीं दिखलाई देता। वे कहते हैं—

स्वर्णाभिज्ञन्या सहचरि । वपुर्यकत्रलक्ष्मीं हिमाशी
ध्रुसौन्दर्यं धनुषि चमरीवेशमारेषु केशान् ।
उत्प्लेऽहं करटिगमने किञ्च गत्या विलासान्
हन्तैकस्मिन् फञ्चिदपि न ते चण्डि सादृश्यमस्ति ॥२॥४३॥

मेघदूत से प्रेरणा लेने पर भी कवि ने यहाँ पर कुछ नवीन मायों का समावेश किया है।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में रामचन्द्रजी सीताजी को देखत ही हैं कि सुगों के उच्च स्वर से उनकी निद्रा भंग हो जाती है और उन भी ओँवेँ खुल जाती हैं। इस तरह स्वप्न में भी वे सीताजी के दर्शन नहीं कर पाते—

यावद् यामे रमयि । रज्जतेरन्तिमे मा कथञ्चिन्
निद्राया त्वन्मिजितसुखद स्वप्न आयाति तावत् ।

उच्चैरमीलति सपदि हक् कुन्कुटाना विराजै
कूरस्तस्मिन्नपि न सदृते सगम नो कृतान्त ॥२॥४४॥

इस श्लोक में प्रिय की विषयता और असहायता का कितने सुन्दर ढंग से चित्रित की गई है। प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही म्यज्ज दिखारं दते हैं और मुर्गा भी तब ही बोलता है। इस तरह मुर्गे के शब्द से म्यज्ज का भग हो जाना स्वाभाविक ही है।

सीताजी के विरह में रामचन्द्रजी कहते हैं कि उनका चित्त बिलकुल निराश्रय हो गया है। किसी भी बात में उसकी रुचि नहीं रह गई है—

म्यज्ज नो त्वग्, न निशमयितु श्रोत्रकं, नेक्षितु हग्
घातु नासा नदि, रसयितु नेच्छ्वतीष्ट च जिह्वया।
यन्मे चित्त सुमुखि मद्भिन्नान्तरात्मस्तघेष
गादोष्वाभि कृतमशरणं त्यङ्क्षियोगव्यथाभि ॥२॥४७॥

विरह में मनुष्य तत्तद् विषयों से विरक्त हो ही जाता है। इस प्रकार सन्देश में अपनी मनोव्यथा घतलाकर अन्त में सीताजी को आश्रयासन भी दिया गया है—

निन्यो ह्येव प्रकृतिनिधमोऽनित्यता नेति नित्यं
दुःखस्यान्ते सुखमिति सुनिर्धारं धैर्यं धरेऽहम्।
तस्मान्मा भूःस्यमपि नितरा कातरा कातराक्षि
नीचैर्गन्धृत्युपरि घ दशा चक्रनेमिकमेण ॥२॥४८॥

आगे चल कर फिर कहा गया है—

नीनाश्रयं किल कृतयता रक्षसोप्ते विरोध-
र्षाङ्गे नामक्षयमपगते मत्पतगातिवृष्ट्या।
कामं कामान्पुनरपि शचीन्द्राविषाया मृगाक्षि।
निर्वेक्ष्याथ परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥२॥४९॥

इस तरह सीताजी को पुनर्मिलन का आश्रयासन देकर सन्देश समाप्त कर दिया गया है।

समग्र काव्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह काव्य भी एक सुन्दर सन्देश काव्य है। मेघदूत की समस्यापूर्ति होते हुए भी काव्य में दुरुद्धता बहुत ही कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि इसमें मेघदूत की पंक्ति के मूल भाव को तोड़ा मरोड़ा बहुत कम गया है। दूसरे भावों तथा रस की समानता ने भी काव्य को दुरुद्ध नहीं बनने दिया है। समस्यापूर्ति के बन्धन में रहते हुए भी

कवि ने अपनी प्रतिभा का स्थान-स्थान पर पूर्ण चमत्कार दिखाया है। मेघदूत में निर्दिष्ट नदी के सम्बन्ध में मेघ से कहा गया है—

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावर्तीतस्य सिन्धु'
काश्य येन त्यजति विधिना स त्रयैरोपपाद्य ॥१॥३०॥ इत्यादि

मेघदूत के इस पद्य की चतुर्थपंक्ति को लेकर कवि ने क्या ही सुन्दर समस्या पूर्ति की है। रामचन्द्रजी मार्गदर्शन करते हुये हनुमान्जी से कहते हैं—

भूयोऽयन्त्या क्षणमिति पुरान्तर्भवैर्भवैस्ते
कलसातिथ्य कथमपि पुरो द्राक् प्रयातु यतेषा ।
यस्मात् सीता चिरविरहज प्रत्यहर्वर्धमाम । -
काश्यं येन त्यजति विधिना स त्रयैरोपपाद्य ॥१॥३१॥

नदी के सम्बन्ध में कहे गये वचन को कवि ने कितनी कुशलता से सीताजी के सम्बन्ध में जमा दिया है।

अलका नगरी का वर्णन करते हुये मेघदूत में मेघ से कहा गया है—

त्रिद्युत्पन्न ललित-निता' सेन्द्रचाप सन्निभा
प्रासादास्तवा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥१॥३२॥ इत्यादि

इस पद्य के चतुर्थ, चरण को लेकर समस्यापूर्ति के साथ साथ इस काव्य में भी हनुमान्जी और लका में परस्पर तुलना की गई है—

हैमाकाश कनक-पुष्प साधुकापेयशोभा
सत्कापेय विमलममला सोमिक सोमिकाश्च ।
सत्कोपीनाशुक्परिचिताश्चाहकोपीनयस्त्रै
प्रासादास्तवा तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ॥२॥३३॥

उपरोक्त पद्य में लका के प्रासादों और हनुमान्जी की परम्पर जो तुलना की गई है, यह मेघदूत के अनुकरण का ही परिणाम है। समस्यापूर्ति के साथ साथ कवि ने अपनी कल्पना से एक सुन्दर चित्र यहाँ उपस्थित कर दिया है।

१ साधुका रमणीया अतएव आपेया शोभा येषां ते इति प्रासादपदे ।
सद् विद्यमानं कापेयं कपिकर्म यत्येति हनुमत्पदे । सोमिकं सभुकाश्या इति प्रासादपदे ।
सोमिकं साभिमानाऽगुलीपेयम् इति हनुमत्पदे । सत्या प्रशम्नाया को
भूयो पीना विपुला ये अशुका किरणा ते परिचिता इति प्रासादपदे ॥

मेघदूत में यक्ष ने अपने घर की पहिचान बताने के बाद कहा है—

क्षामच्छाय भजनमधुना मह्वियोगेन नूनम्
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिव्याम् ॥२॥१६॥

इस पंक्ति की समस्यापूर्ति करते हुये कवि ने निम्न पद्य लिखा है—

तस्या नीचैर्युयतिषु समाशास्महे भाग्यशालिन्
सीता चिन्तामणिमिव मलिष्वान्नुयास्ता सचिन्ताम् ।
यस्या धत्ते वदनमधुना म्लानता मह्वियोगे
सूर्यापाये न खलु कमल पुष्यति स्वामभिव्याम् ॥२॥१६॥

समस्यापूर्ति तो इस पद्य में की ही गई है, बरिक्त मूल पंक्ति को और भी सुन्दर प्रसंग में जमा दिया गया है। सुषु और कमल का सादृश्य तो सर्वविदित ही है, अतः यह दृष्टान्तालंकार और भी चमत्कार उत्पन्न करता है।

मेघदूत में यक्ष हिमालय से आती हुई हवाओं का आलिङ्गन करता है। इसी के अनुकरण पर इस काव्य में भी रामचन्द्रजी के सन्ध में लिखा गया है—

कृत्वा पूर्णं कमलमुचि । ये ताघ्नपर्यब्धिसग—
तीर्थस्नान विदधति चिर चन्दनारण्ययात्राम् ।
आलिङ्गन्ते सुरभितघनास्तेऽनिला दाक्षिणात्या
पूर्णं स्पृष्ट यदि किल भवेद्गमेभिस्तवेति ॥२॥४६॥

उत्तर दिशा में स्थित रामचन्द्रजी का दक्षिण में स्थित सीताजी की ओर से आने वाली दक्षिण हवाओं का आलिङ्गन करना उचित ही है। समस्या-पूर्ति के साथ साथ कवि ने हवाओं में भी परिवर्तन कर दिया है।

इस तरह समस्यापूर्ति के दृष्टिकोण से भी यह काव्य बड़ा ही सफल और भावपूर्ण है। कहीं-० मेघदूत व भाव में ही समस्यापूर्ति की गई है और कहीं-कहीं कवि ने अपनी प्रतिमा से भावान्तर का भी समावेश कर दिया है।

समस्यापूर्ति के साथ-साथ कवि ने कहीं कहीं वही सुन्दर कल्पनायें भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की हैं। अवन्तिनगरी में क्रीडाशैल पर क्रीडा करते हुये हनुमान्जी को देखकर बहा की स्त्रियों के मन में क्या भाव उठते हैं। जरा इसका भी ध्यान कीजिये—

म्यर्दन्तीन्द्र किमयमर्धया जंगम परंतो वा
पुन्ध्यातुच्छोच्छ्रलितलसितोऽलौकिकोऽयं कपीन्द्र ।

पश्यन्तीनामतिचकितमिन्पूहनैरङ्गनाना
लोलापागीपटि न रमसे लोचनैर्त्रिचितोऽसि ॥१॥२६॥

मेघदूत में मार्ग वर्णन करते समय कहा गया है कि मेघ के गर्जन को सुनकर मानसरोवर की ओर जाने वाले राज इस उसके सहायक हो जायेंगे। इसी प्रकार इस काव्य में भी राजहंसों का हनुमान्जी का सहायक होना बताया गया है। लेकिन यहाँ वे मानसरोवर की ओर नहीं जा रहे हैं, यदिक शरदु ऋतु के आजाने के कारण उल्टे मानसरोवर से दक्षिण की ओर आ रहे हैं-

क्रीशाधीश द्रतगतिरिसायुर्मिकाहीरकाशु-
माला चचना विसकिसलयध्रान्ति सलिहन्त ।
प्रत्यायान्त शरदुपगमे मानसादक्षिणस्या
सम्पत्स्यन्ते नमसि भवतो राजदसा सहाया ॥२॥११॥

अगूठी से निकलती हुई किरणमाला को कमलनाल समझकर अपनी चौंचों से चाटते हुये हंसों का हनुमान्जी के साथ चलते जाना लेश मात्र भी अरुचि-
कर नहीं हो सता। कवि की फरपना यहाँ दखते ही बनती है।

जैसा कि पहिले कहा गया है कि यह काव्य धार्मीकि रामायण से भी प्रेरणा लेकर लिखा गया है, उदनुसार इस काव्य में मार्गवर्णन धार्मीकि रामायण से विलकुल मिलता जुलता है (दे० बा० रा० किष्किन्धा काण्ड ४१ वा सर्ग)। काव्य का कथानक तो रामायण की कथा पर आधिन है ही। इसके अतिरिक्त कवि ने हनुमान्जी द्वारा सीताजी को अपना परिचय देने व रात्र सीताजी की उत्सुकता का वर्णन करते हुये कहा है-

इत्युक्तं सा भगिति दमयन्तीव विप्र पुरोत्का
सा मान्य त्वा मुदितमनसा वाचिकं श्रोतुकामा ॥२॥३६॥

इस पद्य में दमयन्ती और ब्राह्मण के उल्लेख से यह भी प्रतीत होता है कि इस काव्य को लिखते समय कवि के ध्यान में नल दमयन्ती की कथा भी सागरुक् थी।

उपर्युक्त विवेचन से पाठक गण को इस काव्य की विशिष्टताओं का परिचय मिल गया होगा। हनुमद्दूत लिपिकर कवि ने सदेशकाव्यों की आदिश्रोत रामायण की कथा के प्रति सदेशकाव्यों के रचयिताओं के श्रुण को सुरा दिया है। सदेशकाव्य के शिल्पविधान के दृष्टिकोण से भी यह काव्य हीक ही है। हनुमान्जी की देपना, उन्हें दूतकार्य में नियुक्त करना, मार्ग बनाना, लका नगरी तथा आयश्यक स्थानों का परिचय देना, सीताजी का वर्णन और सन्देश-वचन सय यथा स्थान इस काव्य में पाया जाता है। विप्रलम्भ शृ गार इस काव्य का मुख्य रस है। राम जैसे

धीरोदात्त नायक तथा मीना जैसी उत्तम नायिका और हनुमान् जैसे कुशलदूत-इन सब ने काव्य को और भी मनोहर बना दिया है। मेघदूत की समस्या पूर्ति यों तो और भी सदेशकाव्यों में पाई जाती है, लेकिन वे प्रायः जैनपरम्परा में आते हैं। अतः उनका विषय विप्रलम्भ शृंगार के क्षेत्र से बाहर है। इसीलिये उनकी समस्यापूर्ति यही जटिल हो गई है। विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंग में आये हुए काव्य को यथास्थिति तोड़ मरोड़ कर उन्होंने शान्त रस में बँटालने की चेष्टा की है। लेकिन इस सदेश काव्य में समस्यापूर्ति करते समय ऐसी कोई क्लिष्टकल्पना नहीं की गई है। भाव तथा रस दोनों काव्यों में समानान्तर ही हैं। अतः सन्देश काव्य तथा समस्यापूर्ति इन दोनों के दृष्टिकोण से यह काव्य एक सफल रचना है और पाठकों के हृदय पर कवि की सहृदयता और विद्वत्ता का प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकता। कवि ने अपनी भूमिका में लिखा है—

कृतिरमरनदीय कालिदासी परमहिमालयसमगाऽमला क्व ।

मम तु भणितिरुद्धृष्टेय कुर्या क्व घनरसातिशयेन हन्त हीना ॥१॥

भवतु सुरसरित्तथापि कुल्या सुरसरिता सह सगता कथंचित् ।

इति मम कथिताऽपि कालिदास सुकथितया मिलिता पवित्रिता स्यात् ॥६॥

कवि के इन वचनों को हम उसकी नम्रोक्ति ही कहेंगे। मेघदूत की रूपूर्ति होने के कारण जैनेतर सदेशकाव्यों में इस काव्य का एक विशिष्ट सन्देशकाव्यों के ऐतिहासिक विवेचन में इस काव्य के महत्त्व को उक्त किया जा सकता।

कमल चौधरी द्वारा
तपादित तथा चित्रित।

वक्रयती
जा, क

—: इति शम् :—

परिशिष्ट १

प्रस्तुत ग्रन्थ के आधारभूत सन्देश काव्य

- १ इन्दु दूतम्—ले० श्री विनय विजय गणि । मुनि श्री धुरन्धर विजय द्वारा प्रणीत प्रकाश व्याख्या सहित श्री जैन साहित्य-वर्धक-सभा, शिरपुर (पश्चिम खान देश) से स० १९४६ ई० में प्रकाशित ।
- २ उद्धव-दूतम्—ले० श्री माधव कर्नीन्द्र भट्टाचार्य । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य सग्रह प्रथम भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ ५३१—५६५ पर स० १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित । डा० जोन हेवर्लिन द्वारा अपने काव्यसग्रह में कलकत्ते से स० १८४७ ई० में प्रकाशित ।
- ३ उद्धव सन्देश—ले० श्री रूपगोम्यामिन् । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य सग्रह, तृतीय भाग, तृतीय संस्करण, पृष्ठ २१५—२७५ पर स० १८८८ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित ।
- ४ कौक सन्देश—ले० विष्णु घात । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से ग्रन्थांक १२५ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- ५ कौकिल-सन्देश—ले० उद्दण्ड कवि । श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री की टिप्पणी सहित मंगलोदयम् प्रेस, त्रिचूर से स० १९३९ ई० में द्वितीय संस्करण प्रकाशित ।
- ६ घट कर्पूर यमक काव्यम्—ले० घट कर्पूर कवि । सर्वत्र प्रकाशित ।
- ७ चेतो दूतम्—ले० (अक्षय) । जैन आत्मानन्द सभा, भायनगर से वि० सं० १९७० में प्रकाशित ।
- ८ जैन मेघदूतम्—ले० आचार्य मेघतुंग । श्री जैन आत्मानन्द सभा, भायनगर से वि० सं० १९८० में प्रकाशित ।
- ९ नेमि-दूतम्—ले० विव्रम कवि । जैन प्रेस, कोटा से प्रकाशित ।
- १० पयन-दूतम्—ले० धोयि कवि । श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा संस्कृत-साहित्य-परिषद्, श्याम याजार, कलकत्ता द्वारा स० १९२६ ई० में प्रकाशित ।
- ११ पयन-दूतम्—ले० धादि चन्द्रसूरि । हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय, यम्यई से स० १९१४ ई० में प्रकाशित ।

- १० पदाक-दूतम् —ले० कृष्णनाथ सार्वभौम । श्री जीवानन्द विद्यासागर के काव्य-समग्र, प्रथम भाग, तृतीय सस्करण में पृष्ठ ५०७-५३० पर कलकत्ता से स० १८८८ ई० में प्रकाशित ।
- १३ पान्थ दूतम् —ले० टिकुरी (बंगाल) निवासि श्री भोलानाथ कवि । प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ६ जनवरी-दिसम्बर, १९४६ में मूलमात्र प्रकाशित ।
- १४ पार्श्वोद्भूय काव्यम् —ले० श्री आचार्य जिनसेन । श्री के० बी० पाठक द्वारा पूना तथा श्री योगिराट् पण्डित-चार्य, धरण-खेल गोल-निगासी की टीका के साथ निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से स० १९०६ ई० में प्रकाशित ।
- १५ पिक दूतम् —ले० रुद्र न्यायपञ्चानन । श्री अनन्तलाल ठाकुर द्वारा प्राच्यवाणी पत्रिका, कलकत्ता, भाग ७ स० १९४५ में प्रकाशित ।
- १६ भृगु-दूतम् —ले० शतावधान कवि श्री कृष्ण देव । नागपुर विश्व विद्यालय पत्रिका, स० ३ दिसम्बर स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- १७ भृगु सन्देश —ले० वासुदेव कवि । त्रिवेन्द्रम् सस्कृत सीरीज से स० १२८ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- १८ भ्रमर दूतम् —ले० रुद्रन्याय पञ्चानन । डा० जतीन्द्र विमल चौधरी द्वारा स० १९४० ई० में कलकत्ते से प्रथम बार संपादित तथा प्रकाशित ।
- १९ मनो-दूतम् —ले० विष्णुदास । श्री चिन्ता हरण चक्रवर्ती द्वारा संपादित तथा सस्कृत-साहित्य परिषद्, श्याम बाजार, कलकत्ता से स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- २० मनो-दूतम् —ले० तैलग प्रजनाथ । निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से काव्य माला ' प्रयोदश गुच्छक में प्रकाशित ।
- २१ मयूर-संदेश — ले० उदय कवि । डा० सी० कुन्दन राजा द्वारा संपादित तथा श्री० बी० ए० पूना से स० १९४८ ई० में प्रकाशित ।
- २२ मेघ-दूतम् —ले० कालिदास । विभिन्न स्थानों से प्रकाशित ।
- २३ मेघ प्रतिसंदेश —ले० मन्दिफल राम शास्त्री कविरत्न । गवर्नमेंट प्रेस, मैसूर से स० १९२३ ई० में प्रकाशित ।

- २५ मेघदूत-समस्यालेख - ले० आचार्य मेघविजय । श्री जैत आत्मानन्द-सभा, भाय नगर से वि० सं० १९७० में प्रकाशित ।
- २५ यज्ञ मिलनकाव्यम् - ले० महामहोपाध्याय श्री परमेश्वर झा । रामेश्वर प्रेस, वरभगा से शाके १८१७ में प्रकाशित ।
- २६ वात-दूतम् - ले० कृष्णनाथ न्यायपञ्चानन । इल्लिशियम प्रेस, न० ६ काशी घोष मार्ग कलकत्ता से स० १८८६ ई० में प्रकाशित ।
- २७ शीत दूतम् - ले० श्री चाम्बिसुन्दरगणि । यशोविजय ग्रन्थमाला, बनारस से प्रकाशित ।
- २८ युक्त सन्देश - ले० लक्ष्मीदास । श्री पी० एस० अनन्त नारायण शास्त्री द्वारा प्रणीत टिप्पणी सहित मंगलोदयम् प्रेस, प्रिन्स से प्रकाशित ।
- २९ इस दूतम् - ले० श्री यामन महृ थाण । डा० जे वी० चौधरी द्वारा कलकत्ते से स० १९०१ ई० में प्रकाशित ।
- ३० इस दूतम् - ले० श्री रूप गोस्वामिन् । श्री जीवानन्द विद्यासागर द्वारा काव्य संग्रह, प्रथम भाग, तृतीयसंस्करण, पृ० ४४१-५६७ पर कलकत्ते से स० १८८८ ई० में प्रकाशित ।
- ३१ इस सन्देश - ले० श्री वेदान्तदेशिक । वी० रामस्वामी शास्त्रुलु एण्ड सन्स मद्रास से स० १९३७ ई० में प्रकाशित । गरनेमेट प्रेस, मैसूर से स० १९१३ ई० में प्रकाशित ।
- ३२ इस-सन्देश - श्री पूर्ण सारस्वत । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १९२६ के रूप में स० १९३७ ई० में प्रकाशित ।
- ३३ इस-सन्देश - ले० अज्ञात । त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज से स० १०३ के रूप में स० १९३० ई० में प्रकाशित ।
- ३४ अनुमद् दूतम् - ले० श्री नित्यानन्द शास्त्री, जोधपुर । रोमराज धीकृष्णदास द्वारा यम्बई से वि० सं० १९८५ में प्रकाशित ।

परिशिष्ट ०

अन्य उपलब्ध सन्देश काव्य

- १ अनिल-दूतम् — ले० रामदयालु तर्करत्न । हस्तलिखित प्रति के कुछ अंश ही उपलब्ध । संस्कृत दूत काव्य माला, १४० (१), प्राच्यवाणी-मन्दिर कलकत्ता का हस्तलिखित पुस्तकों का संग्रह देचना चाहिये ।
- २ अमर-सन्देश — श्री गुस्टव ओपर्ट (Gustav Oppert) द्वारा संकलित दक्षिण-भारत के निजी पुस्तकालयों के संस्कृत-हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग ५ सं० ७८०५ मद्रास देचना चाहिये ।
- ३ इन्दु-दूतम् (चन्द्रदूतम्) — ले० श्री जगन् कवि । डा० जे० बी० चौधरी, कलकत्ता द्वारा प्रथम बार सं० १९४१ ई० में सम्पादित तथा प्रकाशित ।
- ४ काक-दूतम् — (क) सहृदयम्, संस्कृत मासिक पत्र, मद्रास, भाग २३, पृष्ठ १७३ (ख) देविये तथा (ग) पञ्चयूपी, कलकत्ते के श्री गंगाधर ठाकुर के वंशज श्रीर दीनयन्त्रु मुख्योपाध्याय के पुत्र गौरगोपाल शिरोमणि का भी एक काकदूत उपलब्ध है । सर्दर्म के लिये 'धर्मोपदूत-काव्येतिहास' पृष्ठ ६७ देविये ।
- ५ कीर दूतम् — (क) ले० राम गोपाल । लखक समयत नदिया के राजा रामचन्द्र का सभा कवि था । श्री हर प्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों की सूची भाग १ पृ० ३६ सं० ६७ देखनी चाहिये । यह ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है । (ख) एक अन्य कीरदूतम् श्री वेदान्त दशिक के पुत्र श्री परदाचार्य का भी लिखा हुआ है । मैसूर की गुरु परम्परा में ऐसा उल्लेख पाया जाता है ।
- ६ कृष्ण-दूतम् — ले० नृसिंह कवि । अट्टपार पुस्तकालय का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग २, सं० ४ देविये ।
- ७ कोकिल संदेश — (क) ले० आचार्य वेदान्त त्रेशिक के पुत्र श्री परदाचार्य । उन्नीपक० गुणवर्धन, न्यूयार्क द्वारा सम्पादित । इस काव्य का मैसूर की गुरु परम्परा में उल्लेख पाया जाता है । (ख) शतक्रतु तातार्य के पुत्र येंकटाचार्य द्वारा प्रणीत । श्री पी० पी० एस० शास्त्री द्वारा संकलित तंजौर पैलेस लाइब्रेरी की हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २६३ देविये । (ग) गुणवर्धन द्वारा

प्रणीत। सीलोन पेन्टिकवेरी, भाग ४, १११ पृष्ठ देखिये। (घ) नरसिंह कवि द्वारा प्रणीत। अदुयार पुस्तकालय का हस्त लिखित पुस्तकों का सूचीपत्र भाग २, सं० ५ देखिये।

८ कोकिल-दूतम् —ले० हरिदास। कालिदास सेन द्वारा प्रणीत मणिमाला व्याख्या सहित सुधामय प्रामाणिक द्वारा कलकत्ते से वग सं० १३११ में प्रकाशित।

९ गदड सन्देश —(क) ले० वेन्लक्वैड रामराय। श्री कृष्णभाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ० ३३३ देखिये (ख) एक अन्य गदड सन्देश श्री कोच नरसिंहाचार्य, तिरुपति का भी लिखा हुआ है।

१० धनवृत्त —ले० फोरद् रामचन्द्र। इस काव्य में मेघदूत की उत्तर कथा कल्पित की गई है। श्री के० डी० नामेश्वर द्वारा मसूलीपट्टम् से सं० १६०८ ई० में प्रकाशित। श्री एम० अच्युत राम शास्त्री, एलोर द्वारा सं० १९१७ ई० में प्रकाशित। यह दोनों संस्करण तेलुगु लिपि में मुद्रित हैं।

११ चकोर-सन्देश —(क) ले० श्री पेदसूरि। लेखक द्वारा प्रणीत वसुमगल-नाटक (ओरियन्टल मैनेजिकण्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास का हस्तलिखित पुस्तकों का वर्णनात्मक सूचीपत्र, २१, सं० ८४६७ तथा तञ्जौर पैलेस लाइब्रेरी का हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र, भाग ७, सं० २८६६) की प्रस्तावना में इस काव्य का उल्लेख मिलता है। लेखक को 'नवीन पतञ्जलि' यह उपाधि भी थी। (ख) ले० वासु देव कवि। शिवोदय इत्यादि काव्य भी इसने लिखे हैं। (ग) ले० श्री वेंकट कवि। ओरियन्टल मैनेजिकण्ट्स लाइब्रेरी मैसूर का संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों का सूचीपत्र सं० २४६ देखिये।

१२ घातक-सन्देश —ले० (अज्ञात)। जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक-सोसायटी (१८८१ पृष्ठ ४४१ देखिये)। इस काव्य में कवि ने मालावार के राजा रामवर्मन् के सरक्षण के लिये प्रार्थना की है।

१३ चन्द्र-दूतम् —(क) ले० कृष्ण तर्कालकार। केवल हस्तलिखित प्रति उपलब्ध। (ख) श्री हरप्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित संहत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, भाग २, पृ० ५०, ग्रन्थ संख्या, ६१ देखिये। इस काव्य में राम द्वारा सीता के पास चन्द्रमा को दूत बना कर भेजा गया है। ग्रन्थ का रचना काल अज्ञात है।

(ख) ले० विनयप्रभ । रम्यई क्षेत्र में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की पीटर्सन द्वारा की गई खोज का विवरण, भाग ३, स० २६० देखिये । अन्य यमक के साथ मालिनी छन्द में यह काव्य लिखा गया है । श्री शार० जी० भाण्डारकर द्वारा रम्यई प्रदेश में संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज के विवरण (१६०७) में ग्रन्थ का रचनाकाल स० १३४२ दिया हुआ है ।

(ग) ले० श्री विमल कीर्ति गण्ण । यह एक जैन सन्देशकाव्य है मेघदूत की समस्यापूर्ति भी इसमें की गई है । श्री जिनदत्त सुरि-शान भण्डार सूत से वि० स० २००६ में प्रकाशित ।

१४ तुलसी दूतम् — (क) ले० त्रिलोचन शर्मन् । (ख) वैद्यनाथ द्विज । संस्कृत साहित्य परिषत् लाहोरी, कलकत्ता में इन काव्यों की हस्तलिखित प्रतिया उपलब्ध हैं । प्राच्ययात्री मन्दिर, कलकत्ता का ग्रन्थ सग्रह सं० १३७ देखिये ।

१५ दारयूह-सदेश — ले० श्री नारायण कवि । ज्ञानकोर का संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ सं० १६५ देखिये ।

१६ पद्म-दूतम् — ले० श्री सिद्धनाथ विद्यावागीश । कूच विहार के अन्तर्गत रामप्रथी के निवासी । स० १६७५ में कलकत्ते से प्रकाशित । इण्डिया आफिस लाहोरी कैटालाग पृ० १८२६ (१८६८) देखिए

१७ पदाक दूतम् — ले० भोजानाथ । इण्डिया आफिस लाहोरी कैटालाग, भाग ७, ग्रन्थ सख्या १४६७ देखिए ।

१८ पयन-दूतम् — (क) ले० श्री जी धी पद्मनाभ । श्री कृष्णमाचारिणर का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा २००, पृ० २७५ देखिये ।

१९ पादप-दूतम् — ले० गोपेन्द्र नाथ गोस्वामिन् । नवद्वीप कान्ति प्रेस, नवद्वीप से प्रकाशित । इस ग्रन्थ का दूसरा नाम गौर विष्णुप्रियासंवाद है । (स० १६३४-३५ में प्रकाशित) ।

२० विक-दूतम् — (क) ले० (अज्ञात) । श्री विन्ताहरण चक्रवर्ती, कलकत्ता के निजी पुस्तकालय में इस काव्य की पाण्डुलिपि सुरक्षित है । (ख) ले० अम्बिका चरण देशरामन् । प्राच्ययात्री मन्दिर, कलकत्ता में ग्रन्थ के कुछ अंश उपलब्ध हैं ।

- २१ पिक-सन्देश — (क) ले० रगनाथाचार्य । धीरगम् से प्रकाशित । (ख) ले० कोच (क) नरसिंहाचार्य । लेखक तिरुपति निवासी श्री निगासाचार्य का पुत्र है । ग्रन्थ तिरुपति से प्रकाशित हुआ है ।
- २२ बुद्धि-सन्देश — ले० श्री सुब्रह्मण्य मूरि । यह एक आधुनिक अप्रकाशित रचना है । विशेष विवरण के लिए श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास, पैरा ३५२, पृष्ठ ३८० देखिए ।
- २३ भक्ति दूत — ले० श्री कालिप्रसाद शर्मन् । श्री आर० पल० मित्र के संस्कृत के हस्त लिखित ग्रन्थों के नोटिस, भाग ३, पृ० २७, स १०५१ देखिए ।
- २४ भृगदूत — ले० श्री गगानन्द । यह कवि धीकानेर के महाराजा कर्णसिंह का समाकवि था । ग्रन्थ अप्रकाशित है । रचनाकाल स० १५-०६--१५२७ ई० के मध्य में होना चाहिये । श्रीफ़ोट के कैंटालो गस कैंटालोगोरम भाग ३, स० ३० पर इसका उल्लेख पाया जाता है ।
- २५ भृगु सन्देश — ले० श्री पेरुमुदूर के प्रतिवादि भय कर वेंकटाचार्य की धर्मपत्नी श्री त्रिवेणी । रचना काल स० १८४० से १८८३ ई० का मध्य । ग्रन्थ अप्रकाशित ।
- २६ भ्रमर-सन्देश — ले० श्री महालिंग शास्त्री एम० ए०, बी० एल, वकील, मद्रास । साहित्य चन्द्रशाला, तिरुयालगट्टु (तजौर) से स० १९५४ में प्रकाशित । इस काव्य में इन्द्र द्वारा भ्रमर की दूत बनाकर इन्द्राणी के पास भेजा गया है ।
- २७ मधुकर दूतम् — ले० केंतडि पट्टि (दक्षिण भारत) के चक्रवर्ति श्री राजगोपाल । लेखक सेन्ट्रल कालेज, बंगलौर में स० १९२० से १९३४ तक संस्कृत विभाग का अध्यक्ष रहा । लेखक ने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं । ये प्रायः अप्रकाशित ही हैं ।
- २८ मधुरोष्ठ-सन्देश-विशेष ध्यान के लिए ओरियण्टल लाइब्रेरी, मैसूर का संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, ग्रन्थ संख्या २५१ देखना चाहिये ।
- २९ मनोदूतम् — (क) ले० श्री रामराम शर्मन् । यह काव्य शिवरिणी छन्द में (क) है । पंजीय साहित्य परिषत्, कलकत्ता के पुस्तकालय में ग्रन्थ संख्या १०८२ के रूप में इसकी पाण्डुलिपि सुरक्षित है । प्राच्य (ख)

- (ग) वाली मन्दिर, कलकत्ता के संग्रहालय में भी ग्रन्थ संख्या ११ के रूप में इस की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है। (घ) जैन ग्रन्थावलि सं ३३२ देखिए। (ग) काश्मीर के हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, स १७० और २८७ देखिए। (घ) श्री इन्दिरेश भट्ट। यह काव्य श्री हरिहर भट्ट के हृदयदूत के साथ प्रकाशित हो चुका है। चुन्नीलाल बुक सेलर, बदा मन्दिर, मूलेश्वर, धर्मपुर में उपलब्ध है।

३० मयूर-सन्देश — (क) ले० (अज्ञात)। ओरियण्टल लाइब्रेरी मद्रास का संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों का त्रिवर्षीय सूचीपत्र, भाग ४, ग्रन्थ संख्या ८२८८ देखिए। (ख) ले० श्री रमाचार्य। अद्वयार लाइब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २, ग्रन्थ संख्या ८ देखिए। (ग) ले० श्री निवासिाचार्य। यह काव्य मद्रास से मुद्रित हुआ है।

३१ मयूर दूतम् — ल० मुनि श्री धुन्धर विजय। वि० सं० २००० में अहमदाबाद से प्रकाशित। यह एक जैन सन्देश काव्य है।

३२ मानस-सन्देश — (क) ले० श्री विश्वसुरि वीरराघवाचार्य। ओरियण्टल मैन्सिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास का ग्रन्थसंख्या २६६४ देखिए। लेखक का कार्यकाल सं० १८५५ से १९०० तक है। यह काव्य आधुनिक कृति है। (ख) ले० श्री लक्ष्मण सुरि। लेखक पचयप्पा कालेज, मद्रास में संस्कृत प्रोफेसर रहा। महामहोपाध्याय की उपाधि भी इन्हें प्राप्त हुई थी। सं० १८५६ से १९१६ तक इनका जीवन काल रहा। मानससन्देश के अतिरिक्त और भी अनेक रचनाएँ इनकी प्राप्त होती हैं। इनके कुछ ग्रन्थ मद्रास से मुद्रित भी हो चुके हैं।

३३ मारुत सन्देश — ल० (अज्ञात)। मद्रास से मुद्रित।

३४ रथागदूतम् — अद्वयार लाइब्रेरी का हस्तलिखित ग्रन्थों का सूचीपत्र, भाग २ ग्रन्थ संख्या १६ देखिए। मैसूर से यह ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है।

३५ एकदूतम् — ले० महामहोपाध्याय अजितनाथ न्यायरत्न। यह काव्य अभी तक अप्रकाशित है। प्राच्य वाली मन्दिर, कलकत्ते में हस्त लिखित ग्रन्थ संग्रह, सं० १४३ देखिए। मूलप्रति लेखक के सुपुत्र श्री शैलेन्द्र नाथ भट्टाचार्य के पास सुरक्षित है।

३६ वाङ्मण्डन गुणदूतम्—ले० श्री धीरेश्वर । डा० जे०बी० चौधरी द्वारा प्रथम बार कलकत्ते से स० १९४१ में प्रकाशित । इस काव्य में कवि ने अपने सूक्त गुण को दूत बनाकर एक राजा के पास उसका आशय पाने के लिए भेजा है ।

३७ विट्-दूतम् — इस ग्रन्थ की एक प्रति आर्ष लाइब्रेरी विजगापट्टम् में उपलब्ध है ।

३८ विप्र सन्देश —(क) ले० कोचुम्नि तंवरिन कौंगनोर निवासी । इस काव्य के अतिरिक्त गोष्ठी चरित, धाणायुधचम्पू यह दो काव्य ग्रन्थ तथा अनग विजय और विटराजविजय यह दो भाण ग्रन्थ भी इनके लिखे हुए हैं । दे० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा १८० पृष्ठ २५८ । जर्नेल आफ दि रायल एशियाटिक (१९००) ७६३ भी देखिए । (ख) महामहोपाध्याय श्री लक्ष्मणसूरि मद्रास । लेखक का जीवनकाल १८५६-१९१६ है । इसमें रुक्मिणी ने कैसे एक वृद्ध विप्र को अपना दूत बनाकर कृष्ण जी के पास भेजा, इसका वर्णन किया गया है । पूर्णचन्द्रोदय प्रेस तञ्जौर से स० १९०६ में प्रकाशित

३९ शिवदूतम् — ले० तञ्जौर मण्डलान्तर्गत नदुकापेरी निवासी श्री नारायण शास्त्री । इस कवि ने ६२ नाटक विभिन्न पौराणिक तथा काल्पनिक विषयों पर लिखे हैं । विभिन्न काव्य तथा गद्यात्मक जीवन चरित भी लिखे हैं । इस दूतकाव्य के अतिरिक्त एक श्येन दूत भी इन्होंने लिखा है । (दे० श्री० कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास पैरा ७२७, पृ० ६६८-९) ।

४० शुक-सन्देश —(क) ले० आचार्य वेदान्त देशिक का सुपुत्र परदाचार्य । गुरु-परम्परा प्रभाष, मैसूर (१९६) देखिए । (ख) करिक्कम्पल्लि नम्बूद्रि । (श्री) शुष्टय आपट्टे द्वारा संकलित दक्षिण भारत के निजी पुस्तकालयों के संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, मद्रास, ग्रन्थसख्या २७२१, ६२४१ देखिए । (ग) श्री रमाचार्य । (दे० श्री लेयिस राइस द्वारा संकलित मैसूर और बुरंग के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, बंगलौर, ग्रन्थ सख्या २२४०) । (ग) श्री प्रतिपादि भयंकर बेंकटाचार्य-की पत्नी त्रिवेणी देवी । अप्रकाशित ।

४१ उपेणदूतम् — ले० नारायण शास्त्री । दे० उपरिनिर्दिष्ट शिवदूत स० ३६ ।

- ४२ सिद्धदूत —ले० अबधत राम । इसमें मेघदूत की-समस्यापूर्ति की गई है । पाटन से स० १६१७ में प्रकाशित ।
- ४३ सुभग सदेश —ले० नारायण कवि । १३० श्लोकों में यह काव्य पूर्ण है । दे० जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसायटी, १८८४ पृ० ४४६ । जयसिंहनाद के राजा राम वर्मा (१५४१-१५४७ ई०) के दरबार में यह कवि था ।
- ४४ सुरभि-सन्देश —ले० श्री वीरवल्लि विजयराघवाचार्य, तिरुपति । आधुनिक संस्कृत कवि और लेखक । इस काव्य में आधुनिक नगरों का वर्णन है ।
- ४५ हनुमत्सदेश —ले० पश्चिम गोदावरी जिले के तानुडु तालुके में दोन्तायरम् क निवासी श्री विश्वमूर्ति वीरराघवाचार्य (१८५५-१९०० ई०) । यह संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे । इस काव्य के अतिरिक्त रामानुजश्लोकत्रयी, मानससन्देश, पातक नरसिंहस्तोत्र, रघुवीर गद्य-व्याख्या और चतु श्लोकी व्याख्या भी इनके लिखे हुए ग्रन्थ उपलब्ध हैं ।
- ४६ कपिदूतम् (हनुमद्दूतम्) —ढाका यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी, हस्तलिखित ग्रन्थ स० ६७५ थी (संस्कृत) ।
- ४७ हरिण-सन्देश —ले० आचार्य नेदान्तदेशिक के सुपुत्र श्री परदाचार्य । मैसूर की गुरुपरम्परा में इसका उल्लेख मिलता है ।
- ४८ हंस-दूतम् —(क) ले० श्री रघुनाथदास । यह काव्य मूलरूप में उपलब्ध नहीं है । सत्रहवीं शताब्दी के नरसिंहदास के बंगला पद्यानुवाद में यह पाया जाता है । रूपगोस्वामी के हंसदूत जैसा ही काव्य का कथानक इत्यादि है । विशेष विवरण के लिये डॉ० सी० सेन का धर्म साहित्यपरिचय, पृ० ८५० देखिये । (ख) ले० विद्या विधान कर्षीन्द्राचार्य सरम्पती । श्री ए० सी० वनेल, लन्दन द्वारा संकलित तजोर राजमहल के संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची, पृ० १६३ में इसका उल्लेख है । लेकिन यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है । (ग) ओफोट का बेटालोगस बेटालोगोस्म, भाग १, सं० ७५३ पर इसका उल्लेख है और किसी बेंकटेश का लिखा हुआ है ।
- ४९ हंस सन्देश —(अज्ञात) । गयनमेन्ट ओरियण्टल मैजिस्ट्रेट्स लाइब्रेरी, मद्रास में इसकी एक प्रति उपलब्ध है । इसमें एक हंस को एक

वियुक्त प्रेमी द्वारा दूत बनाकर अपनी प्रेमिका के पास भेजा गया है ।

५० हृदय-दूतम् —ले० श्री भट्ट हरिहर । वसन्त तिलका छन्द में यह काव्य लिखा गया है (वेर, १, स० ५४१) । चुन्नीलाल बुकसेलर, यदा मन्दिर, भूलेश्वर, वम्बई से प्रकाशित । इस काव्य के साथ में श्री इन्दिरेश भट्ट का मनोदूत भी प्रकाशित हुआ है ।

नोट—इस प्रकार प्रकाशित तथा अप्रकाशित ७४ अन्य सन्देश काव्य भी देश के विभिन्न भागों में उपलब्ध हैं ।

परिशिष्ट ३

विशिष्ट सन्दर्भ ग्रन्थ

- १ ऋग्वेद
- २ यास्क का निरुक्त तथा वैदिक निघण्टु
- ३ अमर कोष
- ४ श्री चारमीकि रामायण
- ५ महाभारत
- ६ धीमदुभाषित
- ७ रौद्र जातक
- ८ भामह का काव्यालंकार
- ९ दरिडन् का काव्यादर्श
- १० अग्नि पुराण
- ११ रुद्रट का काव्यालंकार
- १२ वक्रोक्ति जीरिन
- १३ मम्मट का काव्य प्रकाश
- १४ हेमचन्द्र का काव्यानुशासन
- १५ प्रताप रुद्र पराभूषण
- १६ वाग्भट्ट का काव्यालंकार सूत्र
- १७ राजशेखर की काव्य मीमांसा
- १८ पंडितराज जगन्नाथ का रस गगाधर
- १९ विश्वनाथ का साहित्यदर्पण

- २० मनुस्मृति
 २१ मालतीमाधय
 २२ विक्रमोर्षशीयम्
 २३ रघुनशम्
 २४ कुमार सभयम्
 २५ गीतगोविन्दम्
 २६ भास का स्वप्नवासवदत्तम्
 २७ कथा सरित्सागर
 २८ डा० वासुदेव शरण अग्रवाल का 'मिघदूत एक अध्ययन'
 २९ वृहत्कथा
 ३० अभिज्ञान शाकुन्तलम्
 ३१ श्री सुधीर कुमार गुप्त का 'मिघदूत की वैदिक पृष्ठभूमि और उसका सांस्कृतिक सन्देश'
 ३२ सौन्दरनन्द काव्य
 ३३ मोनियर विलियम्स का इण्डियन रिज्डम ।
 ३४ श्री एस० एन० दास गुप्त द्वारा संपादित 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' क्लासिकल पीरियड, भाग १ ।
 ३५ श्री कृष्णमाचारियर का संस्कृत साहित्य का इतिहास
 ३६ श्री ए० वी० कीथ का संस्कृत ड्रामा और संस्कृत साहित्य का इतिहास
 ३७ श्री आर० एन० आप्टे का 'द्रेट आफ कालिदास'
 ३८ जैन सिद्धान्त भास्कर, भाग, २, किरण २, तथा भाग ३, किरण १ आरा ।
 ३९ डा० जे० वी० चौधरी का बंगीयदूतकान्येतिहास ।
 ४० सिद्ध भारती भाग १ और - होशियारपुर ।
 ४१ जर्नल आफ ओरिएण्टल रिसर्च मद्रास, भाग १० स० ३, पृष्ठ २६६-७७ (१९३६) पर श्री० ई० पी० राधाकृष्णन का दूत काव्य सपन्धी लेख ।
 ४२ इण्डियन हिस्टारिकल फयर्टर्ली, भाग ३, स० २, पृष्ठ २७३-६७, १९२७ में श्री सी० चक्रवर्ती का दूत काव्य सपन्धी लेख ।